बन्दी कल्याण एवं
नि:शुल्क कानूनी सहायता

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो

गृह मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

बन्दी कल्याण
एवं
निःशुल्क कानूनी सहायता

लेखक

डॉ. सरिता भवानी मालवीय

(बी.एस.सी. (सांख्यिकी), एल.एल.बी.(ऑनर्स), एल.एल.एम.,
पी.एच.डी.(विधि), पोस्ट डॉक्टरल)

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो
गृह मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
वर्ष 2021

भारत सरकार, गृह मंत्रालय की हिन्दी सलाहकार समिति द्वारा दिनांक 23 मई, 1979 को आयोजित बैठक में निर्णय लिया गया था कि पुलिस, अपराध, कारागार एवं न्यायालयिक विज्ञान तथा पुलिस प्रशासन आदि विषयों पर हिन्दी में मौलिक पुस्तकें उपलब्ध कराने के लिए पं. गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार योजना प्रतिस्थापित की जाए। तदनुसार 22 मार्च, 1980 को गृह मंत्रालय के अपर सचिव की अध्यक्षता में हुई बैठक में निर्धारित मापदंडो के अनुसार इस योजना को अंतिम रूप दिया गया। इस योजना के भाग 1 के अंतर्गत प्रकाशित मौलिक पुस्तकों को पुरस्कृत किया जाता है तथा भाग 2 के अंतर्गत दिए गए विषयों पर पुस्तक लेखन कार्य कराया जाता है। इसी के तहत यह पुस्तक प्रकाशित की जा रही है।

इस पुस्तक में दिए गए विचार लेखक के निजी हैं इनसे पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली की सहमति आवश्यक नहीं है।

प्रकाशक के सर्वाधिकार सुरक्षित –

प्रकाशक – पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो
गृह मंत्रालय, एन.एच–8, महिपालपुर,
नई दिल्ली–110037

संपादक – विजय कुमार

संपादन सहयोग – सतीश चन्द्र डबराल, वरिष्ठ अनुवादक

प्रथम संस्करण – 2021

मुद्रक – स्मैट फॉर्मस, 3588, जी.टी.रोड़, दिल्ली–110007

आमुख

आज देश में, विकास की गति को बनाए रखने के लिए सामाजिक शान्ति व सुरक्षा को बनाये रखना अति आवश्यक है। सरकार समाज में शान्ति एवं सुरक्षा बनाये रखने के लिये असामाजिक तत्वों या विधि का उल्लंघन करने वालों को उचित दण्ड देकर सामाजिक सुरक्षा को सुनिश्चित करती है।

समय के साथ विज्ञान व तकनीकों में हुए विकास से अपराधिक क्षेत्रों में भी वृद्धि हुई है। खासकर कम्प्यूटर आने के पश्चात होने वाले अपराधों में साइबर अपराध भी जुड़ गये हैं। विज्ञान में हुए विकास से जिस प्रकार अपराधी के द्वारा अपराधों को करने के लिये नई तकनीकों का उपयोग किया जाने लगा है, उसी प्रकार अपराधियों को पकड़ने एवं अपराधों के अन्वेषण के लिये पुलिस द्वारा भी नई–नई तकनीकों का प्रयोग किया जाने लगा है।

अब इन्टरनेट एवं प्रौद्योगिकीकरण के कारण नये–नये अपराध होने लगे हैं, जिनमें मानव तस्करी, वित्तीय घोटाले, साइबर अपराध आदि प्रमुख हैं। इसी प्रकार अपराधशास्त्रियों के अनुसार अपराधियों के भी कई प्रकार हैं, जैसे– निम्न श्रेणी के अपराधी, उच्च श्रेणी के अपराधी, प्रथम श्रेणी के अपराधी, आकस्मिक अपराधी, महिला अपराधी, आदतन अपराधी, पेशेवर अपराधी, जन्मजात अपराधी इत्यादि जिनका वर्णन इस पुस्तक में किया गया है। देश में न केवल पुरूष अपराधियों की संख्या में वृद्धि हो रही है, बल्कि महिला अपराधियों की संख्या में भी वृद्धि हो रही है।

प्राचीन काल में व्यक्ति को उसके द्वारा किये गये अपराध के लिये दण्ड दिये जाने का प्रावधान था। उस समय बन्दीगृह नहीं हुआ करते थे फिर भी अपराधी को घर में बन्दी बनाकर रखा जाता था।

दण्ड अपराधों पर अंकुश लगाने के लिये सशक्त माध्यम माना जाता है। दण्ड का उद्देश्य अपराधियों में अपराध करने का डर पैदा करना है। वर्तमान समय में भारत में विभिन्न अपराधों के लिये भिन्न प्रकार के दण्डों की व्यवस्था है, जैसे– मृत्युदण्ड, आजीवन कारावास, कारावास– कठोर या सादा, सम्पत्ति जब्त करना, अर्थदण्ड आदि। बन्दीगृह व्यवस्था प्रणाली उतनी ही पुरानी है, जितनी की दण्ड व्यवस्था प्रणाली। बन्दीगृह में ऐसे व्यक्ति या दोषसिद्ध व्यक्ति को रखा जाता है जिसपर अपराध के लिये वाद चल रहा हो। बन्दीगृह में आये बन्दियों को उनके कुछ अधिकारों एवं विशेषताओं से वंचित किया जाता है।

कोई भी समाज अपराध या अपराधियों के बिना नहीं है, इसीलिये बन्दीगृह

व्यवस्था का होना भी आवश्यक है। बन्दीगृहों की व्यवस्था को सुधारने के लिये ऑल इण्डिया जेल मैन्युअल कमेटी, 1949–1957, जस्टिस मुल्ला ऑलइण्डिया कमेटी आल जेल रिर्फार्मस, 1980–83, नेशनल एक्सपर्ट कमेटी आल वुमेन प्रिजनरस अण्डर चेयरमेन ऑफ जस्टिस कृष्णा अय्यर (अय्यर समिति) और रिपोर्ट आफ आर. के. कपूर आल प्रिजन एडमिनिस्ट्रेशन, 1987 आदि ने कार्य किये हैं। समाज में हुये किसी अपराध के घटित होने पर पुलिस के द्वारा अपराध के अन्वेषण कर अपराधी को गिरफ्तार करने का प्रयास किया जाता है और गिरफ्तार व्यक्ति के वाद को न्यायालय के समक्ष विचारण हेतु प्रस्तुत किया जाता है तथा गिरफ्तार व्यक्ति को विचारण काल में तथा अपराध साबित हो जाने पर बन्दीगृह में रखा जाता है, जहाँ उन्हें बन्दी या कैदी कहा जाता है। भारत में बन्दीगृह व्यवस्था अन्य व्यवस्थाओं की तरह महत्वपूर्ण है, इन्हें कारागार या सुधारगृह या बन्दीगृह कहा जाता है।

वर्तमान समय में बन्दियों को बन्दीगृहों में सुधारने एवं उनके पुनर्वासन पर अधिक महत्व दिया जाने लगा है। जिससे वे कारावास की अवधि के पश्चात् सामान्य नागरिक की भाँति जीवन व्यतीत करें। अब इन्हें अमानवीय दण्ड न देकर मानवीय आधार पर उनका उपचार किये जाने पर बल दिया जा रहा है। इसके लिये भारत में बन्दीगृहों का आधुनिकीकरण किया जा रहा है। इसके लिये खुली जेलों एवं किशोरों को सुधारने हेतु बोस्टल संस्थानों की व्यवस्था भी की गई है।

गतवर्षों में अपराध, दण्ड, पुलिस, कारागार तथा बन्दीगृह आदि पर कई पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। इस पुस्तक में बन्दीगृह में रहने वाले बन्दियों एवं उनके कल्याण हेतु राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किये जा रहे कार्यों एवं प्रयासों को बताने का प्रयास किया गया है। इसके साथ ही बन्दियों को सरकार द्वारा निःशुल्क विधिक सहायता के बारे में विस्तृत रूप से बताने का प्रयास किया गया है। इन सबकी जानकारी पुलिस, जेल प्रशासन, बन्दियों एवं समाज कल्याण विभागों तथा इनमें कार्यरत कर्मचारियों एवं अधिकारियों को होना आवश्यक है।

अपराधी को गिरफ्तार कर बन्दीगृह में रखने एवं जब तक इसका वाद न्यायालय में विचारण में हो तब तक उसे बन्दीगृह में प्राप्त विधिक सहायता की जानकारी होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त जिन व्यक्तियों पर अपराध साबित हो जाता है और उसे दण्ड दे दिया जाता है तो उसके पश्चात् जब तक बन्दीगृह में रखा जाता है, तब तक उसे वहाँ रखने का उद्देश्य उसे प्रताड़ित करना नहीं बल्कि उसे सुधारना होता है। उस समयावधि में उसे सुधारने का प्रयास किया जाता है। बन्दियों के कल्याण हेतु कई निःशुल्क योजनायें भी बनाई गई है।

इस पुस्तक में महिला बन्दियों के कल्याण के लिये किए गये अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय प्रयासों का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त बन्दीगृह में

महिलाओं को होने वाली समस्याओं, उनके शिशुओं एवं बच्चों आदि के संबंध में भी जानकारी प्रदान करने का प्रयास किया गया है। इन्हें दी जाने वाली निःशुल्क विधिक सहायता एवं मुल्ला समिति की सिफारिशों को विस्तार से बताया गया है। इसके अतिरिक्त बन्दियों के कल्याण हेतु खुले शिविर के अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय परिपेक्ष्य में बन्दीगृह व्यवस्था की विस्तृत जानकारी देने का प्रयास किया गया है।

बन्दीगृहों का प्रमुख उद्देश्य समाज को अपराधिक तत्वों से सुरक्षित रखना और बन्दीगृहों में इन अपराधिक तत्वों को सुधारने एवं समाज में सामान्य जीवन जीने के लिये तैयार करना है।

बन्दीगृह में रह रहे बन्दियों के भी मानव अधिकार होते हैं जिनका ज्ञान उन्हें नही होता है, उन्हें इस ज्ञान की जानकारी होना भी आवश्यक है। एक बार जेल में जाने पर व्यक्ति के जीवन पर लांछन लगने लगता है, उसे कई बार समाज से बहिष्कृत किया जाता है, जिससे वह पुनः सामान्य जीवन जीने में कठिनाई महसूस करता है।

बन्दियों को बन्दीगृह में रखने का मुख्य उद्देश्य बन्दियों को अपराध की दुनिया से दूर कर अच्छा नागरिक बनाना होता है। इस उद्देश्य को ध्यान में रख बन्दीगृह में बन्दी के आते ही इनकी रिहाई के पश्चात् के जीवन की नई शुरूआत को अवश्य ध्यान में रखना होगा। इस हेतु जेल प्रहरियों एवं अधिकारियों को बाहरी संस्थाओं से बन्दियों का सम्पर्क कराकर उनके जीवन में सकारात्मक दृष्टिकोण एवं उद्देश्यपूर्ण जीवन की ओर उन्हें प्रेरित करना होगा।

अपराधों की रोकथाम हेतु पुलिस एवं सरकार के द्वारा निरन्तर प्रयास किए जा रहे हैं और वह इन अपराधों की रोकथाम हेतु नये–नये प्रयास करते रहते हैं, वर्तमान समय में अपराधों की रोकथाम हेतु पुलिस एवं सरकार के द्वारा सुधारात्मक नीति का सकारात्मक प्रयोग किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत सरकार द्वारा बन्दीगृह में कैद बन्दियों के कल्याण हेतु निःशुल्क विधिक सहायता प्रदान करने के साथ–साथ उन बन्दियों को सुधारने का भी प्रयास किया जा रहा है। ये प्रयास केवल भारत में नहीं अपितु पूरे विश्व के विभिन्न देशों में किये जा रहे हैं जिनकी विस्तृत जानकारी देने का प्रयास इस पुस्तक में किया गया है।

बन्दी कल्याण एवं निःशुल्क कानूनी सहायता के महत्व को समझते हुए पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो द्वारा 'पंडित गोविन्द वल्लभ पन्त पुरस्कार योजना' के अन्तर्गत वर्ष 2019–2020 के लिए 'बन्दी कल्याण एवं निःशुल्क कानूनी सहायता' विषय पर रूपरेखाएं आमंत्रित की गई थी जिसमें इस रूपरेखा को लेखन कार्य हेतु चुना गया था।

इस पुस्तक में प्राचीन काल से अब तक होने वाले अपराधों के प्रकार, बन्दी, बन्दीगृहों की व्यवस्था के इतिहास, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय परिपेक्ष्य में

बन्दीगृह व्यवस्था में खुले शिविरों की व्यवस्था, बन्दीगृहों की व्यवस्था में किये गये सुधारों, जनसमुदाय एवं स्वयंसेवी संस्थाओं की सहभागिता, विभिन्न अध्ययनों की रिपोर्टों की सिफारिशें एवं सुझाव, बन्दियों की जीवनी में साहित्य एवं मीडिया की भूमिका, बन्दियों के कल्याण हेतु दी जाने वाली निःशुल्क विधिक सहायता, महिला बन्दियों के कल्याण हेतु किये जाने वाले राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासों को भी शामिल करने का प्रयास किया गया है।

कोई भी व्यक्ति जन्म से अपराधी नहीं होता, उसके अपराधी बनने में कहीं न कहीं समाज भी जिम्मेदार होता है। अतः बन्दीगृह से सुधरकर आये बन्दियों से समाज को दूरी नहीं बनानी चाहिये और उन्हें पुनः समाज में सामान्य नागरिक की भाँति रहने का अवसर देना चाहिये, जिससे वे पुनः अपराध की ओर न जा सकें। जो मार्ग भटक कर अपराध कर बन्दीगृह में दण्ड भुगत रहे हैं, वे वहाँ पर सुधारात्मक उपायों से पुनः बेहतर व सामान्य नागरिक की तरह बनकर लौटें। मुझे आशा है कि यह पुस्तक पुलिस विभाग एवं जेल प्रशासन के लिये उपयोगी सिद्ध होगी।

डॉ. सरिता भवानी मालवीय

लेखिका परिचय

दिनांक 25 जून, 1977 को मध्यप्रदेश के सपनों के शहर इन्दौर के सिन्धी परिवार में जन्मी डॉ. सरिता भवानी मालवीय ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा इन्दौर के अंग्रेजी माध्यम के इन्दिरा विद्या मन्दिर विद्यालय से प्राप्त की। तत्पश्चात् अपना अध्ययन जारी रखते हुये कान्वेन्ट विद्यालय से वर्ष 1994 में गणित विषय में इंटर की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् इन्दौर के स्वशासी होलकर महाविद्यालय से वर्ष 1998 में सांख्यिकी (गणित) संकाय से स्नातक की उपाधि प्राप्त की।

वर्ष 1998 में श्री घनश्याम मालवीय (डी.एस.पी. वर्तमान में एडिशनल एसपी), मध्यप्रदेश पुलिस, से विवाह के पश्चात् परिस्थितिवश कुछ वर्ष अध्ययन नहीं कर पाई, परन्तु अध्ययन की तरफ रूचि होने के कारण पति की मदद से वर्ष 2003 में पुनः पढ़ाई आरम्भ कर देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (मध्यप्रदेश) से एल.एल.बी. (ऑनर्स) का फार्म भरा व वर्ष 2006 में इसकी परीक्षा उतीर्ण की तथा वर्ष 2008 में एल.एल.एम. (भारतीय संविधान) में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया। इस बीच इनके दो पुत्र एवं एक पुत्री का जन्म हुआ, सभी जिम्मेदारियों को सफलता पूर्वक निभाते हुये अपनी अध्ययन की रूचि को बनाये रखा और वर्ष 2010 में बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (मध्यप्रदेश) में पीएच. डी के लिये आवेदन दिया और वर्ष 2015 में विधि संकाय की प्रोफेसर व डीन डॉ मोना पुरोहित के मार्गदर्शन से विधि के विषय 'पुलिस द्वारा महिलाओं के मानधिकारों का हनन (मध्यप्रदेश के विशेष सन्दर्भ में)' पर बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (मध्यप्रदेश) से पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त की। इसके पश्चात् वर्ष 2017 में इण्डियन कौंसिल ऑफ सोशल साइन्स एण्ड रिसर्च (आई.सी.एस.एस.आर.), नई दिल्ली से '"महिलाओं के विरूद्ध कार्यस्थल में होने वाले लैंगिक शोषण का विधिक अध्ययन" (मध्य प्रदेश के शैक्षणिक संस्थानों के विशेष संदर्भ में)' विषय पर दो वर्ष की पोस्ट डॉक्टरल फैलोशिप प्राप्त की जिसे वर्ष 2020 में जमा किया गया है।

इनके द्वारा लिखी गई पुस्तक 'महिलाओं के मानव अधिकार एवं पुलिस' 'द लिबर्टी कौंसिल पब्लिकेशन डिविजन, मथुरा, द्वारा वर्ष 2020 में प्रकाशित की गई है। इसके अतिरिक्त लेखिका ने अनेक संगोष्ठियों में वक्ता के रूप में भाग लिया है तथा शोध पत्र प्रस्तुत किये हैं एवं समाज में कई महिलाओं को हिंसा के विरूद्ध सामाजिक न्याय दिलाया है। इनके लेख तथा शोध पत्र कई राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं जैसे अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका, 15 डेस, अधिकार, नवीन

ज्ञान संग्रह, मध्यप्रदेश मानव अधिकार की तिमाही पत्रिकाओं, आदि में प्रकाशित होते रहते है।

इसके अतिरिक्त लेखिका उज्जैन (मध्यप्रदेश) से प्रकाशित सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका 'पूर्वदेवा' की आजीवन सदस्या है और उसमें कई विषयों पर लेखिका द्वारा लिखित शोधपत्र प्रकाशित होते रहते हैं और उनके द्वारा की जाने वाली संगोष्ठियों में भी भाग लिया गया है तथा शोध पत्र प्रस्तुत किये गये है। इसके अतिरिक्त 200 से अधिक समकालीन विषयों पर होने वाले वेबिनारों में वक्ता के रूप में भाग लिया है।

लेखिका ने अब तक कई संगोष्ठियों में शोध पत्र प्रस्तुत किये है, इसके 6 आलेख मानव अधिकार आयोग की मासिक पत्रिका में, 12 शोध पत्र विभिन्न राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके है। एक कार्यशाला, सरोजनी नायडू महाविद्यालय भोपाल में एवं दो कार्यशालायें ऑनलाइन में भाग लिया है।

◆ ◆ ◆

विषय–सूची

अध्याय–1

अपराध एवं अपराधी 1

अध्याय–2

अपराध के लिये दण्ड एवं न्यायिक दण्डादेश 30

अध्याय–3

बन्दीगृह–व्यवस्था का इतिहास एवं बन्दीगृह–व्यवस्था 54

अध्याय–4

बन्दी एवं बन्दी कल्याण 96

अध्याय–5

बन्दियों के मानव अधिकार 149

अध्याय–6

महिला बन्दी 161

अध्याय–7

बन्दियों के कल्याण हेतु खुले शिविर के अन्तर्राष्ट्रीय
एवं राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य 190

अध्याय–8

बन्दियों के कल्याण हेतु क्षमादान, दण्ड का लघुकरण एवं अनियत दण्डादेश 210

अध्याय–9

बन्दियों के लिये बन्दी पंचायत, पैरोल (कारावकाश एवं परिवीक्षा) 227

अध्याय–10

बन्दियों के लिये किशोर अपचारिकता एवं सुधारक संस्थायें 262

अध्याय–11

बन्दियों के कल्याण हेतु निःशुल्क विधिक सहायता 295

अध्याय–12

अध्ययन रिपोर्ट 305

अध्याय–13

उपसंहार 329

सन्दर्भ एवं सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची 333

अध्याय – 1

अपराध एवं अपराधी

मानव प्रारम्भ से ही संघर्षशील प्राणी रहा है, मानव के इसी स्वभाव के कारण अपराध रहित समाज की कल्पना करना सम्भव नहीं है, किसी भी समाज में अपराधों का घटित होना एक सामान्य क्रिया है, जो सामाजिक परिवर्तन का द्योतक है। देश में व समाज के अधिकांश व्यक्तियों की सोच 'जियो और जीने दो' की है, परन्तु कुछ व्यक्तियों की धारणा इनसे भिन्न होती है। वे सामान्य आचरण से भिन्न असामाजिक तत्वों के साथ जुड़कर अवांछित कार्यों में ही स्वयं का हित समझते हैं। ऐसे में राज्य का दायित्व होता है कि वह ऐसे असामाजिक तत्वों पर उचित नियन्त्रण करें तथा समाज में शान्ति व्यवस्था बनाये रखें। ऐसा आचरण जो विधि द्वारा प्रतिबन्धित है, विधि विरूद्ध आचरण कहलाता है, जिसे अपराध कहा जाता है। अपराध करने वाला व्यक्ति अपराधी कहलाता है और उसे वहाँ प्रचलित विधि अनुसार दण्डित किया जाता है।

मानव का व्यवहार सदैव से ही परिवर्तनशील रहा है। विधि में भी कुछ परिवर्तन होता रहता है, परन्तु जब मानव किसी एक समाज या समुदाय में रहता है तब प्रत्येक व्यक्ति के अन्य व्यक्ति के प्रति कुछ कर्तव्य होते हैं एवं अन्य व्यक्तियों के लिये कुछ दायित्व भी होते हैं और मानव सामाजिक सुरक्षा के लिये इन कर्तव्यों एवं दायित्वों को विनियमित करता है। वे मानव जो इन कर्तव्यों या दायित्वों का निर्वहन न कर ऐसे अवांछनीय कार्य करते हैं तथा असामाजिक तत्वों से स्वयं को जोड़ लेते हैं एवं सदैव विधि का उल्लंघन करने जैसे अवांछित कार्यों को करने में ही लिप्त रहते हैं और इसी में ही स्वयं का हित समझते हैं, यहीं से अपराधों का जन्म होता है। इस पर विचार करें तो अपराध की परिकल्पना को सामाजिक व्यवस्था से जुड़ा कह सकते हैं।

समाज में शान्ति एवं व्यवस्था बनाये रखना राज्य का कार्य है। अतः समाज में शान्ति एवं सुरक्षा बनाये रखने के लिये राज्य को अवैध और असामाजिक तत्वों या विधि का उल्लंघन करने वालों को उचित दण्ड देकर या नियन्त्रित कर सामाजिक सुरक्षा को सुनिश्चित करता है। प्रसिद्ध विधिशास्त्री सामण्ड ने भी विधि को 'समाज में मानव के व्यवहार को विनियमित करने वाला साधन माना है। अतः अपराध, मानव आचरण के ऐसे कार्य कहलाते हैं जो किसी विशेष समय या समाज, विधि द्वारा प्रतिबन्धित किये गये हो। अपराध करने वाले व्यक्ति को उसके अपराधिक कृत्य के लिये उस स्थान में लागू कानून या विधि के अन्तर्गत दण्ड दिया जाता है।

अपराध की प्राचीन धारणाः—

मानव के विकास के साथ "अपराध" की धारणा में भी परिवर्तन होते रहे हैं। लगभग बारहवीं से तेरहवीं शताब्दी के दौरान इंग्लैण्ड में केवल 'राज्य' या 'धर्म' के विरूद्ध किये गये कार्यों को अपराध माना जाना था, परन्तु हत्या को उस समय वहाँ अपराध नहीं माना गया था।[1] **प्राचीन** काल में विधियों में अपराध व अपकृत्य में भी कोई भेद नहीं था, दोनों को ही अपकार कहा जाता था।

प्राचीन काल में विधि के अन्तर्गत अपराध को स्वीकार तो किया गया परन्तु 'उस समय 'अपराध' एवं 'अपकृत्य' में किसी प्रकार का भेद नहीं किया गया था, उस समय दोनों को अपकार अर्थात् गलत कार्य माना जाता था। इसी पर **अपराधशास्त्री मेंटलैंड** तथा **पोलक** ने कहा था कि दसवीं शताब्दी से पूर्व अपराध को भ्रमवश अपकृत्य ही माना जाता था, क्योंकि सामाजिक बन्धन की अपेक्षा पारिवारिक सम्बन्ध अधिक मजबूत थे एवं अपकारित पक्ष एवं उसके सगे—सम्बन्धी अपकार का बदला स्वयं निजी शक्ति से ले सकते थे। उस समय कानून द्वारा उपचार प्राप्त करने का मार्ग केवल निजी स्वयं सहायता के विकल्प के रूप में उपलब्ध था। अपकार करने वाले व्यक्ति से यह अपेक्षित था कि वह अपकारित व्यक्ति को उचित प्रतिकर दे तथा क्षतिपूर्ति की यह राशि अपकार की गम्भीरता तथा अपकारित व्यक्ति की सामाजिक प्रस्थिति पर निर्भर करता था। अपकार करने वाले व्यक्ति द्वारा जो क्षतिपूर्ति की राशि अपकारित व्यक्ति को दी जाती थी, उसे **बॉट** (Bot) कहा जाता था तथा यह राशि चुका देने पर अपकारी अपनी पूर्व—स्थिति में आ जाता था, जैसे कि उसने कोई अपकार ही न किया हो। प्राचीन एंग्लों—सेक्शन विधि में **'बॉट'** सम्बन्धी विस्तृत प्रावधान थे जो कि विभिन्न अपकारों के लिये अपकारित व्यक्ति को देय था।'[2]

अपकार करने वाले व्यक्ति द्वारा किसी कारणवश या किसी भी दशा में क्षतिपूर्ति नहीं दी जाती या दिये जाने से इन्कार किया जाता है, उस स्थिति में भी किसी भी प्रकार के नियमों या कानूनों द्वारा उसे प्रवर्तित कराये जाने हेतु किसी भी प्रकार की व्यवस्था नहीं थी। उस समय इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न होने पर अपकारित व्यक्ति एवं उसके सगे—सम्बन्धियों द्वारा स्व—सहायता की राह पर चलते हुये चाहे तो रक्त—द्वन्द द्वारा अपना बदला लेकर या उसे देश से बहिष्कृत घोषित कराकर या किसी भी व्यक्ति को यह छूट दे दी जाती थी कि वह अपकारी को जानवरों की तरह मृत्युकारित कर सकता था। इसके अतिरिक्त, व्यक्ति के लिये बॉट के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति दिलाने के अलावा भी कुछ अपकृत्य ऐसे भी थे जिसके लिये उसे अर्थदण्ड भी दिया जाता था, जो कि शासक को देय होता था। इन अपकृत्यों के अतिरिक्त भी कुछ अपकृत्य ऐसे भी थे, जिनके लिये केवल क्षतिपूर्ति देना ही उसका निवारण नहीं था। इस प्रकार के अपकारों को बॉटलेस अपराध कहा जाता था और इन अपराधों के निवारण हेतु दण्ड देना

ही एकमात्र उपाय था। इस प्रकार के अपकृत्यों में मुख्य थे– गृह–भेदन, देश से बहिष्कृत अपराधियों को शरण देना, सेना में देश सेवा करने से इन्कार करना, आदि। इस प्रकार के अपराधों हेतु मृत्युदण्ड, अंग–विच्छेद, सम्पत्ति की जब्ती आदि दण्ड दिया जाता था। समयान्तर के अनुसार परिवर्तन आने पर अपराध की परिकल्पना इन्हीं बॉटलेस अपकारों से उत्पन्न हुई। इन अपराधों के होने पर राज्य द्वारा दण्ड दिया जाना अनिवार्य किया गया। बारहवीं शताब्दी आते–आते क्षतिपूर्ति से शर्मनीय न होने वाले अपकारों में अत्यधिक वृद्धि होने लगी, जिससे ये अपकार की श्रेणी में न मानकर अपराध की श्रेणी में माना जाने लगा। इस समय ही आंग्ल विधि में अपराध का प्रादुर्भाव हुआ।

प्राचीन काल से ही मानव के आचरण के परिवर्तनों के कारण उनकी सामाजिक स्थितियों में परिवर्तन होने के साथ–साथ अपराध की धारणा में भी परिवर्तन होते रहे, जैसे कि प्राचीन समय में लगभग बारहवीं एवं तेरहवीं सदी में इग्लैण्ड जैसे देश में 'राज्य' या 'धर्म' के विरूद्ध किये गये कार्य जैसे देशद्रोह, बलात्कार एवं ईश्वरीय निन्दा, को ही अपराध माना जाता था। उस समय हत्या को अपराध नहीं माना जाता था।

इसी प्रकार, फ्रांस एवं इटली में अट्ठारहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी के समय को अपराधशास्त्र के वैचारिक उत्थान का समय कहा जाता है। इस शताब्दी से पूर्व मानव यहाँ पर जो भी अपराध करता था उसे ईश्वरीय कृपा के कारण होना बताया जाता था। इस शताब्दी में उनकी इस मान्यता को निराधार माना गया और इस पर वैज्ञानिक पद्धति से विचार किया गया और यह सिद्ध किया गया कि मानव द्वारा किये गये किसी भी प्रकार का अपराधिक कृत्य हेतु वह स्वयं ही जिम्मेदार होता है और उस अपराधिक कृत्य को करने हेतु स्वयं ही कारण प्रस्तुत करता है। इन अपराधिक कृत्यों के पीछे कोई ईश्वरीय शक्ति या पाश्विक शक्ति नहीं होती है। अपराध की इस नई धारणा का परिणाम यह हुआ कि अपराध का सम्बन्ध सामाजिक नीति से माना जाने लगा एवं इसे घटना का ही एक रूप माना जाने लगा। इससे यह स्पष्ट होता है कि अपराध एक परिवर्तनशील अवधारणा है जो समय एवं परिस्थिति अनुसार अपना स्वरूप बदलती है। अतः यह कहा जा सकता है कि किसी मानव द्वारा किया गया कोई कृत्य अपराध है या नहीं, यह उस समाज के नैतिक मान्यताओं एवं आदर्शों पर निर्भर करता है। इसीलिये, समयानुसार समाज विशेष में अपराध, के होने पर कानून में नये नियम बनाये जाते हैं, जबकि कई बार प्रचलित कानूनों को समाप्त भी किया जाता है; जैसे– किसी राज्य में मद्यपान करना निषेध है, तो उस राज्य में मद्यपान करना अपराध माना जायेगा परन्तु यदि समयानुसार परिवर्तन होने पर यदि मद्य निषेध कानून को समाप्त कर दिया जाये तो फिर वहाँ मद्यपान करना अपराध नहीं माना जायगा।

बीसवीं सदी के आते–आते भारत के सामाजिक बदलते परिवेश से यहाँ के सामाजिक स्तरों में भी अनेकों परिवर्तन हुये जिसके कारण भारत के सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों में अमूल–चूल परिवर्तन हुये हैं। इस प्रकार के अनेक बदलावों के आने से यहाँ की विधि में भी परिवर्तन की आवश्यकता हुई। हांलाकि, वर्तमान समय में भारत में भी आंग्ल विधि पर आधारित दण्ड विधि ही प्रचलित है, इसका मुख्य कारण भूतकाल में ब्रिटिश सरकार द्वारा लागू की गई दण्ड विधि (भारतीय दण्ड विधि, 1860) एवं साक्ष्य विधि (भारतीय साक्ष्य विधि 1872) का प्रभाव वर्तमान में प्रचलित विधि में प्रभावी है। समयानुसार भारत की परिस्थितियों में आये परिवर्तनों के कारण वर्ष 1973 में भारतीय दण्ड संहिता, 1860 को संशोधित कर नई दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 लागू की गई। इस विधि को देश में प्रभावशाली बनाये रखने हेतु समयानुसार इसमें संशोधन किये जाते हैं या संशोधन किये जाने की अनुशंसा की जाती है।

सम्पूर्ण विश्व के पिछले कुछ वर्षों के आंकड़ों को देखें तो यह पता चलता है कि सम्पूर्ण विश्व में अपराधों में असाधारण वृद्धि हो रही है। इस प्रकार यह कहना गलत होगा कि अपराधों में वृद्धि केवल भारत देश में ही हो रही है। यूरोपीय देश भी इससे अछूते नहीं हैं। वहाँ पर अपराधों के मामलों में स्थिति गम्भीर एवं चिन्तनीय बनी हुई है। हालांकि, भारत में नैतिकता तथा जीवन के मूल्यों की विशेषता के कारण यहाँ अपराधों के प्रति संवेदनशीलता अधिक है। वर्तमान समय में निरन्तर बढ़ रहे औद्योगिकीकरण, आधुनिकीकरण, विज्ञान एवं तकनीकी ज्ञान में वृद्धि और बढ़ती हुई भौतिकवादी प्रवृत्ति आदि का अपराधिक प्रवृत्ति को बढ़ाने में उल्लेखनीय योगदान है।

आज का मानव स्वयं तेजी से आर्थिक प्रगति करना चाहता है और सफल भी हो जाता है। परन्तु, उसकी आर्थिक प्रगति होने पर वह भोग–विलास तथा ऐश्वर्यमय जीवन जीने के लिये प्रवृत्त होता है। कुछ समय पश्चात् जब वह भोग–विलास की लालसा को पूर्ण न करने या असमर्थता की स्थिति में होने पर स्वभावतः ऐसे अवैध कार्य करता है, जो अपराध की श्रेणी में आते हैं। इसका अर्थ यह कतई नहीं है कि अपनी इच्छाओं एवं लालसाओं की पूर्ति करने हेतु सभी मनुष्य अवैध या अपराधिक कार्य करते हैं। परन्तु, अधिकतर व्यक्ति स्वयं के सद्विवेक और आत्मसंयम से कार्य का सही प्रयोग न कर अवैध तरीके से धन कमाने के लिये प्रवृत्त रहते हैं।

प्राचीन समय से वर्तमान समय तक विज्ञान ने जहाँ इतनी प्रगति की है, वहीं अपराधिक क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं रहा है। वर्तमान समय में विज्ञान में हुये विकास से अपराधों में जिस प्रकार नई तकनीकों का उपयोग किया जाने लगा है, उसी प्रकार अपराधों के अन्वेषण तथा अपराधियों को पकड़ने में भी विज्ञान की नवीनतम तकनीकों का वृहद रूप से उपयोग किया जाता है, जिसमें फारेन्सिक

साइन्स, कम्प्यूटर का प्रयोग, सच बोलने वाली औषधि, सच मापने वाली मशीन, फिंगर–प्रिंट्स आदि शामिल है। इसके अतिरिक्त, विज्ञान की एक और खोज है 'हिप्नोटिज्म'। हिप्नोटिज्म तकनीक का उपयोग अपराधियों के साथ अपराधों के अन्वेषण के दौरान किया जाने लगा है। इसके अतिरिक्त, अपराधशास्त्र में अपराधियों को सुधारने के प्रयास हेतु अपराधियों में योग द्वारा उन्हें उनकी दूषित प्रवृत्ति में सुधार लाने का प्रयत्न किया जा रहा है। अतः यह कहा जा सकता है कि समाज के सम्पूर्ण विकास के लिये अपराध एवं अपराधियों के प्रति नई तकनीकें अपनाई जा रहीं हैं, परन्तु इसका कोई अनुमानित परिणाम नहीं मिल पा रहा है और न ही अपराधों में किसी प्रकार की कमी आ रही है। जहाँ पुलिस द्वारा एक ओर नवीन उपकरणों एवं तकनीकों से अपराध पर नियन्त्रण करने का प्रयास किया जा रहा है, वहीं दूसरी ओर ध्यान दिया जाये तो यह पता चलता है कि अपराधी भी अपराध को करने के लिये दिन–प्रतिदिन नवीनतम साधनों का उपयोग कर रहे हैं, जो कई बार पुलिस द्वारा किये जाने वाले अन्वेषण को विफल कर देते हैं।

अभी कुछ समय पूर्व सूचना प्रौद्योगिकी नामक नई तकनीक का जन्म हुआ है, जिसके आने से विज्ञान के क्षेत्र में क्रान्तिकारी प्रगति हुई हैं। इस प्रगति के परिणामस्वरूप कम्प्यूटर के माध्यम से होने वाले नवीनतम अपराधों का जन्म हुआ है, जिन्हें साइबर अपराध कहा जाता है। साइबर अपराध तो सामान्य अपराधों से कहीं अधिक हानिकारक एवं व्यापक होता है। साइबर अपराध सीखने में अपेक्षाकृत आसान भी होते हैं। इस प्रकार किये जाने वाले अपराध में व्यक्ति का स्वयं अपराध स्थल पर होना आवश्यक नहीं होता है, अर्थात् व्यक्ति किसी अन्य देश में उपस्थित होते हुये भी बिना वहाँ जाये उस स्थान पर अपराध कर सकता है। साइबर अपराध की इसी विशेषता के कारण इन अपराधों में अपराधियों का पता लगाना एवं उन्हें पकड़ना आसान नहीं होता है। इस प्रकार साइबर अपराध में अपराधी व्यक्ति पकड़े जाने पर भी अधिकतर आसानी से बच निकलता है। यद्यपि कम्प्यूटर नेटवर्क (computer network), ई–मेल (e-mail) या ई–कामर्स (e-commerce) आदि देश के लोगों के विकास हेतु बनाये गये हैं, जिससे सभी काम जल्द एवं आसानी से हो जाता है।

देश में आधुनिकीकरण होने से देश का विकास तेजी से हुआ है। इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं हैं कि कम्प्यूटर के आने से देश में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया है जिससे साथ ही साथ साइबर अपराधों में भी तेजी से वृद्धि हुई है, जो अत्यधिक घातक एवं हानिकारक होते हैं। इस पर काबू करना एक कठिन कार्य है, परन्तु इन पर काबू करना अत्यन्त आवश्यक है। साइबर अपराध में मुख्य रूप से हैकिंग, वायरस, अश्लील रोपण, डाटा–डिडलिंग, मनी–लॉन्ड्रिंग (money-loundering) आदि प्रकार के अपराध आते हैं। इन बढ़ते हुये साइबर

अपराध पर नियन्त्रण हेतु विश्वस्तरीय कानून निर्मित किए जाने की आवश्यकता है। राष्ट्रीय स्तर पर भी अपराध विधि के प्रवर्तन से अभिकरणों के रोकथाम के लिये प्रभावी किया जाना चाहिये तथा सम्बन्धित अधिकारियों एवं कर्मचारियों को इनके निवारण एवं रोकथाम हेतु प्रशिक्षित किया जाना चाहिये।

अपराध की परिभाषा

अपराध को परिभाषित करना एक अत्यधिक कठिन कार्य है। अपराध शब्द जितना प्रचलित है उतना ही उसकी परिभाषा देना कठिन है। विभिन्न विधिवेत्ताओं ने अपराध की परिभाषा को अपने ढंग से व्यक्त किया है। इसी कारण, इसकी अभी तक कोई सर्वसम्मत या निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकी है। फिर भी, प्रायः इन सभी विधिवेत्ताओं ने **'अपराध'** में विधि के उल्लंघन को आवश्यक तत्व के रूप में विद्यमान होना स्वीकार किया है।

'**अपराध** को एक ऐसी क्षति माना गया है जिसे किसी मनुष्य द्वारा उसके सामाजिक कृत्यों के परिणामस्वरूप कारित एवं सम्प्रभु द्वारा अनापेक्षित माना गया है।'

क्रॉस और जोन्स (**Cross & Jonesa**) के अनुसार, "अपराध एक ऐसा विधि अपकार है, जिसे राज्य के कानून के द्वारा दण्डित करना उसका उपचार होता है।"

प्रसिद्ध अपराधशास्त्री जे. एल. गिलिन (**J.L. Gillin**) के अनुसार, "कानूनी दृष्टिकोण से देश के कानून के विरूद्ध व्यवहार को अपराध कहा जाता है। अर्थात्, ऐसा दुराचरण जो स्थानीय विधि के विरूद्ध हो उसे अपराध माना जाता है।"[3]

अपराधशास्त्री डॉ. हैकरवाल ने अपराध के वैज्ञानिक पहलू को समझाते हुये कहा है कि, "वैज्ञानिक दृष्टिकोण से कानूनों का उल्लंघन ही अपराध है।"

अपराध किसी भी व्यक्ति द्वारा किया गया ऐसा आचरण या कार्य है, जो समाज की व्यवस्था के द्वारा प्रचलित या प्रस्थापित व्यवहार–प्रतिमान के प्रतिकूल हो और जिसका उपचार करने के लिये समाज औपचारिक या अनौपचारिक दण्ड की व्यवस्था करता हो। यदि यह कार्य किसी समय में किसी देश के कानून के द्वारा निषिद्ध है तो उसे वैधानिक अपराध कहा जायेगा, किन्तु यदि ऐसे कार्य जिनके लिये कानून में दण्ड की व्यवस्था नहीं है और समाज किसी अन्य प्रकार से उसके लिये दण्ड की व्यवस्था करता है तो वह सामाजिक अपराध कहा जाता है।

सर्वश्री ईलियट तथा मेरिल ने दण्ड के विभिन्न स्वरूपों की ओर संकेत करते हुये अपराध को परिभाषित करते हुये कहा कि, "अपराध कानून के द्वारा

निषिद्ध वह कार्य है जिसके लिये अपराध करने वाले को मृत्यु या जुर्माने या कारागृह, वर्कहाऊस, सुधार–गृह अथवा **बन्दीगृह** में कारावास के द्वारा दण्डित किया जाता है।"

इटेलियन अपराधशास्त्री रेफेल गेरोफेलो (Raffesale Garofalo) ने अपराध को एक ऐसा कृत्य माना है जो मानव की दया या करूणा तथा न्यायिकता की भावनाओं पर प्रत्याघात करता है। इन्होंने अपराध की विभिन्न परिभाषाओं को अस्वीकार कर, इसकी समाजशास्त्रीय परिभाषा को अधिक उपयुक्त माना है।

एम. सेठना के अनुसार, "अपराध से तात्पर्य कोई भी ऐसा कार्य या भूल से है, जिसे सम्बन्धित देश में विशिष्ट समय पर लागू विधि के अन्तर्गत दण्डनीय माना जाता है।" अतः यह कहना भी सही होगा कि जो कार्य कुछ समय पूर्व अपराध की श्रेणी में आते रहे हों, वर्तमान में उन अपराधों को सामाजिक स्वीकृति प्राप्त हो गई हो। इसके विपरीत, जिस कार्य को पहले सामाजिक मान्यता प्राप्त रही हो आज समयान्तर में वही कार्य अपराध गया हो, उदाहरण के लिये, अस्पृश्यता।

केन्नी (Kenny) ने अपराध को परिभाषित करते हुये कहा है कि, अपराध, एक ऐसा कृत्य माना गया है जिसके लिये शास्ति के रूप में दण्ड की व्यवस्था रहती है, जो केवल राज्य के द्वारा ही दिया जा सकता है, न कि किसी प्राइवेट व्यक्ति के द्वारा। केन्नी द्वारा दी इस परिभाषा की अधिकतर विधिवेत्ताओं द्वारा आलोचना की गई है, क्योंकि उनके अनुसार अनेक प्रकार के अपराधों में अपराध के पक्षकारों की आपसी सहमति से उपशमन किया जा सकता है।

पैटन के अनुसार, "अपराध का सामान्य परिलक्षण राज्य द्वारा प्रक्रिया नियन्त्रण, दण्ड–परिहार और दण्ड–आरोहण करना है।"

आस्टिन ने अपराध की परिभाषा देते हुये कहा है कि, "अपराध, वे अवैधानिक कार्य हैं, जिनके सिद्ध हो जाने पर न्यायालय के द्वारा अपराधियों को दण्ड दिया जाता है और ऐसे दण्ड को कम करने का एकमात्र अधिकार केवल राज्य को ही होता है।"

सदरलैण्ड ने इसे सरल तरीके से समझाते हुये कहा है कि, अपराध मानव का वह आचरण है जिससे अपराधिक विधि का उल्लंघन होता है।

डीन रास्को पाउण्ड (Desan Roscoe Pound) ने अपराध पर अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा है कि, 'अपराध' की कोई भी अन्तिम या निश्चित परिभाषा देना प्रायः असम्भव है, क्योंकि यह एक सजीव एवं परिवर्तनशील क्रिया है, जिसे वैध या अवैध घोषित करना राज्य की इच्छा एवं न्यायिक विवेक पर निर्भर करता है।

विलियम ब्लैकस्टोन (William Blackstone) ने अपराध को लोकविधि के उल्लंघन हेतु किया गया ऐसा कार्य या आचरण है जिसे विधि के अन्तर्गत निषिद्ध माना गया है, या ऐसा लोप है जिसे किये जाने की विधि अपेक्षा करता है। अर्थात्, ऐसे लोक अधिकारों या कर्तव्यों के उल्लंघन को अपराध कहा जाता है जिनका अनुपालन किये जाने की समाज व्यक्ति से अपेक्षा करता है। अतः, लोकविधि के ऐसे उल्लंघनों को अपराध कहा जा सकता है जो समाज को क्षति पहुँचाते हैं।

प्रसिद्ध अपराधशास्त्री डोनाल्ट टेफ्ट (Donald Taft) ने अपराध को इस प्रकार परिभाषित करते हुये कहा है कि– अपराध, एक ऐसा कार्य है जिसे अपराधिक विधि के अन्तर्गत निषिद्ध माना गया हो तथा इसके किये जाने पर विधि के द्वारा दण्ड का प्रावधान भी किया गया हो।

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की **धारा 40 'अपराध'** के सन्दर्भ में कहती है कि, यह किसी ऐसी बात का द्योतक है जो इस संहिता के द्वारा या किसी विशेष अथवा स्थानीय विधि के अधीन दण्डनीय बनाया गया हो।

इन विभिन्न विधिवेत्ताओं द्वारा दी गई विभिन्न परिभाषाओं से यह निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि किसी भी कार्य का अपराध होने के लिये निम्न दो तत्वों का होना अनिवार्य है–

1) किसी भी कार्य का होना या किसी कार्य का लोप होना (Act or omission) अर्थात् स्थानीय विशेष की प्रचलित विधि के अन्तर्गत उस कार्य का निषिद्ध एवं दण्डनीय होना; तथा
2) किसी भी कार्य को दुराशय (Mens rea) से करना।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'अपराध' से तात्पर्य समाज के विरूद्ध किये गये किसी ऐसे कार्य से है जिसका होना या लोप होना विधि द्वारा निषिद्ध एवं दण्डनीय माना गया हो।

अपराध के मौलिक अवयव

समाज में अपराध मकड़ी के जाल के ताने–बाने की तरह फैला हुआ है। अपराध मात्र दुर्घटना के रूप में समाज में अवस्थित नहीं होता है। अपराध की गहनता, उसकी प्रकृति और उसके भेद सभी समाज की स्थितियों के अनुरूप बदलते रहते हैं।

अपराधों की रोकथाम हेतु दण्ड विधि तैयार की गई है। दण्ड विधि का मुख्य उद्देश्य है कि वह अपराधियों को अपराध करने से प्रतिबन्धित करे एवं सभी को विधि का उचित रूप से पालन करने हेतु प्रेरित करे। इस विधि का

सुचारू रूप से पालन कराने हेतु विधि द्वारा कुछ कृत्यों को अपराध मानकर दण्डित किया जाना उपबन्धित है। किसी भी कृत्य या आचरण को अपराध मानने के लिये उसमें निम्नलिखित मौलिक अवयवों का होना आवश्यक है–

(1) **बाह्य क्षति** – किसी भी प्रकार का अपराधिक आचरण समाज को सदैव क्षति ही पहुँचाता है। यह क्षति व्यैक्तिक, सामाजिक, मानसिक या भावनात्मक किसी भी प्रकार की हो सकती है।

(2) **कार्य का होना या कार्य का लोप होना**– किसी भी व्यक्ति द्वारा किसी कार्य को करने या टालने के कारण भी कोई अपराध घटित हो सकता है। किसी भी अपराध को करने का इरादा करना या आशय रखना तब तक अपराध नहीं माना जायेगा जब तक उस किये गये इरादे या रखे गये आशय को कार्य के रूप में परिवर्तित करने की दिशा में कोई प्रयास न किया गया हो।

(3) **अपराधिक मनःस्थिति (आशय) या दुराशय** – अपराधिक मनःस्थिति या दुराशय से अभिप्राय है, दोषपूर्ण या अपराधिक आशय। सामान्यतः, किसी भी आचरण या कृत्य को तब तक अपराध नहीं माना जा सकता जब तक कि उस कार्य के पीछे अपराधिक आशय न हो। अतः किसी भी कार्य को अपराध मानने के लिये अपराधिक मन या दुराशय अति–आवश्यक तत्व है। यह अपराधिक विधि की एक सुविदित उक्ति (Maxim) पर आधारित है कि "Actus Non Facit Reum Nisi Mens Sit Rea" अर्थात् किसी भी व्यक्ति द्वारा किया गया कोई कार्य उसे तब तक दोषी नहीं बनाता, जब तक उस व्यक्ति का वह कार्य दुराशय से कारित न हो। अतः यह भी कहा जा सकता है कि किसी भी कार्य के लिये मात्र अपराधिक आशय को अपराध नहीं माना जा सकता जब तक कि कोई बाह्य कृत्य नहीं किया गया हो। अपराधिक आशय स्पष्ट या अस्पष्ट किसी भी प्रकार का हो सकता है। अस्पष्ट दुराशय (implied mens) को आन्वयिक दुराशय (contructive mens rea) भी कहा जा सकता है। इसे **आर. बनाम केम्प** के वाद में स्पष्ट किया गया है कि यदि किसी व्यक्ति को नींद में चलने की बीमारी है और उसी दौरान उससे कोई ऐसा अपराध हो जाता है जो अपराध की श्रेणी का हो, तो उस व्यक्ति को अपराधी नहीं माना जायेगा क्योंकि उसके द्वारा किये गये कृत्य में न उसका कोई दुराशय था और न ही उसने यह स्वेच्छा से किया।

किसी भी कृत्य का अपराध होने के लिये उसके साथ अपराधिक आशय होना आवश्यक है। अपराधिक आशय के सन्दर्भ में आशय एवं उद्देश्य में अन्तर करना आवश्यक है। किसी भी कृत्य को करने के लिये उद्देश्य भले

ही गलत न हो, परन्तु उस कार्य को करने हेतु आशय गलत, क्षति पहुँचाने वाला हो सकता है या विधि के द्वारा निषिद्ध हो सकता है। उदाहरण के लिये – यदि किसी डकैत के द्वारा किसी जमींदार या साहूकार के यहाँ डाका डालकर लाये गये धन को गरीबों एवं जरूरतमन्दों में बाँट देता है, तो उसके द्वारा किये गये इस कृत्य में उद्देश्य तो अच्छा था परन्तु उसके द्वारा किया गया कृत्य अपराध था। अतः, यह कहा जा सकता है कि किसी भी कृत्य को अपराध सिद्ध करने हेतु उस अपराधी व्यक्ति के द्वारा किये गये कृत्य के पीछे उसके उद्देश्य पर ध्यान न देकर उसके अपराधिक आशय पर ध्यान दिया जाता है।

(4) **किया गया कार्य विधि द्वारा निषिद्ध व दण्डनीय होना** – जब किसी भी मानव के द्वारा ऐसा कोई आचरण या कृत्य किया जाता हो, जो विधि के अन्तर्गत निषिद्ध माना जाता है, उसे अपराध माना जाता है। अन्यथा, कोई भी किया गया ऐसा आचरण या कृत्य कितना भी अनैतिक क्यों न हो, यदि विधि के द्वारा निषिद्ध नहीं किया गया है तो वह अपराध की श्रेणी में नहीं आता है। इसके अतिरिक्त, किसी कार्य या आचरण का अपराध होने के लिये यह भी आवश्यक है कि उसका होना विधि के अन्तर्गत दण्डनीय हो। दण्ड विधि के अन्तर्गत अपराधों के अधिकतम देय का उल्लेख रहता है, जिसकी निश्चित मात्रा न्यायालय के विवेक पर निर्भर होती है।

व्यथित व्यक्ति–विहीन अपराध

अपराध किसी मानव के द्वारा किया गया एक ऐसा कृत्य होता है जो व्यक्ति एवं समाज पर हानिकारक प्रभाव डालता है। जिस भी व्यक्ति पर इस अपराधिक कार्य का हानिकारक प्रभाव होता है, उसे पीड़ित व्यक्ति माना जाता है। इन अपराधों के अतिरिक्त भी कई अपराध ऐसे भी होते हैं जो अपराध की श्रेणी में तो आते हैं परन्तु इनसे कोई व्यक्ति पीड़ित नहीं होता है, अर्थात् उस अपराध से किसी व्यक्ति को हानि नहीं होती है। ऐसे अपराधों को व्यथित व्यक्ति–विहीन अपराध कहा जाता है। व्यथित व्यक्ति–विहीन अपराधों में नशा करना, भीख माँगना, आवारागर्दी करना, स्वेच्छा से देह व्यापार के लिये स्वयं को प्रस्तुत करना, पशु मैथुन, समलैंगिक संभोग आदि शामिल है। इस प्रकार के कार्य अपराध हैं या नहीं, इसकी वैधता या अवैधता समाज के नैतिक एवं आर्थिक हितों पर निर्भर करती है। इसी कारण, कई देशों में नशा करना या समलैंगिकता को अपराध की श्रेणी में नहीं माना गया है, जब तक कि ये कार्य सार्वजनिक न हो। इन प्रकारों के अपराधों के लिये अपराधी व्यक्ति को दण्डित नहीं किया जाता है, बल्कि उन्हें सुधारने का मौका देते हुये समाजसेवी संगठनों के द्वारा ठीक करने का प्रयास किया जाता है।

अपराध के चरण

किसी व्यक्ति के द्वारा जब भी ऐसा कोई कार्य किया जाता है जो विधि द्वारा दण्डनीय माना गया है एवं जिससे व्यक्ति एवं समाज दोनों को ही क्षति पहुँचती है, अपराध माना जाता है। किसी भी कार्य का होना या नहीं होना, अपराध की श्रेणी में आने वाले कार्य निम्न चार चरणों में किये जाते हैं–

1) **आशय** – आशय अपराध का प्रमुख एवं प्रथम अवस्था है। अपराध के निर्धारण में आशय अति–महत्वपूर्ण है। जब भी कोई व्यक्ति अपराध करता है, उससे पूर्व ही उसके मस्तिष्क में अपराध करने की भावना उत्पन्न हो जाती है। अपराधिक विधि में माना गया है कि कोई भी व्यक्ति तब तक अपराधी नहीं होता जब तक उसकी मनःस्थिति अपराधी न हो अर्थात् कोई भी कार्य तब तक अपराध नहीं होता है, जब तक उसे अपराधिक आशय से न किया जाये।

2) **तैयारी**– किसी भी अपराधिक कार्य करने हेतु की गई तैयारी मात्र अपराध नहीं होती है, कुछ अपवादिक दशाओं को छोड़कर (जैसे देश के विरूद्ध किसी अपराध को करने हेतु की गई तैयारी)। तैयारी, आशय के पश्चात् दूसरा चरण है। केवल तैयारी करना दण्डनीय नहीं होता है। उदाहरण के लिये– कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति का गृह जलाने के आशय से माचिस या अन्य ज्वलनशील पदार्थ खरीदता है और उस व्यक्ति के घर के निकट जाता है। इस वाद में उसका माचिस खरीदना उसके आशय की तैयारी है, लेकिन अपराध नहीं हो सकता है कि उसने कार्य करने से पूर्व अपना मन बदल दिया हो; परन्तु, कृत्य घटित होने के पश्चात् तैयारी का कोई महत्व नहीं रह जाता है।

3) **प्रयत्न**– अपराध को कारित करने की दिशा में प्रयत्न अगला चरण है। किसी भी अपराध को करने हेतु किया गया प्रयत्न, एक ऐसा कार्य है, जो उस अपराध को कारित करने के आशय से किया जाता है, जो कि श्रेणीबद्ध कार्यों का ही एक अंश होता है एवं यदि कार्य के मध्य में किसी भी प्रकार का व्यवधान उत्पन्न न हो तो वस्तुतः अपराध कारित हुआ होता है। अपराध करने हेतु मनःस्थिति, कार्य अपराधिक आशय से दोषपूर्ण कार्य को करने हेतु करना तथा आशायित कार्य में किसी कार्य के द्वारा या परिस्थितियों के द्वारा पूर्ति में असफल होना प्रयत्न के आवश्यक तत्व हैं। उदाहरण के लिये, किसी महिला को गर्भपात कराने हेतु दवाई खिलाना, परन्तु, बाद में पता चले कि वह महिला गर्भवती थी ही नहीं, अपराधी द्वारा किया गया कार्य प्रयत्न की कोटि में आयेगा। इसके अतिरिक्त, हत्या करने का प्रयत्न, अपराधिक मानव वध करने का प्रयत्न, आत्महत्या करने

का प्रयत्न, लूट का प्रयत्न आदि सभी प्रयत्न के उदाहरण हैं।

4) **अपराध की पूर्णता**– किसी भी अपराध को कारित करने की दिशा में अपराध की पूर्णता उसका अन्तिम चरण होता है। जब किसी अपराधिक कार्य को करने का आशय कर उसी दिशा में तैयारी कर उस कार्य को कर दिया जाता है तो यह मान लिया जाता है कि अपराध घटित हो गया। जैसे कि, किसी व्यक्ति के द्वारा किसी अन्य व्यक्ति का घर जलाने हेतु माचिस एवं अन्य ज्वलनशील पदार्थ खरीदकर ले जाना, ये उस अपराधिक कार्य की तैयारी होती है और फिर जलाने तक प्रयत्न की अवस्था रहती है। किन्तु, जैसे ही माचिस जलाकर उसमें आग लगाने जाते ही माचिस बुझ जाती है तो यहाँ प्रयत्न का अपराध घटित हो जाता है। इसके पश्चात् पूर्णता की स्थिति आती है जहाँ तैयारी एवं प्रयत्न दोनों ही सफल हो जाते हैं। वहाँ अपराध की पूर्णता मान ली जाती है।

अपराध के प्रकार

अपराध कई प्रकार के होते हैं, जैसे सम्पत्ति सम्बन्धी अपराध, पेशेवर अपराध, व्यक्तिगत हिंसा सम्बन्धी अपराध, घरेलू हिंसा सम्बन्धी अपराध, सफेद–पोश अपराध, लोकशान्ति के विरूद्ध अपराध आदि। अपराध को भी विभिन्न विधिवेत्ताओं के अनुसार विभिन्न आधारों पर वर्गीकृत किया गया है –

(अ) **गम्भीरता के आधार पर अपराध का वर्गीकरण**– गम्भीरता की दृष्टि से अपराधों को दो प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है–

(1) **हल्के अपराध** – इस श्रेणी के अपराधों में वे अपराध आते हैं जो आंशिक रूप से गम्भीर होते हैं, जिनके लिये कम अवधि के कारावास या जुर्माने की व्यवस्था रहती है। जैसे, जुआ खेलना आदि, इस प्रकार के अपराध के जमानतीय अपराध कहलाते हैं।

(2) **गम्भीर अपराध** – इस श्रेणी के अपराधों में अत्यधिक गम्भीर अपराध जैसे– हत्या करना, देशद्रोह आदि शामिल है। इस प्रकार के अपराध के लिये विधि द्वारा मृत्युदण्ड या आजीवन कारावास का प्रावधान किया गया है। इन अपराधों को अजमानतीय अपराध भी कहते हैं।

(ब) **अपराधशास्त्री श्री बोंगर** ने अपराधों को चार वर्गों में बाँटा हैं–

1) **आर्थिक अपराध**– जैसे : चोरी करना, गबन करना;

2) **यौन अपराध**– जैसेः बलात्कार;

3) **राजनैतिक अपराध**– जैसेः राजद्रोह;

4) **विविध अपराध**– जैसेः किसी के घर को आग लगाना, हत्या करना आदि।

(स) **श्री लेमार्ट के अनुसार**– इन्होंने अपराध को तीन वर्गों में बाँटा है–

(1) **परिस्थितिवश उत्पन्न अपराध**– ऐसे अपराध जो पहले से करना तय न हो परन्तु परिस्थितिवश हो जाये, जैसे– अन्न न मिलने कारण परेशान होकर अन्न भण्डारों को लूटना आदि।

(2) **आयोजित अपराध**– ऐसे अपराध जो पूर्व में ही नियोजित योजना बनाकर किये जाये, जैसे– किसी के घर या बैंक आदि जगहों पर डाका डालना, घेराव करना आदि।

(3) **विश्वासघाती अपराध**– ऐसे अपराध जो किसी व्यक्ति या संस्था को विश्वास देकर या वचन भंग होने के कारण अपराध उत्पन्न हो, जैसे– कपट या धोखा देने की प्रवृत्ति।

(द) **श्री हेज के अनुसार अपराध तीन प्रकार के होते हैंः–**

1) **व्यवस्था के विरूद्ध अपराध**– जैसेः शराब पीकर सड़क पर चलना।

2) **सम्पत्ति के विरूद्ध अपराध**– जैसेः गबन, जालसाजी।

3) **व्यक्ति विरूद्ध अपराध** – जैसेः बलात्कार, हत्या करना, चोट पहुँचाना आदि।

(इ) **अध्ययन की दृष्टि से** इन विभिन्न प्रकार के अपराधों को सरसरी तौर पर निम्नलिखित तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

(1) दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत किये गये अपराध।

(2) दण्ड विधि के अन्तर्गत आने वाले अपराध।

(3) **विशिष्ट अधिनियमों एवं विधियों के** अन्तर्गत किये जाने वाले अपराध।

इस प्रकार अपराधों को अलग–अलग विधिवेत्ताओं ने अलग–अलग प्रकार से वर्गीकृत किया है। इन आधारों पर अपराध को एक और अन्य वर्गीकरण में राजनीतिक, आर्थिक, विधिक, सामाजिक एवं प्रकीर्ण पाँच प्रकार की श्रेणी में बाँटा जा सकता हैः–

(1) **राजनीतिक अपराध**– इस प्रकार के अपराध राजनीति से प्रेरित अपराध होते हैं, जैसे– चुनाव के दौरान विधियों के उल्लंघन सम्बन्धी अपराध, मतगणना में हेरा–फेरी आदि।

(2) **आर्थिक अपराध**– ये अपराध मुख्यतः धन से सम्बन्धित अपराध होते हैं, जैसे– मुद्रा के विनिमय के उल्लंघन सम्बन्धी अपराध, गबन, सफेदपोश अपराध, करों की चोरी, तस्करी, जुआ आदि।

(3) **विधिक अपराध**– इन प्रकार के अपराधों को रूढ़िवादी अपराध भी कहा जाता हैं। चोरी, लूट, डकैती, बलात्कार, अपहरण, दंगा, बलवा आदि अपराध इसी श्रेणी में आते हैं।

(4) **सामाजिक अपराध**– इन अपराधों में मुख्यतः महिलाओं एवं बालकों के शोषण से सम्बन्धित अवांछनीय कृत्य आते हैं। इनकी रोकथाम हेतु समय–समय पर अधिनियम भी बनाये गये हैं।

(5) **प्रकीर्ण अपराध**– उपरोक्त अपराधों के अतिरिक्त कईं अपराध ऐसे होते हैं, जो इनमें से किसी भी प्रकार के अपराध की श्रेणियों में नहीं आते हैं, वे प्रकीर्ण अपराधों की श्रेणी में रखे जाते हैं, जैसे– औषधि अधिनियमों, उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, प्रिवेन्शन ऑफ नारकोटिक्स एण्ड साइकोट्रोफिक सब्सटेंसेस आदि के अन्तर्गत होने वाले अपराध।

भारतीय दण्ड विधि के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के अपराधों को मुख्यतः सात वर्गों में विभाजित किया गया है, वे निम्नलिखित हैं–

(1) शरीर सम्बन्धी अपराध।

(2) सम्पत्ति सम्बन्धी अपराध।

(3) दस्तावेज सम्बन्धी अपराध।

(4) मानसिक स्थिति को प्रभावित करने वाले अपराध।

(5) लोकशान्ति के विरूद्ध किए गए अपराध।

(6) राज्य के विरूद्ध अपराध; एवं

(7) लोकसेवकों से सम्बन्धित अपराध।

अपराधिक विधि के अनुसार भारतीय दण्ड विधि के अन्तर्गत किये गये अन्य वर्गीकरणों से अधिक उपयुक्त एवं उचित वर्गीकरण है।

अपराध सम्बन्धी कुछ अन्य तथ्य (सामान्यीकरण)

उपरोक्त विवेचन के आधार पर अपराध के बारे में कुछ अन्य ऐसे तथ्य भी हैं जिनका उल्लेख किया जाना आवश्यक है। इन तथ्यों को अपराध सम्बन्धी सामान्यीकरण भी कहा जाता है।

अपराध को सामान्यतः पाप भी कहा जाता है। जबकि, पाप और अपराधों

में अनेक विभिन्नतायें हैं, इनके स्वरूप एवं परिणाम भी एक–दूसरे से बिलकुल भिन्न होते हैं। सामान्यतः, किसी भी धर्म के धार्मिक विधानों या नियमों के उल्लंघन को पाप कहा जाता है। जबकि देश या राज्य में प्रचलित विधि द्वारा बनाये गये नियमों के उल्लंघन को अपराध कहा जाता है। इस प्रकार यह कहना उचित है कि पाप धर्म से उत्पन्न संकल्पना है जबकि अपराध विधिक प्रस्थापना है। धर्म में यह माना जाता है कि पाप करने पर ईश्वर दण्ड देता है जबकि अपराध करने पर अपराधी व्यक्ति को राज्य के द्वारा दण्डित किया जाता है। पाप का उपचार पश्चाताप है जबकि अपराध के लिये विधि के द्वारा निर्धारित दण्ड का प्रावधान है। अतः कोई भी अपराध पाप नहीं है, दोनों एक–दूसरे से भिन्न हैं।

अपराध शब्द की उत्पत्ति **'क्रिमोस'** (Krimos) से हुई है। 'क्रिमोस' लेटिन भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ दोषारोपण कराना या इल्जाम लगाना होता है। इसमें सामाजिक व्यवस्था के विरूद्ध समाज के द्वारा अनुचित माने जाने वाले कार्यों का समावेश होता है, जो समाज के द्वारा निन्दनीय भी होते हैं।

अपराधशास्त्र के प्रसिद्ध इटेलियन अपराधशास्त्री **गेरोफेलो** ने कहा कि, "अपराध एक ऐसा अनैतिक और हानिकारक कृत्य है, जिसे समाज या लोकमत के द्वारा निंदनीय एवं तिरस्कृत माना गया है, क्योंकि इस हानिकारक कृत्य से उनकी नैतिक भावना को आघात पहुँचता है।"[4]

मध्यकालीन युग में अनैतिक कार्यों को ही अपराध माना जाता था। उस काल में अधिकांश कानून धार्मिक अवधारणाओं के आधार पर बनाये गये थे, क्योंकि उस समय राज्य धार्मिक संस्थानों के अधीन माने जाते थे। परन्तु, यह भी सत्य है कि समय के परिवर्तन होने के साथ–साथ सभ्यता में विकास एवं सामाजिक परिवर्तन में भी अमूलचूल परिवर्तन हुआ है। इन परिवर्तनों से विधिशास्त्र की विभिन्न अवधारणाओं एवं सामाजिक मूल्यों में भी कई प्रकार के परिवर्तन किये गये है। इसके परिणामस्वरूप, अपराध को नैतिकता से पृथक माना गया तथा कोई भी कृत्य जो विधि के अन्तर्गत दण्डनीय एवं निषिद्ध माना गया हो, चाहे वह नैतिकता की दृष्टि से उचित ही क्यों न हो, अपराध माना जायेगा, की अवधारणा का विकास हुआ।

वर्तमान समय में अपराध तथा नैतिकता को पृथक ही माना जाता है। अधिकतर अनैतिक कृत्यों को अपराध माना जाता है, परन्तु कुछ अपराधिक कार्य ऐसे होते हैं जो अपराध की तुलना में अधिक हानिकारक होते हैं परन्तु अपराधों की श्रेणी में नहीं आते हैं। जैसे– यदि कोई व्यक्ति भूख से मर रहा हो, परन्तु वहाँ कोई भी सम्पन्न व्यक्ति उसे जीवन रक्षा हेतु अनाज या अन्य खाने योग्य वस्तु नहीं देता है और उसे मरने देता है, तो यह कृत्य गम्भीर श्रेणी का होते

हुये भी अपराध नहीं माना जाता है। परन्तु, इसके विपरीत यदि वह भूखा व्यक्ति खाने के अनाज या खाने की कोई वस्तु किसी से छीनता है या चुराता है तो वह अपराध करता है (भारतीय दण्ड संहिता प्रारूप– पृष्ठ 174)।

इसके अतिरिक्त, अपराध का सामाजिक नीति के साथ भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। अपराध की संकल्पना एवं दण्ड दोनों ही सामाजिक मान्यताओं, धारणाओं, मूल्यों, आचरण आदि पर निर्भर होती है। जिस प्रकार, समय के परिवर्तन से सामाजिक मूल्यों, धारणाओं आदि में परिवर्तन होता है, उसी प्रकार अपराधों की संकल्पना में भी परिवर्तन होता है। कई बार ऐसा भी होता है जो वर्तमान समय में अपराध माना जाता है वह हो सकता है कि समय परिवर्तन होने पर कुछ समय पश्चात् वह अपराध न माना जाये। जैसे– **बियरर बॉण्ड के मामले** में जनता से काला धन निकलवाने के लिये सरकार ने व्यक्ति द्वारा स्वेच्छा से काले धन की घोषणा किये जाने पर उसे दण्ड से मुक्त रखा था **(आर. के. गर्ग बनाम भारत संघ (1982) 123 आई. टी. आर. 239)।**

अपराध को एक सापेक्ष संकल्पना माना जाता है, अर्थात् कोई भी कार्य जो किसी स्थान विशेष पर अपराध माना जाता है तो यह आवश्यक नहीं कि वह दूसरे स्थान पर भी अपराध ही माना जाये, जैसे समलैंगिक संभोग को भारत में अपराध माना जाता है और यही यदि सार्वजनिक स्थल पर न हो तो ब्रिटेन में इसे अपराध नहीं माना जाता है। किसी भी देश की दण्ड विधि से वहाँ के समाज के नैतिक मूल्यों का अनुमान लगाया जा सकता है। समाज के विभिन्न चरणों के विकास से ही अपराध एवं अपराधशास्त्र का जन्म हुआ है। विद्वानों का मानना है कि अपराधों एवं उनके प्रकारों में वृद्धि सामाजिक प्रगति का द्योतक है।

अपराधी

किसी भी स्थान या देश में वहाँ प्रचलित विधि द्वारा निषिद्ध घोषित किये गए मानव आचरणों को अपराध कहा जाता है। ये मानव द्वारा किये गये ऐसे समाज विरोधी कृत्य होते हैं, जिनसे सामान्य जनता में भय व आतंक की स्थिति उत्पन्न होती है एवं अपकारित व्यक्ति को क्षति पहुँचाते हैं। प्रत्येक देश में वहाँ प्रचलित दण्ड विधियों में अपराध की परिभाषा एवं उसके लिये निर्धारित दण्डों का उल्लेख रहता है।

मानव द्वारा किये केवल वे ही कृत्य या आचरण अपराध माने जाते हैं जो दण्ड विधि के अन्तर्गत अपराध माने जाते हैं। नैतिक दृष्टि से मानव के कई ऐसे आचरण या कृत्य होते हैं, जो अच्छे व्यवहार में नहीं आते हैं, परन्तु फिर भी उन्हें अपराध नहीं माना गया है। जैसे– कोई व्यक्ति नदी में डूब रहा हो और उसे देखने वाले व्यक्ति को अच्छे से तैरना आता हो परन्तु वह उसे बचाने के

लिये मदद नहीं करता, तो यह समाज की दृष्टि से निन्दनीय कार्य है, परन्तु इसे अपराध नहीं माना जायेगा।

विधिनुसार किसी व्यक्ति को, जिसने अपराध स्वीकार न कर लिया हो, तब तक अपराधी नहीं माना जा सकता है, जब तक कि उसके द्वारा किया गया अपराध न्यायालय की मान्य प्रक्रिया द्वारा सिद्ध नहीं हो जाता है। लेकिन, अपराधी, वह व्यक्ति जिसने अपराध किया है। विभिन्न अपराधशास्त्रियों ने अपराधी की भिन्न–भिन्न परिभाषायें दी हैंः–

सीजर–लोम्ब्रोसा के अनुसार, 'अपराधी नैतिक दृष्टि से पतित व्यक्ति है और वह मानसिक दृष्टि से अविकसित व्यक्ति है।'

गिलिन के अनुसार, 'समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से वह व्यक्ति अपराधी है, जिसने ऐसा कार्य किया है जो सामाजिक दृष्टि से हानिकारक एवं निषिद्ध है।'

भारतीय दण्ड संहिता के अनुसारः– अपराधी वह व्यक्ति है, जिसने कोई अपराधिक कार्य घटित किया हो।

टार्डे के अनुसारः– अपराधी सामाजिक विष्ठा है।

अपराधियों का वर्गीकरण

अपराधियों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में विभिन्न अपराधशास्त्रियों में सदैव मतभेद रहा है। अपराधियों के वर्गीकरण से आशय यह है कि विभिन्न अपराधियों एवं उनके अपराधों के स्वरूप के अनुसार निश्चित श्रेणियों में विभक्त किया जाये और उन्हें उसी अनुसार दण्डित भी किया जा सके।

भिन्न–भिन्न विद्वानों ने अपराधियों का वर्गीकरण भिन्न–भिन्न प्रकार से किया है, **उनमें से कुछ वर्गीकरण निम्न हैं**–

1. सदरलैण्ड का वर्गीकरण।
2. हेप का वर्गीकरण।
3. डॉ. इलिस का वर्गीकरण।
4. लोम्ब्रोसो का वर्गीकरण।
5. गैरोफेलो का वर्गीकरण।
6. एनरिको फैरी का वर्गीकरण।

(1) सदरलैण्ड का वर्गीकरण– अपराधियों के अनुसार अपराधों की दो श्रेणियाँ हैंः– (i) निम्न श्रेणी के अपराधी (ii) उच्च श्रेणी के अपराधी।

(i) **निम्न श्रेणी के अपराधी** – ये अपराधी, वे अपराधी होते हैं, जो निम्न श्रेणी की सामाजिक स्थिति वाले होते हैं। जो अपनी आर्थिक परेशानियों के कारण अपराध करते हैं और धनराशि के अभाव के कारण अपने अपराधों को छिपा भी नहीं सकते हैं और कई बार ऐसे व्यक्तियों को निरपराधी होने पर भी दण्ड भुगतना पड़ता है।

(ii) **उच्च श्रेणी के अपराधी या सफेद पोश अपराधीः**– इस प्रकार के अपराधी समाज में उच्च श्रेणी वाले एवं उच्च आर्थिक स्थिति वाले होते है। इसी कारण, ये लोग बड़े से बड़े अपराधों को छिपाने में सफल हो जाते हैं। **श्री सदरलैण्ड** के अनुसार, उच्च श्रेणी अपराध या श्वेतपोश अपराध, वह अपराध है जो कि अपने व्यवसाय के दौरान उच्च सामाजिक स्थिति के व्यक्ति द्वारा किया जाता है।

(2) **हेज का वर्गीकरणः**– प्रसिद्ध अपराधशास्त्री हेज ने अपराध की प्रकृति के अनुसार अपराधियों को चार श्रेणियों में बाँटा हैः–

(i) **प्रथम अपराधी**– प्रथम अपराधी अर्थात् वह व्यक्ति जिसने प्रथम बार अपराध किया हो।

(ii) **आकस्मिक अपराधी**– ये वे अपराधी हैं जो कभी–कभी अपराध करते हैं।

(iii) **आदतन अपराधी**– इस प्रकार के अपराधी बुरी संगत तथा परिस्थितियों के कारण अपराध करने के आदि हो जाते हैं।

(iv) **पेशेवर अपराधी**– वे अपराधी जिनका व्यवसाय या आय का स्त्रोत ही अपराध होता है।

(3) **डॉ. इलिस के अनुसारः**– प्रसिद्ध अपराधशास्त्री डॉ. इलिस ने अपराधियों को ज्ञान श्रेणियों में बाँटा है। ये ज्ञान श्रेणियाँ हैंः– राजनीतिक अपराधी, अपस्मारी, कामुक अपराधी, आकस्मिक अपराधी, आदती अपराधी एवं मूल–प्रवृत्यात्मक अपराधी।

(4) **लोम्ब्रोसो के अनुसारः**– लोम्ब्रोसो के अनुसार, अपराधियों का वर्गीकरण निम्नानुसार हैः–

(i) **जन्मजात अपराधीः**– ऐसे अपराधी, जो जन्म से ही वंशानुगत स्वभावतः अपराधी होते हैं। इस प्रकार के अपराधियों को अधिकतर अपराधशास्त्रियों ने अस्वीकार किया है। अन्ततः, लाम्ब्रोसो ने स्वीकार किया है कि कोई भी अपराधी नहीं होता, बल्कि परिस्थितिवश अपराधी बन जाता है।

(ii) **विक्षिप्त अपराधी** – विक्षिप्त अपराधी से तात्पर्य ऐसे अपराधियों से है, जो मानसिक रूप से सामान्य नहीं होते हैं अर्थात् मानसिक रूप से विक्षिप्त या कमजोर होने के कारण अपराध करते है।

(iii) **विषयात्क (कामुक) अपराधीः**– ऐसे अपराधी, जिनमें कामवासना असाधारण रूप से प्रबल होने के कारण, ये यौन अपराध करते हैं। ऐसे अपराधियों का विषयासक्त होने के कारण ये स्वयं पर काबू नहीं रख पाते हैं और अपनी शारीरिक कामवासना की पूर्ति करने के लिये यौन अपराध में लिप्त रहते हैं।

(iv) **आकस्मिक या प्रासंगिक अपराधी**– ऐसे अपराधी, सामान्यतः अपराधी नहीं होते हैं और न ही वे अपराध करने की चाह रखते हैं, परन्तु इनसे परिस्थितिवश अचानक ही अपराध हो जाता है।

(5) **गैरोफेलो** के अनुसार, "प्रसिद्ध इटैलियन अपराधशास्त्री रेफेल गेरोफेलो" के अनुसार अपराधियों का वर्गीकरण हैः–

- **विचित्र या प्रारूपिक अपराधीः**– इस प्रकार के अपराधियों में नैतिकता का अभाव होता है तथा वे कठोर एवं क्रूर स्वभाव के होते हैं एवं समाज के लिये खतरा होते हैं।

- **उग्र या हिंसात्मक अपराधी** – ऐसे अपराधियों का लक्ष्य बदले की भावना होता है। ये अपराधी चोरी, डकैती, हत्या, बलात्कार, अपहरण आदि अपराधों को आसानी से बिना किसी हिचकिचाहट के कर लेता है।

- **सद्भाव रहित अपराधी** – जिन अपराधियों के स्वभाव में ही सद्भाव एवं ईमानदारी नहीं होती है, वे अपराधी व्यक्ति सद्भाव रहित अपराधी होते हैं। इनके स्वभाव में दया न होने के कारण इनकी प्रवृत्ति अपराधों की तरफ हो जाती है।

- **लम्चर (कामुक)** – इस प्रकार के अपराधी लोफर व मनचले स्वभाव के एवं अनुशासनहीन होते हैं। ये अपराधी आवारा होने के कारण अपराध करते हैं।

(6) **एनरिको फैरी** के अनुसार अपराधियों का वर्गीकरण– **अपराधविज्ञ एनरिको फैरी,** जो अपराधशास्त्र के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण अपनाते हैं, के अनुसार अपराधियों का वर्गीकरणः–

(i) **जन्मतः अपराधी** – **फैरी** ने भी **लोम्ब्रोसो** की तरह यह माना कि कुछ अपराधी जन्म से ही अपराधी होते हैं, अतः वे अपराधिकता को आसानी से छोड़ नहीं सकते हैं।

(ii) **अभ्यसन अपराधी**– कुछ अपराधी आदतन अपराधी होने के कारण अपराध करने में निपुण हो जाते हैं और पकड़े जाने पर कारागार से अपराध करने में निपुण हो जाते हैं। दण्ड भोगने के पश्चात् बाहर आने पर पुनः अपराध करने के लिये तैयार हो जाते हैं और वे अपराधिकता को आय का स्त्रोत या व्यवसाय बना लेते हैं।

(iii) **मनोविक्षिप्त अपराधी**– ऐसे अपराधी जो अपराध करना नहीं चाहते परन्तु मानसिक रूप से विक्षिप्त होने के कारण कभी–कभी स्वयं पर नियन्त्रण खो देते हैं और उनसे अपराध घटित हो जाता है। ऐसे अपराधियों को मनोविक्षिप्त अपराधी कहा जाता है।

(iv) **आकस्मिक अपराधी** – कुछ अपराधी ऐसे होते हैं, जो न चाहते हुये भी परिस्थितिवश यदा–कदा अपराध कर बैठते हैं। इनमें परिस्थिति की अनुकूलता के कारण ही अपराध करने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है।

(v) **भावावेशी अपराधी**– इस श्रेणी में वे अपराधी शामिल किये जाते हैं, जो भावात्मक होकर अपराधिक कृत्य करते हैं। ये स्वयं के ऊपर नियन्त्रण नहीं रख पाते हैं।

सर्वमान्य वर्गीकरणः– विभिन्न अपराधशास्त्रियों के द्वारा जो वर्गीकरण किया गया है वह उनके अनुभवों एवं व्यैक्तिक विचारों पर आधारित है। सामान्यतः अपराधियों को निश्चित वर्गों में वर्गीकृत करना सम्भव नहीं है। उपरोक्त वर्गीकरण के आधार पर एक सामान्य वर्गीकरण किया जाए, तो वह निम्नानुसार होगाः–

अपराधियों का वर्गीकरण –

(1) रूढ़िगत अपराध।

(2) सफेदपोश अपराध।

(3) साइबर अपराध।

अपराधियों के वर्गीकरण का व्यावहारिक महत्व है। उनके अपराध के स्वरूप तथा अपराधिक प्रवृत्ति के अनुसार ही उनके किये दण्ड एवं कारावास की अवधि निर्धारित की जाती है। अपराधी की परिवीक्षा या कारावासी को पैरोल पर छोड़े जाने के लिये भी वर्गीकरण सहायक होता है। इसी प्रकार, अपराधी को वर्गानुसार, जो बन्दी अपने अपराध की दण्डावधि पूर्ण कर चुका होता है, उनके पुनर्वासित करने हेतु उपचारात्मक पद्धति भी अपनाई जाती है।

(1) **रूढ़िगत अपराधी** – कारावास में आये अपराधियों में अधिकतर अपराधी रूढ़िगत अपराधी होते हैं। रूढ़िगत अपराधी दो प्रकार से अपराधिक कृत्य

करते हैं। या तो वे व्यक्तिगत रूप से अपराधिक कृत्य करते है या फिर गिरोह बनाकर संयुक्त रूप से अपराधिक कार्य करते हैं, जैसे – लूट, डकैती, अपहरण, हत्या, बलात्कार, रिष्टि, गबन, ठगी आदि। ये अपराधी स्वभावतः अपराधी नहीं होते, बल्कि परिस्थितिवश या किसी बाध्यता से अपराधिक कृत्य करते हैं। गिरोह में अपराध करने के लिये अनेक व्यक्तियों की आवश्यकता होती है, जैसे – डकैती एवं षड्यंत्र आदि। भारत में ऐसे डकैतों के गिरोहों में प्रमुख गिरोह है– मानसिंह, फूलनदेवी, मूरतसिंह, पुतलीबाई आदि। ऐसा ही एक और गिरोह था दस्यु वीरप्पन का, जिसने तमिलनाडु एवं केरल के जंगलो में फैला रखा था।

रूढ़िगत अपराधियों को भी निम्नानुसार विभिन्न श्रेणियों में बाँटा गया हैः–

(i) **रूढ़िगत अपराधी या प्रथम अपराधी** – नव अपराधी से तात्पर्य ऐसे अपराधी से है जिसने प्रथम बार अपराध किया हो। ऐसे अपराधियों में साहस की कमी रहती है तथा वे अपराधिक कृत्य को करने से डरते एवं घबराते हैं। इसी कारण, उनका मन विचलित व अशान्त रहता है। उन्हें उनकी परिस्थिति या सम्भावित लाभ अपराध करने के लिये प्रेरित करता है। वहीं वह दण्ड व बदनामी के डर से अपराधिक कृत्य को करने के लिये मानसिक रूप से तैयार नहीं हो पाते हैं। जब वे प्रथम बार अपराध करते हैं, तब वे बचने के तरीकों से भी अनभिज्ञ रहते हैं। उनके भीतर आत्मविश्वास की भी कमी होती है। परन्तु, ये अपराधी अपने अपराधिक कृत्य को करने में सफल हो जाते हैं, तो इनका मनोबल बढ़ जाता है और वे अभ्यस्त अपराधियों के सम्पर्क में आने पर परिपक्व भी हो जाते हैं।

(ii) **पारिस्थितिक अपराधी**– ये अपराधी वे अपराधी होते हैं, जो किसी भी अपराधिक कृत्य को करने का इरादा नहीं बनाते हैं बल्कि वे परिस्थितियों का शिकार हो जाते हैं, जिससे वे अपराधिक कृत्य कर देते हैं। अर्थात्, ऐसा कहा जा सकता है कि ऐसे अपराधी अपराध जान–बूझकर नहीं करते, बल्कि भावावेश में या स्थिति की अनूकुलता के कारण हो जाते हैं। जैसे – दो मित्रों के मध्य किसी बात पर विवाद हो जाता है और विवाद अधिक हो जाने पर वे आपस में मारपीट कर अपराध करते हैं या जैसे, कभी–कभी पति–पत्नी के बीच आपसी झगड़ा इतना बढ़ जाता है कि पति अपनी पत्नी की हत्या तक कर देता है या पत्नी नाराज होकर घर छोड़ कर चली जाती है और कोई व्यक्ति उसकी परिस्थिति का लाभ उठाकर उसे बहला–फुसलाकर उसका बलात्कार कर

देता है। इस प्रकार वह महिला अक्समात् अपराधिकता में पड़ती है। अतः ये अपराध स्थिति अनुसार बिना किसी इरादे के अचानक हो जाते हैं। ऐसे अपराधिक कृत्यों को करने वाले व्यक्ति को आकस्मिक या परिस्थितिक अपराधी कहा जाता है।

(iii) यदा–कदा अपराध या आदतन अपराध करने वाले अपराधी– वे अपराधिक कृत्य करने वाले अपराधी, जो अपराधिक कृत्यों को आय का स्त्रोत तो नहीं बनाते और न ही व्यावसायिक तौर पर अपराध करते हैं। परन्तु, अवसर मिलने पर अपराध करने से पीछे नहीं हटते। वह यह जानते हुये भी अपराध करते हैं कि समाज में इसे सहन नहीं किया जायेगा और उसे इस कृत्य के लिये दण्ड भी मिलेगा। अतः आदतन अपराधी वह अपराधी होते हैं जो अपराध करने में रूचि तो रखते हैं, परन्तु सामाजिक उपेक्षा एवं दण्ड के भय से इस अपराधिक कृत्य को व्यवसाय नहीं बनाते, परन्तु यदा–कदा अवसर मिलने पर अपराधिक कृत्य करने की प्रवृत्ति जरूर रखते हैं।

(iv) अभ्यस्त अपराधी– वे अपराधी जो अपराध करने के आदि हो चुके होते हैं तथा अपराध करने की पुनरावृत्ति करते रहते हैं, अभ्यस्त अपराधियों की श्रेणी में आते हैं। इन्हें प्रत्यावर्ती अपराधी भी कहा जाता है क्योंकि ये अपराधी अपराधों की पुनरावृत्ति करते रहते हैं। ऐसे अपराधी जब अपने दण्ड की दण्डावधि भोगकर बाहर आते हैं, तब समाज द्वारा उनकी उपेक्षा की जाती है जिसके कारण अपराधी के आत्मसम्मान को ठेस पहुँचती है और वे निराश हो जाते हैं एवं उनका पुनर्वास कठिन हो जाता है और वह पुनः अपराधिकता की ओर चले जाते हैं और अभ्यस्त अपराधी बन जाते हैं।

(v) व्यावसायिक अपराधी– ऐसे अपराधी जो अपराध को सुनियोजित ढंग से करते हैं और उसमें अधिकतर सफल होते हैं। जो इन कार्यों को जीवन–निर्वाह के एक साधन के रूप में करते हैं, उन्हें व्यासायिक अपराध माना जा सकता है। व्यावसायिक अपराधी की श्रेणी में आते है, जैसे– जेब काटना, तस्करी, वैश्यावृत्ति, डकैती, वाहन की चोरी आदि। व्यावसायिक अपराधी अपने द्वारा किये जाने वाले कार्यों एवं उनके परिणामों से भली–भाँति अवगत होते हैं और इनसे बचने के तरीकों को भी जानते हैं। ये अपराधी अपने अपराधिक कृत्यों से जनता व समाज को डराते हैं, जिससे उन्हें आत्मिक संतोष मिलता है और उन्हें उनके द्वारा किये गये अपराधिक कृत्यों से संतुष्टि मिलती है।

व्यावसायिक एवं अभ्यस्त अपराधियों को लम्बी अवधि के लिये दण्ड देकर जनता को उनके आतंक व डर से बचाया जाता है। परन्तु, कभी–कभी ये अपराधी लम्बे समय तक जेल में रहने पर अपनी मानसिक स्थिति खराब कर लेते हैं तथा समाज के प्रति घृणा, द्वेष व प्रतिशोध की भावना रखते है और पुनः अपराधिक प्रवृत्ति की ओर जाने लगते है।

(vi) महिला अपराधीः– सामान्यतः माना जाता है कि महिलाओं में पुरूषों की अपेक्षा कम अपराधिक प्रवृत्ति पाई जाती है, परन्तु इसी पर फ्रेडिक पोलाक ने कहा कि प्रायः महिलाओं द्वारा किये जाने वाले अपराधों का अधिकतर पता नहीं चल पाता है। महिलाओं के द्वारा किये जाने वाले अपराधों में प्रमुख है– भ्रूण हत्या, गर्भपात, विष–प्रयोग, शिशु वध, पर–पुरूष गमन, वैश्यावृत्ति, चोरी, छल आदि। कई बार अच्छे संभ्रात घरों की महिलायें भी जालसाजी या गबन जैसे अपराध करती हैं। भारत में ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं के अशिक्षित व अन्धविश्वासी होने के कारण जादू–टोने, टोटके के चक्कर में हत्या जैसे अपराध तक कर देती हैं।

भारतीय समाज में महिला माता, बहन, बेटी, बहु, भाभी किसी भी रूप में हो सकती है। इनके द्वारा किये जाने वाले अपराध की प्रकृति उनकी सामाजिक भूमिका के अनुसार ही होती है, जिसमें बल प्रयोग की आवश्यकता कम या नही के बराबर हो सकती है। हालांकि, कुख्यात दस्यु फूलनदेवी एवं पुतलीबाई इसका अपवाद हैं। कई बार महिलायें उनके साथ के पुरूषों के द्वारा किये गये अपराधों को छिपाने में उनकी सहायता भी करती हैं।

इस पर उच्चतम न्यायालय का न्यायनिर्णित प्रमुख वाद **रेणुका बाई उर्फ रिंकू बनाम महाराष्ट्र राज्य (एआईआर 2006 सु.को.3056)** वाद में अभियुक्ता अपनी बहन देवकी तथा माँ अंजना बाई एवं पति किरण शिन्दे के साथ मिलकर पुणे के भीड़–भाड़ वाले स्थानों से महिलाओं के गले से सोने की चेन झपटकर उन्हें बेचने का अपराध योजनाबद्ध तरीके से करती थीं। एक बार जब वह चेन झपटते हुये पकड़ी गई तो उसने जोर–जोर से चिल्लाकर भीड़ इकट्ठी करके अपने आप को इस आधार पर निर्दोष सिद्ध करने की कोशिश करते हुये कहा कि इस छोटे बच्चे (उसका 4 वर्ष का बच्चा उसके साथ था) के साथ कोई महिला अपराध कैसे कर सकती है। लोगों को भी उसकी इस दलील पर भरोसा हो गया और वह इस चालाकी से पकड़े जाने से बच

निकलने में सफल हो गई। इस घटना से उसके दिमाग में ख्याल आया कि क्यों न वह अपराध करते समय किसी छोटे बच्चे को अपने साथ रखा जाये जिससे पकड़े जाने की स्थिति में बच्चा साथ में होने के आधार पर सफाई देना आसान होगा। अपनी इस योजना को कार्यान्वित करने के लिये उसने अपने पति के माध्यम से पाँच वर्ष से कम आयु के बच्चों का अपहरण करवाकर उन्हें काम में इस्तेमाल करना शुरू कर दिया और लगभग छः वर्ष तक वह अपने पति, बहन व माँ के साथ मिलकर योजनाबद्ध तरीके से अपराध करती रही और इस प्रकार उसने पर्याप्त धन कमा लिया। वह जिस बच्चे का अपहरण करवाकर साथ में रखती थी, वह बच्चा पाँच वर्ष का हो जाने पर पति के द्वारा उसकी हत्या करवा देती थी तथा दूसरे बच्चे का अपहरण करवाती थी। इस प्रकार वर्ष 1990 से 1996 तक उसने तेरह बच्चों का अपहरण कर पति से उनकी हत्या करवा दी थी। इस गिरोह के पकड़े जाने पर अभियुक्ता का पति सरकारी गवाह बन गया, जबकि अभियुक्ता रिन्कू तथा उसकी बहन देवकी को सत्र न्यायालय ने अपहरण एवं हत्याओं के लिये मृत्युदण्ड के दण्ड से दण्डित किया, जिसकी पुष्टि बम्बई उच्च न्यायालय ने की। विचारण के दौरान अभियुक्ता की माँ अंजना बाई का देहान्त होने के कारण उसके विरूद्ध कार्यवाही त्याग दी गई। इस निर्णय के विरूद्ध अपील को खारिज करते हुये उच्चतम न्यायालय ने अभिकथन किया कि अपीलार्थी द्वारा योजनाबद्ध तरीके से किये गए जघन्य अपराधों को ध्यान में रखते हुये उनके सुधार की कोई सम्भावना नहीं थी इसीलिये केवल इस आधार पर कि वह महिला है, उनके साथ उदारता बरतते हुये मृत्युदण्ड को स्थगित करना न्यायिक सिद्धान्त के विपरीत होगा। अतः इनके लिये मृत्युदण्ड ही उचित दण्ड होगा और अपील खारिज किये जाने योग्य है।[5]

वर्तमान समय में आधुनिकीकरण के समय में औद्योगिक, वैज्ञानिक, शैक्षणिक आदि की प्रगति से अधिक अपराधियों की संख्या में भी वृद्धि हुई है। इन्हीं के कारण कुमारी गमन, अविवाहित मातृत्व, मारना, अवैध गर्भपात आदि अपराधों में वृद्धि हुई है। वर्तमान में सिनेमा, दूरदर्शन आदि प्रसार माध्यम के दृश्यों से प्रभावित होकर महिलायें उसे जीवन में उतारने का प्रयास करती हैं और अनचाहे भोग–विलास का शिकार हो जाती हैं। साथ ही फैशन के आधुनिकीकरण ने महिलाओं के जीवन को दूषित कर दिया है।

दण्ड विधि में भी महिला को दण्ड देने में पुरूषों की अपेक्षा उदारता बरती जाती है। वे पुरूषों की अपेक्षा नाजुक होती हैं और इसीलिये शारीरिक यातना सहने की शक्ति भी कम होती है। इस सम्बन्ध में वाद **मथामल सरस्वती बनाम केरल राज्य,** का वाद महत्वपूर्ण है। इस वाद में महिला अभियुक्त ने अपने बच्चों को कुएँ में फेंककर हत्या कर दी और फिर बाद में स्वयं कुएँ में कूदकर आत्महत्या करने का प्रयास किया। सत्र न्यायालय ने अभियुक्ता को तीन बच्चों की हत्या के लिये आजीवन सश्रम कारावास एवं आत्महत्या के प्रयास के लिये चार वर्ष के लिये कारावास का दण्ड दिया, परन्तु अपील में उच्च न्यायालय ने अभियुक्ता को दयनीय पारिवारिक दशा तथा पति द्वारा उसकी उपेक्षा को ध्यान में रखते हुये उसके दण्ड को केवल साधारण कारावास के दण्ड में बदल दिया।[6]

(vii) किशोर अपराधीः– सामान्यतः माना जाता है कि वयस्क व्यक्ति की अपेक्षा किशोरावस्था में बालक एवं बालिकायें अधिक अपराधिक प्रवृत्ति की होती हैं। इसका कारण यह भी हो सकता है कि वयस्क अपराधी मानसिक एवं शारीरिक रूप से अधिक मजबूत होने एवं अनुभव के कारण अधिकतर बच निकलते हैं। वहीं किशोर अवस्था वाले बालक–बालिका अनुभवहीन होने के कारण अपराधिक कृत्यों को सावधानीपूर्वक नहीं कर पाते हैं।

वर्तमान समय में औद्योगिक, वैज्ञानिकी, सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिवर्तनों से सामाजिक एकरूपता छिन्न–भिन्न होती जा रही है। साथ ही पारिवारिक विघटन भी होने से बच्चों में उद्दण्डता, अनुशासनहीनता आदि की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। किशोरावस्था के बालक–बालिकाओं का उद्देश्य अपराध नहीं होता, बल्कि अपने लड़कपन के कारण या अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के लिये अपराध करते हैं। वे अपनी जिज्ञासा शान्त करने हेतु ऐस कृत्य करते हैं जिनके अच्छे या बुरे परिणामों के बारे में भी नहीं सोचते हैं और अपराध कर बैठते हैं। ये सामान्यतः मारपीट, गाली–गलौच, तोड़फोड़, लैंगिक अपराध, चोरी आदि प्रकार के अपराध करते हैं।

वर्तमान समय में बाल एवं किशोर वयस्क अपराधियों को सामान्यतः अपराधियों के साथ बन्दीगृह में न रखकर विचारण एवं उपचार के लिये विशेष व्यवस्था की गई है, जो **किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000** में उपबन्धित है। बाल अपराधी को पुलिस द्वारा बन्दी नहीं बनाया जा सकता है बल्कि

उसे संप्रेक्षण गृह भेजा जाता और इनका न्यायिक परीक्षण किशोर न्याय बोर्ड में ही किया जाता है और दोषसिद्ध होने पर चेतावनी देकर छोड़ दिया जाता है या अच्छे आचरण की शर्त के साथ परिवीक्षा पर माता–पिता या अभिभावकों को सौंप दिया जाता है या परिवीक्षा अधिकारी की निगरानी में छोड़ दिया जाता है। इस **अधिनियम की धारा 4** के अनुसार उपेक्षित बालकों की उचित देखभाल के लिये राज्यों के लिये राज्यों द्वारा किशोर–कल्याण मण्डल स्थापित किये गए हैं जिससे वे फिर अपराधिक कृत्यों में न पड़ सकें।

(viii) मनोविक्षिप्त अपराधी :– ऐसे अपराधी जो मानसिक रूप से अस्वस्थ हों अर्थात् मन्दबुद्धि या कमजोर मानसिकता के अपराधी मनोविक्षिप्त अपराधी के श्रेणी में आयेंगे। मनोविक्षिप्त अपराधी मानसिक रूप से दुर्बल होते हैं। इसी कारण, उनमें कृत्यों के उचित–अनुचित परिणामों को सोचने–समझने की क्षमता नहीं होती है और न ही उनके द्वारा किये गये अपराधों का कोई उद्देश्य होता है।

इस सम्बन्ध में प्रमुख वाद है, **मध्यप्रदेश व राज्य बनाम अहमदुल्ला (ए.आई.आर. 1961 सु.को. 998)** के वाद में ज़ीनत तलाक देकर अपनी माँ के घर चली गई। इस कारण ससुराल वालों से अभियुक्त की रंजिश हो गई। तत्पश्चात् अहमदुल्ला ग्वालियर में 28 सितम्बर, 1954 को रात्रि में उपनी सास के घर घुस आया और चाकू से अपनी सास का सिर काट कर उसे अपनी दुकान में गाड़ दिया। पुलिस द्वारा पूछताछ किये जाने पर अभियुक्त ने 'हत्या' का अपराध स्वीकार किया और मृतक का सिर एवं टार्च जिसकी सहायता से वह अन्धेरी रात में मृतक के घर में घुसा था, पुलिस को सौंप दी। अभियुक्त ने अपने बचाव में मनोविक्षिप्तता का तर्क प्रस्तुत करते हुये अपने अपराध के बारे में अज्ञानता प्रकट की तथा अपने पागलपन की पुष्टि में मानसिक चिकित्सालय के चिकित्सक, अधीक्षक एवं अपने पिता को साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया। अभियुक्त का बचाव स्वीकार करते हुये सत्र न्यायालय ने उसे दोषमुक्त कर दिया और अपील में भी उच्च न्यायालय ने सेशन न्यायालय की पुष्टि कर दी। शासन द्वारा मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय के इस निर्णय के विरूद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील दायर किए जाने पर उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया कि **धारा 84** का बचाव अभियुक्त को तब ही मिलना चाहिये जब यह सिद्ध हो

जाये कि वह अपराधिक कृत्य करते समय मनोविक्षिप्त (पागल) था, क्योंकि यदि इस बात पर बल नहीं दिया गया, तो अभियुक्त कभी–भी पागलपन का प्रमाण दाखिल कर अपराधिक दायित्व से बच निकलने में सफल हो जायेगा। प्रस्तुत प्रकरण में अभियुक्त टार्च की सहायता से अँधेरी रात में मृतक के घर में घुसा तथा चाकू से मृतक का सिर काटकर अलग कर देना, मनोविक्षिप्तता के लक्षण को नहीं दर्शाता।

उच्चतम न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने यह अभिमत व्यक्त किया कि जिस समय अभियुक्त मृतक की गर्दन पर चाकू चला रहा था, वह इस गलतफहमी में था कि वह कोई मिट्टी का खिलौना तोड़ रहा है या गोभी काट रहा है। निःसन्देह ही यह एक पूर्व–नियोजित हत्या का मामला है और इसके लिये अभियुक्त को दण्डित किया जाना चाहिये। अतः उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निर्णय को पलट दिया और अभियुक्त को आजीवन कारावास का दण्ड दिया।[7]

(2) **सफेद पोश अपराध** :– सदरलैण्ड के अनुसार, उच्च सामाजिक एवं आर्थिक वर्ग के व्यक्तियों द्वारा अपने व्यावसायिक या व्यापारिक कार्य के दौरान किये जाने वाले कानूनी उल्लंघन को सफेद पोश अपराध कहना उचित होगा। सफेदपोश अपराध को उन्होनें इस उदाहरण के द्वारा समझाया कि यदि कोई ब्रोकर (दलाल) अपनी बीवी की गोली मारकर हत्या कर देता है तो यह सफेदपोश अपराध नहीं होगा, परन्तु यदि वह अपने व्यावहारिक कार्य के दौरान व्यापारिक व्यवहारों में विधि का किसी भी प्रकार का उल्लंघन करता है तो यह सफेदपोश अपराध कहलायेगा और वह ब्रोकर (दलाल) सफेदपोश अपराधी कहलायेगा।

सफेदपोश अपराधी द्वारा किए जाने वाले कार्यों में प्रमुख झूठे और कपटपूर्ण विज्ञापनों द्वारा दुर्व्यपदेशन, पेटेन्ट, कॉपीराइट्स तथा ट्रेडमार्क के नियमों का उल्लंघन आदि शामिल है। इन्हें प्रायः उद्योगपति, निर्माता या अन्य उच्चस्तरीय वर्ग के सदस्य अपने व्यावसायिक अनुक्रम में लाभ पाने के नियम से करते रहते हैं।

सफेदपोश अपराधी अधिकतर प्रज्ञावान, कुलीन, दूरदर्शी एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति होते हैं। परन्तु, सदरलैण्ड के अनुसार सामान्य अपराधों व सफेदपोश अपराधों का व्यक्ति के सामाजिक स्तर पर आधारित करना अनुचित होगा।

भारत में सफेदपोश अपराध एक बड़ी समस्या बना हुआ है। यह

समस्या सिर्फ भारत की नहीं अपितु विश्वव्यापी समस्या बन गयी है। भारत में पिछले तीन दशकों में आर्थिक एवं औद्योगिक क्षेत्रों में जो वृद्धि हुई है, उससे सफेदपोश अपराधियों के लिये अनुकूल वातावरण तैयार हो रहा है। वर्तमान में, प्रतिदिन घटित होने वाले अपराधों में प्रमुख जमाखोरी, कालाबाजारी, मिलावट, करों की चोरी आदि है। इसके अतिरिक्त, चिकित्सा, अभियान्त्रिकी, व्यवसाय, विधि व्यवसाय, शैक्षणिक क्षेत्र, व्यापारिक जगत एवं कम्प्यूटर जनित क्षेत्रों में भी सफेदपोश अपराधी होते हैं।

(3) **साइबर अपराधी**– वर्तमान समय में औद्योगिक कारण के बाद से रूढ़िवादी अपराधी, सफेद पोश अपराधी के अतिरिक्त एक और अपराधी है साइबर अपराधी। वर्तमान समय में विश्व स्तर पर सूचना–प्रौद्योगिकी पर पूर्ण रूप से साइबर अपराध एवं अपराधियों ने वर्चस्व जमा रखा है। साइबर अपराध का प्रारम्भ 1994 से माना जा सकता है, जब इसी वर्ष के एक दिन सिटी बैंक की हांगकांग शाखा से ऑनलाइल प्रोसेसिंग से दो लाख डॉलर की धनराशि अचानक कहीं अन्तरित हो गई और इससे सम्बन्धित कोई जानकारी प्राप्त नहीं की जा सकी थी। गहन जाँच–पड़ताल करने के पश्चात् यह ज्ञात हुआ कि इस प्रकार के कृत्य अवैध कम्प्यूटरों के द्वारा किया जाना सम्भव है। अतः साइबर अपराध का प्रारम्भ यहीं से माना जा सकता है। साइबर अपराधों द्वारा आर्थिक घोटाले/घपले किये जाते हैं तथा व्यक्तिगत गोपनीय जानकारियाँ अवैध तरीके से उजागर की जाती हैं। जासूसी करना, ठगी, मानहानि आदि अपराधिक साइबर गतिविधियाँ हैं। अनेक विद्वानों ने साइबर अपराधियों को सफेदपोश अपराधियों का ही एक रूप समझा है। परन्तु, कई साइबर अपराध सफेदपोश अपराधों में नहीं आते हैं। अतः साइबर अपराध को सफेदपोश अपराधों से भिन्न माना जाना ही उचित होगा।

साइबर अपराधी, रूढ़िगत अपराधी एवं सफेदपोश अपराधी बिल्कुल भिन्न प्रकार के अपराधी हैं। वर्तमान में ये अपराध तेजी से बढ़ रहे हैं। यह न्याय प्रशासन से जुड़े अभिकरणों के लिये चुनौती बने हुये हैं। ये अपराध अधिकतर साइबर कैफे से किये जाते हैं क्योंकि वहाँ बहुत लोग आते–जाते हैं, तो पकड़े जाने का डर कम होता है। साइबर अपराध तीन प्रकार के माने जाते हैं, जैसे मानवीय संवेदना के विरूद्ध अपराध, जिसमें स्टाकिंग तथा साइबर संत्रास (उत्पीड़न) (Cyber Harassment) प्रमुख है। इसके अतिरिक्त, धोखाधड़ी, जालसाजी, पायरेसी, आई.डी. की चोरी आदि शामिल है। तीसरा प्रकार, अपराधिक वारदातों में सरकारी तन्त्र के विरूद्ध अपराध जैसे– अन्तरित अनुसन्धान कार्यक्रमों, सेना या रक्षा संगठनों,

परमाणु उर्जा संस्थानों आदि के आंकड़ों की चोरी, राष्ट्रीय वेबसाइट की हैकिंग करके उसी वेबसाइट पर राष्ट्र विरोधी बयान जारी करना आदि।

साइबर अपराधी अत्यन्त कुशाग्र एवं तीक्ष्ण बुद्धि वाले होते हैं तथा वे कम्प्यूटर की गहन जानकारी रखने वाले उच्च शिक्षित व्यक्ति होते हैं। ये अपराधी व्यक्ति कम्प्यूटर के दुरूपयोग द्वारा अपनी अवैध एवं समाज विरोधी कार्यों को अंजाम देते हैं। हालांकि यह अब विश्व–व्यापी समस्या बन गया है तथा इस समस्या से निपटने के लिए राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कई प्रयास किये जा रहे हैं।

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि अपराध एवं अपराधिक कार्य करना एक बुराई है जो सम्पूर्ण समाज में विद्यमान है। अतः, एक अपराध विहिन समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती है, क्योंकि अपराधिक कृत्य एवं अपराधों का सम्बन्ध मानव आचरण से है। यद्यपि अपराधिक कृत्यों को नियन्त्रित करने हेतु कानूनी, सामाजिक एवं नैतिक प्रतिबन्धों से मानव के इस आचरण को नियन्त्रित करने का प्रयास किया जा रहा है, परन्तु, इस पर पूर्ण रूप से नियन्त्रण कर पाना सम्भव नहीं है। जैसे– भारत में ही पिछले कई वर्षों से भ्रष्टाचार, दहेज प्रताड़ना, नशाखोरी, कालाबाजारी आदि की रोकथाम हेतु कई अधिनियम पारित किये गये हैं, परन्तु इन अपराधों के ग्राफ में कोई गिरावट नहीं आई है। अतः, यह कहा जा सकता है कि समाज एवं सरकार इन अपराधों को गम्भीरता से नहीं ले रही है। अपराधों एवं अपराधिक कृत्यों के विरूद्ध जब तक समाज में जनचेतना जागृत न हो, तब तक केवल कानूनी प्रतिबन्धों को लागू कर ही इसे समाप्त कर सकते हैं। इसी कारण अब दण्ड नीति के अन्तर्गत अपराधिक न्याय प्रवर्तन से सम्बन्धित प्राधिकारी अपना ध्यान अपराध के स्थान पर अपराधी पर केन्द्रित कर रहे हैं और उपचारात्मक पद्धति से उन्हें समाप्त कर अपराधियों को सुधार कर एक सामान्य नागरिक के रूप में पुनर्स्थापित किया जा सके।

◆ ◆ ◆

अध्याय – 2

अपराधियों के लिये दण्ड एवं न्यायिक आदेश

समाज में शान्ति व्यवस्था, मानव जीवन एवं सम्पत्ति का संरक्षण बनाये रखने के लिये कानून अति–आवश्यक होता है, जो मानव जाति के आचरण को नियन्त्रित कर सके। चूँकि मानव का आचरण स्वाभाविक रूप से स्वार्थी होता है। जब तक विधि द्वारा निश्चित किये गये नियमों के उल्लंघन हेतु उचित दण्ड न हो, तब तक उसके लिये अपने आचरण को नियन्त्रित करना मुश्किल होता है। अतः अपराधों पर नियन्त्रण एवं निवारण के लिये उचित दण्ड न हो तब तक आचरण को नियन्त्रित एवं उसके निवारण के लिये उचित दण्ड का प्रावधान किया जाना आवश्यक है। दण्ड का प्रावधान प्राचीन समय में भी था। प्राचीनकाल में न्याय व्यवस्था में दण्ड को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। वर्तमान समय में अपराध एवं अपराधियों की स्थिति को देखकर उन पर नियन्त्रण करने हेतु एवं अपराधियों को पुनः सुधार कर सामान्य जीवन जीने के लिये प्रोत्साहित करने हेतु उपचारात्मक एवं सुधारात्मक पद्धति का प्रयोग किया जाने लगा है।

दण्ड को सामाजिक नियन्त्रण सुनिश्चित करने का विधि का तकनीकी साधन कहा जा सकता है। अपराध नियन्त्रण के निमित्त दण्ड का अपना महत्व है क्योंकि ये अपराध एवं दण्ड से सम्बन्धित धारणायें हैं। समय के अनुसार हुये विकास से समाज में अपराध एवं अपराधियों की संख्यायें बढ़ती जा रही हैं, इसीलिये समाज में शान्ति व्यवस्था बनाये रखने के लिये अपराध की प्रतिक्रिया के रूप में अपराधी को दण्ड दिया जाता है।

प्रायः सभी विधिशास्त्री दण्ड की अनिवार्यता को स्वीकार करते हैं, लेकिन दण्ड के निश्चित स्वरूप को लेकर इनमें मतभेद है। इतिहास के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रारम्भिक काल से लेकर मध्यकाल तक सभी समाजों में अपराध के लिये सिद्ध हुये अपराधी के लिये इतनी कठोर दण्ड व्यवस्था थी कि अपराधी दण्ड की भंयकरता की कल्पना मात्र से ही अपराध करने का दुस्साहस नहीं करता था। फिर भी, यह दण्ड व्यवस्था व्यावहारिक रूप से सफल नहीं हो सकी। इसमें अपराधी अपराध की सजा पूरी कर पुनः अपराध करने लगे। इससे दण्ड की प्रतिरोधक व्यर्थता स्पष्ट दिखाई देने लगी। वर्तमान समय में आये परिवर्तन से अपराधियों को दण्डित करने के साथ–साथ समाज में उनके पुनर्वास हेतु विशेष ध्यान दिया जाता है, जिससे वह पुनः समाज में सामान्य नागरिक की तरह जीवनयापन करें।

अपराधों को कम करने एवं अंकुश लगाने के लिये दण्ड एक सशक्त साधन है। इसके कारण अपराधियों में डर उत्पन्न करना होता है, जिससे वे अपराध करने से डरें या उन्हें बन्दीगृह में बन्दी बनाकर समाज से पृथक किया जाता है और उनमें सुधार लगाकर पुनः समाज में सामान्य जीवन जीने हेतु पुर्नस्थापित किये जाने का प्रयास किया जाता है।

प्रत्येक व्यक्ति व नागरिक का कर्तव्य है कि वह राज्य द्वारा निर्मित विधियों का पालन करे। किसी भी व्यक्ति द्वारा इन विधि के नियमों (कानूनों) का उल्लंघन करने पर दण्डित किया जाता है। प्रत्येक राष्ट्र अपने देश की दण्ड विधि में विभिन्न अपराधों का उल्लेख करता है और उसके लिये दण्डविधि में दण्ड के प्रावधान भी दिये रहते हैं। विधि के अति–उल्लंघन में किये गये कार्यो के निमित्त अपराधकर्ता को विधिक एवं न्यायिक प्रक्रिया के परिणामस्वरूप प्रदत्त पीड़ा अथवा कष्ट दण्ड है।

विभिन्न शास्त्रियों ने दण्ड की विभिन्न परिभाषायें दी हैं, उनमें से कुछ निम्न हैं:–

वास्टरमार्क ने कहा कि 'दण्ड अपराधी को समाज द्वारा या उस समाज के नाम पर, जिसका कि वह अस्थाई–स्थाई सदस्य है, सुनिश्चित रूप से लागू की जाने वाली यातना है।'[8]

डॉ. सेठना के अनुसार "दण्ड एक प्रकार की सामाजिक निंदा या प्रताड़ना है और इसमें पीड़ा या कष्ट सम्मिलित हो यह आवश्यक नहीं है।"[9]

वाल्टर रैक्लेस के शब्दों में, "दण्ड सामाजिक नियन्त्रण का एक ऐसा साधन है, जिसके द्वारा सदोष कृत्य, जो विधि एवं प्रथा के उल्लंघन के लिये प्रतितोष लेता है अर्थात् समाज में व्यक्तियों के आचरण को विनियमित करने एवं यथास्थिति बनाये रखने हेतु तथा विधि का पालन कराने हेतु दण्ड को एक साधन से रूप में प्रयोग करता है।''[10]

सदरलैण्ड ने दण्ड को परिभाषित करते हुये कहा है कि प्रथम दण्ड एक समूह द्वारा अपनी सम्मिलित क्षमता के स्वरूप में उस व्यक्ति को दिया जाता है, जो उसी समूह का सदस्य होता है तथा द्वितीय, दण्ड में कष्ट एवं पीड़ा सम्मिलित रहती है, जो दण्ड के प्रारूप द्वारा उत्पन्न होती है और उस पीड़ा में निहित किसी मूल्य द्वारा न्यायोचित ठहराई जाती है।

एनरिको फैरी ने दण्ड को एक विधि प्रतिरोध निरूपित किया है।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि समाज में व्यवस्थाओं को बनाये रखने में जो विधि के नियम निर्मित किये जाते हैं, उनके उल्लंघन को रोकने के लिये, भय के रूप में, जो शारीरिक, मानसिक या आर्थिक

कष्ट दिया जाता है, दण्ड कहलाता है।

प्राचीन समय में न्याय व्यवस्था में भी 'दण्ड' का स्थान महत्वपूर्ण था। दण्ड ऐसे कार्यों का प्रतिशोध है, जो किसी को आर्थिक या शारीरिक रूप से हानि पहुँचाते हैं। हिन्दू धर्म में धर्मदर्शन के आधार पर 'कर्म' व 'कर्मफल' को धर्म दर्शन के आधार पर महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसमें दण्ड को कर्मफल के रूप स्वीकार किया जाता था। यह दण्ड शुद्धि का तरीका था। मनु एवं कौटिल्य की कृतियों में अपराधियों को राजदण्ड से दण्डित किये जाने का उल्लेख मिलता है। मनुस्मृति के अनुसार, प्रजा के द्वारा राजधर्म का पालन आवश्यक रूप से किया जाये, इसके लिये दण्ड की व्यवस्था को अति–आवश्यक माना गया था। इसी दण्ड के भय से समाज के व्यक्ति धर्म एवं कर्म से विचलित नहीं होते थे। यह दण्ड ही प्रजा के जान–माल की रक्षा करता था, इसीलिये अपराधी को दण्डित करना शासक का 'परम धर्म' माना जाता था।

दण्ड किसी ऐसे व्यक्ति को शारीरिक एवं आर्थिक क्षति के रूप में समाज द्वारा प्रणित किया गया कष्ट या पीड़ा है, जिसे न्यायिक निर्णयों द्वारा विधि के प्रावधानों के अन्तर्गत अपराधिक कार्य करने के कारण अपराधी घोषित किया गया है।

दण्ड का वास्तविक उद्देश्य अपराधी को अपराध करने से रोकना तथा अन्य लोगों को भी अपराध करने से रोकना है। दण्ड अपराधी व्यक्ति के मस्तिष्क पर यह प्रभाव डालता है कि अच्छे कार्यो को पुरस्कृत किया जाता है व बुरे कार्यो को दण्डित किया जाता है।

इग्लैण्ड के **जर्मी बेंथम (Jeremy Bentham)** जिनके नाम से उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों को इंग्लैण्ड में **बेंथम युग** के नाम से जाना जाता है, उन्होनें अपनी उपयोगिता वाद के आधार पर दण्ड नीति को विकसित किया जो मूलरूप से सुख व दुख की संकल्पना पर केन्द्रित थी। इनके अनुसार, कोई भी व्यक्ति, किसी की अपराधिक कृत्य को शारीरिक, आर्थिक या भौतिक सुख की लालसा के कारण करता है और दण्ड उसके किये गये इन कृत्यों से होने वाले दुख का प्रतीक है।

बेन्थम के अनुसार, दण्ड तब तक ही प्रभावकारी होगा जब तक अपराधी को दण्ड के रूप में दी गई पीड़ा या कष्ट उसके द्वारा किये गये कृत्य से प्राप्त सुख से अधिक पीड़ादायक हो अथवा यदि दिये गये दण्ड के कारण होने वाला दुःख या पीड़ा अपराधिक कृत्य से प्राप्त होने वाले सुख की अपेक्षा कम कष्टदायक हो, तो उस स्थिति में अपराधी को अपराधिक कृत्य के लिये दिया गया दण्ड निष्प्रभावी होगा और वे पुनः बिना डर से अपराध करेंगे।

होम्स के अनुसार, अपराधी को दण्ड देने का उद्देश्य अपराधों को रोकना

है। वर्तमान में, दण्ड का उद्देश्य न केवल अपराधों को रोकना है बल्कि अपराधियों को सुधारना भी है।

इस प्रकार दण्ड का सामान्य उद्देश्य अपराधियों को सुधारना, अपराधिक प्रवृत्ति की रोकथाम कर समाज में सुख–शान्ति की स्थापना करना, पीड़ित व्यक्ति को संतोष देने के लिये व समाज विरोध तत्वों में भय उत्पन्न करने के लिये समझा जा सकता है।

प्राचीन समय से ही दण्ड का प्रयोग अपराधों एवं अपराधिक कृत्यों के निवारण के लिये किया जाता है। समय एवं स्थानों की विभिन्नताओं के कारण इनमें विभिन्नतायें रही हैं। प्राचीन काल में दण्ड विधान मुख्यतः प्रतिरोधात्मक एवं प्रतिशोधात्मक सिद्धान्तों पर आधारित था। वर्तमान समय में इन सिद्धान्तों का दण्डनीति में कोई विशेष महत्व नहीं रह गया है।

मनुस्मृति VII 8 में कहा गया है कि––

"दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिर क्षति।
दण्ड सुप्तेषु जागर्ति दण्ड धर्म विर्दुवुधा।।"

अर्थात् जब व्यक्ति सोते रहे तो, दण्ड जगाना है, इसलिये बुद्धिमान लोगों ने दण्ड को धर्म का ही अंग माना है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि विधि के अन्तर्गत दण्ड के अधिरोपण से व्यक्त की गई स्वतन्त्रता या निजता या अन्य सुविधाओं से वंचित रखना, जो कि अन्यथा प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार के रूप में प्राप्त होते हैं या उस पर विशेष अधिकार अधिरोपित किये जाते हैं, जिसमें उसे किसी ऐसे अपराधिक उल्लंघन का दोषी पाया गया हो, जिसमें किसी निर्दोष व्यक्ति या व्यक्तियों को क्षति हुई हो। अतः, दण्ड को समाज में अधिकारिता प्राप्त राजनीतिक प्राधिकारी की ऐसी शक्ति कहा जा सकता है जिससे वह अपराधियों को नियन्त्रण में रख सके।

दण्ड विधि के अन्तर्गत सामाजिक नियन्त्रण सुनिश्चित करने का तकनीकी साधन है। जहाँ वह सामाजिक न्याय का संरक्षण करने में सक्षम रहता है, वह न्यायोचित होगा। तथापि, सामाजिक सुरक्षा के साधन के रूप में दण्ड के प्रयोग में कतिपय बाध्यतायें हैं, जिनका उल्लेख निम्न हैः–

1) दण्ड इतना कठोर या यातनात्मक न हो कि वह बर्बरतापूर्ण तथा अमानवीय हो जाये।
2) दण्ड विधि द्वारा स्थापित विधि के अनुसार न होकर विधि की उचित प्रक्रिया के अनुकूल हो।

3) दण्ड अनुपातता के सिद्धान्त के अनुसार हो; तथा

4) जहाँ व्यक्ति में दोषी होने के बारे में सन्देह हो उसे निर्दोष माना जाना चाहिये।[11]

प्राचीन समय **में अपराधियों को दण्ड दिये जाने के प्रकारः–**

पूर्व में सभी राष्ट्रों में अपराधी को उसके अपराधिक कृत्य के लिये दिये जाने वाले दण्ड यातनात्मक, क्रूरतापूर्ण एवं निर्मम हुआ करते थे। लगभग अठारहवीं शताब्दी के अन्त में मानवता के आधार पर इन्हें संशोधित करने का प्रयास किया गया और कठोरता को कम किया गया। उस समय के प्रचलित दण्ड थे– अंग–भंग या अंग विच्छेद, कोड़े मारना, दागना, सार्वजनिक स्थान पर फाँसी देना, सभी अपराधियों को एक साथ मोटी लोहे की जंजीरो से बाँधना, साधारण या सश्रम कारावास, सम्पत्ति जप्त करना, आर्थिक दण्ड, आदि।

जिस तरह अपराध की धारणा एवं अपराधी के प्रति व्यवहार में सामाजिक चेतना के साथ–साथ परिवर्तन हुआ, उसी के साथ–साथ अपराधों के लिये दिये जाने वाले दण्ड के स्वरूपों में भी परिवर्तन हो रहा है। प्राचीन अपराधों में किये गए अपराधों के लिए प्रमुख दण्ड निम्न थे–

1) **अपराधी को कोड़े मारना या पीटनाः** भारत में अपराधी को कोड़े मारने के दण्ड को हिपिंग एक्ट, 1864 के अन्तर्गत मान्यता दी गई थी। प्राचीन दण्डों के प्रकार में शारीरिक दण्डों में अपराधी को कोड़े मारकर पीटने का दण्ड सबसे अधिक प्रचलित था। वर्ष 1955 में इस दण्ड को भारतीय दण्ड विधि से पूर्णतः समाप्त कर दिया गया। वर्तमान समय में इसे केवल मध्यपूर्व देशों के अतिरिक्त सभी विकासशील देशों की दण्ड व्यवस्थाओ में समाप्त कर दिया गया है।

   अपराधी को इस प्रकार कोड़े मारकर पीटने की सजा प्रभावी नहीं थी। इस प्रकार के दण्डों में दण्ड भुगतान के पश्चात् अपराधी व्यक्ति पुनः अपराध करते थे। ये दण्ड सामान्यतः छेड़छाड़, नशाखोरी, उठाई–गिरी आदि छोटे–छोटे अपराधों के लिये दी जाती थी, लेकिन गम्भीर अपराधों में यह प्रभावहीन रही।

2) **अपराधी को अपराधिक कृत्य के लिये उसके अंग विच्छेद करना** – हिन्दू दण्ड विधि में यह शारीरिक दण्डों में से एक प्रचलित दण्ड था। जैसे– चोरी के अपराध करने वाले व्यक्ति पर अपराध सिद्ध होने पर व उसके एक या दोनों हाथ काट देना तथा लैंगिक सम्बन्धी अपराध करने पर अपराधी के गुप्तांग काट दिये जाते थे। यह दण्ड यूरोपियन देशों में काफी प्रचलित रहा था। इस दण्ड से प्रतिशोध एवं प्रतिरोध दोनों ही

उद्देश्यपूर्ण हो जाते थे। इस दण्ड से जनता में क्रूरता की भावना पनपने लगी, इसीलिये वर्तमान में इस दण्ड को पूर्णतः समाप्त किया गया।

3) **दोषसिद्ध व्यक्ति को दागना**:— मध्यकाल के समय में अपराधिक कृत्य करने वाले व्यक्ति को उसके किसी दिखाई देने वाले शरीर के भाग को गर्म सलाखों से दागने की प्रथा चली। यह उस व्यक्ति के अपराधी होने का चिन्ह था, जिसे देखकर लोगों को ज्ञान हो जाता था कि वह अपराधी है और उससे दूरी बनाये रखना है। इस दण्ड में शरीर पर या माथे पर गर्म छड़ से दागने की प्रथा यूरोपियन देशों में प्रचलित थी। रोमन दण्ड विधि में अधिकतर चोरी के अपराधों में माथे पर दागा जाता था। अमेरिका की दण्ड प्रणाली में चोरी करने वाले अपराधी के माथे पर 'T' का दाग चिन्हित किया जाता था और पुनावृत्ति करने पर 'R' का चिन्ह दागा जाता था। इग्लैण्ड दण्ड प्रणाली में वर्ष 1829 में मानवीय आधार पर इस दण्ड को हटा दिया गया। भारत में यह दागने के दण्ड की प्रथा को मुस्लिम दण्ड विधि में प्रयोग किया जाता था, जिसे बाद में पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया गया।

4) **अपराधी के लिये दण्ड कटघरा** — उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में इस दण्ड का प्रसार हुआ था। यह दण्ड अत्यन्त क्रूर एवं बर्बरतापूर्ण था, जो अपराधी के लिये दर्दनाक व असहनीय यातना वाला था और देखने वालों के लिये भी डरावना था। इस दण्ड में अपराधी को एक लोहे की चौखट से जकड़कर हाथ—पैर इस प्रकार बाँध दिये जाते थे कि वह शरीर को हिला भी न सके और फिर उसे कोड़ों से या पत्थरों से मारा जाता था। भारत में मुगल शासनकाल में ज़िन्दा व्यक्ति को दीवार में चुनवा दिया जाने का दण्ड इसी का परिवर्तित रूप था। वर्तमान में, इस प्रथा का दण्ड विधि में कोई स्थान नहीं है।

5) **अमर्समेंट (सदय दण्ड)**:— अमर्समेंट अर्थात् एक ऐसी इंग्लिश दाण्डिक व्यवस्था जिसमें छोटे—मोटे अपराधों के लिये अपराधी पर वित्तीय शास्ति अधिरोपित की जाती थी। यह अर्थदण्ड के ही स्वरूप का दण्ड था जो मध्यकाल में प्रचलित रहा। यह दण्ड अर्थदण्ड से थोड़ा—सा ही भिन्न है। अर्थदण्ड में दण्ड के अनुसार एक निश्चित राशि का ही दण्ड होता है, जबकि अमर्समेंट (सदय दण्ड) में पियर्स अर्थात् सदय दण्ड न्यायालय के विवेक पर निर्भर होता था, जो सामान्यतः छोटे—मोटे अपराधों में अपराधी को दी जाती थी।

6) **अर्थदण्ड** — अर्थ दण्ड को विश्व के अधिकतर देशों में उचित माना गया है। यह दण्ड अधिकांशतः राजस्व सम्बन्धी उल्लंघनों के अपराधी एवं

यातायात के नियमों के उल्लंघनों के अपराधियों के लिये प्रयोग किया जाता है। इसमें कई बार अपकारित व्यक्ति को अपराधी से क्षतिपूर्ति दिलवाई जाती है। वो भी अर्थदण्ड का ही एक प्रकार है। भारत में इस सम्बन्ध में दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत विधिक प्रावधान है।

7) **सामाजिक बहिष्कार** – प्राचीनकाल से मध्ययुग में जब किसी व्यक्ति के द्वारा कोई अपराधिक या अनैतिक कृत्य किये जाने पर इसे समाज से, जाति से बाहर किये जाने की प्रथा थी। वर्तमान में भी भारत के कुछ सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी यह प्रथा प्रचलित है। इसे हुक्का–पानी बन्द करना भी कहा जाता था। कभी–कभी इसका प्रायश्चित गौ दान या बिरादरी को भोजन कराकर किया जाता था। यह प्रथा प्राचीन समय में भारत के अतिरिक्त प्राचीन ग्रीक सिटी में भी थी। यह दण्ड सामाजिक शास्ति के रूप में दिया जाता था। दण्डशास्त्र में इसकी कोई मान्यता नहीं है।

इसके अतिरिक्त, शास्ति के संपर्श्विक दण्ड, सामाजिक बहिष्कार, देश निकाला, एकान्त परिरोध प्रमुख थे। जिस तरह अपराध की धारणा एवं अपराधी के प्रति व्यवहार में सामाजिक चेतना में परिवर्तन हुआ, उसी के साथ–साथ अपराधों के स्वरूप में भी परिवर्तन होता गया।

वर्तमान में भारत में दिये जाने वाले दण्ड के प्रकार

वर्तमान भारतीय दण्ड व्यवस्था के अन्तर्गत दण्ड के रूप में निम्नलिखित दण्डों की व्यवस्था है–

1) मृत्युदण्ड;

2) आजीवन कारावास;

3) कारावास–

   क) कठोर परिश्रम के साथ कारावास;

   ख) सादा कारावास;

4) सम्पत्ति का समपहरण (जब्त करना);

5) अर्थदण्ड।

सामान्य तौर पर दण्ड की मात्रा एवं उसका निर्धारण अपराध की गम्भीरता एवं इस अपराध के कारण समाज को होने वाले संकट की गम्भीरता पर निर्भर करता है। अपराधी द्वारा किये गए अपराधिक कृत्य की प्रवृत्ति के अनुसार अपराधी के दण्ड को कम या अधिक दिया जा सकता है। अपराधिक कृत्य करने वाला

अपराधी व्यक्ति उसके द्वारा किये गये अपराध के फलस्वरूप होने वाले नफे एवं सुख का मूल दण्ड के रूप में चुकाने को तैयार रहता है और उसे दिया जाने वाला दण्ड का दुःख उसे उस अपराधिक कृत्यों से प्राप्त होने वाले सुख से अत्यधिक कष्टदायक या महंगा होना चाहिये, तब वह अपराध नही करेगा।

(1) **मृत्युदण्ड** – दण्ड विधि के विश्लेषणात्मक अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि अधिकतर मृत्युदण्ड का दण्ड हत्या या बलात्कार जैसे गम्भीर अपराधों के लिये ही दिया जाता है, जो उचित भी है। इसके कारण इस प्रकार के अपराधों से समाज को गम्भीर संकटों का सामना करना पड़ता है। विभिन्न प्रकार के अपराधों में से मृत्युदण्ड का अपराध विवादास्पद रहा है। इस दण्ड के विषय में अपराधशास्त्रियों के बीच सदैव से मतभेद रहा है। फिर भी, कुछ न्यायायिक निर्णयों द्वारा इस विवाद को कम किये जाने में सहायता मिली है। फिर भी गम्भीर अपराधों के लिये अपराधियों के लिये इस दण्ड को नकारा नहीं जा सकता है।

दण्ड संहिता की धारा 303 के अन्तर्गत ऐसे व्यक्तियों के लिये केवल मृत्युदण्ड का ही प्रावधान किया गया है, जो आजीवन कारावास के दण्डादेश के आधीन होते हुये हत्या करते हैं; जो न्यायालय, भारत सरकार के विरूद्ध युद्ध करने (धारा 121); विद्रोह का दुष्प्रेरण, यदि परिणामस्वरूप युद्ध किया जाये (धारा 131); सैनिक विद्रोह करने पर (धारा 132); मृत्यु से दण्डनीय अपराधों के लिये दोषसिद्धि कराने के आशय से मिथ्या साक्ष्य देना या मिथ्या साक्ष्य का निर्माण करना और उसके परिणामस्वरूप किसी निर्दोष व्यक्ति को दोषसिद्धि प्रदान कर फाँसी दे दी जाये (धारा 194); हत्या (धारा 302); शिशु या उन्मत्त व्यक्ति को आत्महत्या के लिये दुष्प्रेरण (धारा 305); आजीवन कारावसित व्यक्ति द्वारा हत्या का प्रयास (धारा 307); हत्या सहित डकैती (धारा 396); इन अपराधों के लिये भी अपराधी को मृत्युदण्ड दे सकती है। इनसे सम्बन्धित मुख्य वाद निम्न है–

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 303 एकमात्र ऐसी धारा है जिसमें अपराधी को मृत्युदण्ड ही दिया जाना अनिवार्य था तथा इसके विकल्प में आजीवन कारावास दिये जाने का प्रावधान नहीं था, परन्तु वर्ष 1984 में **मिथ्थू बनाम पंजाब राज्य** (ए.आई.आर. 1983 सु.को. 473) के निर्णय के परिणामस्वरूप भारतीय दण्ड संहिता की **धारा 303** स्वयंमेव समाप्त हो गई। इस वाद में भारतीय दण्ड संहिता की धारा 303 को चुनौती दी गई थी कि इस धारा के उपबन्ध संविधान के अनुच्छेद 14 एवं 21 के विसंगत थे। उच्चतम न्यायालय की पाँच न्यायाधीशों की खण्डपीठ (जिसकी अध्यक्षता तत्कालीन **मुख्य न्यायाधीश वी. आई. चन्द्रचूड़** ने की थी) ने, इस वाद में विनिश्चित किया कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 303

असंवैधानिक है, क्योंकि इसके अन्तर्गत मृत्युदण्ड दिया जाना अनिवार्य रखा गया है, जबकि अन्य अपराधों के लिये आजीवन कारावास के विकल्प का प्रावधान था। अतः, इस निर्णय के बाद सभी प्रकार की हत्यायें, चाहे वे आजीवन कारावास भोग रहे, अभियुक्त द्वारा ही क्यों न की गई हो, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अर्न्तगत ही दण्डनीय है। उच्चतम न्यायालय ने इस वाद में अभिकथन किया कि भारतीय दण्ड संहिता में कुल 51 धारायें ऐसी हैं, जिनके अन्तर्गत किये गये अपराध आजीवन कारावास से दण्डनीय हैं। इन धाराओं एवं धारा 302 में मुख्य अन्तर यह है कि अन्य धाराओं में अपराध के लिये अधिकतम दण्ड आजीवन कारावास का है, जबकि धारा 302 के अपराध के लिये यह न्यूनतम दण्ड है।[12]

गुरूस्वामी बनाम तमिलनाडु (ए.आई.आर. 1979 सु.को. 1177) के वाद में अभियुक्त ने पारिवारिक विवाद के कारण हत्या कर दी। उसे उच्च न्यायालय ने मृत्युदण्ड दिया था परन्तु उच्चतम न्यायालय ने अभियुक्त को दिये गये दण्ड को आजीवन कारावास में बदलते हुये कहा कि अभियुक्त के सिर पर मृत्युदण्ड का भय छः वर्षों तक मण्डराते रहने के कारण उसके दण्ड को कम किया जाना न्यायोचित था।[13]

दलबीर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (ए.आई.आर. 1979 सु.को. 1384) वाद में बहुमत का निर्णय चन्द्रचूड़, सरकारिया, गुप्ता तथा उटावला ने दिया जबकि न्यायामूर्ति पी.एन. भगवती ने विसम्मत निर्णय दिया था। इस वाद में अभियुक्त को उसके द्वारा की गई चार हत्याओं के दण्ड लिये दिये गये मृत्युदण्ड के दण्ड को उच्चतम न्यायालय द्वारा घटाकर आजीवन कारावास में बदल दिया गया था क्योंकि ये हत्यायें अभियुक्त को खेत में सिंचाई के लिये पानी की बारी को लेकर हुये विवाद में क्रोध दिलाकर उत्तेजित कराने के कारण हुई थी।

वर्तमान समय में विश्व के लगभग 141 राष्ट्रों ने अपने राष्ट्र की दण्ड विधि में मृत्युदण्ड के दण्ड को वैधानिक मान्यता दी है। हांलाकि मृत्युदण्ड को कार्यान्वित करने के तरीकों को सुधारने का प्रयास हो रहा है, जिससे कि दण्डित व्यक्ति को कम से कम शारीरिक यातनायें मिले। इन्टरनेशनल एमनेस्टी संगठन ने अन्तराष्ट्रीय स्तर पर मृत्युदण्ड को पूर्ण रूप से समाप्त करने का प्रयास कर रही है, जिसमें उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हो पाई है। अधिकतर देशों में यह धारणा है कि यदि मृत्युदण्ड को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया जायेगा, तो यह राष्ट्र के हित में नहीं होगा। इसे समाप्त करने से देश में बलात्कार, हत्या जैसे जघन्य अपराधों में वृद्धि होना स्वाभाविक है। सामाजिक न्याय एवं सुरक्षा की दृष्टि से मृत्युदण्ड को दण्डनीति से हटाना ठीक नहीं है।

(2) **आजीवन कारावासः**— भारत में गम्भीर अपराधों के लिये दिये जाने वाले दण्डों में मृत्युदण्ड के पश्चात् दिया जाने वाला गम्भीर दण्ड आजीवन कारावास है। इसे दण्ड की **भारतीय दण्ड संहिता की धारा 53** के अधीन वैधानिक मान्यता दी गई है। इस सम्बन्ध में **नायब सिंह बनाम राज्य (ए.आई.आर. 1983 सु. को. 855)** के वाद उल्लेखनीय है, जो कठोर कारावास से सम्बन्धित है। इस वाद में यह निर्धारित किया गया है कि किसी भी अभियुक्त को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 418 के अधीन दण्ड वारण्ट जारी करके ही दिया जा सकता है, तथा इसका निष्पादन अपराधी व्यक्ति को बन्दीगृह में रखकर ही किया जाता है। यद्यपि, दण्ड संहिता, 1983 के अधीन भारतीय दण्ड संहिता की संशोधित धारा 356 के अधीन आजीवन कारावास साधारण या कठोर कारावास के किसी स्वरूप में किया जाता है। भारतीय दण्ड संहिता की कुछ 51 धाराओं के अन्तर्गत अपराध करने के लिये अपराध करने वाले का अपराधी सिद्ध होने पर उसे आजीवन कारावास के दण्ड से दण्डित किया जाता है।

इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय वाद है **गोपाल विनायक गोडसे बनाम महाराष्ट्र राज्य (ए.आई.आर. 1962 सु.को. 605)** का। इस वाद में दिये निर्णय के अनुसार भारतीय दण्ड संहिता धारा 57 में उपबन्धित है कि कारावास की अवधि में भिन्नों (fractions) की गणना करने में आजीवन कारावास के 20 वर्ष के बराबर गिना जायेगा तथा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 55 को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 433(ख) के अधीन कार्यपालिका प्राधिकारी आजीवन कारावास के दण्ड को चौदह वर्षो से अनाधिक अवधि के लिये कठोर कारावास में परिवर्तित कर सकता है, जिसमें कारावधि के दौरान अर्जित की गई सजा में छूट की अवधि भी शामिल है।

स्वामी श्रद्धानन्द उर्फ मुरली मनोहर मिश्रा बनाम कर्नाटक राज्य (ए.आई.आर. 2008 सु.को. 3040) के वाद में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि जो दण्ड आजीवन कारावास का दण्ड भोग रहे हैं, उन बन्दियों को कार्यपालिका आदेश द्वारा उपशमन या छूट का कोई विधिक अधिकार नहीं होता है तथा न्यायालय को यह शक्ति प्राप्त है कि वह आजीवन कारावास से दण्डनीय अपराध के लिये अभियुक्त को शेष जीवनपर्यन्त, अर्थात् जब तक वह जीवित रहता है, के कारावास से दण्डित कर सकता है। न्यायालय ने आगे कहा कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 57 किसी भी तरह से आजीवन कारावास के दण्ड को 20 वर्ष तक सीमित नहीं कर सकती है। यह धारा केवल दण्ड की अवधि के अंशों की गणना के प्रायोजन से उपबन्धित की गई है। उच्चतम न्यायालय

द्वारा यह भी कहा गया कि **दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973, कारागार अधिनियम** तथा इसके अधीन बनाये गये नियमों के अन्तर्गत दण्ड का उपशमन या छूट से सम्बन्धित प्रावधान हैं, लेकिन वे केवल निश्चित अवधि के लिये कारावासित बन्दियों के प्रति ही लागू होते हैं, जिसमें आजीवन कारावास का दण्ड शामिल नहीं है, क्योंकि यह कारावासित व्यक्ति के शेष बचे जीवन के लिये लागू रहता है। अतः उच्चतम न्यायालय ने इस बात के प्रति गम्भीर चिंता प्रकट की कि कार्यपालिक प्राधिकारियों द्वारा आजीवन कारावास से दण्डित बन्दियों को यथावत तरीके से 14 वर्ष की कारावधि पूरी कर लेने पर छोड़ दिया जाता है, जिसका कोई वैधानिक आधार नहीं होता है। न्यायालय के अनुसार, दण्ड के उपशमन या लघुकरण के नियमानुसार ही कैदियों के दण्ड में छूट दी जा सकती है, परन्तु यह नियम विरलतम वादों में दण्डित अपराधी के प्रति लागू नहीं होते हैं और उसे शेष जीवनपर्यन्त बन्दीगृह में ही रखा जाना चाहिये।[14]

भागीरथ बनाम राकेश कौशिक बनाम दिल्ली राज्य, (ए.आई.आर. 1985 सु.को. 1050) के वाद में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिमत दिया कि आजीवन कारावास के दण्ड से दण्डित अपराधी का दण्ड एक निश्चित अवधि के लिये होता है। **धारा 433(अ)** के अन्तर्गत अपराधी व्यक्ति बन्दीगृह में रहने की अवधि को आजीवन कारावास में सम्मिलित कराने का हकदार है। अर्थात्, वाद के दौरान बन्दीगृह में रहने की अवधि, कुल दी गई आजीवन कारावास की अवधि (14 वर्ष) में से शामिल कराने का हकदार है। बस केवल यह दण्ड उस अपराधी को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 432 या धारा 433 में नहीं दी गई हो।

(3) **कारावासः**— कारावास या बन्दीगृह, एक ऐसा न्यायिक दण्ड है, जिसमें अपराधिक कृत्य करने वाले व्यक्ति या अपराधी को कारागार में रखा जाता है। किसी भी अपराधी को रोकने या दूर रखने के लिये कारागार या बन्दीगृह की विशेष भूमिका होती है। कारागार अपराधियों को समाज से दूर रखने का सामाजिक सुरक्षा का एक सर्वोत्तम तरीका है। प्राचीन समय से अब तक कारागारों की स्थिति में उल्लेखनीय परिवर्तन हुये हैं जिसमें अब अपराधियों को सुधारने के लिये खुले शिविर एवं होस्टल बन्दीगृह की व्यवस्थायें की गई हैं। अपराधियों को बन्दीगृह में उसके द्वारा किये गये अपराध के लिये दण्ड के रूप में रखा जाता है। इस दण्ड का प्रभाव अपराधी रिहा होने पर महसूस करता है। उस समय समाज में लोगों द्वारा भी उन्हें घृणा की दृष्टि से देखा जाता है और सभी उससे दूरी बनाने का प्रयास करते हैं, जिससे वह पुनः समाज में स्वयं को सफलतापूर्वक पुर्नस्थापित नहीं कर पाता है। इसके बाद भी कारावास का दण्ड विश्व

के लगभग सभी देशों में प्रचलित है।

भारत में **भारतीय दण्ड संहिता** की **धारा 53** के अनुसार अपराधियों के लिये दो प्रकार के कारावास की व्यवस्था की गई है–

1. **कठोर कारावासः**– कठोर परिश्रम के साथ कारावास अर्थात् कठोर कारावास की स्थिति में बन्दी को अनाज पीसने, जमीन या पहाड़ी खोदने, लकड़ी चीरने इत्यादि कार्य करने पड़ते हैं।
2. **सादा कारावासः**– सादे कारावास की स्थिति में कैदी को कारागार में परिरूद्ध करके ही रखा जाता है और उससे किसी प्रकार का कार्य नहीं लिया जाता है।

भारतीय दण्ड संहिता की **धारायें 194 व 449** में कठोर कारावास के दण्ड का प्रावधान है एवं धारायें 168, 169, 172 से 176, 178 से 180, 187, 188, 223, 225(क), 228, 291, 341, 500 से 502, 509 एवं 510 केवल सादे कारावास के दण्ड का प्रावधान प्रस्तुत करती हैं।

एकान्त कारावास भी कारावास का ही एक प्रकार है। मध्यकाल में गम्भीर अपराध करने वाले अपराधी को एकान्त कोठरियों में उनसे बिना कोई काम लिये रखा जाता था। इसका उद्देश्य था कि ऐसे गम्भीर अपराधी को समाज से दूर रखकर उसके द्वारा किये गये गम्भीर अपराध के लिये पश्चाताप करने का अवसर देना; परन्तु मनुष्य के लिये स्वाभाविक रूप से एकान्त में रहना किसी यातना से कम नहीं था। इन एकान्त कारावास से दण्डित अधिकतर अपराधी या तो दण्ड की अवधि पूर्ण होने से पूर्व ही मर जाते थे या मानसिक दृष्टि से पागल हो जाते थे तथा इनमें कोई दण्ड की अवधि पूरी कर बाहर आता भी था तो प्रतिशोध की भावना से समाज के लिये और अधिक खतरनाक हो जाता था।

एकान्त कारावास, भारत की न्याय प्रणाली के दण्ड में प्रमुख रहा है क्योंकि यह माना जाता था कि इस दण्ड में अपराधी को स्वयं के द्वारा किये गये दुष्कर्म के लिये पश्चाताप करने का समुचित अवसर मिलता है, जिससे वे अपनी आत्मशुद्धि कर सके और समाज विरोधी कृत्यों को हमेशा के लिये त्याग दे।

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 73 व धारा 74 में कारावासियो को धारा 73 एवं धारा 74 में एकान्त परिरोध के दण्ड से दण्डित किये जाने के सम्बन्ध में प्रावधान है। **भारतीय दण्ड संहिता की धारा 73** के अनुसार, किसी भी व्यक्ति को किसी भी ऐसे अपराध के लिये दोषी ठहराया जा सकता है, जिसके लिये दण्ड संहिता के अधीन कठोर कारावास या

कठोर दण्डित करने की शक्ति होती है। न्यायालय अपने दण्डादेश द्वारा यह आदेश दे सकता है कि अपराधी को उस कारावास के, जिसके लिए वह दण्डित किया जाना है, के किसी भाग या भागों के लिये, जो कुल मिलाकर 3 माह से अधीन हो, एकान्त परिरोध में रखा जा सकता है। अर्थात्

1) यदि कारावास की अवधि 6 माह है तो एक माह से अनाधिक अवधि के लिये।

2) यदि कारावास की अवधि 6 माह से अधिक है तो 2 माह से अनाधिक अवधि के लिये।

3) यदि कारावास की अवधि 1 वर्ष से अधिक हो तो 3 माह की अनाधिक अवधि के लिये।

धारा 74 के अनुसार, एकान्त परिरोध को अवधि 1 बार में 14 से अधिक नहीं होगी। यदि कारावास की अवधि 3 माह से अधिक हो तो एकान्त परिरोध 7 दिन से अधिक नहीं होगा। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय वाद है, **किशोर सिंह बनाम रविन्द्रदेव बनाम राजस्थान राज्य (ए.आई. आर. 1981 सु. को. 625)** में उच्चतम न्यायालय में एकान्त परिरोध के दण्डादेश हेतु मापदण्ड निर्धारित करते हुये अभिकथन किया कि इसका प्रयोग कुछ एक अपराधी के केवल अपवाद के रूप में ही किया जाना चाहिये। कुछ विद्वानों के अनुसार, एकान्त कारावास के दण्ड को पूर्णतः समाप्त किया जाना चाहिये क्योंकि राष्ट्र संघ मानव अधिकार के घोषणा–पत्र में इस दण्ड को अमानवीय व यातनात्मक प्रकृति का माना है।

(4) सम्पत्ति की सम्पहरण (जब्त करना) :– सम्पत्ति का सम्पहरण का दण्ड प्राचीन है। इग्लैण्ड में सम्पत्ति के सम्पहरण का दण्ड मुख्य रूप से राजद्रोह के अपराध पर दिया जाता था। वर्तमान में भी कई राष्ट्रों पर इस दण्ड को स्वीकार किया है। भारत में भी यह दण्ड प्रचलित है। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 126 एवं 169 के अधीन कारित दो ऐसे अपराध हैं, जिनमें कारावास के दण्ड के साथ या रहित सम्पत्ति के सम्पहरण का दण्ड भी दिया जा सकता है।

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 126 के अनुसार, जो कोई व्यक्ति भारत सरकार से मित्रता या शान्ति का सम्बन्ध रखने वाली किसी शक्ति के राज्यक्षेत्र में लूटपाट करेगा या लूटपाट करने की तैयार करेगा, तो उसे कठोर या साधारण कारावास और जुर्माने से भी दण्डित किया जा सकेगा तथा इस प्रकार की लूटपाट करने के लिये उपयोग में लाए जाने के लिये

आशायित या ऐसी लूटपाट से अर्जित सम्पत्ति के सम्पहरण (जब्ती) से भी दण्डनीय होगा।

इसी प्रकार, **धारा 169** के अनुसार, जब कोई लोक सेवक विधि विरूद्ध तरीके से किसी सम्पत्ति का क्रय करता है या बोली लगाता है और यदि वह लोकसेवक ऐसा न करने के लिये आबद्ध हो, तो उसे दो वर्ष तक का कारावास या जुर्माने से या दोनों से दण्डित किया जायेगा। उसके द्वारा सम्पत्ति क्रय कर ली गई की दशा में उस सम्पत्ति को जब्त कर दिया जायेगा।

(5) **अर्थदण्ड** – भारत देश में कुछ अपराधियों के लिये अर्थदण्ड या जुर्माने से दण्डित करने का भी प्रावधान किया गया है। भारतीय दण्ड संहिता में अर्थदण्ड की चार श्रेणियाँ बनायी जा सकती हैं, जिन रूपों में अर्थदण्ड अधिरोपित किया जा सकता है। प्रथम, जिनमें अर्थदण्ड केवल दण्ड है और जिसकी निश्चित राशि है अर्थात् अपराध के निपटारे के तौर पर। **द्वितीय,** वे अपराध जिनमें अर्थदण्ड कारावास के विकल्प के रूप में उपबन्धित किया गया है तथा जिसकी राशि सीमित है। **तृतीय,** वे अपराध हैं, जिनमें अर्थदण्ड कारावास सहित अतिरिक्त एवं आज्ञापक रूप में उपबन्धित किया गया है, लेकिन राशि सीमित होती है। **चतुर्थ,** वे अपराध हैं, जिनमें अर्थदण्ड को आज्ञापक दण्ड के रूप में उपबन्धित करने के साथ–साथ अर्थदण्ड की राशि का निर्धारण न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है।

हम जानते हैं कि कारावास के विकल्प में अर्थदण्ड केवल ऐसे अल्पकालिक कारावास से दण्डनीय मामलों में आरोपित किया जाता है, जो सामान्यतः दो या तीन वर्ष से अधिक कारावास से दण्डनीय न हो। भारतीय दण्ड संहिता में धारा 137 एवं 154 में अर्थदण्ड को एकमात्र दण्ड के रूप में उपबन्धित किया है। वहीं, धारा 153 एवं 156 में यह एकमात्र दण्ड के रूप में उपबन्धित तो है, परन्तु इसमें राशि असीमित कर दी गई है। इस प्रकार के अर्थदण्ड देते समय न्यायाधीश को अपराधी व्यक्ति की आर्थिक स्थिति को आवश्यक रूप से ध्यान देना होता है, क्योंकि अपराधी की आर्थिक स्थिति से अधिक दण्ड आरोपित करने पर दण्ड निष्प्रभावी होगा और अपराधी व्यक्ति के द्वारा अर्थ दण्ड की राशि का भुगतान नहीं कर पाने पर उसके पास कारावास का दण्ड भुगतने के अलावा कोई विकल्प नहीं रहता है।

भारत में दण्ड व्यवस्था अर्थदण्ड का निर्धारण **दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 427** में उपबन्धित है। दण्ड प्रक्रिया संहिता की **धारा**

357 के अनुसार, यदि न्यायालय उचित समझे तो अर्थदण्ड में प्राप्त सम्पूर्ण राशि पीड़ित पक्ष या अपकारित व्यक्ति को हर्जाने के रूप में दिलाई जा सके। इस अर्थदण्ड के सम्बन्ध में **आदमजी उमर दलाल बनाम राज्य (ए.आई.आर. 1952 सु.को 14)** का वाद महत्वपूर्ण है। इस वाद में न्यायालय ने निर्धारित किया कि अर्थदण्ड की राशि का निर्धारण करते समय न्यायालय अपराध की प्रकृति एवं गम्भीरता को ध्यान में रखने के साथ–साथ अभियुक्त की वित्तीय स्थिति एवं क्षमता को भी विचार में लेगा।

अपमिश्रण (मिलावट), करों का अपवचन, जमाखोरी, बैंक घोटाले, गबन, विदेशी मुद्रा विनियम अधिनियम का उल्लंघन आदि, इस प्रकार के आर्थिक अपराधों के लिये मात्र अर्थदण्ड से दण्डित किये जाने के औचित्य के विषय में अपराधशास्त्रियों में एकमतता नहीं है, क्योंकि ये अपराधी अधिकार सम्पन्न घरों के व्यक्तियों द्वारा किए जाते हैं, जो अर्थदण्ड की कोई भी राशि जमा करने में तत्पर रहते हैं। अतः, ऐसे अपराधियों को कारावास के दण्ड से ही दण्डित किया जाना उचित है।

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 64, न्यायालयों को इस निमित्त अधिकृत करती है कि वह किसी अपराधी द्वारा अर्थदण्ड न देने पर कारावास का दण्डादेश प्रदत्त करें।

न्यायिक आदेशः–

यद्यपि दण्ड का अपना महत्व है, परन्तु उसके क्रियान्वयन आदि की कमियों से इसका पूर्ण फल न तो समाज को मिलता है और न ही अपराधी को। **रामाश्रय चक्रवर्ती बनाम मध्यप्रदेश राज्य (1976) सु.को. 1281** के वाद में उच्चतम न्यायालय को, अपराध की प्रकृति एवं परिस्थितियाँ, जिसमें वह किया गया है, अपराधी की आयु और उसका चरित्र, व्यक्ति अथवा समाज की अपराध द्वारा क्षति, अपराधी पर दण्ड का प्रभाव, अपराधी की परिशुद्धि एवं सुधार को दण्ड की मात्रा के निर्धारण को, ध्यान में रखना होगा।

जिस प्रकार अपराधों के विभिन्न प्रकार होते हैं, उसी प्रकार किसी भी अपराधी को उसके द्वारा किये गये अपराधिक कृत्यों के लिये दण्ड भी विभिन्न प्रकार के होते हैं। इन विभिन्न प्रकार के दण्डों को देने के लिये एक बड़ी जटिल समस्या न्यायिक आदेश की है। कई बार न्यायाधीशों के द्वारा यह निर्णय करने में कठिनाई होती है कि वह इन अपराधों में अपराधी को दण्ड देने में न्याय का कौन–सा मार्ग अपनाये।

प्रसिद्ध **दण्डशास्त्री रेड झिनोविच** ने कहा कि अपराध के लिये दण्ड वैसा ही होना चाहिये, जैसा कि काम के लिये मजदूरी। जिस प्रकार काम जितना

कठिन और महत्वपूर्ण होगा, उसके लिये मजदूरी भी उतनी ही अधिक होगी। उसी प्रकार, अपराध जितना खतरनाक और हानिकारक होगा, दण्ड भी उतना ही अधिक कठोर और दीर्घकालीन होगा। इन दोनों ही क्षेत्रों में प्रत्याशा की एक रूढ़िगत भावना अन्तर्निहित है।[15]

न्यायिक आदेश के सम्बन्ध में **एड़ीमा अन्नम्मा बनाम आन्ध्रप्रदेश राज्य (ए.आई.आर. 1974 सु.को.779)** के निर्णय में न्यायाधीश कृष्णा अय्यर ने निर्णय देते हुये कहा कि न्यायिक दण्ड आदेशों में न्यायाधीशों के विचारों में भिन्नता होना स्वाभाविक है। कुछ न्यायाधीश समयानुसार बदलते हुये परिवेश में अपराधी के प्रति कठोर न होकर नरमी बरतते हैं; जबकि कुछ न्यायाधीश अपराधी को समाज पर अभिशाप या कलंक मानते हुये अपराधियों को कठोर दण्ड देना उचित समझते हैं अर्थात् अपराधियों को न्यायालय द्वारा दिये जाने वाले दण्डादेश न्यायाधीशों की व्यैक्तिक धारणाओं, मान्याताओं एवं विवेक पर निर्भर करता है।

न्यायाधीश द्वारा अभियुक्त को उसके द्वारा किये गये अपराधिक कृत्यों की गम्भीरता को ध्यान में रखते हुये दण्डित करना है। न्यायाधीश अभियुक्त को कठोर एवं अधिक अवधि का दण्डादेश दे या उसके किये सुधारात्मक सिद्धान्त के आधार पर उसे सुधरने का मौका देते हुये उदार के दण्ड से दण्डित करे, यह पूर्णतः न्यायाधीश के विवेक पर निर्भर करता है; परन्तु न्यायाधीश ध्यान रखता है कि किसी भी दशा में किसी भी दण्ड में दण्डित करने के दण्डादेश अपराध के अनुपात में ही होना अपेक्षित हो अर्थात् दण्ड के न्यायिक आदेश में अपराध और उसके लिये प्रस्तावित दण्ड में उचित सन्तुलन एवं समन्वय होना अपेक्षित है।

न्यायिक आदेशों पर **जेम्स फिट्सलेन्स स्टीफन** ने अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा कि सामाजिक दूषण होने के कारण अपराधियों से घृणा करना कोई विशेष बात नहीं है। लेकिन, सामाजिक मूल्यों के नाम पर उनका बहिष्कार कर उन्हें त्याग देना उचित नहीं है।

दण्ड के न्यायिक आदेशों को वर्तमान में सभी देशों के सभी न्यायविद् सर्वसाधारण एवं सर्वसम्मान न्यायिक दण्डादेश नीति बनाकर लागू करने के पक्ष में है, परन्तु इन्हें लागू करने के लिये न्यायधीशों, अधिकर्ताओं एवं दण्डाधिकारों के मध्य इस मुद्दे पर गम्भीर मतभेद है कि दण्ड के चार सुस्थापित सिद्धान्तों– प्रतिरोधात्मक, प्रतिशोधात्मक, निरोधात्मक तथा सुधारात्मक, में से किस सिद्धान्त को प्राथमिकता दी जानी चाहिये। इसके अतिरिक्त, न्यायाधीश के समक्ष एक और समस्या है कि न्यायिक दण्ड के आदेश का उद्देश्य की प्राथमिकता समाज का संरक्षण करना या अपराध का निवारण करना होगा। वर्तमान समय में अपराधी द्वारा किये गये अपराधिक कृत्यों के लिये न्यायाधीश द्वारा आदेश देकर केवल अपराधों को रोकना नहीं है, बल्कि अपराधियों को सुधारना भी है। इस प्रकार

दण्डादेश द्वारा दिये गये दण्ड के सामान्य उद्देश्य हैं –

(क) अपराधी को सुधारने के लिये।

(ख) अपराधिक प्रवृत्ति की रोकथाम के लिये।

(ग) समाज में सुख–शान्ति की स्थापना के लिये।

(घ) पीड़ित व्यक्ति को सन्तोष देने के लिये।

(ङ) समाज विरोधी तत्वो में भय उत्पन्न करने के लिये।

अपराधी को उसके द्वारा किये गये अपराधिक कृत्य न्यायिक दण्ड के किसी भी निश्चित मापदण्ड के अभाव के सम्बन्ध में निम्नलिखित सिद्धान्त मार्गदर्शन करने में सहायक होगें:–

1) न्यायाधीश द्वारा न्यायिक दण्डादेश में दण्ड का निर्धारण करने के दौरान अपराध की क्रुरता के स्थान पर अपराधी के व्यक्तित्व पर अधिक ध्यान देना चाहिये अर्थात् दण्ड की मात्रा विनिश्चित करते समय न्यायाधीश को अपराधी की आयु, लिंग, पूर्व–वृत्तांत, सुधार एवं उसके पुर्नवास की सम्भावना व अपराधिक कृत्य के समय की परिस्थितियों पर विचार करना आवश्यक है।

2) दण्डाधिकारी को दण्ड, न्यायिक आदेश देने के पूर्व, दण्ड के निर्धारण में सामाजिक मूल्यों, मानवता एवं मितव्ययता को ध्यान में रखना आवश्यक है; जैसे– अमेरिका की न्याय पद्धति में श्वेत अपराधियों की अपेक्षा अश्वेत अपराधियों को कठोर दण्ड दिया जाता है जो कि नस्लीय भेदभाव की नीति पर आधारित है एवं दण्ड के सिद्धान्त के विपरीत है। दण्ड, न्यायिक दण्डादेश देने के दौरान नाजुक मामलों में दण्डाधिकारी के लिये दण्ड का निर्धारण करना भी महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि दण्डाधिकारी के दण्ड–निर्धारण करने व उसका आदेश देने में कोई विषमता होती है तो उसका विपरीत प्रभाव अपराधी की पुर्नस्थापना पर भी होता है। साथ ही, दण्ड में न्यायिक सिद्धान्तों का भी उल्लंघन होता है। इससे सम्बन्धित **असगर हुसैन बनाम उत्तरप्रदेश राज्य, ((1974) 2 एस.एस.सी. 518** का वाद उल्लेखनीय है। इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया कि दण्डादेश में विषमता अपराधियों के मन में विद्रोह की भावना को जन्म देती है और इस कारण इससे उस अपराधी की समाज में पुनर्थापना की सम्भावना कम हो जाती है और वे उनके साथ हुये अन्याय के विरूद्ध प्रतिक्रियास्वरूप समाज से प्रतिरोष व असंतोष प्रकट करते हैं।

3) वर्तमान में, समयानुसार समाज में आये बदलावों से दण्ड निर्धारण में विषमताओं अधिक आने लगी है, इन्हें ठीक करना भी कठिन है। कुछ

गम्भीर अपराधों जैसे हत्या के लिये भारतीय दण्ड के अनुसार न्यूनतम दण्ड आजीवन कारावास है। इस प्रकार के आज्ञापक दण्ड द्वारा इन विषमताओं को कम किया जा सकता है। सामान्यतः न्यायाधीश द्वारा दण्ड के लिये दिये जाने वाले न्यायिक आदेश में विषमतायें स्वाभाविक रूप से आ जाती है, क्योंकि ऐसे दण्डों के निर्धारण न्यायाधीशों के विवेक, धारणाओं, मान्यताओ तथा व्यैक्तिक अनुभवों के आधार पर होता है।

4) दण्ड के मापदण्ड एवं निर्धारण के सम्बन्ध में सर **जर्मी बेन्थम** ने कहा है कि 'दण्ड, चाहे किसी भी रूप में क्यों न दिया जायें, एक बुराई है। अधिकतम दण्ड की अपेक्षा न्यूनतम दण्ड पर अधिक ध्यान आकर्षित होता है, क्योंकि किसी अपराधी को बहुत कम दण्ड से दण्डित किये जाने की ओर लोगों का ध्यान अधिक आकर्षित होता है बजाये अधिकतम दण्ड के। अर्थात्, यह कि जो दण्ड अपर्याप्त होता है उसकी ओर लोगों का ध्यान तत्काल जाता है, परन्तु अत्याधिक दण्ड के प्रति वे इतने अधिक गम्भीर नहीं होते हैं। यदि न्यायाधीश को अपराधी के प्रति विशेष सहानुभूति नहीं होती, तो वह अधिकतम दण्ड के रूप में परिलक्षित होती है।'

दण्ड विधि में दाण्डिक प्रावधानों में विभिन्न प्रकार के अपराधों के लिये दिये जाने वाले विभिन्न दण्डों में अधिकतम व न्यूनतम दण्डों का उल्लेख रहता है। इन दिये जाने वाले दण्डों के निर्धारण के लिये दण्ड विधि स्वयं ही न्यायिक दण्डादेश न्यायाधीश को स्वविवेक का उपयोग करने की शक्ति देती है। अतः न्यायाधीशों की स्वयं की विवेक शक्ति दण्ड विधि में ही उपबन्धित रहती है; जैसे कि भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत मृत्युदण्ड वाले दण्डनीय अपराधों के अपराधियों के लिये आजीवन कारावास के दण्ड का वैकल्पिक प्रावधान है।

इसी प्रकार, कुछ अपराधों में नियम समय के कारावास के दण्ड से दण्डाविष्ट किये जाने के स्थान पर अपराधी को परिवीक्षा पर छोड़े जाने का वैकल्पिक प्रावधान है। **परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की 4 एवं 6 तथा भारतीय दण्ड संहिता की धारा 360** के अनुसार, यह न्यायाधीश के न्यायिक विवेक पर निर्भर करता है कि अभियुक्त को परिवीक्षा पर छोड़ने का आदेश न्यायालय द्वारा दण्ड सुनाकर या बिना दण्ड सुनाये पारित करे। इस सम्बन्ध में **स्वामी श्रद्धानन्द बनाम कर्नाटक राज्य (ए.आई.आर. 2007 सु.को. 2545)** का वाद महत्वपूर्ण है। इस वाद में उच्चतम न्यायालय के दिये गये निर्णय के अनुसार दण्ड का प्रभाव किसी भी स्थिति में अपराधी द्वारा किये गये अपराधिक कृत्य से मिलने वाले सुख या फायदे से कम नहीं होना चाहिये अर्थात् उसे दण्ड से होने वाली पीड़ा, कष्ट या असुविधा उसे उसके द्वारा किये गये अपराधिक कृत्य से

प्राप्त फायदे या सुख से अधिक होना चाहिये, तभी दण्ड का प्रभाव सिद्ध होगा। इसी कारावास के दण्ड में न्यूनतम दण्ड एवं अधिकतम दण्ड की सीमा निर्धारित की गई है।

5) न्यायाधीश द्वारा किये जाने वाले न्यायिक दण्डादेश में दण्ड निर्धारण में आने वाली असमानताओं एवं विषमताओं को कम करने की दृष्टि से परिवीक्षा, पैरोल तथा अनियत दण्डादेश जैसी आधुनिक तकनीकों का उपयोग करना उपयुक्त होगा।

6) न्यायाधीश को अपराधी के द्वारा किये गये दण्ड का निर्धारण करने से पूर्व उन्हें घोर अपराधियों एवं प्रत्यार्थी अपराधियों में विभेद किया जाना अति–आवश्यक है, क्योंकि यदि अपराधी गम्भीर अपराधिक कृत्य करने वाला है अर्थात् घोर अपराधी है तो वह समाज के लिये खतरनाक होता है, जबकि यदि अपराधी प्रत्यावर्ती है, तो वह समाज में केवल अपदुषण मात्र होता है, जो भय का कारण नहीं है। अपराधिक कृत्य करने वाले ऐसे अपराधी जो व्यावसायिक अपराधियों एवं गम्भीर राजनीतिक गतिविधियों वाले अपराधियों अथवा आतंकवादी गतिविधियों के कृत्य करने वाले अपराधियों को कारावास के दण्ड की अवधि के बाद निवारक निरोध में रखना ही उचित होगा, क्योंकि इस प्रकार के अपराधी समाज के लिये खतरा होते हैं। लोकसेवकों द्वारा अपराधिक कृत्य किये जाने की दशा में उन्हें अन्य अपराधियों की अपेक्षा कठोर दण्ड देना चाहिये जो जनहित में होगा।

7) यह माना जाता है 'न्यायाधीश को भी परखा जाता है' अर्थात् न्यायाधीश को निष्पक्ष रूप से एवं निर्भय होकर उचित न्याय करना चाहिये। हांलाकि, दण्डाधिकारी द्वारा दण्ड के लिये दिये गये न्यायिक दण्डादेश में उनकी परिपक्वता एवं न्यायिक अनुभव की मुख्य भूमिका होती है, जैसा कि अमेरिका में 1990 के निर्णित एक वाद में हुआ था। वर्ष 1990 में अमेरिका में बलात्कार के वाद में न्यायाधीश द्वारा निर्णित बलात्कार के ट्रायल केस में एक अश्वेत को श्वेत महिला के साथ बलात्कार करने के आरोप में गिरफ्तार कर पेश किया गया था। इस वाद में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश ने बिना किसी सारभूत साक्ष्य के उस अश्वेत अपराधी व्यक्ति को मृत्युदण्ड दे दिया, जिसे अमेरिकन अश्वेतों ने सुप्रीम कोर्ट के द्वारा की गई 'न्यायिक हत्या' माना।

अतः यह अश्वेत–विरोधी पक्षपाती नीति का द्योतक है। न्यायाधीश द्वारा दण्ड के निर्धारण के लिये दिये गये, इस प्रकार के न्यायिक आदेशों से न्यायालय की छवि धूमिल होती है और लोगों में न्यायाधीश की

विश्वसनीयता कम होती है। अतः न्यायाधीशों द्वारा अपराधियों को दिये जाने वाले दण्डों के लिये दिये गए न्यायिक निर्णय समाज के अनुकूल होना चाहिये एवं अपने प्रयोजानात्मक निर्णयों से न्यायाधीशों को जनता का भरोसा हासिल करना चाहिये।

8) न्यायाधीश द्वारा दिये गये न्यायिक दण्डादेश पुलिस द्वारा न्यायालय में प्रस्तुत किये गये मामले के प्रकार पर भी निर्भर करता है, क्योंकि न्यायालय में अपराधिक कृत्य करने वाले व्यक्ति को दिया जाने वाला निर्णय अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य पर आधारित होता है।

अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 7 दण्ड–पूर्व रिपोर्ट के बारे में बताया गया है, जिसका उपयोग करते हुये शेल्डन (Sheldon) ने भी सुझाव देते हुये कहा कि न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत मामले के प्रस्तुतीकरण के समय अभियुक्त के बारे में पूर्व–वृत्तान्त पेश किया जाना चाहिये, जिसे दण्ड–पूर्व रिपोर्ट कहा जाता है जिसके आधार पर न्यायाधीश को दण्डादेश पारित करने में मार्गदर्शन व सहायता मिल सके। अतः न्यायाधीश द्वारा अभियुक्त को दिये जाने वाले न्यायिक दण्डादेश में अभियुक्त की दोषसिद्ध या दोषमुक्त का निर्णय न्यायालय में प्रस्तुत किये गये साक्ष्य पर लिये जाने वाले निर्णय, अभियोजन पक्ष एवं अधिवक्ताओं द्वारा मामले का उचित रूप से प्रस्तुतीकरण महत्वपूर्ण होता है।

9) सभी दण्ड विधानों में उच्च न्यायालय में अपील के प्रावधान रखे गये हैं, ताकि न्यायिक दण्डादेश के कारण अपराधी के प्रति किसी प्रकार का अन्याय न हो तथा दण्डाधिकारियों पर भी आवश्यक दबाव बना रहे।

10) **दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 389** में दिये गये उपबन्धों के अनुसार दोषसिद्ध अपराधी की दोषसिद्धि के विरूद्ध उच्च या उच्चतम न्यायालय में अपील के दौरान उसे जमानत पर छोड़े जाने का प्रावधान है। इस सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय ने **विजय कुमार एवं नरेन्द्र तथा अन्य (ए.आई.आर. 2000 सु.को. 3564)** के वाद में स्पष्ट करते हुये कहा कि गम्भीर अपराधिक प्रकरणों में, जैसे कि हत्या आदि में, अपील के दौरान अभियुक्त को निलम्बन के निर्देश केवल विरलतम मामलों में ही अपवादस्वरूप परिस्थितियों में ही दिया जाना चाहिये। इसके पश्चात् **हरियाणा राज्य बनाम हसमत (ए.आई.आर. 2004 सु.को. 3936)** के वाद में उच्चतम न्यायालय ने जमानत एवं सजा निलम्बन पर अन्तर स्पष्ट करते हुये कहा कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 389 का एक आवश्यक तत्व है कि अपीलीय न्यायालय को सजा के निलम्बन का आदेश पारित करते समय इसके कारणों का उल्लेख करना होगा और यदि प्रकरण में

अभियुक्त बन्दीगृह में निरूद्ध हो तो उसे स्वयं के बन्ध–पत्र की जमानत पर रिहा किया जा सकता है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि अपराधियों को दण्ड के लिये दिये जाने वाले न्यायिक आदेश में एकरूपता नहीं हो सकती है। इसका कारण है कि न्यायाधीश के लिये न्याय निर्णय लेना कोई रोटी बनाने जैसा कार्य नहीं है, जिसमें निश्चित मात्रा में निश्चित सामान मिलाकर आवश्यक तापमान पर रखकर सेंका जाये; बल्कि न्यायिक आदेश किसी अपराधिक कृत्य करने वाले अपराधी के लिये दिया जाने वाला ऐसा दण्डादेश है जिसमें न्यायाधीश स्वयं उस अपराध के बारे में पूर्व में कोई नीति निर्धारित नहीं कर सकता है, बल्कि वह उस अपराध में निर्णय अपराधों की प्रकृति तथा अपराधियों की अपराध करने की परिस्थिति पर निर्भर करता है। फिर भी, न्यायाधीश के लिये दण्ड निर्धारण का कोई मानक मानदण्ड होना चाहिये। वर्ष 1957 में अमेरिका में संघीय प्राधिकारी ने इसी उद्देश्य से दण्डादेश संस्थान की स्थापना की। इस संस्थान में दण्डाधिकारी को दण्डादेश के बारे में समुचित प्रशिक्षण दिया जाता है। अमेरिका में दण्डाधिकारी को न्यायिक दण्डादेश से सम्बन्धित समस्याओं के निवारण के लिये तथा दण्डाधिकारी को समय–समय पर उचित प्रशिक्षण देने के लिये दण्डादेश परिषद भी कार्यरत है।

इसी प्रकार, इग्लैण्ड में मुख्यतः न्यायाधिपति लगभग पिछले कुछ वर्षो से एकसमान न्यायिक दण्डादेश पद्धति को लागू करने में प्रयासरत हैं।

भारत में **आडूराम बनाम मुकना तथा अन्य (ए.आई.आर. 2004 सु.को. 5084)** के वाद में उच्चतम न्यायालय ने अपराध एवं उस अपराध के लिये दिये जाने वाले दण्ड की न्यायिक समीक्षा करते हुये कहा कि दण्ड का आदेश पारित करते समय अपराध के कारण समाज पर पड़ने वाले सम्भावित परिणामों को ध्यान में अवश्य रखना चाहिये और दण्ड की मात्रा भी उसी अनुपात में निर्धारित करना चाहिये। अर्थात्, न्यायाधीशों को स्वयं के न्यायिक विवेक का प्रयोग करते हुये यह तय करना चाहिये कि किसी अपराध की गम्भीर तथा समाज पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव के अनुरूप दण्ड की मात्रा होनी चाहिए। यदि दण्ड की मात्रा अपराध की गम्भीरता के अनुसार नहीं होगी तो समाज के प्रति यह घोर अन्याय होगा। न्यायालय ने आगे और स्पष्ट करते हुये कहा कि जैसे महिलाओं के प्रति अपराध, बच्चों के प्रति अपराध, डकैती, हत्या, देशद्रोह, अनैतिकता, दुर्विनियोग आदि से सम्बन्धित अपराध ऐसे हैं जिसका समाज पर दुष्प्रभाव पड़ता है। अतः ऐसे अपराधों में अपराधी को कठोरतम दण्ड देना ही न्यायोचित होगा और यदि ऐसे अपराधों में न्यायाधीशों द्वारा अपराधी के प्रति सहानुभूतिवश अपर्याप्त दण्ड दिया जाता है तो यह सामाजिक हितों के प्रतिकूल होगा और ऐसा करने से अपराधियों का मनोबल बढ़ेगा जिससे वे पुनः वैसे या उससे भी गम्भीर अपराध

करेंगे या करने का प्रयास करेंगे।

जैसा कि एक वाद में मृतक के पशुओं द्वारा अपीलार्थी के खेतों में घुसकर उसकी फसल खराब करने की घटना को लेकर दोनों पक्षों में विवाद हुआ और झगड़े के दौरान लाठियों एवं कुल्हाड़ी के वार के कारण मृतक की हत्या कारित हुई। विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को भारतीय दण्ड संहिता धाराओं 148/149/341 को एक साथ पठित धारा 302 (भारतीय दण्ड संहिता) के अन्तर्गत दण्डित किया, जिसे अपील में उच्च न्यायालय द्वारा धारा **304(I) (भारतीय दण्ड संहिता)** में परिवर्तन कर दिया गया और अभियुक्तों को उनके द्वारा भोगे गए छः वर्ष के दण्ड को पर्याप्त मानते हुये, आजीवन कारावास की सजा से छः वर्ष दण्ड में बदल दिया गया। इस दण्ड के विरूद्ध अपील में उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के न्याय को उचित मानते हुये कहा कि वास्तव में अभियुक्तों की धारा **304(I)** के स्थान पर **304(II) (भारतीय दण्ड संहिता)** के अन्तर्गत दण्डित किया जाना था, परन्तु परिस्थितियों के अनुसार उक्त आदेश उचित था।

इसी प्रकार, ब्रिटेन के कार्ड चीफ जस्टिस के अनुसार जैसा कि **क्रिमिनल जस्टिस एक्ट 1991** में आशयित है, अपराधियों को कारावास दिया जाने वाला दण्डादेश उसके द्वारा किए गये अपराधिक कृत्य की गम्भीरता के अनुसार होना चाहिये। इस अधिनियम की **धारा 2(2)** के अनुसार, हिंसात्मक अपराध या लैंगिक सम्बन्धी अपराधों के लिये दोषसिद्ध अपराधियों को अपेक्षाकृत ऐसा कठोर दण्ड देना चाहिये, जो उस अपराध के लिये अधिकतम देय से अधिक न हो। ब्रिटेन की संसद द्वारा पारित अधिनियम क्राइम एक्ट, 1997 के अनुसार अपराधों के लिये देय दण्ड के उपशमन या परिहार के प्रावधान को पूर्णतः हटा दिया गया है जिससे न्यायाधीश स्वयं के न्यायिक स्वविवेक का मनमाना उपयोग न कर सकें। वहाँ पर अब दण्डादेश को कम्प्यूटरीकृत कर दिया गया है, जिससे दण्डादेश सम्बन्धी विषमताओं को पूर्णतः समाप्त किया जा सके।

भारत में न्यायिक दण्डादेश की विषमता के सम्बन्ध में उल्लेखनीय वाद निम्नलिखित है–

मध्यप्रदेश राज्य बनाम मुन्ना चौबे (ए.आई.आर. 2005 सु.को. 682) के वाद में बलात्कार के अपराध में दोषी पाये गये अभियुक्त का विचारण न्यायालय द्वारा सात वर्ष के कारावास एवं दो हजार रूपये के आर्थिक दण्ड से दण्डित किया गया था, परन्तु उच्च न्यायालय में अपील किये जाने पर उच्च न्यायालय ने बिना किसी विशेष कारणों का उल्लेख किये बिना उसके कारावास में व्यतीत किए गए तीन वर्ष छः माह की दण्डावधि में बदलकर उसे रिहा करने का आदेश दे दिया। राज्य द्वारा इस दण्डादेश के विरूद्ध उच्चतम न्यायालय

में अपील किये जाने पर उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निर्णय का अपास्त करते हुये कहा कि बलात्कार जैसे जघन्य अपराध के वाद में बिना किसी उचित व पर्याप्त कारण का उल्लेख किये बिना दण्ड की अवधि को कम करना उचित नहीं होगा, यह न केवल पीड़िता के प्रति घोर अन्याय होगा बल्कि समाज में इसका दुष्प्रभाव पड़ेगा तथा जनता का न्याय के प्रति एवं न्यायालय के प्रति विश्वास भी कम होगा। उच्चतम न्यायालय ने राज्य की अपील को स्वीकार किया और विचारण न्यायालय द्वारा दिये गये दण्डादेश को बहाल किया।

दिनेश उर्फ बुद्ध बनाम राजस्थान राज्य ((2006)3 एस.सी.सी. 771) के वाद में न्यायालय ने अपने निर्णय को दोहराते हुये कहा कि राज्य का यह परम् कर्तव्य है कि वह विधि के प्रवर्तन के द्वारा जनता के जन–माल की सुरक्षा निश्चित करे। अतः, बलात्कारी के प्रति अनुचित सहानुभूति रखते हुये उसको दिये जाने वाले दण्ड को मनमाने ढंग से लघु कर देना दण्ड नीति के सिद्धान्तों का सरासर उल्लंघन है। अतः, इसमें भी उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के दण्डादेश को अपास्त कर विचारण न्यायालय द्वारा दिये गये दण्डादेश को कायम रखा।

मध्यप्रदेश राज्य बनाम बाबूलाल (ए.आई.आर. 2008 सु.को. 582) के वाद में अपीलार्थी ने 23 जुलाई, 2002 को दोपहर 12 बजे के समय दौलतपुर ग्राम (तहसील–इच्छावर, जिला–सीहोर) में 22 वर्षीय विवाहित महिला के साथ बलात्कार किया। पीड़िता अपने पति के साथ अपीलार्थी के यहाँ रहती थी और बलात्कार के समय उसका पति बाहर गया हुआ था। पीड़िता द्वारा चिल्लाने व विरोध करने पर उसे चाकू दिखाकर मारने की धमकी देकर उसके साथ दुष्कृत्य किया। पीड़िता ने इस घटना से अपनी बूढ़ी सास (जो उनके साथ रहती थी और उस समय सो रही थीं) एवं अपने पति को अवगत कराया, जिसने 24 जुलाई को इस घटना की पुलिस थाने में प्राथमिकी दर्ज कराई थी। पीड़िता एवं अभियुक्त की चिकित्सीय जाँच में भी बलात्कार की पुष्टि की गई, अतः विचारण न्यायालय के द्वारा अभियुक्त को सात वर्ष के कारावास तथा पच्चीस सौ रूपये के अर्थिक दण्ड का दण्डादेश दिया गया तथा जुर्माने के रूप में ली गई धनराशि को पीड़िता को प्रदान करने का आदेश दिया गया।

इस निर्णय के विरूद्ध उच्च न्यायालय में की गई अपील पर उच्च न्यायालय ने विशिष्ट कारण बताते हुये कि अभियुक्त एक अनपढ़ ग्रामीण कृषक युवक था तथा उसे पच्चीस सौ रूपये का अर्थदण्ड भी दिये जाने से उसके दण्ड को उसके द्वारा बन्दीगृह में भोगी गई दण्डावधि दो वर्ष व तीन दिन तक लघु कर दी गई, जिसके विरूद्ध राज्य सरकार ने उच्चतम न्यायालय में अपील की और उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के दिये गये निर्णय में विशेष या पर्याप्त कारण मानने से इन्कार करते हुये विचारण न्यायालय के निर्णय को बहाल

किया।

श्रीलाल उर्फ सिपिया बनाम मध्यप्रदेश राज्य (ए.आई.आर. 2008 सु.को. 2314) के वाद में अभियुक्त स्वयं ही अपनी पुत्री के साथ बलात्कार किया था, जिसके लिये उसे गुना सत्र न्यायालय द्वारा आजीवन कारावास एवं एक हजार रूपये के अर्थदण्ड से दण्डित किया गया था। उच्च न्यायालय ने भी सत्र न्यायालय के निर्णय को बहाल रखा। उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने पर उच्चतम न्यायालय ने अभिकथन किया कि अपीलार्थी किसी भी प्रकार की सहानुभूति या उदारता का पात्र नहीं है क्योंकि उसने स्वयं ही अपनी तेरह वर्षीय पुत्री के साथ बलात्कार जैसा कुकृत्य कर उसे सतत् मानसिक एवं शारीरिक यातना दी हैं, जिसके लिये उसे कठोर दण्ड दिया जाना न्यायोचित है। ऐसे अभियुक्त के लिये किसी भी प्रकार की सहानुभूति या उदारता बरती जाना न्यायिक व्यवस्था के प्रति हानिकारक होगा। अतः अपील को उच्चतम न्यायालय के द्वारा भी खारिज़ कर दिया गया।

भारत के सन्दर्भ में न्यायिक दण्डादेश के उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत में न्यायिक दण्डादेश भारतीय दण्ड विधि के उपबन्धों की सीमाओं के अन्तर्गत ही प्रशासित होता है। वर्तमान में, भारत में न्यायाधीश या दण्डाधिकारियो के लिये समय–समय प्रशिक्षण एवं पुर्नश्चर्या (refresher) पाठ्यक्रम हेतु एक राष्ट्रीय दण्डादेश संस्थान की स्थापना करने की आवश्यकता है, क्योंकि सांविधिक अधिनियमों में दण्ड में हुये प्रावधान दण्डाधिकारियों को दण्ड निर्धारण में सहायक होते हैं।

◆ ◆ ◆

अध्याय – 3

बन्दीगृह–व्यवस्था का इतिहास एवं बन्दीगृह व्यवस्था

बन्दीगृह व्यवस्था की प्रणाली उतनी ही प्राचीन है जितनी की दण्ड व्यवस्था प्रणाली। बन्दीगृह व्यवस्था न्याय–व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण भाग है। बन्दीगृह व्यवस्था में, अपराधिक कृत्य करने वाले व्यक्ति को जिस पर दोषसिद्ध हो चुका है या दोषी हो अर्थात् कानून व्यवस्था को तोड़ने वालों के विरूद्ध मुकदमा या वाद चल रहा हो, बाहर समाज के व्यक्तियों से दूर रखने की व्यवस्था कहा जाता है। बन्दीगृह के भीतर आये अपराधी को उसके कुछ अधिकारों एवं विशेषताओं से वंचित किया जाता है।

अतः बन्दीगृह व्यवस्था इस बात का प्रतीक है कि अपराधियों को दण्डित किया गया है। बन्दीगृह व्यवस्थाओं में विचाराधीन अपराधिक कृत्य करने वाला व्यक्ति एवं अपराधिक कृत्य में संशयित व्यक्तियों को उनके विचारण काल के दौरान बन्दीगृह में रखा जाता है। जैसा कि हम जानते हैं कि कोई भी समाज अपराध या अपराधियों के बिना हो, सम्भव नहीं है, इसीलिये सभी समाजों में बन्दीगृह व्यवस्था का होना भी आवश्यक है।

विश्व के सभी देशों में प्राचीन समय से ही दण्ड–व्यवस्था में बन्दीगृह व्यवस्था भी थी। देशों के इतिहास के अनुसार, सम्पूर्ण विश्व में तथा भारत में सभी स्थानों पर बन्दीगृह के प्रति समयानुसार समाज को बदलने का दृष्टिकोण मिलता है। बन्दीगृह व्यवस्था दण्ड के चारों सिद्धान्तों प्रतिरोधात्मक, निरोधात्मक, प्रतिशोधात्मक एवं सुधारात्मक सिद्धान्तों का सम्मिश्रण मिलता है। बन्दीगृह में दण्ड भोग रहे अपराधी बन्दीगृह के कष्टदायी जीवन एवं गम्भीर अनुभव, उन्हें पुनः अपराध न करने की चेतावनी देते हैं तथा उन्हें इन यातनाओं को झेलते हुये देखने वाले व्यक्ति भी अपराध करने से दूर रहते है।

बन्दीगृह व्यवस्था में कारावास के दण्ड की सजा वाले अपराधियों को रखा जाता है। अपराधी को बन्दीगृह अर्थात् कारावास का दण्ड दिये जाने पर पीड़ित को संतोष प्राप्त होता है एवं अपराधियों को समाज से अलग रख, उसे स्वयं के द्वारा किये गये अपराध के लिये पश्चाताप का उचित अवसर मिलता है, जिससे वे आने वाले समय में सामान्य जीवन व्यतीत कर सकें। बन्दीगृह अथवा कारावास के दण्ड अपराधों का निवारण व अपराधियों की समाज में संख्या कम करने की भूमिका भी निभाते हैं। यहाँ अपराधियों को समाज से पृथक रखा जाता है। वर्तमान में समयानुसार आये परिवर्तनों से बन्दीगृह में आये बन्दियों में कारावास

की अवधि में सुधार की ओर प्रयास किया जा रहा है, जिससे उसकी कारावास की अवधि समाप्त होने के पश्चात् वे समाज में आसानी से पुर्नवास कर सकें।

बन्दीगृह में आये सभी बन्दियों को एक समान दण्ड नहीं दिया जा सकता। यह न तो न्यायिक दृष्टि से सही है और न ही व्यावहारिक ही है, क्योंकि प्रत्येक अपराध की गम्भीरता को ध्यान में रखते हुये अभियुक्तों की दण्डावधि या कारावधि भिन्न–भिन्न होना चाहिये, इसीलिये अपराधियों को दिये जाने वाले दण्ड को उनके अपराधों की गम्भीरता के अनुसार विभिन्न वर्गों में बाँटा गया है।

अतः कहा जा सकता है कि बन्दीगृह व्यवस्था का उद्देश्य अपराधियों को समाज से दूर बन्दी बनाकर रखना, अपराधियों से समाज की रक्षा करना, पीड़ित व्यक्तियों को संतोष प्रदान करना, अपराधों पर नियन्त्रण करना, अपराधी का सुधार एवं उपचार कर समाज के समक्ष अपराध नियन्त्रण स्थापित करना एवं अपराधों में कमी लाना है।

विश्व के बन्दीगृहों का उत्थान मानव सभ्यता के विकास के साथ ही हुआ माना जा सकता है। बन्दीगृह एक दण्ड की अवधि को भुगतने का स्थान है। इस स्थान पर संशयित या सजा पाये हुये अपराधियों को रखा जाता है। बन्दीगृह में आये अपराधी स्वयं द्वारा किये गये अपराध की स्वयं को अनुभूति कराने एवं उसके सुधार हेतु प्रयास किये जाते हैं।

बन्दीगृह, कारागृह, जेल या कारागार अंग्रेजी शब्द 'प्रिजन' का पर्यायवाची है अर्थात् जो समान अर्थ का बोध कराता हो। इसमें विशिष्ट व्यक्तियों अर्थात् विभिन्न प्रकार के अपराधियों को निश्चित अवधि के लिये अपने परिवार के अन्य सदस्यों एवं समाज से पृथक कर कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में रखा जाता है। बन्दीगृहों में रहने की अवधि एवं परिस्थितियाँ विभिन्न व्यक्तियों के लिये तथा विभिन्न दण्ड प्रणालियों के अन्तर्गत भिन्न–भिन्न हो सकती है। विभिन्न विद्वानों ने बन्दीगृह की निम्नलिखित परिभाषाएं दी हैः–

(1) **डा. सेठना** के अनुसार, बन्दीगृह अपराधियों को रोकने का एक स्थान है अर्थात् बन्दीगृह का शाब्दिक अर्थ पिंजरा होता है। बन्दियों, अपराधियों या संशयित अपराधियों को रखने के स्थान को **'जेल', 'बन्दीगृह' या 'कारागृह'** कहा जाता है। बन्दीगृह में बन्दियों को दण्ड एवं सुधार हेतु रखा जाता है।

(2) **फेयर चाइल्ड** ने अनुसार, बन्दीगृह व्यवस्था एक ऐसी दाण्डिक संस्था है, जिसका संचालन राज्य या संघ सरकार करती है। इसका उपयोग ऐसे प्रौढ़ अपराधियों के लिये होता है जिसकी दण्डावधि एक वर्ष से अधिक हो।

फेयर चाइल्ड की यह परिभाषा स्वीकार किये जाने योग्य नहीं मानी गई क्योंकि बन्दीगृहों में किसी भी दण्डावधि के अपराधियों को रखा जा सकता है। चाहे वह कितनी ही कम क्यों न हो। सरल शब्दों में कारागार की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है:–

"ये राज्य अथवा केन्द्र सरकार द्वारा संचालित ऐसी दाण्डित संस्थायें हैं जिनमें दण्डित अपराधियों को दण्ड भोगने तथा सुधार हेतु रखा जाता है। इनमें उन विचाराधीन अभियुक्तों को भी रखा जाता है जिन पर मुकदमा चल रहा होता है।"[16]

(3) **कारागार अधिनियम, 1894** के अनुसार बन्दीगृह राज्य सरकार द्वारा परिभाषित वह स्थान है जहाँ बन्दियों को स्थायी एवं अस्थायी दोनों रूपों में रखा जाता है।

वर्तमान समय में आधुनिक दण्ड व्यवस्था में बन्दियों का व्यवहार अच्छा होने पर दण्ड की अवधि पूर्ण होने से पूर्व उन्हें पैरोल पर छोड़ा जा सकता है और यदि पैरोल की अवधि के दौरान पैरोल की शर्तो का उल्लंघन करते हैं, तो उन्हें पुनः बन्दीगृह में रखा जाता है। बन्दीगृह में बन्दी व्यक्ति को उनके व्यक्तित्व एवं रूचि के अनुसार प्रशिक्षण भी दिया जाता है, जिससे कि वे अपनी दण्डावधि पूर्ण करने के पश्चात् समाज में स्वयं को आसानी से स्थापित कर सकें।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राचीन समय में बन्दीगृह अपराधियों रखने एकमात्र स्थान माना जाता था जहाँ उन्हें केवल स्वयं के द्वारा किये गये अपराधिक कृत्यों का दण्ड भोगना पड़ता था। परन्तु, वर्तमान समय में बन्दीगृह में अपराधियों को सुधारने पर भी बल दिया जा रहा है अर्थात् बन्दीगृह व्यवस्था, वह व्यवस्था है जो बन्दियों को अभिरक्षा एवं नियन्त्रण में रखने का प्रयास किया जाता है।

बन्दीगृहों के मुख्य तत्व

बन्दीगृह के कुछ मुख्य तत्व होते हैं, जिसके आधार पर इसके कार्य और भी स्पष्ट हो जाते हैं। ये निम्नलिखित होते हैं:–

(i) बन्दीगृह एक ऐसी संस्था है, जिसका संचालन राज्य सरकार द्वारा किया जाता है। बन्दीगृह वह स्थान होता है, जहाँ पर दोषसिद्ध अपराधी को दण्ड प्राप्त अवधि के लिये रखा जाता है एवं संशयित अपराधी को भी रखा जाता है। उन्हें यहाँ रखने के मुख्यतः दो उद्देश्य होते हैं– प्रथम, अपराधी को दण्ड देना व उनका सुधार करना एवं **द्वितीय,** अपराधियों से समाज की रक्षा करना।

(ii) बन्दीगृह में बन्दियों को स्थायी या अस्थायी तौर पर रखा जाता है।

(iii) बन्दीगृह का उद्देश्य उसके समाज विरोधी कार्यों के लिये दण्ड देना एवं उसे सुधारना है। सुधार के साथ–साथ समाज में उसे पुनर्वास कराने के लिये प्रशिक्षण भी देना।

(iv) अपराधी को बन्दीगृह में सामान्य जनता से दूर एक कृत्रिम समुदाय में रखा जाता है।

(v) बन्दीगृह में बन्दी वेतन प्राप्त मजदूर कभी नहीं बनता है।

(vi) बन्दीगृह में बन्दी अपनी नियत दण्डावधि तक ही रहता है और उसकी दण्डाविधि समाप्त होते है उसे तुरन्त मुक्त कर दिया जाता है।

(vii) आधुनिक दण्ड व्यवस्था के अनुसार अच्छे आचरण पर अपराधी को दण्डावधि से पूर्व भी छोड़ा जा सकता है।

बन्दीगृह के विकास के उद्देश्य

किसी व्यक्ति द्वारा किये गये अपराधिक कृत्य के दोषसिद्ध होने पर उसके किये गये कृत्य के लिये दण्ड दिया जाता है। दण्ड के अनेक प्रकार एवं रूप हैं। इसी दण्ड का एक रूप बन्दीगृह है। बन्दीगृह पद्धति में प्रतिरोध, आत्मग्लानि तथा सुधारात्मक दण्ड व्यवस्था के गुण विद्यमान रहते हैं। बन्दीगृह में रहने का कटु अनुभव अपराधी को भविष्य में अपराध न करने की ओर सचेत करता है। दण्डों की कठोरता को देख व्यक्ति अपराध करने से दूर रहता है। अपकारित व्यक्ति एवं समाज अपराधी को दण्डित होते देख संतोष प्राप्त करता है। बन्दीगृह में अपराधी को आत्मचिंतन का पर्याप्त समय मिलता है तथा वह वहाँ अपने अपकृत्यों का प्रायश्चित करता है। वर्तमान में बन्दीगृहों में उपचारात्मक पद्धति के अन्तर्गत अनेक प्रकार के प्रशिक्षण आदि दिये जाते हैं, जिससे अपराधी समाज में पुनः सामान्य जीवन व्यतीत कर सके।

अतः दण्ड का अन्तिम लक्ष्य कुछ भी हो यह निर्विवाद है कि बन्दीगृह व्यवस्था द्वारा बन्दियों को अभिरक्षण एवं नियन्त्रण में रखकर समाज को अपराध रहित बनाने का प्रयत्न किया जाता है।

प्राचीनकाल में अपराधियों को अन्धेरी कोठरियों में बन्द कर कठोर व अमानवीय यातनायें दी जाती थी। वर्तमान समय में बन्दीगृहों में बन्दियों के साथ मानवीय व्यवहार एवं उनकी आवश्यकतानुसार उपचार किया जाता है, जिसमें अनेक प्रकार के प्रशिक्षण भी सम्मिलित हैं। इस प्रकार बन्दीगृह के उद्देश्य हैंः–

1. बन्दीगृहों की स्थापना कर राज्य शक्ति का प्रदर्शन करना।
2. बन्दीगृहों की स्थापना जनता में अपराधों को रोकने के लिये

शारीरिक यातनाओं के चित्रों द्वारा सामान्य भय उत्पन्न करना है।

3. बन्दीगृह में किसी अपराधी को रखने का उद्देश्य उसका अपमान कर उसे मानसिक कष्ट देना है।
4. प्राचीन समय में कुछ अपमानों के लिये बहुत ही गम्भीर दण्डों का प्रचलन था, जो मानवतावादी दृष्टिकोण से समाज एवं मानवता के लिये अहितकर था। इसीलिए, कारावास के दण्डों के समाप्त किया गया तथा बन्दीगृह का विकास किया गया।
5. बन्दीगृह के विकास का मुख्य उद्देश्य अपराधियों को सुधारना है। वर्तमान बन्दीगृह दण्ड की कठोरता के स्थान पर अपराधियों के सुधार को अधिक महत्व देता है।
6. बन्दीगृह का उद्देश्य अपराधियों की रक्षा करना है क्योंकि समाज में लोग उन्हें गोली न मारे या अत्यधिक न सतायें। अपराधियों को सुधारना भी क्योंकि अपराधियों के कार्य समाज विरोधी हुआ करते हैं।

उपरोक्त विवरण द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि बन्दीगृह के मिश्रण के विभिन्न उद्देश्य हैं। वास्तव में, बन्दीगृह दण्ड सुधार एवं संरक्षण प्रदान करने वाली राजकीय संस्था है।

बन्दीगृह के विकास का इतिहास

विश्व में प्रत्येक समाज में प्रत्येक काल में अपराध किसी न किसी रूप में सदैव से ही उपस्थिति रहा है। अपराधिक कृत्य उतने ही पुराने हैं जितना कि अपराध विहिन समाज की परिकल्पना। समाज में शान्ति एवं व्यवस्था बनाये रखने के लिये उत्तरदायी लोगों का हमेशा से ही अपराधियों के प्रति दृष्टिकोण ठीक नहीं रहा है, इसी कारण अपराधों में वृद्धि हो रही है। अति–प्राचीनकाल में अपराधियों को उनके अपराधिक कृत्य हेतु अधिकतम यातनायें दी जाती थीं जिससे लोगों में अपराध की धारणा में परिवर्तन हो। अपराधियों को दण्डित करने के स्थान पर सुधारने का प्रयास किया जा रहा है।

जिस प्रकार मानव का विकास हो रहा है, उसी प्रकार अपराधों का भी विकास होने लगा है, इसीलिये अपराधों के लिये दिये जाने वाले दण्डों का भी विकास हुआ है। दण्ड के विभिन्न रूप के अनुसार अनेक प्रकार हैं, उनमें से एक प्रकार कारावास या बन्दीगृह भी है। यह दण्ड का एक महत्वपूर्ण प्रकार है। बन्दीगृह का इतिहास लगभग वर्ष 1597 के पूर्व माना जाता है। यह भी माना जाता है कि मानव के विकास के साथ–साथ बन्दीगृहों का विकास हुआ है। यदि अति–प्राचीनकाल अर्थात् उद्विकास की दृष्टि से इतिहास की व्याख्या की

जाये, तो **'आखेट युग'** में बन्दीगृह का अस्तित्व नहीं था। हालांकि अपराध तो उस समय भी होते थे, किन्तु उस समय दण्ड देने हेतु बन्दीगृह नहीं होते थे। इसके ब़ाद आया "पशुपालन" का, इस समय भी बन्दीगृहों की कल्पना नहीं की गई थी। अतः जिन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु बन्दीगृह का प्रारम्भ एवं विकास हुआ था, वह उस समय मानव नहीं जानता था।

मानव विकास की अवस्था में निरन्तर आगे बढ़ रहा था। फिर मानव ने 'कृषि युग' में प्रवेश किया। इस युग में कृषि का कार्य किया जाने लगा, जिसके लिये श्रमिकों की आवश्यकता हुई। परिणामस्वरूप, प्रत्येक समुदाय द्वारा कुछ नियम बनाये गये और इन्हीं नियमों के उल्लंघन को अपराध के रूप में परिभाषित किया गया। श्रमिकों की समस्या की पूर्ति हेतु अपराधियों को बन्दी बनाने की प्रथा प्रारम्भ हुई और बन्दीगृह आस्तित्व में आये। प्राचीनकाल के बन्दीगृह वर्तमान बन्दीगृह जैसे विकसित नहीं थे। उस समय अपराधियों को पशुओं के समान जंजीरों से बाँधा जाता था और धीरे–धीरे मानव के विकसित होने के साथ–साथ बन्दीगृह का भी विकास होता रहा।

प्रसिद्ध विधिवेता **डॉ. सेठना** के अनुसार, वर्ष 1597 में बन्दीगृह थे तथा बन्दीगृह व्यवस्था की स्थापना हो चुकी थी, परन्तु उस समय के बन्दीगृह भयानक व डरावनी थी। उनका इतिहास पढ़कर आज भी मानव का दिल दहल जाता है। उस समय दण्ड भी कष्टदायक थे। उस समय बन्दीगृह में महिला, पुरूष व बच्चों को चूहों व सूअरों की तरह रखा जाता था। इस प्रकार के कारावास के दण्डों से अपराध कम होने के स्थान पर बढ़ते थे, क्योंकि वे प्रतिशोध की भावना पर आधारित थे। **डॉ. सेठना** ने इस बात का भी समर्थन किया कि आधुनिक अर्थों में जो बन्दीगृह कहे जाते हैं, वे मध्यकाल तक नहीं थे। उस समय के बन्दीगृह डरावने होते थे तथा अपराधियों को बिना किसी परीक्षण के जेल में बन्द कर दिया जाता था।

डॉ. हर्नशा के अनुसार, मध्यकाल के बन्दीगृह पूर्णतया अन्धकारमय, सीलन भरे एवं कीड़े–मकोड़े से और सफाई रहित एवं फर्नीचर रिक्त कब्र की ओर ले जाने वाले कमरे होते थे।

अट्ठारवीं शताब्दी में जालीदार बन्दीगृह का निर्माण हुआ। इसके पश्चात् लगभग उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में वास्तविक रूप से कई कार्य बन्दीगृह की स्थिति को सुधारने में किए गए, परन्तु वे कुछ खास उल्लेखनीय नहीं रहे। मानव मूल्यों को प्रेम करने वाले तथा उनकी रक्षा हेतु सजग व्यक्तियों का ध्यान बन्दीगृहों की इस गम्भीर स्थिति पर गया और कुछ विद्वानों ने बन्दीगृहों की स्थिति में सुधार करने की रूपरेखा बनाई।

बन्दीगृह व्यवस्था के सुधार आन्दोलन में **इग्लैण्ड के जॉन हावर्ड एवं**

एलिजाबेथ फ्राइ का नाम उल्लेखनीय है। इन जेल सुधारकों के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप एक बन्दीगृह में बन्दियों को एक साथ जबरदस्ती नहीं रखा जाता था, बल्कि प्रत्येक अपराधी को एक छोटी कोठरी में रखा जाता था या बहुत कम अपराधियों को एक साथ रखा जाता था। चौंदहवी शताब्दी में दण्ड तीन प्रकार के दिये जाते थे :–

(1) **मृत्युदण्ड** :– जब किसी व्यक्ति के द्वारा गम्भीर अपराधिक कृत्य किये जाते थे, तब उन्हें दिया जाता था। परन्तु, उस समय इस दण्ड को देने में धर्म एवं जाति के आधार पर भेदभाव किया जाता था।

(2) **यातना**:– इस प्रकार के दण्डों में शारीरिक चोट को सम्मिलित किया जाता था।

(3) **गुलामी**:– इस दण्ड में शारीरिक परिश्रम कराया जाता था। सामान्य तौर पर इस दण्ड की अवधि पूरी होने तक जहाजों पर कार्य कराया जाता था।

इसी प्रकार, बन्दीगृह के सुधार का आन्दोलन फ्रान्स की राज्य क्रांति के समय हुआ था। फ्रान्स के नेताओं ने 'मानव अधिकारों की घोषणा' की और उसी में अपराधियों के सुधार पर बल दिया गया व बन्दियों के किये बन्दीगृह की व्यवस्थाओं में सुधार करने हेतु प्रयास किये गए। फ्रान्स की संसद ने वर्ष 1791 में अनेक कानूनों को बनाया तथा उनमें से कुछ दण्ड व्यवस्थाओं के प्रावधान भी रखे गए। इस व्यवस्था से पहले जहाँ दण्ड मृत्युदण्ड एवं गुलामी ही माने जाते थे, वहीं अब कारागार भेजना भी एक प्रकार का दण्ड माना जाने लगा। एक अपराधी को सारे दण्ड एक साथ नहीं दिये जाने चाहिये; अपराधियों को कारावास की सजा तो दी जाए, परन्तु उन्हें आजीवन कारावास की सजा नहीं दी जाए। .इसके अतिरिक्त, बन्दीगृह में बन्दियों को शारीरिक कष्ट एक निश्चित सीमा तक ही दिया जाये।

पहले सभी अपराधियों जैसे महिलाओं, पुरूषों, बच्चों सभी को एक साथ ही रखा जाता था और न ही उन अपराधियों को उनके अपराधिक कृत्यों के आधार पर वर्गीकरण किया जाता था। वर्ष 1593 में पश्चिम देशों में एक्सटर्डम में पहला महिला बन्दीगृह स्थापित किया गया था। वर्ष 1703 के आसपास पोप क्लेमेंन्ट IX ने रोम में सेन माईबोल में कोशिकामय बन्दीगृह का निर्माण किया था। इसी का आगे मिलान व बेल्जियम द्वारा अनुसरण किया गया।

लगभग अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्त में अमेरिका में भी बन्दीगृह व्यवस्था के सुधार के प्रति रूचि आई थी। अमेरिका में बन्दीगृह व्यवस्था में सुधार के कार्य का श्रेय केवल आन्दोलन को जाता है। यहाँ बन्दियों को छोटी–छोटी कोठरियों

में पृथक–पृथक बन्द किया जाता था। बन्दियों के सुधार के पक्षपाती विद्वानों ने अपराधों की प्रवृत्ति के अनुसार अपराधियों को पृथक रखना उचित माना है, क्योंकि उन्हें साथ रखने पर वे एक–दूसरे की बुरी आदतें सीख सकते हैं। परन्तु, उनमें पृथक, एकांकी बन्दीकरण का प्रभाव ठीक नहीं पड़ा तथा अपराधियों के मस्तिष्क तनाव भरे, विक्षिप्ततापूर्ण, मायूस होने लगे, तब उन्हें दिन के कुछ समय सामूहिक रूप से आपस में बातचीत करने की स्वतन्त्रता दी गयी थी, फिर उन्हें पुनः एकांकी कोठरी में पृथक बन्द कर दिया जाता था।

जेल सुधारकों में **सर वाल्टन क्राफ्टन** का नाम अग्रणी है। वे **आयरलैण्ड** के बन्दीगृह के संचालक थे। उन्होनें बन्दीगृह के लिये एक नई प्रणाली बनायी थी, जिसे अंक प्रणाली के नाम से जाना जाता है। इन्होंने बन्दीगृहों की प्रथम, द्वितीय व तृतीय श्रेणीयाँ बना रखी थीं। प्रत्येक अपराधी को उसके व्यवहार, चाल–चलन के आधार पर अंक दिये जाते थे। उन्हें प्राप्त अंकों के आधार पर प्रथम, द्वितीय व तृतीय श्रेणी में रखा जाता था। तृतीय, द्वितीय व प्रथम श्रेणी में क्रमशः अधिक सुविधायें दी जाती थी और प्रथम श्रेणी के अंक प्राप्त करने पर उस बन्दी को छोड़ दिया जाता था।

बन्दीगृह व्यवस्था में सुधार आन्दोलन के परिमाणस्वरूप प्रथम बाल सुधार गृह बाल–अपराधियों को सुधारने के लिये न्यूयार्क के रैन्डाल द्वीप पर बनाया गया। इसके पश्चात् बोस्टन में भी बाल सुधार गृह बनाया गया। इन सुधारगृहों के पश्चात् राज्य द्वारा नियन्त्रित एवं व्यवस्थित सुधार गृह विद्यालय वर्ष 1847 में वेस्टबोरी, मेंसोचुसेट्स में स्थापित किया गया।

इसी प्रकार, इंग्लैण्ड में जान हावर्ड के प्रयासों से वर्ष 1776 में प्रथम बन्दीगृह हेरशाम में स्थापित किया गया। वर्ष 1778 में इस पद्धति को विस्तार देने हेतु एक अधिनियम पारित किया गया। वर्ष 1839 में जेल अनुशासन समिति, लन्दन के सचिव मि. क्राफोर्ड ने पृथक बन्दीकरण हेतु प्रयास कर एक अधिनियम बनवाया। वर्ष 1877 में बन्दीगृह में आने वाले मुलाकाती एवं निरीक्षक बन्दियों की शिकायतें सुने जाने की पद्धति स्थापित की गई। इसी प्रकार वर्ष 1898 में इंग्लैण्ड में कारागार अधिनियम व 1908 में आंग्ल बाल अधिनियम एवं अपराध विरोध अधिनियम बनाये गये।

राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय बन्दीगृह व्यवस्था की वर्तमान स्थितिः–

1. **अमेरिका की बन्दीगृह व्यवस्था की ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः**– प्राचीन समय से लेकर मध्यकालीन युग तक अमेरिका की बन्दीगृह व्यवस्था अत्यन्त अमानवीय एवं बर्बरतापूर्ण होने के कारण सोचनीय थी। अमेरिका में उपनिवेशों में अपराधियों को नृंशस एवं कठोर दण्ड दिये जाते थे। बन्दीगृह अर्थात् कारावास का दण्ड केवल राजनीतिक अपराध के अपराधियों, धार्मिक अपराध के अपराधियों

एवं युद्ध अपराधियों अथवा ऋण न चुकाने वाले अपराधियों को ही दिया जाता था। शेष अपराधियों को कोड़े मारना, दागना तथा खुले आम उन्हें अपमानित करने का दण्ड दिया जाता था। बन्दीगृह में कारावासित बन्दियों को भी कठोर यातनायें तब तक दी जाती थी, जब तक कि वह अपराध स्वीकार न कर ले या ऋण अदा न कर दे। उस समय बन्दीगृह में बन्दियों का जीवन दान पर निर्भर था। कई बन्दियों की तो भूख से भी मृत्यु हो जाया करती थी।

सदरलैण्ड ने इस पर विचार व्यक्त करते हुए कहा कि "वर्तमान समय के स्तर से उन दिनों बन्दीगृहों की स्थिति बहुत ही भयावह थी। बन्दियों का समय बिना किसी श्रम के व्यतीत होता था और वे दान पर निर्भर रहते थे। अपराधियों को सुधारने तक का प्रयास नहीं किया जाता था। यहाँ तक कि धार्मिक सेवाओं का भी अभाव था। इग्लैण्ड की ही तरह यहाँ भी शराब और दुराचार की बुरी आदतें पनपती थीं।"[17]

समयानुसार परिवर्तन होने पर बन्दीगृह की इस प्रकार की दुर्व्यवस्था के विरूद्ध लोकमत तैयार होने लगा तथा इस कठोर एवं यातनात्मक व्यवहार के विरोध में सर्वप्रथम पेन्सेल्वेनिया (Pensylavania) में वर्ष 1682 में आवाज उठाई गई, जिसके परिणामस्वरूप वर्ष 1682 में **पेन्स चार्टर, 1682** पारित हुआ।

पेन्स चार्टर 1682 –

पेन्स चार्टर का मुख्य उद्देश्य बन्दीगृहों की दशा सुधारना एवं बन्दियों के प्रति उदारतापूर्वक मानवीय व्यवहार करना। इस चार्टर की निम्नलिखित विशेषतायें हैं–

(i) बन्दियों को जमानत पर रिहा करने की व्यवस्था की गई;

(ii) सन्देह या त्रुटिवश बन्दी बनाये गये बन्दियों को क्षति के रूप में दुगुनी धनराशि दिलाये जाने का प्रावधान रखा गया;

(iii) बन्दियों को भोजन तथा रहने आदि के सम्बन्ध में कुछ सुविधायें प्रदान की गई;

(iv) अपराधियों को सार्वजनिक स्थल पर जनता के बीच दण्डित किये जाने की प्रथा (इसे 'Pillory' कहा जाता था) पूर्णतः समाप्त की गई।

इसके बाद अमेरिका में बन्दीगृह सुधार पद्धति में निरन्तर विकास होता गया और अपरधियों या बन्दियों के मानवीय व्यवहार पर बल दिया जाने लगा। वास्तव में, वर्ष 1775 के क्वेकर्स (यह एक धार्मिक समुदाय था जिसने धार्मिक सिद्धान्तों के आधार पर बन्दियों के साथ होने वाले अमानवीय व्यवहार का बड़ा

विरोध किया था) आन्दोलन को अमेरिकन बन्दीगृह पद्धति में सुधार प्रारम्भ होने का समय माना जा सकता है। इस समूह के समर्थकों ने बन्दियों के साथ बन्दीगृह में शारीरिक प्रताड़ना न देने की माँग की गई एवं यह भी प्रस्ताव रखा गया कि दोषसिद्ध अपराधी को मृत्युदण्ड के स्थान पर एकान्त कारावास का दण्ड दिया जाये। इसके फलस्वरूप अमेरिका में नई बन्दीगृह पद्धति को लागू कर वहाँ की बन्दीगृह व्यवस्था को सुधारने का प्रयास किया गया। अमेरिकन की बन्दीगृह प्रणाली के अनुसार बन्दियों को दो मुख्य भागों में विभाजित किया गया था; प्रथम, असुधार योग्य गम्भीर बन्दी; एवं, द्वितीय, सुधार योग्य सामान्य बन्दी। असुधार योग्य गम्भीर बन्दियों को किसी भी प्रकार का कार्य देना उचित नहीं समझा गया व उन्हें एकान्त बन्दीगृह में रखना ही उचित समझा गया। वहीं सुधार योग्य सामान्य बन्दियों को दिन के समय श्रम कार्य कराने की पद्धति का प्रारम्भ किया गया।

इसके अतिरिक्त, महिलाओं को पृथक कोठरियों में रखा जाने लगा तथा गम्भीर अपराधिक कृत्य वाले दोषसिद्ध बन्दियों को अलग कोठरियों में रखा जाने लगा एवं उनका कठोर इन्तजाम किया गया। बन्दीगृह में धर्मोपदेशकों की व्यवस्था की गई। इसी समय से बन्दियों से श्रमकार्य कराने के लिये उन्हें पारिश्रमिक दिया जाने लगा।

वर्ष 1773 में कनेक्टिकट ने एक खान खरीद कर उसे बन्दीगृह में बदल दिया। यहाँ अपराधियों को जन्जीरों और धन्नियों से बाँध दिया जाता था। इसी समय फिलाडेलफिया के सभासदों का आन्दोलन बन्दीगृह में सुधार के लिये चला था। फिलाडेलफिया बन्दीगृह की सुधार व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य इन सिद्धान्तों पर आधारित था; पहला, बन्दियों सें दिन में श्रमकार्य लेना होगा; दूसरा, उनके प्रति मानवीय व्यवहार किया जाए। हांलाकि, फिलाडेलफिया के बन्दीगृह सुधारात्मक व्यवस्था से अमेरिका में बन्दीगृहों में सुधार की अच्छी शुरूआत हुई। परन्तु, उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में अमेरिका में हुई राजनीतिक उथल–पुथल तथा आन्तरिक अशान्ति होने के कारण बन्दीगृहों में बन्दियों की संख्या अधिक होने के कारण उन पर नियन्त्रण रखना कठिन हो गया था। साथ ही प्रशासनिक अव्यवस्था बढ़ने के कारण बन्दीगृहों के सुधार में गिरावट आई। अतः आदर्श बन्दीगृहों को स्थापित करने के लिये पेन्सेलवेनिया तथा आबर्न एवं अन्य पद्धतियों को अपनाया गया।

(I) पेन्सेलवेनिया पद्धतिः– इस पद्धति का प्रयोग सर्वप्रथम वर्ष 1790 में वालनट स्ट्रीट बन्दीगृह (Walnut street jail) में किया गया था। यहाँ केवल राजकीय अपराधी रहते थे। प्रत्येक बन्दी को अलग एकान्त कोठरी में रखा जाता था। एकान्त कारावासी जीवन की असहनीय यातनाओं का उद्देश्य था कि बन्दी एकान्त में रहकर स्वयं के द्वारा किये गये अपराधिक

कृत्य पर गम्भीरतापूर्वक आत्मचिंतन कर सके व स्वयं की अपराधिक प्रवृत्ति का त्याग कर दे। इनसे कार्य नहीं कराया जाता था। वर्ष 1828 में इस प्रणाली अर्थात् पेन्सेलवेनिया पद्धति को अन्य जेलो में भी अपनाया जाने लगा। इस पद्धति का मुख्य उद्देश्य अपराधियों को मानसिक कष्ट पहुँचाना था। इन पर अनेक प्रकार के नियन्त्रण थे, जैसे, कारावासियों को मित्रों, सगे–सम्बन्धियों या मित्रों आदि से मिलने की अनुमति नहीं थी। वे केवल बार्डन धर्मोपदेशक या सामाजिक कार्यकर्ता से बात कर सकते थे। इससे अपराधी मानसिक रूप से विक्षिप्त हो गये थे। इस पद्धति के परिणाम अच्छे न होने के कारण यह पद्धति अधिक दिनों तक नहीं चल सकी और उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में लगभग वर्ष 1913 में इसे समाप्त कर दिया गया।

(II) आबर्न कारागार व्यवस्था या आबर्न पद्धति – पेन्सेलवेनिया पद्धति की विफलता के पश्चात् आबर्न पद्धति लागू की गई। इसमें पेन्सेलवेनिया पद्धति के दोषों को थोड़ा सुधार कर बनाई गयी। यह पद्धति सर्वप्रथम न्यूयार्क राज्य में वर्ष 1818–19 में प्रारम्भ की गई थी। इस पद्धति में बन्दियों को उनके द्वारा किये गये अपराधिक कृत्यों की गम्भीरता एवं प्रकृति के अनुसार पृथक किया जाता था। दिन में सभी कारावासी एक साथ कार्य करते थे और रात में पृथक–पृथक पूर्ण एकान्त में सोते थे। प्रारम्भ में इस बन्दीगृह में केवल घोर अपराधयियों को रखा जाता था। इस बन्दीगृह में भी बन्दियों को परिवार के सदस्यों व अन्य किसी व्यक्ति से मिलने पर पाबन्दी थी।

आबर्न व्यवस्था का मूल सिद्धान्त बन्दियों को दिन में पूर्ण मौन रखकर कार्य करवाना तथा रात्रि में एकान्त में पृथक रखना था। इसमें ऐसे अपराधियों को रखा जाता था जो श्रम कार्य कर स्वयं में सुधार कर सकें। बन्दियों को दिन में श्रम पर लगाने से वे शारीरिक व मानसिक दृष्टि से स्वस्थ रहें, ऐसा माना जाता था और मौन इसीलिये रखवाया जाता था कि वे एक–दूसरे से वार्तालाप एवं सम्पर्क में आकर कैदी बिगड़ न पाये। परन्तु, यह मौन बन्दियों के लिये अमानवीय एवं बर्बरतापूर्ण था। सुधार में बाधक था। बन्दीगृह के वार्डन भी बन्दियों से बात नहीं करते थे। इस प्रकार वहाँ उनका जीवन समाप्त प्राय हो जाता था। इस बन्दीगृह से रिहा होने के लिये उन्हें तीन डॉलर एवं सीख के किये कुछ सलाह देकर छोड़ दिया जाता था।

इस पद्धति में व्यवहार सम्बन्धी नियम भी बनाये गये थे। इसमें अनेक परिवर्तन करने में यह प्रणाली सफल नहीं हो पायी। इस प्रकार आबर्न पद्धति के पश्चात् भी अमेरिका की बन्दीगृह व्यवस्था अनेक सुधारों के दौर

से गुजरती रही और अनुपयोगी व्यवस्था समाप्त होती गयी। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक अमेरिका की बन्दीगृह दण्ड व्यवस्था में परिवर्तन के पर्याप्त सुधार हो चुके थे। जेल के अधिकारी भी प्रशिक्षित होते थे। बन्दीगृहों में रह रहे व्यक्तियों को मनोरंजन, स्वास्थ्य, भोजन, चिकित्सा एवं रहने के स्थान की सुविधायें दी गयी। इस समय बन्दियों को परिवारजनों, सम्बन्धियों आदि से मिलने की सुविधा दी गई तथा पत्राचार की व्यवस्था भी गई। जेल में पढ़े–लिखे अपराधी बन्दियों के लिये पुस्तकालय की स्थापना की गई। बन्दियों को नैतिक शिक्षा का प्रशिक्षण दिया जाने लगा।

(III) एल्मिरा पद्धति– आबर्न पद्धति में बन्दियों को एकान्त में रखने व धर्मोपदेश द्वारा उन्हें सुधारने के प्रयास की यह पद्धति वर्ष 1870 तक चली। इसके पश्चात् समयानुसार परिवर्तन हुये। अमेरिका में उपचारात्मक पद्धति का विकास इसी **एल्मिरा–सुधार गृह** की न्यूयार्क में स्थापना से माना जाता था। वर्ष 1876 में एल्मिरा सुधार गृह में बन्दियों के लिये शिक्षण, उत्पादन कार्य, अनियत दण्ड, कारावकाश (परौल) तथा सद्व्यवहार के लिये छूट का प्रावधान रखा गया। अर्थात्, इस प्रणाली में बन्दियों को कोठरियों में बन्दी बनाकर रखने के स्थान पर उन्हें औद्योगिक प्रतिष्ठित पर काम पर लगाया गया, जिसके परिणामस्वरूप बन्दी मानसिक एवं शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ रहने लगे तथा दण्ड की अवधि समाप्त होने पर वे पुनर्वास करने लगे। वर्ष 1930 में कारावास के समय से बन्दियों के व्यक्तिकरण पर जोर देने के कारण उन्हें आयु, लिंग या अपराध की गम्भीरता के आधार पर वर्गीकृत न कर, उनको पुनर्वासित होने की सम्भावना के आधार पर वर्गीकृत किया जाने लगा। अपराधियों के लिये स्वागत या अभिग्रहण केन्द्र (Reception Centre) वर्ष 1933 में इलियोनिस (Illionis) में खोला गया। इस केन्द्र में अपराधियों को सुधारने पर विशेष ध्यान दिया गया। इस समय बन्दीगृहों के कमरे हवादार एवं पर्याप्त रोशनी की व्यवस्था वाले थे। इसमें बन्दियों की साफ–सफाई, स्वास्थ्य, लिखाई–पढ़ाई की ओर समुचित ध्यान दिया जाता था। इसके अतिरिक्त, व्यायाम, खेलकूद व मनोरंजन के पर्याप्त साधन उपलब्ध थे। इस समय एकान्त कारावास को पूर्णतः समाप्त कर बन्दियों के जीवन को उनके समाज में व्यतीत होने वाले जीवन के अन्तर को कम करने का प्रयास किया जाता था।

वर्तमान समय में अमेरिका में बन्दीगृहों की दशा अत्यन्त संतोषजनक है। अब अमेरिका के बन्दीगृहों में बन्दियों का वर्गीकरण करके उन्हें आवश्यकतानुसार उपचारात्मक पद्धति से सुधारने का प्रयास किया जाता है। बन्दीगृहों में बन्दियों को सुधारने हेतु विशेषज्ञों की राय तथा सेवायें ली जाती है। अमेरिका में बन्दीगृहों में महिला अपराधी, सामान्य अपराधी,

अभ्यस्त अपराधी व किशोरवय (बाल) अपराधी आदि के लिये पृथक–पृथक आवास एवं उपचार की व्यवस्था है।

कुछ समय पूर्व अमेरिका की बन्दीगृह व्यवस्था पर किये गये अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि इनके बन्दियों की संख्या इतनी अधिक है जो कि कल्पना से परे है। प्रेसिडेन्ट जॉनसन के समय में कार्यरत **अटार्नी जनरल रेम्से क्लार्क** ने अमेरिका के बन्दीगृहों के विषय में टिप्पणी करते हुये कहा कि ''यह खेद का विषय है कि जो अपराधी बन्दीगृह भेजे जाते हैं उनमें से आधे से अधिक पुनः अपराध करके बन्दीगृह में वापस लौटते हैं। इन बन्दीगृहों की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। इसमें बन्दियों को एक–दूसरे से हाथापाई, लैंगिक शोषण, ब्लैकमेल आदि की वारदातें नित्य–प्रति होती रहती हैं। इस सम्बन्ध में लियोन रेडझिनोविझ ने कहा कि कड़े नियन्त्रण का अभाव तथा बन्दीगृह प्रबन्धकों की कथनी में अन्तर के कारण इन बन्दीगृहों में हिंसा भड़क उठती है, जिसके परिमणास्वरूप बन्दी विद्रोह पर उतारू हो जाते हैं।"[18]

2. **इंग्लैण्ड की बन्दीगृह व्यवस्था का ऐतिहासिक विकास**– मानवता में बर्बरता से सभ्यता की ओर जो अभियान किया है, सम्भवतः प्रारम्भिक काल में सभी स्थानों पर सभी मनुष्यों के सभी कार्यों में लगभग समानता रही ही होगी। दूसरी परिणाम यह है कि सभ्यता के विकास में लगभग हर राष्ट्र में समानता पायी जाती है। इंग्लैण्ड में भी अपराधियों के प्रति कठोर एवं अमानवीय व्यवहार किया गया। यूरोप में अमानवीय कठोर दण्ड का विरोध सबसे प्रथम प्रसिद्ध अपराधशास्त्री श्री बकारिया ने किया था।

अट्ठारहवीं शताब्दी में इंग्लैण्ड के बन्दीगृहों का वर्णन करते हुये **श्री जान हावर्ड** ने लिखा है कि उस समय बन्दीगृह सीड़नयुक्त, कीड़े–मकोड़े से भरे हुये, भ्रष्टाचार तथा व्याभिचार के अड्डे थे। बन्दियों की इस दुर्दशा को देखकर धर्म प्रचार द्वारा बन्दीगृह की दशाओं में सुधार की माँग की गई। साथ ही, बन्दीगृहों में रह रहे बन्दियों के प्रति सहानुभूति की माँग भी की।

इंग्लैण्ड में बन्दीगृहों के साथ–साथ बन्दियों की स्थिति भी दयनीय थी। वहाँ पुरूष, महिला, वृद्ध, सभी प्रकार के अपराधियों को एक साथ भर दिया जाता था। बन्दियों को स्वयं के खर्च के लिये भी शुल्क देना पड़ता था, न देने की स्थिति में वे भूख से मर भी जाते थे। वहीं साधन–सम्पन्न अपराधियों को सभी सुविधायें मिल जाती थी।

श्री डोनाल्ड टैफ्ट ने इग्लैण्ड के बन्दीगृहों की स्थिति पर लिखा है कि "इन स्थानों पर बन्दियों तथा उनके परिवारों को परीक्षण के दौरान उन्हीं के खर्चों पर महीनों और वर्षों रखा जाता था। यदि उनके पास साधन होते थे, तो

उनके भोजन की अच्छी व्यवस्था होती थी। अन्यथा, गरीब तो वहाँ भूख से ही मर जाते थे। बाद में, रविवार के दिन सुबह से बन्दी खिड़कियों के बाहर भीख के झोले लटका देते थे।"

आइब्स ने एक मठवासी का उदाहरण दिया है कि 'मैंनें बन्दियों के दुर्भाग्य भी देखे हैं। हे परमात्मा! उनका आवास श्वानों से भी बहुत बुरा है। जहाँ तक उनके गोश्त का सवाल है, वह श्वानों को दिए जाने से भी अति गन्दा है और ईश्वर तू जानता है कि वह उनके लिये पर्याप्त भी नहीं है।'

सोलहवीं शताब्दी के मध्य में वहाँ के राजा के महल ब्राइडवेल को जेल के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। इसके पश्चात् इंग्लैण्ड में सुधार के युग का आरम्भ हुआ, किंतु अट्ठारहवीं शताब्दी तक वहाँ के कारावासों की दशाओं में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। अट्ठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इंग्लैण्ड में धर्म की प्रधानता थी तथा बन्दीगृह व्यवस्था धर्मगुरूओं के ही अधीन रही। गुरूओं ने धर्म के आधार पर प्रतिपादित किया कि दण्ड का उद्देश्य अपराधी के प्रति प्रतिशोध की भावना न होकर, उसे उसके द्वारा किये गये कुकृत्य के लिये पश्चाताप का अवसर देना है। इसी कारण, वर्ष 1778 में हरशेम नामक स्थान पर पेनिटेन्शियरी (सुधार गृह) पद्धति लागू की गई; जिसमें अपराधियों को सुधारने के लिये दिन में श्रम–कार्य एवं रात्रि में एकान्तवास तथा धार्मिक उपदेशों पर बल दिया जाता था। बन्दियों के स्वास्थ्य की स्थिति को ठीक रखने के लिये एवं उनकी नीरसता को कम करने के लिये दिन में श्रम कार्य करवाया जाता था, जिससे की उनके भीतर निराशा एवं कुण्ठा प्रवेश न कर सके। इसके अतिरिक्त, धर्मोपदेश एवं रात्रि में एकान्तवास उन्हें आत्मचिंतन एवं उनके द्वारा किये गये अपराधिक कृत्यों पर पश्चाताप करने का पर्याप्त अवसर उपलब्ध करवाने के लिए होता था।

इन सबके बाद भी इंग्लैण्ड में अपराधिक कृत्यों में दण्ड के लिये आये बन्दियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती रही। युद्ध अपराधियों एवं सामुद्रिक अपराधियों को दीर्घाओं में रखा जाता था और उनसे खदानों में भी कार्य कराया जाता था। उन्हें कार्य के स्थानों पर जानवरों की तरह बाँधकर रखा जाता था।

3. ब्रिटेन में बन्दीगृह व्यवस्था में सुधार के प्रारम्भ का ऐतिहासिक विकासः– ऐसा माना जाता है कि इंग्लैण्ड में हुये बन्दीगृह की व्यवस्था में सुधार का प्रारम्भ ब्रिटिश संसद द्वारा वर्ष 1778 में प्रतिपादित अधिनियम से हुआ था। इस अधिनियम में बन्दीगृह में बन्दियों को अनेक सुविधायें उपलब्ध कराई गई थी तथा बन्दीगृहों की कार्य पद्धति को प्रारूपित किया था। इसमें बन्दीगृहों में दण्ड की अवधि बीता रहे बन्दियों के पुनर्वास की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया गया, जिससे बन्दियों में कुण्ठा व निराशा की भावना नहीं आये। लगभग वर्ष 1833 से बन्दियों को निश्चित अन्तरालों पर परिवार के सदस्यों या रिश्तेदारों

से कुछ समय मिलने की सुविधा प्रदान की गई तथा बन्दीगृहों की व्यवस्था का अवलोकन करने हेतु बाहरी व्यक्तियों को निश्चित किया गया। इसके पश्चात् वर्ष 1894 में ग्लेडस्टोन समिति की सिफारिश पर बन्दीगृहों में अनुत्पादक (unproductive) कार्यों को समाप्त कर दिया गया तथा बन्दियों के समूह बनाकर उनसे उत्पादक (productive) श्रम कार्य करवाया जाने लगा। इस समय अपराधी बन्दियों का वर्गीकरण तथा बाल–अपराधियों के लिये सुधारगृह की व्यवस्था की गई। वर्ष 1898 में इंग्लैण्ड में **ग्लेडेस्टोन समिति की सिफारिश पर बन्दीगृह अधिनियम, 1898 (Prisoner Act, 1898**) पारित किया गया तथा वर्ष **1908 में बाल अधिनियम** भी पारित किया गया।

सत्रहवीं एवं अट्ठारहवीं शताब्दी में उपद्रव होने से वहाँ बन्दियों की संख्या में वृद्धि हुई और बन्दियों की संख्या इतनी बढ़ी की उन्हें बन्दीगृहों में रखना असम्भव हो गया। अतः उन्हें देश निकाला की पद्धति अपनायी गयी। इस पद्धति में बन्दियों को इंग्लैण्ड के उपनिवेशों में भेजा जाता था। अधिकतर बन्दी अमेरिका में बसाये गये थे, जो आजीवन देश निकाला के दण्ड से दण्डित नहीं थे, वे अवधि समाप्त होने पर स्वदेश आ सकते थे।

आस्ट्रेलिया के उपनिवेश बनने से आस्ट्रेलिया में मजदूरों की समस्या व इंग्लैण्ड की बन्दीगृह की समस्या हल हो गई तथा इंग्लैण्ड में अपराधियों की संख्या भी कम हो गई। देश निकाला का दण्ड बन्दियों के लिये कठोर श्रम के दण्ड जैसा ही रहता था। देश निकाला के दण्ड से और भी कई समस्याओं उत्पन्न हो गई। कई बन्दी दण्ड की अवधि समाप्त होने के पश्चात् पुनः लौटने के स्थान पर वहीं बसना चाहते थे जिससे स्वतन्त्र अंग्रेज व्यवसायियों, जो वहाँ बसे थे, पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा था और निष्कासन व्यय भी बहुत था। इस कारण 1852 में इस प्रथा को समाप्त कर दिया गया।

वर्ष 1952 में इंग्लैण्ड एवं वेल्स के बन्दीगृह आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष सर आर्थर वालर ने इन्टरनेशनल पैनल व पेनिटेन्शियरी कमीशन में यह सुझाव रखा कि सभी सदस्य देश के बन्दियों तथा बन्दीगृह के प्रशासन हेतु कुछ सामान्य नियम तैयार किये जायें। कांग्रेस ने यह कार्य उन्हें सौंपा। अतः उन्होंने दो अन्य विशेषज्ञों की सहायता से कारागारों के लिये न्यूनतम मानक नियमों (Standard Minimum Rulesaa) का प्रारूप तैयार किया। इन न्यूनतम नियमों को द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद राष्ट्र संघ ने अपनाया जिसके आधार पर आगे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बन्दीगृह व्यवस्था में सुधार के कार्य का मार्ग प्रशस्त हुआ।[19]

बीसवीं शताब्दी के महान बन्दीगृह सुधारक **सर लाइनेल फॉक्स** का विशेष उल्लेखनीय योगदान है। सर लाइनेल फॉक्स (Lionel Fox) वर्ष 1925 से वर्ष 1954 तक **ब्रिटेन बन्दीगृह आयोग (British Prison Commission)** में

सचिव के पद पर रहे, उसके पश्चात् वर्ष 1942 से 1960 इस आयोग के अध्यक्ष रहे। इन्होंने बन्दीगृह व्यवस्था में मुख्यतः दो बातों पर विशेष रूप से ध्यान दिया– प्रथम, प्रशासकों को बन्दीगृहों में हुये सुधार से जनता को अवगत करते रहना चाहिये, जो वार्षिक प्रतिवेतन एवं समय–समय पर जनता के प्रतिनिधियों को बन्दीगृह में निरीक्षण हेतु आमन्त्रित करके किया जाना चाहिये, जिससे बन्दीगृहों के कार्य–कलापों के सम्बन्ध में जनता के मन में संशय न रहे। इस उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये उन्होंने वार्षिक प्रतिवेदन प्रकाशित किये जाने का सुझाव दिया तथा वर्ष 1960 में प्रिज़न सर्विस जर्नल अर्थात् बन्दीगृह सेवा पत्रिका का प्रारम्भ किया।

द्वितीय, बन्दीगृह के दण्ड व्यवस्था की प्रभावोत्पादकता के लिये यह आवश्यक है कि दण्ड के विभिन्न सिद्धान्तों का समन्वय किया जाये। उनके अनुसार, दण्ड में प्रतिरोधात्मकता के प्रभाव से दण्ड की कठोरता नहीं बल्कि निश्चितता होना चाहिये और बन्दीगृह व्यवस्था की यातनाओं की अपेक्षा बन्दीगृह की दण्ड निश्चितता ही बन्दी पर उचित प्रतिरोधक प्रभाव रखती है।

सर लाइनेल फॉक्स ने बन्दीगृह व्यवस्था सम्बन्धी इन सुझाव को **ब्रिटेन में अपराधिक न्याय अधिनियम, 1948 (Criminal Justice Act, 1948)** द्वारा क्रियान्वित किया गया। इसके अतिरिक्त, अपने अध्यक्षीय कार्यकाल में इन्होंने खुले कारागारों की संख्या एक से बढ़ाकर तेरह कर दी, जिनमें से तीन केवल महिलाओं के लिये थे। इसके अतिरिक्त, खुले ब्रोर्स्टल्स की संख्या एक से बढ़ाकर पन्द्रह कर दी गई, जिसमें से दो केवल बालिकाओं के लिये थे। वर्ष 1953 में निवारक नजरबन्द कानून के अन्तर्गत दीर्घकाल के लिये बनाये गये बन्दियों के लिये ब्रिस्टोल में एक 'होस्टल' स्थापित किया गया। इंग्लैण्ड में बन्दियों के लिये होस्टल पद्धति का प्रारम्भ हुआ। इसमें बन्दियों को रिहाई से कुछ दिन पूर्व ही होस्टल में रहने की सुविधा दी जाने लगी। जहाँ उन्हें दिन में सामान्य व्यक्ति की तरह कार्य करने की पूरी छूट थी, परन्तु रात के समय 'होस्टल' में उनकी उपस्थिति अनिवार्य थी। इस होस्टल पद्धति का उद्देश्य अपराधी को मुक्ति से पूर्व समाज में रहने का अनुभव कराना था। बाद में यह सुविधा सभी दीर्घकालीन दण्डावधि वाले बन्दियों पर लागू कर दी गई। वर्ष 1962 तक बन्दियों के लिये इस तरह के सोलह होस्टल थे, जिनमें से दो केवल महिलाओं के लिये थे। सर फाक्स अनेक वर्षों तक अन्तर्राष्ट्रीय दाण्डिक एवं शोध कारागार आयोग से सम्बद्ध रहे। उन्होंने इस क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उल्लेखनीय कार्य किया है।

इंग्लैण्ड में अपराधिक न्याय अधिनियम, 1982 द्वारा बन्दियों के लिये पैरोल (कारावकाश) सम्बन्धी नियमों में ढील दी गई, जिससे बन्दीगृहों में बन्दियों की संख्या कम की जा सके। वर्तमान में, इंग्लैण्ड में बन्दियों के द्वारा उनकी दण्ड

की अवधि का एक–तिहाई दण्ड या बारह मास का दण्ड, या इनमें जो पहले पूर्ण हो, पूर्ण करने पर पैरोल पर रिहा कर दिया जाता है।

वर्तमान समय में इंग्लैण्ड की दण्ड व्यवस्था सुधारात्मक सिद्धान्तों पर आधारित है तथा इंग्लैण्ड में बन्दीगृहों का प्रशासन महिला एवं पुरूषों दोनों ही प्रकार के प्रशिक्षित एवं योग्य अधिकारी के हाथ में है। इन बन्दीगृहों में बन्दियों को शिक्षा, मनोरंजन, भोजन, चिकित्सा, रहने की दशा आदि की पर्याप्त सुविधायें दी जाती हैं। जेल अधिकारी बन्दियों को एक अच्छा भावी नागरिक बनाने के लिये हर सम्भव प्रयास करते हैं। यही उनका उद्देश्य एवं मानव धर्म है। अब इंग्लैण्ड की बन्दीगृह व्यवस्था दण्ड की बजाय उपचार का उदेश्य रखती है।

4. **रूस की बन्दीगृह व्यवस्था का ऐतिहासिक विकासः**– रूस में बन्दीगृह को **'मिसेटा लिस्चेंजा स्वाबोडी' (Miseta Lischenja Svobodi)** कहा जाता है, जिसका अर्थ है, **'प्रत्याहृत स्वतन्त्रता' (Withdraw Freedom)**। रूस में बन्दियों के लिये खुली बस्तियों (Open coloniesaa) की व्यवस्था है।

प्रसिद्ध रूसी दण्डशास्त्री **लेन्कन वॉन कोएरबर (Lenkon Von Koerber)** ने अपनी पुस्तक 'सोवियत रशिया फाइट्स क्राइम' में रूस की बन्दीगृह व्यवस्था का सुन्दर वर्णन करते हुये लिखा है कि रूस के बन्दीगृहों में अपनाई गई सुधार पद्धति बन्दियों के पुनर्वास में प्र्याप्त सहायता करती है; बन्दीगृह का दण्ड कभी भी एक वर्ष से कम का नहीं होता जिससे कि बन्दी को बन्दीगृह में सुधरने का उचित अवसर प्राप्त हो सके; बन्दियों को बन्दीगृह में सदाचार के लिये उदारता की छूट (दण्डावधि में दो दिवस के अच्छे कार्य के लिये तीन दिवस की छूट दी जाती है) दी जाती है तथा दण्डावधि पूर्ण होने से पूर्व ही रिहा कर दिया जाता है; बन्दीगृह में बन्दियों को श्रम कार्य के लिये नियमित मजदूरी दी जाती है ताकि उनके परिवार एवं बच्चों को आर्थिक समस्या उत्पन्न न हो। बन्दीगृह में अर्जित मजदूरी का दो–तिहाई भाग उसे तत्काल दे दिया जाता है एवं शेष एक–तिहाई जमा करके रिहाई के समय दिया जाता है, जिससे उसे बन्दीगृह से मुक्त होते ही जीवन–निर्वाह की समस्या न हो। रूस का बन्दीगृह प्रशासन स्वायत्त शासन पद्धति पर नियोजित रहता है।[20]

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बन्दीगृह में सुधार के प्रयास

अन्तर्राष्ट्रीय दाण्डिक एवं सुधारागार आयोग के वर्ष 1929 में बन्दीगृहों में दण्ड की अवधि भोग रहे बन्दियों हेतु न्यूनतम मानक नियम बनाने का प्रयास किया जिन्हें सभी सदस्य देशों में एक समान रूप से लागू करना प्रस्तावित था। चूँकि सभी देशों की भौगोलिक, राजनीतिक, भौतिक व सांस्कृतिक विभिन्नताओं का कारण इसमें सफलता नहीं मिली। इसके पश्चात् राष्ट्र संघ ने वर्ष 1949 में अपराध निवारण तथा अपराधियों के उपचार सम्बन्धी प्रथम अधिवेशन के न्यूनतम

मानकों का प्रारूप तैयार किये, जिसके आधार पर आधुनिक बन्दीगृह में सुधार किये जाने थे।

इन नियमों का मुख्य उद्देश्य बन्दियों को बन्दीगृह में कारावधि की यातनाओं को कम करना और बाहरी सामान्य जीवन के बीच के अन्तर को कम करना है। यहाँ बन्दियों के पुर्नवास को अधिक महत्व दिया गया, जिससे वे बन्दीगृह में दण्ड की अवधि समाप्त होने के पश्चात् सामान्य नागरिक की भाँति जीवन व्यतीत कर सकें। अपराधियों को अमानवीय दण्ड के स्थान पर उपचार पर बल दिया जाने लगा।

वर्ष 1955 में जेनेवा अधिवेशन में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने प्रस्ताव पारित किया कि **अपराध निवारण तथा अपराधियों के उपचार** पर अधिवेशन प्रत्येक पाँच वर्ष में विश्व के विभिन्न देशों में आयोजित किये जायेंगे। इस प्रकार, तब से अधिवेशन निम्नलिखित देशों/स्थानों में आयोजित किये गये हैंः–

(i) प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन (जेनेवा, स्वीट्जरलैण्ड), 1955;

(ii) द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन (लन्दन, ब्रिटेन), 1960;

(iii) तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन (स्टॉकहोम, स्वीडन), 1965;

(iv) चौथा अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन (क्योटो, जापान), 1970;

(v) पांचवा अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन (जेनेवा, स्वीट्जरलैण्ड), 1955;

(vi) छठवा अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन (केराकास, वेनेजुएला), 1980;

(vii) सातवां अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन (मिलान, इटली), 1985;

(viii) आठवां अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन (हवाना, लेटिन अमेरिका), 1990;

(ix) नवां अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन (कायरो, इजिप्ट), 1995;

(x) दसवां अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन (वियना, आस्ट्रिया), 2000;

(xi) ग्यारहवां अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन (बैंकाक, थाईलैण्ड), 2005;

(xii) बारहवां अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन (सेल्वेडोर, ब्राजील), 2010।[21]

उपरोक्त अधिवेशनों का उद्देश्य बन्दियों के लिये उपलब्ध उपचारात्मक सेवाओं का सामयिक मूल्यांकन कर, उन्हें अधिक प्रभावशाली बनाना है। ग्यारहवें अधिवेशन में आयोजन के पूर्व यह निर्णय लिया गया कि इस पंचवर्षीय अधिवेशन का शीर्षक बदलकर **'अपराध निवारण एवं अपराधिक न्याय'** रखा जाये। अतः, उस अधिवेशन में इसके शीर्षक में **'अपराधियों के उपचार'** शब्दों के स्थान पर **अपराधिक न्याय** शब्दों को प्रतिस्थापित किया गया।

अपराध निवारण एवं अपराधियों के उपचार से सम्बन्धित संयुक्त राष्ट्रसंघ के उपरोक्त प्रयासों के फलस्वरूप राष्ट्रों ने अपने बन्दीगृहों के नियमों में परिवर्तन किये, जैसे– वर्ष 1945 में स्वीडन ने संविधान के अनुच्छेद 24, अर्जेन्टाइना ने संविधान के अनुच्छेद 18 तथा यूगोस्वालिया ने संविधान के अनुच्छेद 3 आदि, जिससे कि उपचारात्मक दण्ड प्रणाली के सिद्धान्तों के अनुसार कार्य किया जा सके। इसके द्वारा अपराधियों को बन्दीगृह में सुधार कर उन्हें पुनः अपराध करने से रोकना था।

वर्तमान में बन्दीगृहों में बन्दियों की संख्या कम करने के अनेक सुझाव दिये हैं। कई लोगों का सुझाव है कि पीड़ित व्यक्ति को अपराधी से क्षतिपूर्ति एवं न्यायालय का खर्चा दिलाकर छोड़ देना चाहिये, जबकि ज्ञात हो कि ऐसा केवल दीवानी मामलों में करना उचित होगा न के अपराधिक मामलों में। इसके अतिरिक्त, एक सुझाव और दिया गया कि बन्दीगृह भेजने के स्थान पर अपराधी के सिविल अधिकार, जैसे– नागरिकता का अधिकार, नियोजन या पेंशन का अधिकार, वोट देने का अधिकार आदि को निलम्बित किया जाना चाहिये जिससे कि उसे स्वयं के द्वारा किये गये अपराधिक कृत्य पर हमेशा पछतावा रहे।

इसी प्रकार, नार्वे तथा स्वीडन ने बन्दियों को खुले शिविरों में रखना अधिक प्रभावशील माना। इंग्लैण्ड और कनाडा के कारावासियों को अपने मरणोन्मुख परिवारजनों की मृत्यु के समय उनके साथ रहने की अनुमति दी जाती है। जापान में बन्दियों के पुर्नवास के लिये पैरोल को सर्वोत्तम साधन माना गया है।

इसी प्रकार, भारत में अन्तर्राष्ट्रीय न्यूनतम मानक नियमों के अनुपालन में बन्दीगृहों में रह रहे बन्दियों के लिये खुले शिविरों का समर्थन किया गया तथा स्थापित किये गए। साथ ही, परिवीक्षा एवं पैरोल के नियमों को और अधिक उदार बनाया गया। किशोर बाल–अपराधियों के लिये अधिनियम पारित किया गया। **बाल न्याय अधिनियम, 1986** मुख्यतः इन्हीं न्यूनतम मानक नियमों पर आधारित था, जिसमें और अधिक सुधार करके उसे **किशोर न्याय (बालक की देखरेख और सुरक्षा) अधिनियम, 2000** में नये कानून के रूप में लागू किया गया है।

भारत की बन्दीगृह व्यवस्था का ऐतिहासिक विकास

भारत में अति प्राचीनकाल से सामाजिक न्याय को विशेष महत्व दिया जाता रहा है। सामाजिक न्याय प्राप्त करने के लिये तथा अपराधों के दमन के लिये सदैव दण्ड की व्यवस्था की जाती थी। प्राचीन भारत में भी एक सुनियोजित बन्दीगृह व्यवस्था अस्तित्व में होने के प्रमाण प्राचीन ग्रन्थों में मिलते हैं। लगभग प्रत्येक काल में बन्दीगृह और कारावास दण्ड के महत्वपूर्ण साधन रहे हैं।

बृहस्पति ने अपराधियों को बन्द बन्दीगृहों में रखे जाने पर जोर दिया था, परन्तु मनु ने इसका समर्थन नही किया। भारत में बन्दीगृहों के ऐतिहासिक विकास का पूर्ण वर्णन करने के लिये निम्नलिखित कालगत का विवेचन करना उचित होगा–

(I) वेदकालीन बन्दीगृहः– प्राचीन काल के वैदिक काल में न्याय एवं अपराधी के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिये केवल वेद ही एकमात्र साधन है। वेद साहित्य में वर्तमान दण्ड संहिता जैसा कुछ उपलब्ध नहीं था। इस काल में न्याय का स्थान सर्वोपरि था। न्याय करने को ईश्वर का कार्य करना माना जाता था। इस समय स्वर्ग–नरक की कल्पना को महत्वपूर्ण माना जाता था। मरने के पश्चात् किये गये अच्छे व बुरे कार्यों के अच्छे–बुरे परिणामों की आशा की जाती थी। इस काल में कोई जेल या बन्दीगृह की तरह कुछ नहीं था, परन्तु एक अलौकिक बन्दीगृह अर्थात् नरक की धारणा महत्वपूर्ण थी। उस समय यह माना जाता था कि बुरे कार्य या अपराध करने पर मृत्यु के पश्चात् उन्हें नर्क मिलता है और नर्क में तरह–तरह की यातनाएं भोगनी पड़ती हैं।

(II) स्मृतिकालीन बन्दीगृहः– इस काल में मौलिक दण्ड संहिता का निर्माण हो गया था, इस काल में अपराधों व उनके लिये दिये जाने वाले दण्ड का परिचय मनुस्मृति में मिलता है। मनु ने धर्म एवं अधर्म में अन्तर किया था। सामाजिक एवं मानव हित करने वाले कार्यों को धर्म माना जाता था तथा अकल्याणकारी कार्यों को अधर्म माना जाता था। अधर्म का आशय अपराध से था। भिन्न–भिन्न प्रकार के अधर्मी होते थे अथवा अपराधों के लिये अलग–अलग दण्डों की व्यवस्था की गई थी। इस काल में धर्म, जाति, वर्ण तथा वर्ग के सापेक्ष दण्डों की व्यवस्था थी। इस काल में बन्दीगृहों एवं कारावास की व्यवस्था तो थी परन्तु बन्दीगृहों के प्रकार उपलब्ध नहीं थे। मनु बन्दियों को बन्द बन्दीगृहों में रखे जाने की नीति के विरोधी थे।

(III) महाकाव्य युग में कारागृह का इतिहासः– भारत के धार्मिक ग्रन्थों रामायण तथा महाभारत के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस युग में भी बन्दीगृह की व्यवस्था थी। महाभारत में देवकी और वासुदेव को राजा कंस ने बन्दीगृह में ही रखा था। जहाँ भगवान श्री कृष्ण का जन्म हुआ था। यह इस बात का उल्लेख करता है कि उस युग में बन्दीगृहों की व्यवस्था थी। रामायण में रावण का बन्दीगृह अत्यन्त प्रसिद्ध था। अतः उस युग में भी बन्दीगृह की व्यवस्था थी। इस प्रकार दोनों महाकाव्यों में बन्दीगृहों का स्पष्ट उल्लेख किया गया है।

(IV) पूर्व बौद्धिक युग में कारागृहों का इतिहासः– पूर्व बौद्धिक युग में भी बन्दीगृहों के अस्तित्व को पढ़ा गया है। उस समय के बन्दीगृह अत्यन्त

कष्टकारक होते थे। उस समय अपराधियों को बन्दीगृह में बाँध कर रखा जाता था और उन्हें वजन के नीचे दबाया जाता था। **डॉ. सेठना** ने पूर्व बौद्धिक युग के समय के बन्दीगृहों का वर्णन करते हुये लिखा है कि “भारत वर्ष में युद्ध के समय के पूर्व से बन्दीगृह भयावह होते थे। उस समय बन्दीगृह में बन्द कोठरियां होती थी, उसमें भी बन्दियों को वजनी जंजीरों एवं भारी वजनी सामानों से बाँधकर रखा जाता था और उन्हें किसी भी साधारण अपराध के लिए भी कोड़े लगाये जाते थे।

(V) ऐतिहासिक युग के बन्दीगृह का इतिहासः— कौटिल्य ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ ‘अर्थशास्त्र’ में उल्लेख किया है कि अभी से लगभग 3000 वर्ष पूर्व चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल में पुराने किलो अथवा शासक द्वारा किले के सुदृढ़ बुर्जों का उपयोग बन्दीगृहों के रूप में किया जाता था और बन्दी बनाये गए अपराधियों को लोहे की जंजीरो में जकड़कर इन बन्दीगृहों में रखा जाता था। चाणक्य ने राजा को यह परामर्श दिया कि आम सड़क पर बन्दीगृहों को बनाया जाया जिससे राह में चलने वाले लोग बन्दियों से भयभीत होंगे और उन्हें दिये गये दण्डों को देख, गम्भीर अपराध नहीं करेंगे। उस समय दण्ड विधान अत्यन्त ही कठोर था। राजद्रोह एवं फौजदारी के अपराध में दण्ड अत्यंत कठोर था। राजा हर्षवर्धन ने न्याय को सबसे ऊँचा स्थान दिया था। उस समय राजा ही सर्वोच्च न्यायाधीश हुआ करता था। व्याभिचारी अपराधी पुरूषों के हाथ, नाक, पैर आदि काट दिये जाते थे। फौजदारी के लिये कठोर दण्ड एवं राजद्रोह के अपराध में आजीवन कारावास का दण्ड हुआ करता था।

प्राचीन भारत में अध्यात्मिकता को प्रधानता दी जाती थी इसीलिये उस समय बन्दीगृहों में बन्दियों को पश्चाताप, आत्मचिंतन तथा आत्मशुद्धि करने के लिये पर्याप्त अवसर देने के उद्देश्य से एकान्त में रखे जाने पर बल दिया जाता था इसीलिये उस समय बन्दियों को छोटी—छोटी कोठरियों में एकान्त कारावास में रखा जाता था।

इसके पश्चात् भारत में हिन्दू तथा मुस्लिम शासकों के शासनकाल में दण्ड का उद्देश्य प्रतिरोध के सिद्धान्त पर आधारित था। अतः मृत्युदण्ड, फाँसी, अंग—विच्छेद, कोड़े मारना, दागना, भूखा—प्यासा तड़पा—तड़पा कर मारना आदि दण्ड के सामान्य तरीके थे। मुगल शासनकाल में अपराधियों को दीवार में जिंदा चुनने का दण्ड भी प्रचलित था। इसी प्रकार, उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में ब्रिटिश राज्य स्थापित हो जाने के पश्चात् अंग्रेजो ने भारतीय बन्दीगृहों की दयनीय दशाओं में सुधार के प्रयास किये जिससे बन्दियों के जीवन की यातनाओं को कम किया जा सके।

यद्यपि भारत में प्राचीनकाल से ही बन्दियों को बन्दीगृहों में रखने की पद्धति थी। परन्तु, वर्तमान समय की बन्दीगृह व्यवस्था उस समय की बन्दीगृह व्यवस्था से पूर्णतः भिन्न होने से इनमें कोई तालमेल नहीं है। भारत की वर्तमान कारागार व्यवस्था मुख्यतः ब्रिटिश पद्धति पर आधारित होने के कारण उस पर इंग्लैण्ड व अमेरिकी बन्दीगृहों की व्यवस्था का प्रभाव है।

बन्दीगृह व्यवस्था हेतु सुधार के लिए किए जाने वाले प्रयास

भारत में वर्ष 1836 से बन्दीगृह व्यवस्था में सुधार का प्रारम्भ माना गया है। तब तक बन्दीगृह जाँच समिति का गठन किया था, जिसने बन्दियों को सड़क निर्माण के कार्यों के लिये मजदूर के रूप में लिये जाने को बंद किये जाने की अनुशन्सा की थी। इसके पश्चात्, 1838 में मैकाले के सुझाव पर एक बन्दीगृह सुधार समिति बनाई गई, जिसने निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये थेः–

(i) देश में एक केन्द्रीय बन्दीगृह की स्थापना की जाये, जहाँ लगभग एक हजार कैदियों को रखने की व्यवस्था हो तथा इसमें एक वर्ष से अधिक अवधि के कारावास से दण्डित बन्दियों को ही रखा जाये।

(ii) विभिन्न राज्यों या प्रान्तों में बन्दीगृहों के उचित नियन्त्रण हेतु प्रत्येक राज्य या प्रान्त में बन्दीगृह निरीक्षक की नियुक्ति की जाये। इसी आधार पर वर्ष 1844 में उत्तरप्रदेश में, वर्ष 1852 में पंजाब में, 1854 में बंगाल में एवं वर्ष 1862 में बम्बई व मद्रास में भी बन्दीगृह निरीक्षकों की नियुक्ति की गई।

(iii) इन बन्दीगृहों में महिला बन्दियों को रखने की पृथक व्यवस्था की जाये।

वर्ष 1855 में सम्पूर्ण भारत में बन्दीगृहों की देखभाल उचित रूप से करने हेतु एक इंस्पेक्टर जनरल ऑफ प्रिजन्स (Inspector General of Prison) की नियुक्ति की गई और वे ही बन्दियों की समस्याओं के निराकरण का कार्य भी दिया गया। इसके पश्चात् वर्ष 1862 में द्वितीय बन्दीगृह समिति का गठन किया गया, जिसने बन्दीगृहों में फैली गन्दगी एव स्वास्थ्य की खराब दशा पर गम्भीर चिन्ता जताते हुये, इसमें तुरन्त सुधार किये जाने का सुझाव दिया। अतः समिति द्वारा बन्दीगृहों में उचित सफाई, स्वच्छ भोजन एवं उचित चिकित्सा की ओर ध्यान दिये जाने की आवश्यकता का सुझाव दिया। इसके अतिरिक्त, समिति का सुझाव था कि बन्दीगृहों में लगभग पन्द्रह प्रतिशत बन्दियों हेतु एकान्त कारावास की व्यवस्था की जाये एवं केन्द्रीय एवं प्रान्तीय बन्दीगृहों में नियमित चिकित्सक की नियुक्ति की जानी चाहिये। इस समिति की सिफारिश पर वर्ष 1866 में बन्दीगृहों में नियमित चिकित्सकों की नियुक्ति की गई थी। इसके पश्चात् भी

तृतीय, चतुर्थ एवं पंचक बन्दीगृह समितियों ने विभिन्न सुझाव समय–समय पर दिये जिन्हें क्रमशः लागू किया गया।

बन्दीगृह व्यवस्था पर वर्ष 1894 में **बन्दीगृह कारागार अधिनियम, 1894** में लागू किया गया जो भारत में सभी बन्दीगृहों की एकरूपता लाने की ओर महत्वपूर्ण कदम बना। इस अधिनियम में विशेष था कि इसमें बन्दियों के वर्गीकरण के लिये आवश्यक कदम उठाये गये तथा अमानवीय दण्ड, जैसे– कोड़े मारना आदि को पूर्णतः समाप्त कर दण्ड का स्वरूप परिवर्तित किया गया। इस अधिनियम में प्रान्तों को अपने क्षेत्र में बन्दीगृह नियमों को बनाने के लिये छूट दे दी गई थी।

बीसवीं शताब्दी में बालक एवं किशोर अपराधियों की दशा में सुधार की ओर विशेष ध्यान दिया गया और इनको गम्भीर अपराधिक कृत्यों को करने वाले घोर अपराधियों से सम्पर्क में आने से बचाने के लिये उन्हें बाल सुधार गृहों एवं बोर्स्टलों में पृथक रखने की व्यवस्था की गई। इसके लिये वर्ष 1897 में **बोर्स्टल तथा सुधार विद्यालय (स्कूल) अधिनियम, 1898** पारित किया गया, जिसमें बाल एवं किशोर अपराधियों के लिये अनेक बोर्स्टलों की व्यवस्था की गई तथा प्रत्येक बन्दीगृह में अधिकतम बन्दियों की संख्या निर्धारित थी। बीसवीं शताब्दी में अंग्रेजों का शासनकाल था, अतः अधिकतर अधिकारी अंग्रेज ही थे। उस समय भारतीय स्वतन्त्रता का आन्दोलन जोरों पर था। इस कारण बन्दीगृह में राजनैतिक बन्दियों की भरमार हो गई। इन राजनैतिक बन्दियों को दो वर्गों हिंसक बन्दी एवं अहिंसक बन्दी में रखा गया। उस समय बन्दीगृह प्रशासकों का अधिकतम समय राजनीतिक बन्दियों की व्यवस्था, देखभाल, भोजन, चिकित्सा, मनोरंजन के साधन, परिवारजनों से मिलने आदि में ही व्यतीत होने के कारण अगले दो दशकों तक सामान्य बन्दियों पर ध्यान ही नहीं गया।

भारत में बन्दीगृह सुधार समितियाँ

हम जानते है कि भारत के इतिहास की तरह यहाँ के बन्दीगृह का इतिहास भी बहुत लम्बा है। यह भी सत्य है कि एक लम्बी अवधि तक बन्दीगृह व्यवस्था में सुधार पर कोई ध्यान नहीं दिया गया जिससे भारतीय बन्दीगृह की दशा बहुत समय तक खराब एवं अव्यवस्थित थी। वर्ष 1836 में भारत में बन्दीगृहों को सुधारने की प्रवृत्ति ने जन्म लिया। इसके पश्चात् समय–समय पर भिन्न–भिन्न समितियाँ बनाई गई तथा अलग–अलग अधिनियम पारित किये गये। इन सभी का उद्देश्य भारत में बन्दीगृहों में सुधार करना तथा बन्दियों के जीवन को सुधार कर सामान्य बनाना था। इस सम्बन्ध में कुछ निम्नलिखित समितियाँ एवं अधिनियम हैं–

1. **वर्ष 1836 की बन्दीगृह सुधार समितिः**– वर्ष 1836 में बन्दीगृह सुधार

समिति 1836 का गठन किया गया। यह समिति बन्दीगृहों में सुधार हेतु सुझाव देने के लिये गठित की गई थी। इस समिति ने सुझाव दिये कि–

(i) बन्दियों से सड़कों या अन्य सार्वजनिक स्थानों पर कार्य नहीं करवाये जाये;

(ii) प्रत्येक बन्दीगृह का समय–समय पर निरीक्षण किया जाये;

(iii) बन्दीगृहों में हर प्रकार की सफाई एवं स्वच्छता हो, जिससे वहाँ हैजा व अन्य प्रकार महामारी न हो;

(iv) बन्दीगृहों में योग्य अधिकारियों की नियुक्ति हो, क्योंकि इससे पहले नियुक्त किये गये अधिकांश अधिकारी अयोग्य व भ्रष्टाचारी थे और वे न तो बन्दीगृहों में सुव्यवस्था रखते और न ही सरकार के आदशों का पालन करते थे;

(v) महिला एवं पुरूषों के लिये पृथक बन्दीगृह या बन्दीगृहों में पृथक स्थानों की व्यवस्था होना चाहिये।

2. **प्रथम बन्दीगृह सुधार समितिः**– वर्ष 1836 की सुधार समिति के गठन के पश्चात् सरकार ने अनुभव किया कि बन्दीगृहों की व्यवस्था सुधार के लिये निरन्तर प्रयास किया जाना आवश्यक है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु समय–समय पर पाँच समितियों की स्थापना की गई। ये समितियाँ क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ एवं पंचम बन्दीगृह सुधार समितियों के नाम से प्रचलित थीं। प्रथम **बन्दीगृह सुधार समिति वर्ष 1836** में गठित की गई। इस समिति को बनाने में मैकाले का मुख्य योगदान था। इस समिति ने बन्दीगृहों की दूषित व्यवस्था को सुधारने के लिए महत्वपूर्ण सुझाव दिये। इस समिति ने एक केन्द्रीय बन्दीगृह स्थापित करने की सिफारिश की और उसमें केवल एक वर्ष से अधिक कारावाधि वाले अपराधियों को रखने की व्यवस्था की तथा उसमें केवल एक हजार बन्दियों को रखने की व्यवस्था थी। केन्द्रीय बन्दीगृह के अतिरिक्त प्रत्येक राज्य में भी प्रान्तीय बन्दीगृह सुधार की ओर भी इस समिति ने ध्यान दिया। इस समिति में प्रस्तावित नियमों के अनुसार प्रत्येक राज्य में स्थापित बन्दीगृह में एक निरीक्षक की नियुक्ति आवश्यक की, जिसका कार्य बन्दीगृह का निरीक्षण एव सभी प्रकार के रख–रखाव को बनाये रखना था। वह बन्दीगृह में रहने एवं खाने–पहनने की व्यवस्था में सुधार करे।

3. **द्वितीय बन्दीगृह सुधार समितिः**– द्वितीय बन्दीगृह सुधार समिति का गठन वर्ष 1862 में किया गया। यह समिति बन्दीगृह सुधार हेतु पुनः गठित की गई थी। इसका मुख्य उद्देश्य बन्दीगृह में फैलने वाले मुख्य रोगों का सर्वेक्षण करना एवं उसके रोकथाम के उपाय करना था। इस समिति ने बन्दीगृहों का

सर्वेक्षण कर सुझाव दिया कि बन्दीगृहों में नियमित रूप से साफ–सफाई की व्यवस्था होना चाहिये तथा भोजन, वस्त्र एवं बिस्तर की स्वच्छ व्यवस्था आवश्यक रूप से हो। इसके अतिरिक्त, बन्दियों के लिये उचित चिकित्सा सम्बन्धी सुविधायें दी जाये इस हेतु एक चिकित्सक की नियुक्ति का सुझाव दिया। बन्दियों को उनके द्वारा किये गये अपराधों के प्रकार एवं उसकी गम्भीरता के आधार पर वर्गीकृत किया जाता था तथा भिन्न–भिन्न बन्दियों के लिये नियम एवं सुविधायें भी भिन्न–भिन्न होती थी।

4. **बन्दीगृह अधिनियमः**– बन्दीगृह सुधारों के लिये बनी पाँच समितियों के पश्चात् सरकार द्वारा बन्दीगृह अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम का उद्देश्य सम्पूर्ण भारत में सभी बन्दीगृहों में समान नियम लागू किये जाने का सुझाव दिया गया। नियम के साथ–साथ बन्दियों को दी जाने वाली सुविधाओं को भी समान बनाये रखने का प्रयास किया गया। इन सुधारों के साथ–साथ बन्दीगृह में बन्दियों को दिये जाने वाले दण्डों में भी परिवर्तन किया गया। कठोर शारीरिक यातनाओं को समाप्त करने का प्रस्ताव रखा गया। विशेष रूप से कोड़े मारना अनुचित ठहराया गया।

5. **भारतीय बन्दीगृह सुधार समिति (1919–20)**– इस समिति को "काड्यू समिति" कहा जाता है, क्योंकि वर्ष 1919–20 में **सर एलेक्जेण्डर कार्ड्यू (Sir Alexender Cardew)** की अध्यक्षता में भारतीय जेल सुधार समिति गठित की गई। इस समिति ने भारत के बन्दीगृहों के अतिरिक्त ब्रिटेन, हांगकांग, बर्मा, जापान और फिलीपीन्स आदि की बन्दीगृह व्यवस्था का अध्ययन किया और कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले। इन निष्कर्षों का सार यह था कि भारत के बन्दीगृहों में अभियानों द्वारा बन्दीगृहों में बन्दियों के केवल स्वास्थ्य, भोजन एवं रहन–सहन में ही सुधार किये गये। इसके विपरीत, बन्दियों के चरित्र और व्यवहार पर कोई ध्यान नहीं दिया गया, जबकि बन्दीगृहों की सुधार व्यवस्था ऐसी होना चाहिये कि अपराधी की बन्दीगृह में रहने की दण्डावधि में कारावासी की मानसिकता में परिवर्तन हो सके और वह स्वयं को सुधारने के लिये कृत संकल्पित हो।

यह हमारा अद्वितीय सिद्धान्त है, जिसे हम समझते हैं कि इसे स्वीकार किया जाना चाहिये। इस समिति का विचार था कि बन्दियों एवं अपराधियों को केवल 'कठोरता' से नहीं सुधारा जा सकता है। जब तक उनके प्रति मानवता का दृष्टिकोण नहीं अपनाया जायेगा, तब तक अपराधियों में सुधार लाना असम्भव है। बन्दियों व अपराधियों का सुधार बल द्वारा नहीं हो सकता, जब तक वे स्वयं इसके लिये प्रेरित न हों। इस समिति द्वारा बन्दीगृहों के लिये दिये गये सुझाव निम्नलिखित हैं–

(I) बन्दीगृह प्रशासन का कार्य प्रशिक्षित अधिकारियों के हाथों में सौंपा जाये।

बन्दीगृह अधीक्षक वह व्यक्ति हो, जिसे बन्दीगृह प्रशासन का अनुभव हो। इस समिति ने दो प्रकार के व्यक्तियों को बन्दीगृह अधीक्षक बनाने की प्राथमिकता देने का सुझाव दिया –

1. पुलिस अधिकारी एवं 2. सेना का डॉक्टर ।

II) प्रत्येक बन्दीगृह में एक चिकित्सा अधिकारी नियुक्त होना चाहिये और यह चिकित्सा अधिकारी बन्दीगृह अधीक्षक के अधीन हो।

(III) बन्दीगृह का वार्डन या द्वारपाल किसी पढ़े–लिखे व्यक्ति को ही बनाना चाहिये। बन्दीगृह में बन्दीकर्मी के रूप के बन्दियों की नियुक्ति यथासम्भव कम होना चाहिये।

(IV) बन्दीगृह में बन्दियों को दो प्रमुख आधारों पर वर्गीकृत किया जाना चाहिये–

(क) आदतन या अभ्यस्त अपराधी, एवं (ख) सामान्य या आकस्मिक आपराधी।

(V) अपराधियों से परिश्रम वाले कार्य लिये जाने चाहिये जिसका उद्देश्य परिश्रम के लिये नहीं होना चाहिये। इसका मूल उद्देश्य अपराधियों में सुधार लाना होना चाहिए।

(VI) अपराधियों को कोड़े मारने जैसी अमानवीय दण्ड को समाप्त किया जाये।

(VII) जिन अपराधियों की कारावाधि छः माह से अधिक हो, उन्हें अच्छा व्यवहार करने पर कुछ रियायतें दी जाये।

(VIII) बन्दियों को परिवार एव मित्रगणों से पत्राचार करने की छूट दी जाये।

(IX) बन्दियों को परिवार, सम्बन्धियों एव मित्रगणों से मिलने की छूट दी जाये।

(X) बन्दियों को दो जोड़ी वस्त्र पहनने के लिये दिये जाने की सुविधा एवं जिन बन्दियों की आयु 25 वर्ष से कम हो, उन्हें पढ़ने–लिखने की स्वतन्त्रता भी दी जानी चाहिये। साथ ही, इनके लिये पुस्तकालय की सुविधा भी होना चाहिये।

(XI) बन्दियों को स्वच्छ एवं पौष्टिक भोजन दिया जाना चाहिये।

(XII) बन्दियों को पैरोल पर छोड़ने की व्यवस्था होना चाहिये।

(XIII) बन्दियों को बन्दीगृह से रिहाई के समय कुछ वित्तीय सहायता प्रदान की जाये, जिससे वे समाज एवं परिवार में पुनः सामन्जस्य स्थापित कर सकें।

(XIV) बाल अपराधियों के लिये बाल–बन्दीगृहों की व्यवस्था की जाये तथा उन्हें घोर अपराधियों या आजीवन कारावास के दण्ड से दण्डित अपराधियों से

पृथक रखा जाये।

(XV) जिन बन्दियों को सश्रम कारावास से दण्डित किया गया हो। उनसे श्रम कार्य हेतु निर्माण स्थलों पर कार्य करवाया जाये, जिससे राज्य के खर्च में बचत हो सके।

(XVI) देश निकाला के रूप में अपराधी को 'काला पानी' की सजा देकर अण्डबार–निकोबार भेजने की व्यवस्था केवल भंयकर अपराधियों के लिये होना चाहिये, न कि अन्य सामान्य अपराधियों के लिये।

कार्ड्यू समिति (जेल सुधार समिति) के उपरोक्त सिफारिशों के साथ भारत में वर्ष 1919 में भारत शासन अधिनियम लागू हुआ जिसके अन्तर्गत बन्दीगृहों को प्रान्तीय विषय बना दिया गया और बन्दीगृह सुधार कार्यों की गति फिर धीमी हो गई।

6. **बन्दीगृह सुधार समिति, 1946**– वर्ष 1946 में पुनः बन्दीगृह सुधार समिति गठित की गई। इस समिति के द्वारा निम्नलिखित सुझाव दिये गये–

(i) बाल अपराधियों के साथ भिन्न प्रकार का व्यवहार किया जाना चाहिये;

(ii) कुछ आदर्श बन्दीगृहों (Model jails) की स्थापना की जाये;

(iii) अपराधियों का नये सिरे से वैज्ञानिक वर्गीकरण किया जाये।

इस प्रकार अपराधियों का वर्गीकरण कर निम्नलिखित भागों में बाँटा जाये–

(क) बाल अपराधी,

(ख) वयस्क अपराधी,

(ग) महिला अपराधी,

(घ) आकस्मिक अपराधी,

(ङ) आदतन अपराधी,

(च) मनोरोगी अपराधी,

(छ) शारीरिक विकृत अपराधी।

इस समिति ने बाल अपराधियों के प्रति अधिक उदारता एवं सतर्कता बरते जाने का सुझाव दिया। वर्ष 1956 में काले पानी के दण्ड (अण्डमान–निकोबार द्वीप) को समाप्त कर दिया गया और इसे आजीवन कारावास की सजा में परिवर्तित कर दिया गया।

स्वतन्त्र भारत में बन्दीगृह व्यवस्थाः–

भारत में बन्दीगृह में सुधार का इतिहास मुख्य रूप से स्वतन्त्रता के बाद से प्रारम्भ होता है। स्वतन्त्रता के बाद भारत में यह तथ्य स्वीकार किया गया कि अपराधी भी आखिर मानव हैं। अतः भारत सरकार द्वारा नियुक्त समिति ने देश में कुल 110 केन्द्रीय कारागृह एवं प्रथम श्रेणी जिला बन्दीगृहों में से 69 बन्दीगृहों से सम्बन्ध स्थापित कर अपराधियों एवं बन्दीगृहों में उन्हें प्राप्त सुविधाओं का अध्ययन किया गया था।

1. **पकवासा समिति, 1949** – वर्ष 1949 में बन्दीगृह सुधार हेतु गठित **पकवासा समिति** ने बन्दियों से सड़क निर्माण कार्य में श्रमिकों के रूप में कार्य लिये जाने की अनुमति ले ली। इस श्रमिक कार्य हेतु बन्दियों को मजदूरी दी जाती थी एवं उन पर न्यूनतम नियन्त्रण रखा जाता था। दण्डावधि में बन्दियों के द्वारा अच्छा आचरण एवं व्यवहार किये जाने पर उनकी दण्डावधि में कटौती का भी प्रावधान रखा गया था, जिसे **'गुड टाइम अलाउन्स'** कहते थे। समिति के सुझावों से वर्ष 1949 में पहली बार मनोचिकित्सा पद्धति से बन्दियों का उपचार प्रारम्भ किया गया, जिसके फलस्वरूप अनेक सुधार गृहों की स्थापना की गई। इसी समय, पृथक महिला बन्दीगृह की स्थापना महाराष्ट्र येरवड़ा में की गई। इसी पद्धति से बन्दीगृहों में केस–वर्क पद्धति अपनाकर इन्हें अधिक उपचार मूलक बनाने का प्रयास किया गया, जो बन्दीगृह व्यवस्था का मूल मन्त्र माना गया।

वर्ष 1950 के बाद से ही बन्दियों की मनोचिकित्सा एवं मनोवैज्ञानिक पद्धति से उपचार की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया गया। इसी पर सर **जी. बी. वोल्ड** ने लिखा है कि बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में बन्दियों के पुनर्वास सम्बन्धी गतिविधियों में बन्दियों को मनोचिकित्सक उपचार एवं उनके लिये शैक्षणिक व्यवसायिक कार्यक्रम की बातों को प्रधानता दी गई जिससे उन्हें रिहाई के पश्चात् पुनर्वासित किये जाने में मदद मिल सके।

वर्ष 1951–52 में भारत में भारतीय जेल प्रशासन ने बन्दीगृहों के सम्बन्ध में एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया जिसमें **डॉ. रैकलैस** एवं **डॉ. गालवे** ने निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये –

(i) बन्दीगृह में प्रशासन सम्बन्धी प्रचलित नियमों की जाँच की जाये एवं बन्दियों से व्यवहार करने की विधियों और उनकी समस्याओं पर समुचित ध्यान दिया जाये।

(ii) जिला स्तर पर पूर्णकालीन प्रोबेशन सेवायें उपलब्ध कराई जाये।

(iii) कारागृहों से रिहा हुये व्यक्तियों के लिये पुनर्वास की व्यवस्था की

जाये।

(iv) एक ऐसे बोर्ड की स्थापना की जाये, जो बन्दियों के दण्ड की अवधि पूर्ण होने से पूर्व छोड़ दिये जाने के सम्बन्ध में नियमों को दोहरा सके।

(v) अभ्यस्थ या आदतन अपराधियों के पुनर्वास हेतु पृथक बस्तियों का निर्माण किया जाये।

(vi) नये बनाये गये बन्दीगृहों में चिकित्सा, मानसिक विकास, निरोध ईकाई, व्यावसायिक ईकाई, कृषि बस्ती आदि की विशेष सुविधा प्रदान की जाये।

(vii) जेलों में समय–समय पर जाँच की जाये एवं उनमें आवश्यकतानुसार सुधार किया जाये।

(viii) बन्दी अपराधियों को स्वास्थ्य और व्यक्तित्व के विकास के लिये मनोरंजन तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों की व्यवस्था हो।

(ix) बन्दियों के लिये उत्तर संरक्षण सेवाओं की व्यवस्था हो तथा महिलाओं की रक्षा के लिये रक्षागृहों की व्यवस्था की जाये।

इन सुझावों को स्वीकार करने के पश्चात् बन्दीगृहों प्रशासन के सम्बन्ध में भारतीय कारागारों का सम्पूर्ण विकास करने के लिये कई परिवर्तनों को स्वीकार कर लिया गया और कई समितियों ने बन्दीगृह व्यवस्था को सुधारने के लिये कार्य किया।

1) आल इण्डिया जेल मेन्युअल कमेटी, 1957–1959;

2) जस्टिस मुल्ला आल इण्डिया कमेटी आल जेल रिर्फाम्स, 1980–83;

3) नेशनल एक्सपर्ट कमेटी आफ वुमन प्रिजनर्स अण्डर चेयरमेन ऑफ जस्टिस वी. आर. कृष्णा अय्यर (अय्यर समिति)।

4) रिपोर्ट ऑफ आर. के. कपूर कमेटी ऑल प्रिज़न एडमिनिस्ट्रेशन 1987।

वर्तमान समय में बन्दी, भारतीय बन्दी अधिनियम 1894, के द्वारा ही शासित हो रहे हैं। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का बन्दियों की स्थिति सुधारने में बहुत बड़ा योगदान है। स्वतन्त्रता के पश्चात् विगत छः दशकों में भारतीय बन्दीगृह व्यवस्था में अनेक परिवर्तन किये जा चुके हैं। वर्तमान में, बन्दीगृह व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य अपराधियों से समाज की सुरक्षा करना एवं अपराधियों को अपराधिक कृत्य करने से दूर रखने का प्रयास कर सुधारने का प्रयास करना तथा अपराधियों को सुधारने एवं पुनर्वासित करने का प्रयास करना है। बन्दियों

की हर सम्भव सहायता कर उन्हें समाज में पुनः सामान्य रूप से जीवनयापन करने हेतु स्थापित करना ही वर्तमान में बन्दीगृह पद्धति का उद्देश्य है। भारतीय संविधान में, बन्दीगृह को पुलिस एवं शान्ति–व्यवस्था के साथ राज्य–सूची की सातवीं अनुसूची के अन्तर्गत रखा गया है। अतः, केन्द्रीय सरकार पर बन्दीगृह व्यवस्था के आधुनिकीकरण का कोई उत्तरदायित्व नहीं है। भारत की पंचवर्षीय योजना में भी बन्दीगृहों पर व्यय हेतु उचित राशि आवंटित नहीं की जाती है।[22]

भारत में बन्दीगृह नियम

भारत में बन्दीगृह व्यवस्था को राज्य का विषय माना जाता है। अतः विभिन्न राज्यों ने बन्दीगृह अधिनियम (Prison Act) के अन्तर्गत अपने राज्य के लिये बन्दीगृह नियम उपबन्धित किये हैं। ये नियम प्रायः समान ही होते हैं। कुछ निम्नलिखित नियम हैं, जो सभी बन्दीगृहों में समान हैंः–

1) प्रत्येक बन्दीगृह में रजिस्टर रखा जायेगा जिसमें बन्दीगृह के सभी बन्दियों की पहचान की पूर्ण जानकारी का रिकार्ड होगा, जैसे– उसके प्रवेश व रिहाई की तारीख, कारित अपराधिक कृत्य व बन्दीगृह में प्रवेश का समय भी लिखा जायेगा।

2) बन्दीगृह, किसी भी आये बन्दी को बिना वैद्य सुपुदर्गी आदेश के नहीं रखेगा।

3) बन्दीगृह आये बन्दियों को उनके आयु, लिंग, अपराध के प्रकार व अपराधिक रिकार्ड के अनुसार पृथक–पृथक खण्डों में रखा जायेगा, जैसे–महिला एवं पुरूषों को पृथक–पृथक रखा जायेगा। विचाराधीन बन्दियों कों दोषसिद्ध बन्दियों से पृथक रखा जायेगा। सिविल बन्दी, जो ऋण या जुर्माना न दिये जाने की स्थिति में, बन्दीगृह लाये गये हैं, उन्हें अपराधिक व घोर अपराधियों से पृथक रखा जायेगा। बाल व किशोर अपराधियों को बन्दीगृह में किसी भी स्थिति में नहीं रखा जाता है। उनके लिये अलग से बाल सुरक्षा गृह बनाये गये हैं। बन्दीगृह में आये इन अपराधियों को उनके निरोध के विभिन्न कारणों के अनुसार उनका उपचार किया जायेगा, इसीलिये इन्हें पृथक रखा जाता है।

4) बन्दियों को रखे जाने का स्थान या जगह, स्वास्थ्य, रोशनी, हवा, सुरक्षा, स्वच्छता आदि सम्बन्धी न्यूनतम मानकों के अनुसार ही होना आवश्यक है।

5) कारागार के सभी बन्दियों को भोजन तथा स्वास्थ्य उपचार की सुविधायें उपलब्ध होनी चाहिये एवं चिकित्सक की सुविधा प्रत्येक

बन्दीगृह में होना आवश्यक है।

6) महिला बन्दी प्रकोष्ठ में प्रसव–पूर्व एवं प्रसव–पश्चात की आवश्यक सुविधायें, विशेष आवास संहिता, होना चाहिये तथा महिला के साथ शिशु होने पर तो उसकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति सुनिश्चित की जानी चाहिये।

7) बन्दियों को बेड़िया या हथकड़ी लगाया जाना पूर्णतः प्रतिबन्धित है।

8) बन्दियों को समय–समय पर या निश्चित अन्तराल पर परिवार के सदस्यों या सम्बन्धियों से मिलने की सुविधा दी जानी चाहिये।

9) बन्दीगृह में रह रहे बन्दियों की सम्पत्ति की सुरक्षा बन्दीगृह प्रशासन की जिम्मेदारी होती है।

10) बन्दीगृह, बन्दियों के लिए मनोरंजन एवं सामाजिक व बौद्धिक कार्यक्रम भी समय–समय पर आयोजित करे।

11) बन्दीगृह के परीक्षण का अधिकार मीडिया या प्रेस को भी देना चाहिये।

भारत में बन्दीगृहों की संख्या व क्षमता

भारत की नेशनल क्राइम ब्यूरो द्वारा क्राइम इन इण्डिया–2015 में बन्दीगृहों से सम्बन्धित आँकड़े वर्ष 2015 के अन्त तक भारत में कार्यरत कारागरों की स्थिति निम्नानुसार हैः–

भारत में कुल बन्दीगृह – 1401

केन्द्रीय जेल	134	खुली जेल	63
जिला जेल	379	बोर्स्टल स्कूल	20
उप–जेल	741	विशेष जेल'	43
महिला जेल	18	अन्य जेल	3

भारत में बन्दीगृह की कुल क्षमता – 3,66,781

केन्द्रीय जेल	1,59,158(43.4:)	खुली जेल	5,370(1.5:)
जिला जेल	1,37,972(37.6:)	बोर्स्टल स्कूल	1,830(0.5:)
उप–जेल	46,368(12.6:)	विशेष जेल'	10,915(3.0:)
महिला जेल	4,748(1.3:)	अन्य जेल	420(0.1:)

*विशेष जेलों में विशिष्ट प्रकार के बन्दियों को रखा जाता है, जो आतंकवाद,

नक्सलवाद, संगठित अपराध या नशीले पदार्थों के अवैध व्यापार जैसे अपराधों में दोषी पाये जाते हैं।

भारत में बन्दीगृह की कुल बन्दियों की संख्या 31.12.2015 तक– 4,19,623

पुरूष	4,01,789(95.7:)	महिला	17,834(4.3:)

31.12.2015 तक संघ शासित प्रदेशों में एक भी बोर्स्टल स्कूल एवं खुली जेल नहीं बनी थी। पूरे देश में बन्दीगृहों में बन्दियों की सबसे अधिक संख्या 88,747 उत्तरप्रदेश के बन्दीगृहों में रही। इसके पश्चात् 38,458 बन्दी मध्यप्रदेश में, 29,567 बन्दी महाराष्ट्र में, 28,418 बन्दी बिहार में तथा 23,645 बन्दी पंजाब में बन्दीगृहों में हैं।

बन्दीगृह की क्षमता से अधिक बन्दियों की भीड़भाड़ की सबसे अधिक दर 216.7% 31.12.2015 तक दादार व नागर हवेली में रही, उसके पश्चात् छत्तीसगढ़ (233.9%) व दिल्ली (226.9%) हैं।

वर्ष 2015 के अन्त तक देश के अलग–अलग बन्दीगृहों में कुल दोषसिद्ध महिला बन्दियों में से कुल 374 महिला अपने 450 शिशुओं के साथ तथा 1,149 विचाराधीन बन्दी महिला 1,310 शिशुओं के साथ बन्दीगृहों में रह रही है।

बन्दीगृहों में सबसे अधिक दोषसिद्ध बन्दी 25,917 (इनमें 24,884 पुरूष तथा 1,033 महिलायें हैं) उत्तर प्रदेश में एवं उसके पश्चात् 17,058 (इनमें से 16,455 पुरूष एवं 603 महिलायें हैं) मध्यप्रदेश के बन्दीगृहों में हैं, जो कुल दोषसिद्ध बन्दियों का 12.7% है।

इन बन्दीगृहों में विभिन्न प्रकार के कुल 4,19,623 बन्दी हैं, जिनमें दोषसिद्ध अपराधी, विचाराधीन बन्दी, निरोधित बन्दी, महिला बन्दी आदि शामिल हैं।

भारत में बन्दीगृहों की वर्तमान स्थिति

भारत में वर्तमान में भारतीय बन्दीगृहों में कुव्यवस्था तथा कुव्यवस्था पर टिप्पणी करते हुये पत्रकारों का एक वीक्षक समूह ने उल्लेख किया कि ऐसे अनेक बन्दीगृह हैं जो अभी भी मानवीय पथभ्रष्टता के प्रतीक बने हुये हैं, जिनमें भ्रष्टाचार, लापरवाही एवं क्रूरता व्याप्त है। इनमें सुधार लाने के सभी प्रयास लगभग व्यर्थ रहे तथा जेल का संस्कृति में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ। जेलकर्मी बन्दियों के साथ अमानवीय व्यवहार, बलात्कार, लैंगिक विषमता, खराब भोजन व मनमानी एवं शक्तियों के दुरूपयोग के लिये कुख्यात हैं।[23]

इसी विषय पर दिल्ली जेल व्यवस्था की अनियमित एवं कुव्यवस्था की

स्थिति को बताते हुए समाजसेवी एवं पत्रकार कुसुम चड्ढा ने लिखा कि दुनिया के सभी गरीब एवं अधिक जनसंख्या वाले देशों के बड़े–बड़े बन्दीगृहों की तरह तिहाड़ जेल में भी दमन, लोभ, लालच, कामुकता तथा अधिकारियों की मनमानी की प्रवृत्ति देखी जा सकती है। यहाँ बन्दीगृह में सभी बन्दियों, चाहे दोषसिद्ध बन्दी हो या विचाराधीन हो, को निम्न स्तर का भोजन तथा चाय बिना शक्कर एवं पीने के लिये दूषित पानी दिया जाता था। साथ ही, जेल में उसकी क्षमता से कई गुना अधिक कैदी थे। परन्तु, विगत कुछ वर्षों से तिहाड़ जेल में सुधार हेतु कई प्रयास किये जा रहे हैं, इसकी दशा सुधारने का श्रेय इस जेल की प्रमुख रह चुकी **श्रीमती किरण बेदी** को जाता है।

2 दिसम्बर, 2004 को नई दिल्ली के दैनिक भास्कर में छपी बिहार के बैहुर जिले की खबर थी कि बिहार के बैहूर जेल में श्री पप्पू यादव भारतीय बन्दीगृहों की अनियमिता एवं अनुशासन का ज्वलन्त उदाहरण है। बिहार के बैहूर जिले में श्री पप्पू यादव (राष्ट्रीय जनता दल से सांसद) को मार्क्सवादी पार्टी के अमित सरकार की वर्ष 1998 में हुई हत्या का दोषी पाये जाने के लिये रखा था। इसके लिये उच्चतम न्यायालय को हस्तक्षेप करते हुये केन्द्रीय जाँच ब्यूरो को आदेश देने की आवश्यकता हुई, कि वे मधेपुरा से राष्ट्रीय जनता दल के बाहुबली सांसद राजेश रंजन उर्फ पप्पु यादव द्वारा जेल में पचास समर्थकों के साथ 'दरबार' लगाये जाने की घटना की जाँच करने तथा इस सम्बन्ध में न्यायमूर्ति एन.संतोष, मोहन हेगड़े और एस. बी. सिन्हा की खण्डपीठ ने बिहार के इन्सपेक्टर जनरल (जेल) को भी घटना की विस्तृत रिपोर्ट 13 दिसम्बर, 2004 तक न्यायालय को सौंपने का आदेश दिया तथा उच्चतम न्यायालय ने केन्द्रीय जाँच ब्यूरो से श्री पप्पू यादव को रखने के लिये बिहार या अन्य किसी राज्य के जेल का सुझाव न्यायालय को 3 जनवरी, 2005 तक प्रस्तुत करने को कहा। आगे, उच्चतम न्यायालय ने इस वाद में निर्देश दिया कि श्री पप्पू यादव की सुनवाई विडियो कान्फ्रेन्स के द्वारा भी करवायी जा सकती है जिससे उनकी सुरक्षा बनाये रखी जा सके।

इस वाद में यह उल्लेखनीय है कि बैहूर जेल में पप्पू यादव की गैर–कानूनी गतिविधियों के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय द्वारा स्वयं संज्ञान लिया गया और उसे उच्चतम न्यायालय को हस्तान्तरित कर दिया। अन्ततः, उच्चतम न्यायालय ने आदेशित किया कि बिहार के बैहूर बन्दीगृह में पप्पू यादव द्वारा की गई अवैध या अवांछित गतिविधियों को ध्यान में रखते हुये, उसे अन्य राज्य के बन्दीगृह में हस्तान्तरित कर दिया जाये। फलतः, उच्चतम न्यायालय के इस आदेश के अनुपालन में पप्पू यादव को महाराष्ट्र की जेल में अन्तरित कर दिया गया। उसके छोड़े जाने के सम्बन्ध में तीन बार याचिका दायर की गई, जो नामंजूर कर दी गई। इसके पश्चात् कथित हत्या के अभियुक्त को फिर जमानत

पर छोड़ दिया गया।

भारत में बन्दीगृह में निरन्तर सुधार के प्रयास किये जा रहे है। इन प्रयत्नों के बाद भी बन्दीगृहों में बन्दियों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है जिससे राज्य/केन्द्र सरकार पर वित्तीय बोझ भी बढ़ रहा है। समाज में अपराधों का घटित होना समाज की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पारिस्थितियों पर निर्भर करता है। अन्य विकासशील देशों की तरह भारत में भी आर्थिक एवं वैज्ञानिक संरचना में अमूलचूल परिवर्तन आये हैं। इस आधुनिकीकरण के परिवर्तन ने कई प्रकार के नये अपराधों को जन्म दिया है। वर्तमान समय के मुख्य अपराध बैंक डकैती, आतंकवाद, बम–विस्फोट, वाहनों की चोरी, साइबर अपराध, ट्रेडमार्क एवं कॉपीराइट के उल्लंघन हैं। इनमें कई अपराध ऐसे हैं जो कि पहले कभी नहीं सुने गए हैं। इन अपराधों को अंजाम देने के लिये वर्तमान में अब अपराधियों ने नई–नई तकनीकें भी खोज ली हैं और उनका उपयोग भी करने लगे हैं।

भारत देश में जनसंख्या में वृद्धि लोगों में आर्थिक तंगी तथा राजनीति में बार–बार व जल्दी–जल्दी होने वाले परिवर्तन भी अपराध वृद्धि के कुछ महत्वपूर्ण कारण हैं। इसके अतिरिक्त, वर्तमान में राजनीति के अपराधीकरण होने से बन्दीगृह प्रशासकों पर विशेष उत्तरदायित्व आ गया है। कई प्रभावशाली नेता एवं उनसे यदा–कदा सम्बन्ध रखने वाले कुख्याती समूह के सदस्यों के खिलाफ अपराधिक विचारण के दौरान, उन्हें बन्दीगृह में रखा जाने का नियम है, लेकिन ये विचाराधीन अपराधी अपने राजनीतिक प्रभाव का दुरूपयोग कर बन्दीगृह के अधिकारियों से ऐसी सुविधाओं को पूरा करने में सफल हो जाते हैं, जो बन्दीगृह में नियमानुसार उन्हें उपलब्ध नहीं होना चाहिये। कई बार बन्दीगृह की तकलीफों से बचने हेतु नेताओं द्वारा स्वयं को बीमारी के आधार पर अस्पताल में भर्ती करवा लिया जाता है। जैसा की राजनेता अमर सिंह ने कराया। राजनेता अमर सिंह ने जुलाई वर्ष 2008 में वोट के बदले नोट प्रकरण में 05 सितम्बर, 2011 से तिहाड़ जेल में बन्द थे। कथित किडनी की बीमारी के इलाज के लिये उन्हें एम्स (आल इण्डिया मेडिकल संस्थान) में भर्ती कराया गया। ऐसी घटनाओं के फलस्वरूप बन्दीगृह में रह अन्य बन्दियों में न्याय के प्रति आस्था कम होने लगती है या अविश्वास की भावना जन्म ले लेती है। ऐसे में इस प्रवृत्ति को रोका जाना आवश्यक है, जिससे अपराधियों के मन में दण्ड प्रशासक के लिये विश्वास बना रहे है।

उपरोक्त विवेचन में परिस्थितियों को देखते हुये यह कहना गलत नहीं होगा कि दाण्डिक प्रशासन की इस प्रकार की विफलता भी कहीं–न–कहीं अपराधों में वृद्धि का एक कारण है।

समयानुसार बन्दीगृह की व्यवस्थाओं में आये आमूल—चूल परिवर्तनों के आने से अब बन्दीगृहों केवल अभिरक्षा संस्था नहीं है बल्कि यह विधि का उल्लंघन करने वालों के लिये उपचार एवं उचित प्रशिक्षण के केन्द्र माने जाते हैं, अर्थात् अब बन्दियों को अभिरक्षा में रखने की बजाय उन्हें समाजोपयोगी बनाने की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। उन्हें उचित प्रशिक्षण देकर दण्डावधि के पश्चात् समाज में पुनर्वासित करने का प्रयास किया जा रहा है।

वर्तमान समय में बन्दीगृहों में केन्द्रीय बन्दीगृह, जिला बन्दीगृह, उप बन्दीगृह, खुले बन्दीगृह आते हैं। महिला बन्दीगृह एवं विशेष बन्दीगृह भी शामिल हैं।

भारत में बन्दीगृहों की समस्यायें:—

भारत में बीसवी शताब्दी के अन्त में भारतीय बन्दीगृहों में अमूलचूल परिवर्तन किये गये थे और बन्दीगृहों को सुधारात्मक पद्धति में ढालने का प्रयास किया गया था। परन्तु इन संस्थाओं की कुछ ऐसी समस्यायें है जो उपयुक्त सुधारों को कार्यान्वित करने में बाधा उत्पन्न करते हैं। इनमें से कुछ प्रमुख हैं:—

(i) भारत में अधिकतर बन्दीगृहों में बन्दियों की संख्या निर्धारित संख्या से बहुत अधिक है। दिल्ली के तिहाड़ जेल में वर्ष 1995 में बन्दियों की कुल संख्या 8500 थी, जबकि उस जेल की क्षमता केवल 2500 बन्दियों को ही रखने की थी। इसके कई दुष्परिणाम भी होते हैं। सामान्य अपराधी, आदतन अपराधियों के साथ रहने से उनके सामान्य अपराधी से घोर अपराधी बनने की सम्भावना बढ़ जाती है।

(ii) बन्दीगृहों में बन्दियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होने से बन्दियों में अनुशासन बनाए रख पाने की समस्या प्रायः विश्व के सभी देशों के बन्दीगृह प्रशासकों के लिये चिन्तनीय बनी हुई है। बन्दीगृह में अनुशासन के सम्बन्ध में **डोनाल्ड टेफ्ट** ने अपने विचार व्यक्त करते हुये लिखा है कि बन्दीगृहों की व्यवस्था को जान—बूझ कर ऐसे रखते हैं जिससे अपराधी को सामान्य व्यक्ति के सुखी जीवन के वातावरण से वंचित कर वह कष्टप्रद जीवन बिताये जिससे वह अपराध को पुनः करने से पूर्व अपनी दण्डावधि पर विचार कर सके। सर टेफ्ट ने आगे लिखा है कि बन्दियों को कठोर अनुशासन, नीरस वातावरण एवं एकान्तता में रखने के पीछे यह उद्देश्य होता है कि उसे बन्दी जीवन के प्रति अरूचि उत्पन्न हो और पुनः वह कोई ऐसा अपराधिक कार्य न करें जिसके कारण उसे बन्दीगृह में रहने का दण्ड दिया जा सके।

इस सम्बन्ध में **महाराष्ट्र राज्य बनाम आशा अरूण गवली (ए.आई.**

आर. 2004 सु.को. 2223) का वाद महत्वपूर्ण है। इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने महाराष्ट्र राज्य को निर्देशित किया कि वह बन्दियों के लिये **बन्दीगृह सुविधा सम्बन्धी नियम, 1962** में उचित परिवर्तन करके यह निर्देशित करे कि वह बन्दियों से मिलने आने वाले सम्बन्धियों या मित्रों का पूर्ण ब्यौरा जेल रजिस्टर में व्यवस्थित ढंग से लिखकर रखे जिससे राजनीतिक पहुँच रखने वाले बाहुबली बन्दियों से बाहरी असमाजिक तत्वों को मिलने एवं योजनायें बनाने का अवसर न मिल पाये। इस वाद ने न्यायालय का ध्यान इस ओर खींचा कि बम्बई का कुख्यात अपराधी अरूण गवली जेल में अंदर ही खर्चीली पार्टियाँ आयोजित करता था तथा बाहर अवांछित विधि विरोधी व्यक्तियों के साथ अपराधिक भाड़यन्त्र की योजना बनाता था। न्यायालय के अनुसार, वह जेल अधिकारी की अनुमति के बिना सम्भव नहीं हो सकता तथा इसमें जेल अधिकारी की भी मिली भगत होगी। अंततः उच्चतम न्यायालय ने महाराष्ट्र उच्च न्यायालय द्वारा अतिरिक्त मुख्य सचिव, पुलिस आयुक्त तथा पुलिस महानिरीक्षक प्रत्येक पर 25,000/– रूपये की शास्ति अधिरोपित करने को न्यायोचित ठहराते हुये जेल अधीक्षक तथा सम्बन्धित अन्य जेल अधिकारियों के विरूद्ध अपराधिक कार्यवाही संस्थित किये जाने के निर्देश का अनुसमर्थन किया।

उच्चतम न्यायालय के अनुसार यह महाराष्ट्र जेल में अनुशासनहीनता तथा जेल अधिकारियों की लापरवाही का गम्भीर मामला होने के कारण इसके लिये दोषी अधिकारियों को दण्ड दिया जाना उचित था। साथ ही, न्यायिक अधिकारियों को भी समय–समय पर जेल का निरीक्षण करना चाहिये और उन्हें अपनी रिपोर्ट राज्य सरकार को भेजने के लिये कहा गया ताकि अनुशासनहीन बन्दियों पर उचित नियन्त्रण रखा जा सके जिससे जेल की अनुशासन व्यवस्था खराब न हो।

(iii) बन्दीगृहों में अनुशासन से सम्बन्धित एक और समस्या बन्दीगृह के भीतर बन्दियों की अपराधिकता के सम्बन्ध में है। बन्दीगृहों में आये बन्दियों द्वारा अपराध किये गये होते है। सामान्यतः उनमें से कुछ तो स्वयं की अपराधिक प्रवृत्ति के कारण होते हैं तथा अन्य, बन्दीगृह में बन्दियों से मारपीट, गाली–गलौच, सामान तोड़फोड़ की घटनायें होती हैं, परन्तु सबसे गम्भीर समस्या लैंगिक अपराधों के सम्बन्ध में है।

बन्दीगृह में कई बन्दी एक लम्बी अवधि तक परिवार से पृथक होने कारण वे अपनी पारिवारिक व वैवाहिक जीवन से पूर्णतः वंचित रहते हैं। लैंगिक वासना मनुष्य की स्वाभाविक, प्राकृतिक एवं शारीरिक आवश्यकता है, जिसकी बन्दीगृह में वैध तरीके से तृप्ति नहीं हो पाती है। अतः इसी कारण कुछ बन्दी अवैध लैंगिक अपराधिकता की ओर प्रवृत्त होते हैं और

लम्बी अवधि के लिये लैंगिक तुष्टि से वंचित रहने के कारण बन्दी प्रायः समलिंगी सम्भोग, गुदा मैथुन आदि जैसे घृणित लैंगिक अपराधों की ओर प्रवृत्त होते हैं।

पाश्चात्य देशों में ऐसी घटनाओं या अपराधों को कम करने के लिये वहाँ लैंगिक सहवास के लिये पुरूष बन्दियों को एकान्त मिलाई की सुविधा भी दी गई है तथा महिला बन्दियों को यह सुविधा नहीं दी गई है, क्योंकि ऐसा करने पर प्रशासन को उनके गर्भधारण, गर्भावस्था व शिशु के जन्म व पालन–पोषण आदि प्रकार की अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। परन्तु, भारत में भारतीय नैतिक मूल्यों एवं विचारों को ध्यान में रखकर यहाँ की बन्दीगृह व्यवस्था में ऐसी किसी एकान्त मिलाई को स्थान नहीं दिया गया और इसे उचित भी माना गया है। हालांकि, भारत के **कारागार अधिनियम, 1894** में बन्दियों को अपने परिवार के सदस्यों के साथ रहने एवं परिवार को टूटने से बचाने के लिये पैरोल पर छोड़े जाने सम्बन्धी प्रावधान किया गया है।

(iv) भारत में बन्दीगृहों में बन्दियों की स्वास्थ्य एवं चिकित्सा समस्या :– जेल प्रशासक के लिये यह चिन्तनीय स्थिति बन गई है। **कारागार अधिनियम, 1947 की धारा 37, 39 (क) व 39** (ग) में बन्दियों के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में प्रावधान है कि जेल अधिकारियों को किसी भी बन्दी को जेल में रखने से पूर्व उसके स्वास्थ्य से सम्बन्धित सम्पूर्ण जानकारी ले लेना चाहिये और यदि वह क्षयरोग, एड्स आदि या अन्य किसी गम्भीर संक्रामक रोग से ग्रसित है, तो उसे अन्य बन्दियों से अलग रखने की व्यवस्था की जानी चाहिये।

बन्दीगृहों के बन्दियों में स्वास्थ्य की समस्या के सम्बन्ध में उच्च न्यायालय ने **अनिल कुमार बनाम मध्यप्रदेश राज्य (2000 (1) करंट क्रिमिनल जजमेंटस 118 (म.प्र.))** का वाद उल्लेखनीय है। इस वाद में क्षय रोग जैसी बीमारी के उन कारकों की विवेचना की गई है जिससे बन्दीगृहों में भयंकर संक्रमण फैलता है, जो अन्य बन्दियों के स्वास्थ्य के लिये भी खतरनाक हो सकता है। वे कारक हैं–

- बन्दियों के स्वास्थ्य निरीक्षण में विलम्ब।
- बन्दीगृहों में पीकदान का न होना।
- स्वास्थ्य कर्मियों द्वारा संक्रामित रोग से ग्रसित बन्दी को उचित समय पर विशेषज्ञों से निरीक्षण के लिये न भेजना।
- बन्दीगृहों में बीमार बन्दियों की अदला–बदली करना।

- रोगी बन्दी की चिकित्सा में लापरवाही तथा अपर्याप्त उपचार।
- बन्दीगृह की कोठरियों में बन्दियों की संख्या अधिक होना।
- अधिकतर बन्दीगृहों में रोशनदानों एवं पौष्टिक आहार की कमी होना।
- रोगी बन्दियों को स्वस्थ बन्दियों के साथ रखना है।

इन कारकों के आधार पर न्यायालय में बन्दीगृह में फैले संक्रमित रोगों की रोकथाम हेतु आवश्यक कदम उठाने के निर्देश दिये।

(v) बन्दीगृहों में बन्दियों के सामुदायिक जीवन के बारे में टिप्पणी करते हुये अपराधशास्त्री **सदरलैण्ड** ने लिखा है कि बन्दीगृह में आने वाले नये बन्दियों को बन्दीगृह की दिनचर्या से उसी प्रकार परिचित करवाया जाता है जैसे– किसी बालक को परिवार से मिलने वाली शिक्षा, जिसे **'समाजीकरण'** कहा जाता है और इसी प्रकार बन्दीगृह में आये बन्दी को बन्दीगृह के वातावरण से परिचित कराने को **'कारावासीकरण'** कहा जाता है, जिससे नये बन्दी को बन्दीगृह के नियमों की उचित रूप से जानकारी हो जाए और वह अन्य बन्दियों साथ सहयोग एवं मैत्रीपूर्ण व्यवहार करे। कुछ बन्दी ऐसे भी होते हैं जो अपनी रूचि के अनुसार साथी बना लेते हैं तथा अपने बन्दी साथियों के नेता की भूमिका निभाने लगते हैं और इसी नेतागिरी का बल दिखाकर उनसे अनुचित सुविधायें प्राप्त करते हैं और कभी–कभी बन्दीगृह के अधिकारी भी बन्दीगृह में अनुशासन व्यवस्था बनाये रखने के लिये इन दण्ड नेताओं की सहायता आवश्यक समझते हैं और इसके बदले उन्हें कुछ सुविधायें देते हैं।

vi) सभी बन्दीगृहों में जेल प्रशासकों को महिलाओं की देखरेख, सुरक्षा तथा उनकी महिला सम्बन्धी आवश्यकताओं हेतु उचित व्यवस्था करना चाहिये। यह जेल प्रशासकों का ही दायित्व है। बन्दीगृहों में महिलाओं की स्थितियों के सम्बन्ध में **आर. डी. उपाध्याय बनाम आन्धप्रदेश राज्य तथा अन्य (ए.आई.आर. 2006 सु. को. 1946)** का वाद उल्लेखनीय है। इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने बन्दीगृहों में महिला की स्थिति पर गम्भीर चिंता व्यक्त करते हुये कहा कि जो महिला बन्दी अपने शिशुओं के साथ बन्दीगृहों में दण्डावधि व्यतीत कर रही है, उनके मामले प्राथमिकता के आधार पर निपटाये जाने चाहिये जिससे कि उनके शिशुओं के पालन–पोषण, आश्रय, चिकित्सा, शिक्षा व मनोरंजन की सुविधायें आदि अधिकारों को सुरक्षित रखा जा सके। इसके अतिरिक्त, न्यायालय द्वारा निर्देश दिया गया कि जिन गर्भवती महिला बन्दियों की प्रसूति बन्दीगृहों में होती है, उनके शिशु के प्रमाणपत्र में जन्म स्थान के जगह बन्दीगृह नहीं

दर्शाना चाहिये। न्यायालय द्वारा यह भी आदेश दिया गया कि छः वर्ष से अधिक आयु के बालकों को उसकी बन्दीगृह में बन्दी माता के साथ नहीं रखा जाना चाहिये एवं इससे सम्बन्धित आवश्यक संशोधन विभिन्न राज्यों को अपनी जेल–मैन्युअल पुस्तिका में कर लेना चाहिये।

वर्ष 2002 में संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा न्यूयार्क में आयोजित विशेष सत्र में बालकों के अधिकारों को सुरक्षित रखने के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा की गई। इसके अनुसार भारत में बालकों के सम्बन्ध में **राष्ट्रीय चार्टर, 2003** पारित किया गया। इसी के आधार पर भारतीय राष्ट्रीय संस्थान, अपराध शास्त्र एवं फारेन्सिक विज्ञान ने फरवरी, 2002 में एक रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें बन्दीगृहों में बन्दी महिलाओं के बालकों (शिशुओं) के अधिकारों की सुरक्षा पर विशेष स्थान दिया गया तथा इस सम्बन्ध में उपयोगी सुझाव दिये गये हैं, जिसका समर्थन महिला एक्शन ग्रुप की संयोजिका सुश्री बबीता शर्मा ने भी किया।

(vii) भारत में लगभग सभी बन्दीगृहों में एक बड़ी संख्या में ऐसे बन्दी भी होते हैं जो काफी समय से न्यायालय द्वारा विचारण की प्रतीक्षा में जेल के अन्दर बन्द रहते हैं। इन बन्दियों में से अनेक बन्दियों के अपराध इतने छोटे होते हैं कि उसके लिये उन्हें कुछ ही माह या एकाध वर्ष के कारावास का दण्ड दिया जा सकता है, परन्तु फिर भी वर्षों तक उनको स्वतन्त्रता से वंचित रखा जाता है और हो सकता है इनमें से कुछ ऐसे भी दण्ड होते होंगे जो निर्दोष सिद्ध हो जायें और उन्हें छोड़ना ही पड़ता है।

उच्चतम न्यायालय ने हुसैन आरा बनाम बिहार राज्य (ए.आई. आर.1979 सु.को. 1360) के ऐतिहासिक वाद विचाराधीन बन्दियों की बन्दीगृह में दयनीय स्थिति के प्रति चिंता व्यक्त करते हुये निर्णय दिया कि न्यायिक विचारण की प्रतीक्षा में अपराधियों का दीर्घ परिरोध स्वयं में संविधान के अनुच्छेद 21 के उपबन्धों का उल्लंघन है, जो जीवन तथा व्यैक्तिक स्वतन्त्रता की सुरक्षा देता है। इस समस्या के हल के लिये यह नियम लागू किया जाना उचित होगा कि यदि किसी अपराधी के वाद में न्यायिक विचारण की प्रतीक्षा में बन्दीगृह में रखे गये बन्दियों का विचारण यदि दो वर्ष में पूर्ण नहीं होता है तो उन्हें बन्दीगृह से रिहा कर दिया जाये।

हुसैन आन III (1980 एस.एस.सी. 93) के वाद में उच्चतम न्यायालय ने बिहार राज्य को यह निर्देश दिया कि वह दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 468 के अधीन ऐसे बन्दियों को तुरन्त रिहा करे, जिनके विरूद्ध परिसीमा अवधि के आरोप पत्र न दाखिल किये गए हों। साथ ही, न्यायालय ने

यह कहा कि वे महिलायें जो स्वयं किसी अपराध का शिकार हुई हैं या जिनकी आवश्यकता गवाह के रूप में है, उन्हें बन्दीगृह में रखा जाना भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में दिए गए स्वतन्त्रता के अधिकार का उल्लंघन है। ऐसी महिलाओं को सरकार के बन्दीगृहों के स्थान पर किसी सुधारगृह में रखना चाहिये।

(viii) बन्दीगृहों में अपनाई जाने वाली नई पद्धतियों के अपनाये जाने के बाद भी गम्भीर अपराध करने वाले अपराधियों को सम्भालने की समस्या बनी हुई है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि वे अपराधी अपराधिक कृत्यों का व्यवसाय करते हैं, इसीलिये इन पर दण्ड का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वे अपराधिक जीवन जीने के इतने आदी हो जाते हैं कि उनको सामान्य जीवन बिताने एवं सुधरने की रूचि ही नहीं होती और कई बार ये अपराधी बन्दीगृहों की सुधारात्मक पद्धति का अनुचित लाभ लेकर भागने का प्रयास भी करते हैं।

(ix) भारतीय बन्दीगृहों के बन्दियों की एक गम्भीर समस्या यह भी है कि बन्दियों को उनके द्वारा दण्डादेश के विरूद्ध विशेष अनुमति से उच्चतम न्यायालय की अपील प्रेषित की जा सकती है। उसे अपील आवेदन के साथ न्यायालय द्वारा उनके विरूद्ध दिये गए निर्णय की सत्यापित प्रति भी संलग्न की जाती है, फिर भी कई बार रजिस्टार के द्वारा उनके प्रकरण को लम्बी अवधि तक उच्चतम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जाता है, क्योंकि रजिस्टार तक निचले न्यायालय से अपीलार्थी के प्रकरण की सम्पूर्ण जानकारी को आने में वर्षों लग जाते हैं।

(x) कई बार बन्दीगृहों राजनीतिक नेताओं द्वारा स्वयं की लोकप्रियता को जनता में बढ़ाने की लालसा से कुछ खास राष्ट्रीय दिवसों जैसे गाँधी जयन्ती, स्वतन्त्रता दिवस, गणतन्त्र दिवस आदि पर बन्दियों को उनकी दण्डावधि से पूर्व ही रिहा करने की घोषणा कर दी जाती है। इस प्रकार की घोषणा से कई बार लोगों में दण्ड निर्धारण का भरोसा कम होने लगता है।

(xi) भारत में बन्दीगृह प्रशासन की बन्दीगृहों से सम्बन्धित वास्तविक समस्या की जानकारी जनता को न होने के कारण, वे जेल अधिकारियों के सम्बन्ध में अनेक शंकायें व भ्रांतियाँ बना लेते हैं और बन्दीगृह की खराब व्यवस्था के लिये इन अधिकारियों को जिम्मेंदार मानते हैं।

बन्दीगृह प्रशासन की अनभिज्ञता को दूर करने के लिये समाज के विभिन्न वर्गों के जन–प्रतिनिधियों की मिली–जुली समितियाँ बनानी चाहिये, जिनमें नेताओं, समाज सेवियों, बुद्धिजीवियों एवं महिलाओं को शामिल कर, ये

समितिया एक निश्चित समय अन्तरालों पर बन्दीगृहों का मुआयना करें और जनता को इनके बारे में अवगत करायें।

वर्तमान में भारत के बन्दीगृह के प्रकार एवं कार्य

वर्तमान में भारत में बन्दीगृह के प्रकारों में से कुछ अन्य प्रकार के भी बन्दीगृह हैं, जिसे निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है–

1) **प्रायश्चित बन्दीगृह**– यह गम्भीर अपराध करने वाले बन्दियों से सम्बन्धित होते हैं।

2) **सुधार बन्दीगृह** – सुधार बन्दीगृहों में ऐसे युवा बन्दियों को सुधार हेतु रखा जाता है जिनकी आयु 16 से 30 वर्ष के मध्य होती है, इन बन्दियों में महिला बन्दी भी शामिल है।

3) **शोधक बन्दीगृह** – वे अपराधी, जो दण्डावधि पूर्ण होने के पश्चात् सरकार द्वारा पुर्नवासित करने के इच्छुक होते हैं। उन्हें इस प्रकार के बन्दीगृह में भेजा जाता था। इसके अतिरिक्त, न्यायालय यह अपेक्षा करता है कि इनमें सुधार की पर्याप्त सम्भावना होती है। सीधे न्यायालय द्वारा ही ऐसे अपराधों में बन्दी के लिये बन्दीगृह प्रेषित कर दिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त, कम अवधि की दण्डावधि से दण्डित बन्दियों को भी शोधक बन्दीगृह में भेजा जाता है।

4) **बाल बन्दीगृहः**– सर्वप्रथम बाल एवं किशोर अपराधियों हेतु उत्तर प्रदेश सरकार ने बेली में स्थापित किया, जिसमें किशोर अपराधियों को जिनकी आयु 19 वर्ष से अधिक हो तथा जिन्हें कम से कम एक वर्ष के कारावास का दण्ड से दण्डित किया गया हो, उन्हें भी रखा जाये।

बन्दीगृह में बन्दियों को रखने का मुख्य उद्देश्य बन्दियों को सुधारकर सामान्य नागरिक के रूप में परिवर्तित करना एवं भली प्रकार से उसे समाज में पुनर्वासित करने में यथासम्भव योगदान देना है। अतः बन्दीगृह के निम्नलिखित मुख्य कार्य हैं–

1) बन्दीगृह का प्रमुख कार्य मुख्य अपराधियों को बन्दी बनाकर रखना है। बन्दीगृह में पूरी सर्तकता के साथ कैदियों को बन्दी बनाकर रखा जाता है, जिससे कि वे भाग न सकें।

2) बन्दीगृहों का प्रमुख कार्य अपराध की दरों को कम करके अपराध पर नियन्त्रण बनाये रखना है, क्योंकि वर्तमान में बन्दीगृह अपराधी को समाज से अलग करके मानसिक व शारीरिक दोनों स्तरों पर

पीड़ित करता है, जिससे व्यक्ति अपराध करने से डरे।

3) वर्तमान में बन्दीगृह का प्रमुख कार्य अपराधी को सुधार कर योग्य एवं व्यवस्थित नागरिक बनाना है। इसीलिये, वर्तमान में बन्दीगृहों में अच्छी परिस्थितियों के माध्यम से अपराधी बन्दियों के सुधार एवं उपचार पर बल दिया जा रहा है।

बन्दीगृह–व्यवस्था के सन्दर्भ में निष्कर्ष के रूप यह कहा जा सकता है कि बन्दीगृह में दण्डावधि व्यतीत कर रहे अधिकांश बन्दी की इच्छा दण्डावधि पूर्ण करने के पश्चात् समाज में पुनः सामान्य नागरिक की भाँति जीवन व्यतीत करने की होती है तथा कुछ बन्दी दण्डावधि पूर्ण करने के पश्चात् भी अपराधिक गतिविधियों में लिप्त रहते हैं, वे पुनः अपराधों की ओर ही जाते हैं, क्योंकि वे लोग स्वभाव एवं व्यावहारिक रूप से समाज विरोधी भावना के होते हैं। इसीलिये, बन्दीगृह व्यवस्था का मुख्य लक्ष्य सुधार योग्य बन्दियों को पुनर्वास की सुविधायें उपलब्ध कराना है और उन बन्दियों को सम्भव हो तो पैरोल पर या सदाचार पर छूट के कारण अस्थायी रूप से छोड़ना चाहिये या परिवारजनों व सम्बन्धियों से मिलने का अधिक अवसर दिया जाना चाहिये जिससे उनके परिवार से सम्पर्क बना रहे तथा उन्हें भी परिवार की समस्याओं की जानकारी हो सके।

अध्याय – 4

बन्दी एवं बन्दी कल्याण

जब कोई व्यक्ति विधि विरूद्ध कृत्य या समाज के नियमों के विरूद्ध कृत्य करता है जिसके लिये स्थानीय या प्रचलित विधि में दण्ड का प्रावधान है तो उसे अपराधिक कृत्य कहा जाता है। इस कृत्य को करने वाला अपराधी कहलाता है। जब किसी व्यक्ति पर अपराध सिद्ध होता है या किसी अपराध में संशयित होता है, तो उसे बन्दीगृह में बन्दी के रूप में रखा जाता है। अतः कोई भी व्यक्ति जो किसी अपराधिक कृत्य में संशयित या दोषसिद्ध पाया गया हो और उसकी इच्छा के विरूद्ध स्वतन्त्रता से वंचित कर बन्दीगृह में रखा जाता है, बन्दी कहलाता है, इन्हें कारावासी कैदी भी कहा जाता है।

अपराधिक कृत्य करने वाले व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरूद्ध स्वतन्त्रता को परिरूद्ध कर बन्दीगृह में रखने की प्रक्रिया प्राचीनकाल से चली आ रही है। अपराध करने वाले अपराधी पर अपराध सिद्ध होता है या नहीं, यह सिद्ध करने से पूर्व ही अपराध में संशयित व्यक्ति को बन्दीगृह में बन्द कर दिया जाता है, यह अपराधों पर नियन्त्रण रखने के लिये भी आवश्यक है। प्राचीन समय में बन्दियों के साथ कठोर एवं प्रतिकारात्मक दण्ड नीति अपनाई जाती थी। प्राचीन समय में अपराधियों को यातनायें देकर दण्डित किया जाना ही एकमात्र लक्ष्य होता था।

प्राचीन समय में जब अपराधियों को दण्ड देने के लिए प्रतिरोधात्मक दण्ड नीति अपनाई जाती थी, तब बन्दियों को एक साथ रखा जाता था। बन्दियों को एकत्र रखने के कारण उनका जीवन नरक समान था तथा सभी बन्दीगृह सभी प्रकार के दुराचार और बुराईयों के स्थान बने रहते थे। उन दिनों अपराधियों को दण्डित करने का एकमात्र उद्देश्य उन्हें अधिक से अधिक यातनायें देना था।

अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्त और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में दण्ड विज्ञान के विकास के साथ, अपराधियों को उनके लिंग, आयु और अपराध की गम्भीरता व प्रकृति के अनुसार वर्गीकृत कर पृथक रखा जाने लगा। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक तो बन्दियों के प्रति वैयक्तिकरण की नीति अपनाते हुये उपचारात्मक पद्धति का सूत्रपात किया गया। अपराधी के वैयक्तिकरण में पुनर्वास की प्रक्रिया ने दण्डात्मक पद्धति का प्रमुख स्थान ले लिया। स्पष्ट रूप से बदलती हुई परिस्थितियों में उनके शारीरिक मतभेदों के आधार पर पूर्व में किये गये वर्गीकरण का उद्देश्य अनुपयोगी है, इसीलिये आधुनिक दण्ड शास्त्री ने विभेदक उपचार के अनुसार बन्दियों का वर्गीकरण तैयार किया है।

अतः बन्दी जिसे कैदी भी कहा जाता है, एक ऐसा व्यक्ति है, जो अपनी इच्छा के विरूद्ध स्वतन्त्रता से वंचित है। यह कारावास कैद या जबरदस्ती संयम से हो सकता है। यह शब्द विशेष रूप से, उन मुकदमों पर लागू होता है या बन्दीगृह में दण्ड के समय व्यतीत कर रहा कोई भी व्यक्ति सक्षम अधिकारी के आदेश पर बन्दीगृह में बन्दी हो।

बन्दियों को अधिकतम सुरक्षित बन्दीगृहों में रखने के पश्चात् भी, आधुनिक समय में बन्दियों के सुधार एवं पुनर्वास के लिये कई अर्द्ध–दण्डिक (Quasi Penal) या अदाण्डिक या गैर–पैनल (Non Penal) संस्थाओं है, जिसके लिये बन्दियों को वर्गीकृत किया जाना आवश्यक है। वर्तमान समय में, अपराधियों को दण्ड देने का मुख्य उद्देश्य समाज की सुरक्षा है। जबकि बन्दियों के उपचार के लिये कैदियों का वर्गीकरण इसकी प्रक्रिया है। इसके उचित परिणाम को प्राप्त करने के लिये बन्दियों को दो व्यापक श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है, अर्थात्,

1) गम्भीर या अभ्यस्त या कठोर अपराधी, जो एक पारम्परिक जेल में उपचार हेतु योग्य है; एवं

(2) आकस्मिक अपराधी, जो सुधार योग्य पाया जाते हैं हिरासत में अर्थात् निरीक्षण हेतु निरीक्षण गृह या बोर्स्टल या सुधारक गृह भेजे जाते है या कुछ परिवीक्षा पर रिहा भी किये जाते हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका की उपचारत्मक दण्ड व्यवस्था में सुधार प्रणाली के अन्तर्गत ही पुनर्वास की दृष्टि से बन्दियों को वर्गीकृत करने का कार्य निम्नलिखित अभिकरणों के द्वारा किया जाता हैः–

(1) केन्द्रीय वर्गीकरण प्रकोष्ठ (Central Classification Cell)

(2) वर्गीकरण समितियाँ (Classification Committeesa)

(3) अभिग्रहण केन्द्र (Reception Centre)

किसी अभियुक्त के दोषसिद्ध होने पर कारावास के दण्ड से दण्डित किये जाने पर सभी अपराधियों को सर्वप्रथम केन्द्रीय वर्गीकरण प्रकोष्ठ में रखा जाता है, जहाँ विशेषज्ञों एवं मनोचिकित्सकों द्वारा उनके पूर्ववृत्त, अतीत के इतिहास (पूर्ववृत्तान्त) एवं मानसिक अभिवृति आदि की जानकारी एकत्र कर गहनता से जाँच कर मनोचिकित्सकों द्वारा उपचार का निदान किया जाता है। यदि इन विशेषज्ञों की राज्य में जो बन्दी सुधार गृह में रखने योग्य पाया जाता है उसे वहाँ भेज दिया जाता है। परन्तु उन्हें सुधार गृह में भेजने से पूर्व कुछ समय (लगभग एक माह) के लिये सुधारगृह के अभिग्रहण केन्द्र में निरीक्षण में रखा जाता है जिससे वे सुधारगृह के दैनिक जीवनचर्या के अनुकूल स्वयं को ढाल सकें। प्रत्येक सुधारात्मक अभिकरण में एक वर्गीकरण समिति होती है, जो अपने

मानसिक, अभिवृत्ति, मनोविज्ञान एवं उपचार के प्रति सम्भावित प्रतिक्रिया के अनुसार बन्दी की व्यक्तिगत उपचार की रूपरेखा तैयार करती है।

यह कहा गया है कि यदि भारत भी अमेरिका पद्धति के बन्दियों के इस प्रकार के वर्गीकरण को अपनाता है तो बन्दीगृह के अधिकारियों एवं बन्दियों की समस्या को निपटाना आसान हो सकता है तथा साथ ही यह बन्दियों में तेजी से सुधार भी लायेगा।

भारतीय बन्दीगृह में दोषसिद्ध अपराधी बन्दी, विचाराधीन बन्दी व नजरबन्द या निरूद्ध बन्दी के रूप में वर्गीकृत किया गया है। अपराधिक विचाराधीन बन्दी को कारागार अधिनियम की धारा 3(2) के अनुसार अपराधिक बन्दी से कोई ऐसा बन्दी अभिप्रेत है, जिसे दण्डिक अधिकारिता का प्रयोग करने वाले किसी न्यायालय या प्राधिकारी के रिट, वारण्ट या आदेश से या सेना न्यायालय के आदेश से सम्यक् रूप से अभिरक्षा में सुपुर्द किया गया है। दोषसिद्ध अपराधी बन्दी कारागार अधिनियम की धारा 3(3) के अनुसार, कोई ऐसा अपराधिक बन्दी है, जिसे किसी न्यायालय या सेना न्यायालय में दण्डादेश दिया है और इसके अन्तर्गत दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1882 के अध्याय–8 के उपबन्धों के अधीन या प्रिजनर्स एक्ट, 1871 के अधीन किसी कारागार में निरूद्ध किया गया व्यक्ति भी है। अर्थात्, जो व्यक्ति किसी अपराधिक कृत्य के लिये न्यायालय में दोषसिद्ध पाया गया है और उसे न्यायालय द्वारा दण्डित किया गया है। निरूद्ध या नजरबन्द बन्दी अर्थात् सिविल बन्दी बन्दीगृह में रखा वह व्यक्ति है, जो गैर–भारतीय दण्ड संहिता में अपराधों के सम्बन्ध में भारतीय बन्दीगृहों में बन्द बन्दियों को सिविल बन्दियों के रूप में बन्द किया गया है। यह बन्दी दोषसिद्ध एवं विचाराधीन दोनों से मिलकर बना होता है।

कारागार अधिनियम, 1894 की धारा 23 के अनुसार वे बन्दी जो बन्दीगृहों के अधिकारी नियुक्त किये गये हैं, उन्हें **भारतीय दण्ड संहिता, 1860 (1860 के 45)** के अर्थ के अन्तर्गत लोकसेवक माना जायेगा।

कारागार अधिनियम की धारा 27 के अनुसार बन्दियों के पृथक्करण के बारे में इस अधिनियम की अपेक्षायें निम्नलिखित हैः–

1. ऐसे बन्दीगृह में, जिसमें महिला एवं पुरूष दोनों ही प्रकार के बन्दी हैं, महिला बन्दियों को पृथक भवनों में या एक ही भवन के अलग–अलग भागों में इस प्रकार रखा जायेगा कि उन्हें पुरूष बन्दियों को देखने या उनसे बातचीत करने या उनके समागम से रोका जा सके।
2. ऐसे बन्दीगृह में, जहाँ इक्कीस वर्ष से कम आयु के पुरूष बन्दी पृथक रखने तथा उनमें से ऐसे बन्दियों को जो यौवनारम्भ की

अवस्था तक पहुँच चुके है और ऐसे बन्दियों को जो उस अवस्था तक नहीं पहुँचे है, पृथक रखने के उपाय किये जायेंगे।

3. दोषसिद्ध पूर्व के अपराधिक बन्दियों को सिद्धदोष अपराधिक बन्दियों से अलग रखा जायेगा, एवं

4. सिविल बन्दियों को अपराधिक बन्दियों से पृथक रखा जायेगा।

कारागार अधिनियम की धारा 281 के अनुसार बन्दियों को दूसरों के साथ तथा अलग–अलग रखना, अन्तिम पूर्वगामी धारा की अपेक्षाओं के अधीन रहते हुये सिद्धदोष अपराधिक बन्दियों को या तो साथ–साथ या एक–एक को अलग–अलग करके कोठरियों में कुछ को एक प्रकार से, और कुछ को दूसरे प्रकार से रखा जा सकता है।

कारागार अधिनियम की धारा 29 में एकान्त परिरोध का प्रावधान है। इस धारा के अनुसार कोई भी कोठरी एकान्त परिरोध के लिये तब तक प्रयोग में नहीं लायी जाती है जब तक कि उसमें ऐसे साधनों की व्यवस्था न हो, जिनसे बन्दी किसी भी समय कारागार के किसी अधिकारी से सम्पर्क स्थापित करने में समर्थ हो सके और किसी कोठरी में चौबीस दिन से अधिक के लिये इस प्रकार परिरूद्ध बन्दी को चाहे परिरोध दण्ड स्वरूप हो या अन्यथा, चिकित्सा अधिकारी या चिकित्सीय अधीनस्थ एक दिन में कम से कम एक बार जरूर देखने जायेगा।

कारागार अधिनियम की धारा 30 मृत्यु दण्डादिष्ट बन्दी के अनुसार– 1. ऐसे प्रत्येक बन्दी की, जिसे मृत्युदण्ड दिया गया है दण्डादेश के पश्चात् बन्दीगृह में जाते ही तुरन्त जेलर द्वारा या उसके आदेश से तलाशी ली जायेगी और उससे वे सभी वस्तुयें ले ली जायेगी, जिन्हें जेलर उसके पास छोड़ना खतरनाक या असमीचीन समझता है।

2. ऐसा प्रत्येक बन्दी अन्य बन्दियों से पृथक एक कोठरी में परिरूद्ध किया जायेगा और उसे रात–दिन पहरेदार की निगरानी में रखा जायेगा।

अतः विभिन्न बन्दीगृहों में बन्द बन्दियों को दोषसिद्ध विचाराधीन एवं निरूद्ध या नजरबन्द बन्दी के रूप में वर्गीकृत किया गया है। इस जनसंख्या को अन्य मापदण्डों पर भी वर्गीकृत किया जा सकता है, जैसे– लिंग, राष्ट्रीयता, मानसिक स्वास्थ्य आदि।

बन्दियों के अन्य वर्गीकरण

उच्चतम न्यायालय में राममूर्ति बनाम कर्नाटक राज्य (1996) में बन्दीगृहों से सम्बन्धित कानूनों में एकरूपता लाने की तत्काल आवश्यकता बतायी और इस हेतु उच्चतम न्यायालय ने केन्द्र और राज्य सरकारों को एक नये जेल

मेन्युअल का नया मॉडल तैयार करने का निर्देश दिया। इससे पूर्व में, बन्दीगृह सुधार सम्बन्धी अखिल भारतीय समिति (1980–83) ने भी बन्दीगृहों पर समेकित कानून बनाने की आवश्यकता पर बल दिया था। तद्नुसार, गृह मंत्रालय के अनुमोदन से पुलिस अनुसन्धान एवं विकास ब्यूरो ने एक मॉडल जेल मेन्युअल तैयार करने के लिये राष्ट्रीय स्तर पर एक मॉडल जेल मेन्युअल समिति का गठन किया। इस मॉडल जेल मेन्युअल बन्दियों के निम्नलिखित प्रकार बनाना हैः–

1. **किशोर बन्दी**– कोई भी व्यक्ति,

   (i) जो कारावास के साथ दण्डनीय किसी अपराध का दोषी पाया गया है या जिसे धारा 117 के तहत सुरक्षा देने का आदेश दिया गया है (1974 के केन्द्रीय अधिनियम 2) ऐसा करने में विफल रहा है और जो दोषी सिद्ध हुये एवं सुरक्षा देने में विफलता के समय 18 वर्ष से कम व 21 वर्ष से अधिक नहीं हैं;

   (ii) प्रकरण लम्बित रहने के दौरान हिरासत में रखने बन्दीगृह प्रतिबद्ध किया गया है और प्रतिबद्धता के समय उसकी आयु 18 वर्ष से कम व 21 वर्ष से अधिक नहीं रही।

2. **वयस्क बन्दी**– ऐसा कोई भी बन्दी जो 21 वर्ष की आयु से अधिक हो।

3. **आकस्मिक बन्दी**– एक ऐसा बन्दी जो दोषसिद्ध अपराधिक बन्दी जो अभ्यस्त अपराधियों से भिन्न है।

4. **सिविल बन्दी**– कोई भी बन्दी जो नजरबन्द नहीं है, तथा जो किसी भी अपराधिक या अधिकारिक क्षेत्र के न्यायालय या न्यायिक आदेश के अनुसार किसी भी न्यायालय या प्राधिकारी के रिट, वारण्ट या आदेश के तहत हिरासत में नहीं लिया जाता है।

5. **दोषसिद्ध बन्दी**– अपराधिक क्षेत्राधिकार या न्यायिक संस्था द्वारा दण्डित किया गया कोई बन्दी दोषसिद्ध बन्दी होता है और इसमें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अध्याय–8 एवं कारावासी अधिनियम, 1900 के प्रावधानों के अन्तर्गत बन्दीगृह में बन्द व्यक्ति शामिल है।

6. **निरूद्ध या नजरबन्द बन्दी**– किसी भी व्यक्ति को सम्बन्धित निवारक विधि के अन्तर्गत सक्षम प्राधिकारी के आदेश पर बन्दीगृह में बन्द कर दिया गया है, निरूद्ध या नजरबन्दी कहा जाता है।

7. **अभ्यस्त अपराधी बन्दी**– वह अपराधी जो अपराधिक कृत्य को करने की पुनरावृत्ति करता है, अभ्यस्त अपराधी होता है, ऐसे बन्दी को विधि या कानूनी नियमों के प्रावधानों के अनुसार इस तरह वर्गीकृत किया गया है।

8. **साधारण बन्दी या कैदी**–कोई भी व्यक्ति जो किसी प्रकार के बन्दीगृह या बन्दीगृह जैसी संस्था में रखा गया हो।

9. **सैन्य या फौजी बन्दी**– एक ऐसा बन्दी जो न्यायिक अधिकारों का उपयोग करने वाली संस्था द्वारा दोषसिद्ध पाया गया हो।

10. **विचाराधीन बन्दी**– ऐसा बन्दी जिसे किसी प्रकरण का संशयित या दोषी पाये जाने पर न्यायालय की कार्यवाही में लम्बित अन्वेषण या सक्षम प्राधिकारी के द्वारा जाँच किये जाने तक बन्दीगृह में रखने के लिये प्रतिबद्ध किया गया हो।

11. **रिमाण्ड बन्दी**– ऐसा व्यक्ति जो पुलिस द्वारा लम्बित जाँच के लिये न्यायालय द्वारा बन्दीगृह में रिमाण्ड पर भेजे जाने के लिये आदेशित किया गया हो।

12. **युवा अपराधी बन्दी**– ऐसा व्यक्ति बन्दी जिसमें 18 वर्ष की आयु तो पूर्ण कर ली है परन्तु 21 वर्ष की आयु प्राप्त नहीं की हो।

गोवा बन्दीगृह (जेल) अधिनियम, 2006 के अनुसार बन्दियों का वर्गीकरण निम्नानुसार है–

1. **किशोर अपराधी**– किशोर अपराधी अर्थात्,

   (i) कोई भी ऐसा व्यक्ति जिसे कारावास के दण्ड से दण्डनीय किसी अपराध का दोषी पाया गया है या जो **दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 117** के अन्तर्गत सुरक्षा का आदेश दिया गया है (1974 के केन्द्रीय अधिनियम 2) को ऐसा करने में असफल रहा है या वह उसे दृढ़ विश्वास या सुरक्षा देने में विफलता का समय, 18 वर्ष से कम व 21 वर्ष से आयु का होना चाहिए।

   (ii) कोई भी व्यक्ति जो स्वयं लम्बित प्रकरण के दौरान हिरासत में रखा गया है और प्रतिबद्धता के समय उसकी आयु कम से कम 18 वर्ष हो तथा 21 वर्ष से अधिक न हो।

2. **वयस्क बन्दी**– ऐसा बन्दी जिसकी आयु 21 वर्ष से अधिक हो।

3. **सिविल अपराधी**– ऐसा अपराधी जिसे याचिका वारण्ट या किसी अन्य न्यायालय या कार्यरत अपराधिक क्षेत्राधिकार (प्राधिकरण) के प्राधिकारी के आदेश पर या किसी न्यायिक सेवा के आदेश पर हिरासत से रखे जाना प्रतिबद्ध हो और वो नजरबन्द या निरूद्ध नहीं है।

4. **आकस्मिक बन्दी**–एक ऐसा बन्दी जो अभ्यस्त अपराधी से भिन्न परिस्थितिवश अपराधी बना हो और उस अपराधिक कृत्य के लिये दोषसिद्ध

पाया गया हो।

5. **दोषी बन्दी**– कोई भी बन्दी जो अपराधिक क्षेत्राधिकार के न्यायालय या न्यायिक कार्य करने वाली संस्था द्वारा दण्डित किया गया हो तथा इसमें वे बन्दी भी शामिल हैं जो **दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973** के अध्याय–8 में दिये गये प्रावधानों व **बन्दीगृह अधिनियम, 1900** के अन्तर्गत बन्दीगृह में बन्दी व्यक्ति भी हैं।

6. **मानसिक अपराधी**– मानसिक रूप से बीमार अपराधी अर्थात् ऐसा व्यक्ति जिसे हिरासत में या किसी बन्दीगृह या सुरक्षित संरक्षण के अन्य स्थान पर ले जाने हेतु, दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 328, 330, 335 या 336 के प्रावधानों या बन्दी कारावासी अधिनियम, 1900 की धारा 30 या आर्मी अधिनियम की धारा 145 के अनुसार आदेश दिया गया हो।

7. **निरूद्ध या नजरबन्द बन्दी**–नजरबंद बन्दी का अर्थ सम्बन्धित विधि के नियमों के अन्तर्गत सक्षम प्राधिकारी के आदेश पर बन्दीगृह में हिरासत में व्यक्ति है।

8. **साधारण बन्दी या कैदी** – सहवर्ती अर्थात् वह व्यक्ति जो किसी बन्दीगृह या बन्दीगृह जैसी संस्थान में हिरासत में रखा बन्दी है।

9. **श्रमिक बन्दी**– श्रमिक बन्दी अर्थात् श्रमिक कार्य पर कार्यरत बन्दी।

10. **मानसिक बीमार बन्दी**– वह बन्दी जो अपने दण्ड व बन्दीगृह में प्रवेश के पश्चात् पागल हो गया हो।

11. **सैन्य बन्दी**– सैन्य बन्दी अर्थात् कोर्ट मार्शल के द्वारा दोषी ठहराया गया अपराधी बन्दी।

12. **विचाराणीय बन्दी**– वह व्यक्ति, जो किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा लम्बित जाँच या परीक्षण होने की अवधि में न्यायिक आदेश पर हिरासत में रखा जाता है। भारत में विभिन्न बन्दीगृहों और बन्दियों को परिभाषित करने एवं श्रेणीबद्ध करने के लिये एक विशिष्ट एवं विशेष विधान आवश्यक है। वर्तमान में भारत में बन्दी अभी भी कारागार अधिनियम, 1894 बन्दी (कारावासी) अधिनियम,1900 एवं बन्दियों (कारावासियों) का स्थानातंरण अधिनियम,1950 द्वारा शासित होते हैं। इन तीनों अधिनियमों में अभी भी जेलों के प्रकारों को परिभाषित नहीं किया है और न ही बन्दीगृह को व्यापक रूप से परिभाषित तथा भारत में विभिन्न प्रकार के बन्दियों को वर्गीकृत किया है।

उपरोक्त बन्दियों के अतिरिक्त एक और प्रकार के बन्दी है महिला बन्दी। महिला बन्दी अर्थात् जब किसी अपराधिक कृत्य में किसी महिला को संशयित

या दोषी सिद्ध होने की स्थिति में बन्दीगृह में रखा जाता है।

बन्दियों के विभिन्न प्रकार का वर्गीकरण कर दोषसिद्ध विचाराधीन बन्दियों को पृथक बन्दीगृहों में रखना चाहिये क्योंकि हो सकता जो बन्दी विचाराधीन है, वह दोषी न हो उन्हें गम्भीर व कठोर बन्दियों से दूर रखना चाहिये और उन्हें नया अपराधी बनने से रोकना चाहिये। इसके अतिरिक्त, विधि द्वारा विभिन्न विचाराधीन बन्दियों के बन्दीगृह में रखने की समय सीमा सुनिश्चित की जानी चाहिये जिससे अपराधिक न्याय निर्णय प्रणाली तेजी से हो तथा इसके परिणामस्वरूप भारतीय जेलों पर कम बोझ होगा। भारत में भी बन्दीगृह के बन्दियों का वर्गीकरण संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की पद्धति को या संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के बन्दियों के वर्गीकरण में कुछ सुधार कर लागू की जाये, तो इसके परिणाम बेहतर होंगे। साथ ही, बन्दीगृह प्रशासन को बन्दियों की समस्या का निदान करने में पर्याप्त सहायता प्राप्त होगी और बन्दियों में सुधार भी तीव्र गति से होगा।

अपराधों का अस्तित्व प्रत्येक देश एवं काल में रहा है। यह एक सामाजिक प्रक्रिया है जो विघटनकारी है। जिस प्रकार देश या समाज में अपराध होते रहे हैं उसी प्रकार उन्हें रोकने के प्रयास भी होते आ रहे हैं। अर्थात्, समाज में अपराध का आस्तित्व आने के बाद उसके रोकथामों के भी उचित प्रयास किये गये। अपराधशास्त्र में कहा जाता है अपराध के लिये केवल अपराधी जिम्मेदार नहीं होता है, समाज एवं परिस्थितियाँ भी जिम्मेदार होती हैं। किसी व्यक्ति की सामाजिक स्तर पर अपराधों को कम करने के लिये आवश्यक है कि समाज को उन परिस्थितियों पर ध्यान देना चाहिए, जिसके कारण किसी व्यक्ति ने अपराध किया हो तथा उन परिस्थितियों को सुधारने का प्रयास किया जाये, जिससे भविष्य में व्यक्ति अपराध की ओर न जाये।

बन्दीगृह प्रशासन सदैव से ही विवादित विषय रहा है। यह स्वतन्त्रता से पूर्व भी विवादित था और स्वतन्त्रता के पश्चात् भी विवादित रहा है। कुछ समय पूर्व से उच्चतम न्यायालय, मीडिया व समाज सेवियों का ध्यान बन्दीगृह की स्थितियों पर आकर्षित हुआ और उच्चतम न्यायालय ने बन्दीगृह की स्थिति पर चिंता व्यक्त की। विश्व में सभी देशों की सरकारें संयुक्त रूप से अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं के माध्यम से बन्दीगृहों की स्थिति को लेकर एकत्रित हुईं और सभी देशों की सरकारों ने राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय दोनों ही स्तर पर महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

भारत के इतिहास में बन्दीगृह प्रशासन का इतिहास वैदिक काल से ही रहा है। प्राचीन काल में असामाजिक तत्वों को इन बन्दीगृह में समाज से दूर रखकर समाज में शान्ति बनाये रखने एवं सामान्य जनता में असामाजिक कार्यों के प्रति भय उत्पन्न करना था। प्राचीन समय में असामाजिक तत्वों को एक ही

स्थान पर रखा जाता था। उस समय बन्दियों के सुधार एवं पुर्नस्र्थापना करने की परिकल्पना भी नहीं की जाती थी। उस समय अपराधी को बन्दीगृह में बन्दी बनाये रखना ही प्रमुख उद्देश्य होता था। प्राचीन समय में लगभग सत्रहवीं शताब्दी से पूर्व के शासकों द्वारा कभी–कभार ही बन्दीगृह में रखे जाने का दण्ड दिया जाता था। उस समय अधिकतर दण्ड थे, सामान्य दण्ड, शुल्क देना, अंगभंग करना या मृत्युदण्ड आदि। समयानुसार आये परिवर्तन से अपराधशस्त्रियों ने मृत्यु दण्ड एवं अन्य कठोर दण्ड की आलोचना की जिसके परिणामस्वरूप कठोर दण्ड एवं मृत्युदण्ड के स्थान पर अपराधी को समाज व परिवार से दूर बन्दीगृह में रखने की व्यवस्था की गयी।

प्राचीन समय के बन्दीगृह बहुत निम्न श्रेणी के होते थे। बन्दीगृह अधंकार युक्त बिना सुविधाओं वाले होते थे। उस समय बन्दीगृहों में बन्दियों का वर्गीकरण भी नहीं किया जाता था। बालक, बुजुर्ग महिलायें, पुरूष, गम्भीर अपराधिक कृत्य करने वाले अपराधी सभी एक ही स्थान पर रखे जाते थे। कुछ समाज सुधारकों ने भी जेल व्यवस्था पर ध्यान पर दिया एवं अखिल भारतीय जेल सुधार समिति जेल सुधारकों द्वारा तैयार की गई। वर्तमान में इसे पेन्सेलवेनिया जेल समिति के नाम से जाना जाता है। बन्दीगृह एवं बन्दियों के हालात सुधारने के लिये बन्दियों को कठोर परिश्रम एवं ध्यान के माध्यम की राह अपनाई तथा महिला व पुरूष अपराधी, गम्भीर व आदतन अपराधी व हिसंक अपराधियों में वर्गीकृत किये जाने की बात भी कही।

बन्दीगृह में बन्दियों में सुधार व पुनर्वास की दिशा में प्रथम प्रयास अमेरिका के बन्दीगृह में हुआ जिसे पेन्सेलवेनिया सिस्टम का प्रथम प्रयास था। पेन्सेलवेनिया व्यवस्था का मुख्य विचार मौलिक एवं सुधारात्मक था, परन्तु बन्दियों की संख्या अधिक होने से गम्भीर अपराधियों को पृथक तो रखा गया परन्तु उनमें सुधार लाना बहुत मुश्किल रहा। बन्दियों के सुधारने के प्रयास चलते रहे।

वर्ष 1894 तक विभिन्न प्रकार के बन्दीगृह के सम्बन्ध में अनेक नये विचार आते गए, किन्तु बन्दीगृह प्रशासन में कुछ साल परिवर्तन नहीं हुआ। **जेल अधिनियम, 1894** के क्रियान्वयन के पश्चात् भी बन्दीगृह की समस्याओं पर पुनर्विलोकन की प्रक्रिया चलती रही। वर्ष 1919–1920 में इस अधिनियम के पश्चात् प्रथम बार बन्दियों के सुधार एवं पुनर्वास की दिशा में मील का पत्थर साबित हुआ। अब बन्दीगृह प्रशासन का मुख्य उद्देश्य बन्दियों का सुधार एवं पुनर्वास बन गया। वर्ष 1919–1920 में जेल अधिनियम,1984 के पश्चात् बन्दियों के सुधार एवं पुनर्वास हेतु एक भारतीय जेल सुधार समिति का गठन किया गया, जो भारतीय बन्दीगृह प्रशासन के लिये मील का पत्थर बना। इस समिति ने बन्दियों की देखभाल प्रशिक्षित कर्मचारियों के द्वारा किये जाने, जेल के कार्यपालन, सुरक्षाकर्मी एवं लिपिकीय व तकनीक कर्मचारी पृथक–पृथक करने,

प्रत्येक श्रेणी के अपराधी बन्दी हेतु पृथक जेल या कोठरी की व्यवस्था आदि की अनुशंसायें की थी, जिसका सैद्धान्तिक पालन नहीं किया जा सका। इसके पश्चात् संवैधानिक परिवर्तन एवं भारत सरकार अधिनियम, 1935 ने बन्दियों के स्थानातंरण की अनुशंसायें लागू नहीं की जा सकीं। वर्ष 1937 से वर्ष 1947 के समय में कुछ स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों ने बन्दीगृह की दशायें सुधारने के किये सरकार पर दबाव बनाये। इस समय जेल सुधार समिति, मैसूर 1940, उत्तरप्रदेश जेल सुधार समिति, 1946, बाम्बे जेल सुधार समिति, 1945–46 आदि बनाई गई। 1947 में स्वतन्त्रता के पश्चात् बन्दीगृह में सुधार के किये राजनीतिक सुधार को विशेष महत्व दिया गया। कई जेल समितियाँ तैयार की गई जैसे– पूर्वी पंजाब सुधार समिति, 1946–1949, मद्रास जेल समिति, 1950–51, उड़ीसा जेल सुधार समिति 1952–55 आदि। इन समितियों का मुख्य उद्देश्य बन्दियों को मानवतावादी स्थितियों के आधार पर वैज्ञानिक स्तर पर सुधार करना था। इसी समय में वाल्टर रेक्लेस वर्ष 1951–52 में भारत में भारतीय बन्दीगृहों के बन्दीगृह प्रशासन के सुधारात्मक इतिहास का दूसरा मील का पत्थर बना।

डॉ. वाल्टर रेक्लेस ने बन्दीगृहों को बन्दीगृहों से सुधारात्मक गृह बनाने की अनुशंसा करते हुए नये बन्दीगृहों की स्थापना का भी समर्थन किया। उन्होंने बन्दीगृहों में किशोर अपराधियों एवं वयस्क अपराधियों को पृथक रखे जाने एवं बन्दीगृह की सेवायें विशेष रूप से प्रशिक्षित अधिकारियों के द्वारा ही संचालित किए जाने तथा बन्दीगृह में बन्दीगृह अधिकारियों द्वारा विशेष प्रशिक्षण द्वारा बन्दियों में सुधार करने, बन्दियों की बन्दीगृह से मुक्ति के पश्चात् पुनर्वासित करने हेतु एक सम्पूर्ण कालिक पुनर्वालोकन मण्डल का गठन किया जिसे सुधार प्रशासन के नाम से जाना गया एवं राज्य सरकारों को सुधार कार्यक्रमों को संचालित एवं विकसित करने में सहायता करने तथा सुधार प्रशासन को व्यावसायिक सुझाव देने हेतु उच्च व्यावसायिक विशेषज्ञता का आदान–प्रदान करने वाले विशेषज्ञों का राष्ट्रीय समूह बनाये जाने व बन्दीगृह प्रशासन के वरिष्ठ अधिकारियों की विचार गोष्ठियों का समय–समय पर आयोजन किये जाने की महत्वपूर्ण अनुशंसायें की थीं।

डॉ. वाल्टर रेक्लेस द्वारा दी गई अनुशंसा को लागू करने के लिये भारत सरकार में **भारतीय जेल अधिनियम समिति, 1957** गठित की जिसका मुख्य उद्देश्य आधुनिक जेल अधिनियम समिति का मुख्य रूप से बन्दीगृह प्रशासन से जुड़े हुये सभी विषयों पर सुधार करने हेतु सुझाव देने के लिये निर्देशित किया गया था। इसी अनुक्रम में वर्ष 1961 सेंट्रल ब्यूरो ऑफ करेक्शनल सर्विसेज का गठन गृह मंत्रालय के अधीन किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य बन्दीगृह प्रशासन बन्दियों के पुनर्वास, अनैतिक व्यापार, परिवीक्षा, किशोर न्याय आदि मुद्दों को देखना था।

वर्ष 1972 में गृह मंत्रालय भारत सरकार ने बन्दीगृहों के लिये कार्यकारी समूह बनाये गये जिन्होंने वर्ष 1973 में एक रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें बन्दीगृहों में राष्ट्रीय नीति बनाने एवं इसके लिये निम्नलिखित बिन्दु प्रस्तावित किये गए–

1. बन्दियों के लिये बन्दीगृह के अन्य सम्भावित विकल्प तलाश करना।
2. बन्दीगृह अधिकारियों की सेवा शर्तो में विकास एवं सही प्रशिक्षण।
3. बन्दियों की श्रेणियों का वैज्ञानिक विभाजन।
4. बन्दीगृह प्रशासन को सामाजिक सुरक्षा का अभिन्न अंग मानकर राष्ट्रीय योजना में शामिल करने पर जोर देना।
5. बन्दीगृह प्रशासन को महत्व देना।
6. बन्दीगृह प्रशासनों को पंचवर्षीय योजना में स्थान देना, आदि।

वर्ष 1971 में सुधारात्मक सेवाओं को ब्यूरो का राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा संस्था के रूप में पुनगर्ठन किया गया, जिसका समाज की सुरक्षा संस्था के रूप में पुनगर्ठन किया गया जो समाज की सुरक्षा का पुनर्वलोकन कर सके। इन सभी प्रयासों के बाद भी बन्दीगृह प्रशासन को राज्य सरकार के अधीन होना असंतोषजनक माना गया। अंत में, वर्ष 1980 में भारत सरकार द्वारा **माननीय न्यायाधीश श्री ए. एन. मुल्ला** की अध्यक्षता में अखिल भारतीय बन्दीगृह समिति का गठन किया गया। इस समिति में तीन वर्ष के अन्तराल पर 658 अनुशंसायें कर प्रतिवेदन प्रस्तुत किया एवं देश की सभी राज्य सरकारों को वितरित किया गया क्योंकि बन्दीगृह प्रशासन राज्य का विषय था। अतः उन्हें इन अनुशंसाओं का पालन करना था। इस समिति ने बन्दीगृह राष्ट्रीय नीति की आवश्यकता पर जोर दिया।

राष्ट्रीय बन्दीगृह की नीति के प्रारूप को राजनीतिक एवं सामाजिक अधिकार अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966 के अनुरूप को समाहित कर परिवर्तित किया गया तथा इसके पश्चात् वर्ष 1986 मई 26 को माननीय कृष्णा अय्यर की अध्यक्षता में राष्ट्रीय महिला बन्दी विशेषज्ञ समिति गठित की, जिसका प्रथम प्रतिवेदन वर्ष 1987, मई 18 को सौंपा गया। भारत सरकार ने इस समिति की अनुशन्सा पर रूचि दिखाते हुये प्रतिवेदन इस आशय के साथ भेजा की बन्दीगृह को सुरक्षित बनाना है। इसी प्रकार, वर्ष 1986 जुलाई 28 को भारत सरकार ने श्री आर.के. कपूर की अध्यक्षता में अखिल भारतीय बन्दीगृह प्रशासन सुरक्षा एवं अनुशासन समूह का गठन किया। इस समिति द्वारा 29 जुलाई, 1987 को प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। जिसकी अनुशंसा के आधार पर पुलिस अनुसन्धान एवं विकास ब्यूरो को एक राष्ट्रीय स्तर पर केन्द्रीय संस्था का रूप दिया गया। इसके अलावा **राममूर्ति बनाम कर्नाटक राज्य** के वाद के आधार पर पुलिस

अनुसन्धान एवं विकास ब्यूरो के महानिदेशक की अध्यक्षता में अखिल भारतीय आदर्श जेल मेन्युअल समिति का गठन किया गया। जिसमें नये सिरे से जेल प्रशासन को फिर से बनाने का प्रयास किया गया।

बन्दियों के सुधार एवं पुनर्वास का अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य

वर्तमान समय में बन्दियों की संख्या में वृद्धि सम्पूर्ण विश्व के बन्दीगृह प्रशासन के लिये चुनौती बन गया है। अन्तर्राष्ट्रीय बन्दीगृह प्रशासन समुदाय बन्दियों के सुधार एवं प्रयास के लिए आये दिन नये–नये उपाय एवं प्रभावी प्रारूप की जांच करने में लग गया है। बन्दियों को एक अपराधमुक्त जीवनयापन के अवसरों को उपलब्ध कराने हेतु प्रत्येक देश में उनके स्थानीय स्तर के अनुसार पृथक–पृथक प्रयास किये जा रहे हैं। जेनेवा में वर्ष 1955 में अपराधों की रोकथाम एवं अपराधियों के उपचार पर आयोजित संयुक्त राष्ट्र कांग्रेस द्वारा अपनाई गई प्रथम मानक नियम नीति बन्दीगृह प्रशासकों पर बाध्यता प्रदान करती है। अतः विश्व के सभी देशों अपने–अपने स्तर पर बन्दियों के सुधार एवं पुनर्वास के लिये कृतसंकल्प है। निम्नलिखित देशों में बन्दियों के सुधार एवं पुनर्वास के लिये प्रयास किये गये हैं–

1. **ब्रिटेन का अपराधी पुनर्वास अधिनियम**– वर्ष 1974 में ब्रिटेन में अपराधियों के पुनर्वास हेतु नया नियम बनाया गया। इस अधिनियम द्वारा बन्दियों को विभिन्न प्रकार की व्यावसायिक शिक्षा दी जाती है। रिहाई के पश्चात् बन्दीगृह प्रशासकों की सहायता से विभिन्न व्यवसायों में इन व्यक्तियों को संलग्न किया जाता है जिससे कि वे बन्दीगृह में दण्डावधि व्यतीत करने के पश्चात् अच्छा एवं सम्मानजनक जीवन व्यतीत करें, न कि कलकिंत जीवन जीयें और समाज में स्वयं की पुनर्वासित कर सके। यू. के. में यूरोप के बन्दीगृहों में बन्दीगृह में जाने वाले बन्दियों की संख्या अधिकतम हैं। यहाँ प्रतिवर्ष 80,000 से अधिक बन्दी प्रवेश लेते है। वर्ष 2004 में यू.के. के गृह मंत्रालय ने ऐसी नीतियों को विकसित किया है जिसमें जनता सुरक्षित हो सके तथा अपराधी व्यक्ति पुर्नअपराध करके समाज में अवस्थायें न फैला सके। समाज की इस आवश्यकता को राष्ट्रीय अपराधिक प्रबंधन सेवाओं ने समझाया कि बन्दियों की भी अपनी सामाजिक आवश्यकतायें होती हैं। यू.के. अभी भी बन्दियों को पुनर्वासित करने के लिये आवास की समस्या को दूर करने के उपाय खोजने में लगा हुआ है। ब्रिटेन की सरकार ने देश में बढ़ती हुई अभ्यस्त एवं गम्भीर अपराधियों की संख्या को देखते हुए बन्दीगृहों को परिवीक्षा सेवा में दे रही है। इसके अतिरिक्त, ब्रिटेन सरकार वन आयोग के साथ मिलकर वनों के कार्य कराने का व्यवसाय बन्दियों के लिये ढूँढ लिया है तथा इस परियोजना में कार्य करने से बन्दियों को समाज का सामना नहीं करना पड़ता है और व्यवसाय व आत्मसंतोष भी मिलता है। यह योजना बन्दियों

में सुधार व पुनर्वास के लिये सशक्त मानी गयी है।

2. **सिंगापुर में बन्दियों के पुनर्वास व सुधार के प्रयास**– सिंगापुर बन्दी पुनर्वास निगम, जिसे SCOR अर्थात् ''सिंगापुर कौंसिल ऑफ ऑफेन्डर रिहेबिलिटेशन' के नाम से भी जाना जाता है। इस निगम की स्थापना वर्ष 1 अप्रैल, 1976 में हुई थी तथा इसका उद्देश्य बन्दियों को बन्दीगृह में दण्डावधि में रहने के दौरान एवं रिहाई के पश्चात् व्यावसायिक प्रशिक्षण के माध्यम से सुधार एवं पुनर्वास कराना है। यह निगम जैसे–जैसे बन्दियों के पुनर्वास के उद्देश्य में सफल रहा, बन्दीगृह से मुक्त हो रहे बन्दियों के पुनर्वास का कार्य तेजी से होने लगा। इस सेवा को बाद में 'केयर' नाम दिया गया अर्थात् यह सिंगापुर का एक ऐसा निकाय है जिसका उद्देश्य बन्दियों को बन्दीगृह की दण्डावधि पूर्ण कर मुक्त होने पर समाज में पुनर्वासित करना है। सिंगापुर सरकार के अनुसार बन्दियों को जितना अधिक रोजगार के अवसर दिये जायेंगे अपराधों की पुनरावृत्ति में कमी आयेगी। सिंगापुर का यह निगम अपराधी व्यक्ति को बन्दीगृह में दण्डावधि पूर्ण करने के पश्चात् इन बन्दियों को आत्मसम्मान के साथ–साथ स्वयं की एवं परिवार की जिम्मेदारी उठाने के लिये सक्षम के रूप से जीने की सीख देता है। सिंगापुर सरकार ने माना कि बन्दी व्यक्ति को बन्दीगृह में कारावास की अवधि में बन्दी को अधिक व्यावसायिक शिक्षा एवं व्यवसायिक प्रशिक्षण दिया जाये तो वह अपराधिक प्रवृत्तियों को छोड़कर एक जिम्मेदार व्यक्ति बन सकता है। सिंगापुर का यह प्रयास काफी सराहनीय रहा है।

3. **आस्ट्रेलिया में बन्दियों के सुधार व पुनर्वास की योजनायें**– सभी देशों की तरह आस्ट्रेलिया जैसे विकसित देश में भी बन्दीगृह में अपराधिक दण्डावधि को व्यतीत कर रहे बन्दियों के उत्थान एवं पुनर्वास हेतु योजनाओं को संचालित किया जा रहा हैं। आस्ट्रेलिया में विभिन्न स्तर पर अपराधिक प्रवृत्ति वाले बन्दियों के सुधार एवं पुनर्वास के कार्यक्रम संचालित किये जा रहे हैं। ये सुधार एवं पुनर्वास के कार्यक्रम उच्च स्तर पर प्रेरणादायी मनोविज्ञान पर आधारित हैं, जिससे अपराधियों में नकारात्मक प्रवृत्तियों के स्थान पर कार्य मनोवैज्ञानिक स्थान पा सके। इन कार्यक्रमों का प्रमुख उद्देश्य बन्दियों का पुनर्वास है। आस्ट्रेलिया में प्रत्येक बन्दीगृह में वहाँ की स्थानीय आवश्यकता के अनुसार ही व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाता है।

4. **हांगकाग में बन्दियों के सुधार एवं पुनर्वास की योजना**– हांगकाग में बन्दियों को सुधारने एवं रिहाई के पश्चात् पुनर्वास हेतु अन्य देशों से भिन्न मौलिक कदम उठाये गए हैं। हांगकांग के सुधार प्रशासन ने रेडियो एवं दूरदर्शन पर 'द रोड बैक' नामक कार्यक्रम का प्रसारण 10 कड़ियों में शुरू किया, जिसे बन्दीगृह से मुक्त होने वाले बन्दियों ने अच्छी तरह ग्रहण किया। इस प्रसारित कार्यक्रम की विभिन्न कड़ियों में समाज के विभिन्न पहलुओं के साथ समाज को

बन्दीगृह से दण्डावधि व्यतीत कर आधे व्यक्ति के बारे में एवं उसकी पुनर्वास की समस्या के बारे में जागरूक किया है जिससे बन्दियों के बन्दीगृह से मुक्त होकर आने पर होने वाली समस्याओं में कमी आई और बन्दियों का पुनर्वास करने के लिये समाज के कई सदस्यों द्वारा मदद की जाने लगी। अंत में, इस कार्यक्रम को 'पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। द्वितीय वर्ष में इसे 'स्वर्ण पुरस्कार' मिला। इसके पश्चात्, इसे 53वीं अन्तर्राष्ट्रीय हॉस्टल फिल्म समारोह में स्वर्ण ऐमी पुरस्कार के रूप में पुनः सम्मानित किया गया और इसे फिल्म विडियो समारोह में भी रखा गया।

अतः उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्तर्गत की गई प्रसंविदाओं के प्रभाव से लगभग सभी देश बन्दियों के सुधार एवं पुनर्वास के किये संकल्पित हैं।

बन्दियों के सुधार एवं पुनर्वास राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में

भारत में बन्दीगृह का इतिहास वैदिक काल से ही रहा है, परन्तु बन्दीगृह व्यवस्था उस समय इतनी अच्छी नहीं थी, जितनी कि अब है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के अनुसार प्राचीन भारत में राजाओं द्वारा बन्दियों को उनके किले में बन्दी बनाने की व्यवस्था की बात कही है। उस समय बन्दियों को एकान्तवास में रखना सामान्य था। हिन्दू शासकों एवं मुगल शासकों के साम्राज्यकाल में दण्ड देने का औचित्य था कि अन्य व्यक्ति असामाजिक व देश विरोधी कार्य न करें। उस समय बन्दियों से कठोर शारीरिक श्रम लिया जाता था एवं उन्हें निगरानी में रखा जाता था। इसके पश्चात्, ब्रिटिश काल में बन्दीगृह सुधार का कार्य प्रारम्भ माना जाता था।

वर्तमान समय के **आदर्श जेल मेन्युअल, 2003** के अनुसार बन्दीगृह एक ऐसा स्थान है जहाँ कुछ समय के लिये या अस्थायी या स्थायी तौर पर राज्य सरकार के आदेशों के अनुरूप बन्दियों को रखा जाता है। **डॉ. सेठना** ने बन्दीगृह की परिभाषा देते हुये कहा है कि 'बन्दीगृह' (कैदखाना) कारावास की दण्डावधि के लिये होता है। इन स्थानों में अपराधी को सुधार के लिये रखा जाता है। **डॉ. बघेल** के अनुसार, बन्दीगृह एक दण्ड संस्था है, जो राज्य द्वारा संचालित होती है। इसमें अपराधी को दण्ड के रूप में रहना पड़ता है और उसे वहाँ सुधारा जाता है। अतः बन्दीगृह अपराधियों के दण्ड एवं सुधार की वह संस्था है जो राज्य शासन द्वारा संचालित होती है एवं जहाँ बन्दियों को सुधारने एवं पुनर्वास का प्रयास किया जाता है। किसी अपराधी को बन्दीगृह में रखने का उसे समाज से अलग रखना, जहाँ रहकर वह अपराध करना सीखा है, तथा अपराध की शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक स्थिति में इस प्रकार सुधार कर देना कि वह भविष्य में अपराधों का सम्पादन न करे।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने भी बन्दीगृह को सुधार गृह के रूप में मानने की अनुशन्सा की थी। उनके अनुसार, अपराध करने वाले व्यक्ति बीमार मानसिकता के शिकार होते हैं। अतः बन्दियों में सुधार की आवश्यकता है न कि दण्ड की। वर्तमान समय में राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी द्वारा देखा यह स्वप्न साकार हो रहा है। वर्तमान समय में अपराधियों के लिये बन्दीगृह एक महत्वपूर्ण शक्तिशाली सुधारात्मक संस्था बनने लगी है। इन्हीं बन्दीगृहों से ही बन्दियों का समाज में पुनर्वास किया जा रहा हैं। वर्तमान समय में बन्दीगृह प्रशासन का उद्देश्य अपराधी को उसके अपराधिक कृत्य का मात्र दण्ड देकर बन्दीगृह में बन्दी बनाकर रखना नहीं बल्कि उसमें सुधार कर एवं उसे आत्मनिर्भर बनाकर पुनः समाज में सामान्य जीवन जीने के लिये पुनर्स्थापित करना है। इन्हीं बन्दीगृहों में बन्दियों को नैतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के साथ रोजगार के भी उचित अवसर दिये जाते हैं। यदि अपराधियों को जनसंख्यात्मक परिप्रेक्ष्य में देखा जाये तो अधिकतर प्रकरणों में अपराधी एक सामाजिक समुदाय के नहीं होते हैं। इन बन्दियों में अधिकांश अपराधी निर्धन एवं अशिक्षित परिवारों से आते हैं और उन्हें रोजगार भी नहीं मिला होता हैं। इसी प्रकार, यदि महिला बन्दियों को देखा जाये तो इनमें से अधिकतर अपराधी महिलायें समाज के कमजोर वर्ग से आती हैं। इसके अतिरिक्त, अधिकतर बन्दी ग्रामीण अंचलों से सम्बन्धित होते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय विधि भी केन्द्र व राज्य को निर्देशित करती है कि यदि कोई अपराधी व्यक्ति बन्दीगृह में परिरूद्ध किया गया है तो उसे उसकी दण्डावधि का उपयोग उसकी अपराधी प्रवृत्ति में सुधार करने तथा उसे अनुशासित व सामाजिक व्यक्ति में परिवर्तित करने में किया जाये। अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक एवं राजनीतिक प्रसंविदा के अनुसार प्रत्येक बन्दीगृह प्रशासन का मुख्य उद्देश्य बन्दियों का सुधार एवं पुनर्वास ही होना चाहिये। बन्दीगृह में रह रहे बन्दियों को केवल बन्दीगृह में रखने से उनका सुधार नहीं हो सकता है। किसी अपराधी को कारावास का दण्ड दिये जाने पर केवल बन्दीगृह में रखकर कारावास के दण्ड का केवल समय व्यतीत कराने से उनमें सुधार नहीं किया जा सकता हैं। अतः बन्दीगृह प्रशासन का मुख्य उद्देश्य अपराधियों का सुधार व पुनर्वास है। इस उद्देश्य के अनुसरण में केन्द्र सरकार के निर्देश और पर्यवेक्षण के अधीन कई राज्यों/संघ शासित प्रदेशों में बन्दीगृह के बन्दियों के कल्याण एवं पुनर्वास के क्षेत्र में कई पहल किए जा रहे हैं। गृह मंत्रालय के माध्यम से केन्द्र सरकार न केवल स्वच्छता की स्थिति पर जोर देते हुये जेल अवसंरचना में सुधार के लिये कई योजनायें चला रही है, बल्कि बन्दीगृह कर्मचारियों के लिये सुधारक प्रशासन के सुधार पर राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों या अधिवेशनों का भी आयोजन कर रही है। कुछ समय पूर्व गृह मंत्रालय ने मॉडल जेल मेन्युअल तैयार किया है, जिसमें मंत्रालय द्वारा जारी किये गये परामर्शों की संख्या, बन्दियों

के कल्याण एवं पुनर्वास के कुछ मामलों का अध्ययन भी शामिल किया है।

इसके अतिरिक्त बन्दीगृह प्रबंधन की निगरानी करने और राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों को सर्वोत्तम पद्धतियों को अपनाने का मशविरा देने के लिये मंत्रालय के अधिकारियों द्वारा बन्दीगृहों के विशेष दौरे किये जाते हैं। इन गतिविधियों के कार्यान्वयन के लिये गृह मंत्रालय द्वारा एक अनौपचारिक प्रतिबद्ध प्रकोष्ठ की स्थापना की गई है। राज्य सरकार/संघ राज्य क्षेत्रों के बन्दीगृह (कारागार) से एकत्र आंकडों के आधार पर यह पाया गया है कि सभी राज्य/संघ राज्य क्षेत्र बन्दियों के कल्याण और पुर्नवास की दिशा में कार्य कर रहे हैं, क्योंकि इस सम्बन्ध में विभिन्न उपक्रमों पर समान प्रकार के परिणाम राज्यों /संघ राज्य से प्राप्त हुये हैं।

बन्दीगृह में बन्दियों के कल्याण हेतु उनके सुधार व पुनर्वास हेतु बनाई गई कुछ योजनायें निष्पादित की जा रही हैं–

1. **बन्दीगृह में शैक्षणिक गतिविधियाँ**– बन्दीगृह में बन्दियों के कल्याण हेतु उनके सुधार व पुनर्वास की आवश्यकता होती है। बन्दियों के कल्याण में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं में बन्दीगृह में बन्दियों को शिक्षा देने पर बल दिया गया है, क्योंकि सर्वविदित है कि किसी भी व्यक्ति को अच्छाई व बुराई में अन्तर बताती है व बुराइयों से लड़ने की सीख एवं आत्मशक्ति भी देती है। इसी प्रकार की औपचारिक शिक्षा के लिये अधिकतर भारतीय बन्दीगृहों में विभिन्न प्रकार की पत्र–पत्रिकायें, ग्रन्थालय आदि उपलब्ध कराये गये हैं जिसमें की वह व्यक्ति भी जो बन्दीगृह में आने से पहले शिक्षित न हो, वो अपनी दण्डावधि के दौरान शिक्षित होकर एक अच्छा नागरिक बन पाये। इस प्रकार की सुधार पद्धतियाँ बन्दियों को अपराधों की पुनरावृत्ति करने से रोकती है। बन्दियों को शिक्षित करने हेतु सभी राज्यों में प्राथमिक शिक्षण मुक्त विद्यालयीन एवं विश्वविद्यालयीन शिक्षा की व्यवस्था उपलब्ध है। महिला बन्दियों के लिये भी बन्दीगृह में उचित शिक्षा के प्रबन्ध किये जाते हैं। बन्दियों को शिक्षित करने के लिये बन्दीगृह प्रशासन में ही शिक्षकों को भर्ती किया जाता है। बन्दीगृह में महिलाओं को शिक्षा देने के साथ–साथ उनके साथ परिरूद्ध रह रहे छः वर्ष की कम आयु के बालक–बालिकाओं को भी पूर्व प्राथमिक शिक्षा दी जाती है।

मध्यप्रदेश बन्दीगृहों में निर्माण उद्योग परिषद द्वारा संचालित त्रिवर्षीय अभियांत्रिकी डिप्लोमा पाठयक्रम में लगभग 150 बन्दी शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं। इन बन्दियों में इन्दिरा गांधी मुक्त विश्वविद्यालय से उच्च तथा उच्चतर शिक्षा, मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय से व्यावसायिक पाठ्यक्रम आदि की शिक्षा प्राप्त की है। छत्तीसगढ़ व मध्यप्रदेश की तरह तिहाड़ जेल, दिल्ली में भी बन्दियों में सुधार हेतु शैक्षणिक सुविधायें उच्च स्तर पर उपलब्ध है। राष्ट्रीय मुक्त

विश्वविद्यालय एवं राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय, नई दिल्ली द्वारा भी बन्दियों को शिक्षा प्रदान की जाती है। नई दिल्ली के तिहाड़ बन्दीगृह में बन्दियों के अध्ययन के लिये एक उच्चस्तरीय वाचनालय व ग्रंथालय भी है। महिला बन्दियों के लिये भी बन्दीगृह प्रशासन द्वारा विभिन्न व्यावसायिक व शैक्षणिक पाठ्यक्रम संचालित किये जा रहे हैं। बन्दीगृह प्रशासन बन्दियों के कल्याण के लिये उन्हें शिक्षित करना है जिससे वे दण्डावधि की समाप्ति के बाद मुक्त होने पर वह शिक्षित होकर एक अनुशासित व्यक्तित्व के रूप में परिवर्तित होकर कारावास से बाहर निकलें जिससे वे समाज में सामान्य नागरिक की भाँति पुनर्स्थापित हो सकें।

2. **बन्दीगृहों में योग, नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा**— बन्दीगृहों में बन्दियों के कल्याण हेतु विद्यालयीन शिक्षा के साथ–साथ उन्हें नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा का ज्ञान कराया जाता है। आदर्श जेल मेन्युअल के अध्याय 3 का नियम 13.25 बन्दियों की अपराधिकता की प्रवृत्तियों को तथा अपराध की घटनाओं को उनके मन एवं मस्तिष्क से हटाने के लिये ध्यान, योग का उपयोग कर उपचार की सलाह दी जाती है। बन्दियों को बन्दीगृह में नैतिक शिक्षा एवं अनुशासित जीवन के लिये बन्दीगृह प्रशासन स्वयं विभिन्न स्वयं सेवी संस्थाओं के साथ आपसी समन्वय से रूपरेखा तैयार करते हैं। तिहाड़ जेल, नई दिल्ली में एक विपस्यना केन्द्र की स्थापना की जा चुकी है। वर्ष 1994 में तिहाड़ जेल में 10–10 दिन के दो कैंपों का आयोजन किया गया जिसमें 1000 बन्दियों को लाभ मिला था। इसके अतिरिक्त, बन्दियों हेतु धर्म से जुड़ी गतिविधियाँ आयोजित की जाती हैं जिससे उनमें व्यक्तिकरण के साथ–साथ सामूहिकता की भावना का विकास हो सके और उन्हें यह भी महसूस हो कि किस प्रकार से वे अपने धर्म के साथ–साथ दूसरे के धर्म का आदर कर सकते हैं। अतः व्यक्ति को सभी धर्मों का समान रूप से आदर करना चाहिये। भारत में सभी बन्दीगृहों में दीपावली, रक्षाबन्धन, होली, ईद, मोहर्रम, क्रिसमस आदि त्यौहारों को समान रूप से मनाया जाता है। इस प्रकार से बन्दीगृह में बन्दियों को सुधारने हेतु नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा दी जाती है, जिससे वे भविष्य में स्वयं में सुधारकर स्वस्थ विचारों के साथ समाज में पुनर्स्थापित हो सकें।

3. **बन्दियों के लिये शारीरिक व्यायाम की शिक्षा**— बन्दीगृह में रह रहे बन्दियों के कल्याण के लिये आवश्यक है वे शारीरिक रूप से भी स्वस्थ हों। इसके लिये न्यूनतम उपचार नियम प्रत्येक बन्दीगृह में सभी बन्दियों के लिये शारीरिक व व्यायाम की शिक्षा की अनुशन्सा की गई है। इसके लिये सभी बन्दीगृहों में बन्दियों के स्वास्थ्य हेतु योग एवं विभिन्न क्रीड़ा गतिविधियों की व्यवस्था की गई है। इस प्रकार बन्दियों को योग एवं अन्य खेलकूद के द्वारा शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ रखने का प्रयास किया जा रहा है। शारीरिक व व्यायाम की शिक्षा हेतु तमिलनाडु, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, असम,

मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, गुजरात, राजस्थान आदि राज्यों में बन्दियों के लिये विभिन्न प्रकार के खेलों की गतिविधि एवं प्रतियोगितायें आयोजित की जाती हैं।

4. **बन्दियों में सांस्कृतिक शिक्षा द्वारा सुधार**– भारत में बन्दीगृह प्रशासन बन्दियों के कल्याण के लिये उन्हें सुधारने व पुर्नस्थापित करने के लिए सांस्कृतिक शिक्षा का तरीका अपना रही है। मॉडल जेल मेन्युअल, 2003 में भी बन्दियों को सुधारने में सांस्कृतिक शिक्षा को महत्व दिया गया है। बन्दियों के लिये कई बन्दीगृहों में चित्रकला प्रतियोगिता भी आयोजित की जाती हैं जिसका मूल उद्देश्य बन्दियों के प्रदर्शन की मूल प्रवृत्ति को संतुष्टि का भाव देना है। इसके अतिरिक्त, बन्दियों के शौक के अनुसार गायन, नृत्य, वादक यन्त्रों का वादन, वाद–विवाद आदि विभिन्न प्रकार की कलाओं को स्थानीय बन्दीगृह प्रशासन द्वारा प्रोत्साहित किया जाता है। लोककला की बहराम पीठ में 17 दोषसिद्ध बन्दियों के एक समूह ने कला केन्द्र अकादमी के एक आयोजन में भाग लिया व कुल पाँच प्रस्तुतियाँ दी जिसमें एक नृत्य था जिसने दर्शको को मंत्र मुग्धकर दिया। इस प्रस्तुति को 26 वर्षीय बुद्धदेव, जिसे अपने चाचा की हत्या के आरोप में आजीवन कारावास के दण्ड की सजा मिली थी, उसने दी। नाटक के माध्यम से स्वयं में आये सुधार के बारे में विचार दिया कि जब भी उसने कोई प्रस्तुति दी, तब वह भूल गया कि वह आजीवन कारावासी बन्दी है। अतः कला बन्दियों को एक सभ्य नागरिक बनाने के लिये प्रेरित भी करता है। इसके अतिरिक्त, मध्यप्रदेश में केन्द्रीय बन्दीगृह, भोपाल में एक गुडिया केन्द्र संचालित किया जाता है जहाँ बन्दी बड़ी सुन्दर गुड़िया बनाकर अपनी कला को प्रदर्शित करते हैं। यहाँ बन्दियों द्वारा आर्केस्टा भी चलाई जाती है। इस प्रकार बन्दीगृह के बन्दियों को शौक के अनुसार कला का चुनाव करने को कहा जाता है तथा उन्हें उसमें व्यस्त रखकर उनमें सुधार का प्रयास किया जाता है।

5. **बन्दियों के कल्याण हेतु व्यावसायिक शिक्षा**– भारत के बन्दीगृह के बन्दियों पर दृष्टि डाले, तो पायेंगे कि इन बन्दियों में अधिकांश बन्दी या तो अशिक्षित हैं या 10वीं तक शिक्षित या अल्प शिक्षित हैं। हालांकि, इस आर्थिक स्थिति पर कोई सर्वेक्षण नहीं हुआ है, फिर भी द्वितीयक आंकडों के आधार पर माना जाता है कि लगभग तीन–चौथाई बन्दियों की आर्थिक स्थिति कमजोर होती है। बन्दियों का एक बड़ा वर्ग 18 से 30 एवं 31 से 50 आयु वर्ग का होता है।

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय विधि भी बन्दियों को व्यावसायिक रूप से शिक्षित करने की अनुशन्सा करती है, जिससे वे किसी कार्य में कार्यकुशल होकर अपनी कारावास की दण्डावधि पूर्ण करने के पश्चात् पुनः अपराध न कर बैठें। अतः देश के लगभग सभी बन्दीगृहों में बन्दियों को किसी न किसी प्रकार के व्यवसाय का प्रशिक्षण दिया जाता है। बन्दीगृह प्रशासन द्वारा इस प्रकार के प्रशिक्षण द्वारा

बन्दियों की कारावास की दण्डावधि का सदुपयोग किया जाता है। वहीं, इससे उन्हें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास भी किया जाता है।

इस प्रकार के व्यावसायिक प्रशिक्षणों के माध्यम से बन्दियों को दण्डावधि समाप्त करने के पश्चात् बन्दीगृह से मुक्त होने पर रोजगार के उचित अवसर मिलते हैं तथा उनका समाज में पुनः पुनर्वास करना सरल होता है। इन व्यावसायिक प्रशिक्षणों में से कुछ हैं– वस्त्र एवं वस्त्र उद्योग, टेलरिंग, साबुन बनाना, फिनाइल बनाना, बुक बाइडिंग, सील में प्रयुक्त मोम बनाना, आदि।

बन्दीगृहों में बन्दियों द्वारा किये जाने वाले कार्यों के लिये उन्हें पारिश्रमिक भी कार्यानुसार दिया जाता है। इसी कार्य में छत्तीसगढ़ में बन्दियों द्वारा एक पेट्रोल पम्प संचालित किया जाता है, जो केन्द्रीय बन्दीगृह, रायपुर के मुख्य द्वार पर ही है, इस पेट्रोल पम्प पर आजीवन कारावास से दण्डित बन्दी सेवायें दे रहे हैं।

भारत में कुल 1276 बन्दीगृह हैं जिन्हें बन्दीगृह प्रशासन ने इन बन्दीगृहों को सात भागों में विभाजित किया है। भारत में 113 केन्द्रीय बन्दीगृह, 16 महिला बन्दीगृह, 309 जिला बन्दीगृह, 28 खुले बन्दीगृह, 769 उप–बन्दी गृह, 6 अन्य बन्दीगृह या विशेष बन्दीगृह हैं। इनकी कुल क्षमता 2,77,304 बन्दियों की है। राज्य/संघ शासित प्रदेशों में बन्दियों के कल्याण/पुर्नवास के लिये कई योजनाओं हैं उनमें से प्रमुख योजनायें निम्न प्रकार की हैं–

1. बन्दियों के लिये स्वच्छ पानी अर्थात् स्वच्छ पेयजल के लिये बन्दीगृहों में वाटर फिल्टर/आर. ओ./एक्वागार्ड आदि का प्रावधान बनाया गया है।
2. बन्दीगृह की स्वच्छता की स्थिति में सुधार हेतु, वाशिंग मशीन, पर्याप्त हवादार व धुआँ मुक्त रसोई, 1:10 के अनुपात में बाथरूम प्रदान किया जाता है। पंखे, रोशनी, बल्ब और पर्याप्त वेटिलेशन वाले आवास अर्थात् कोठरी या कमरों में प्रदान किए जाते हैं।
3. बन्दीगृह में बन्दियों के लिये मनोरंजन गतिविधियों के लिये टी. वी. सेट, एफ एम रेडियो, कैरम बोर्ड, शंतरज आदि की व्यवस्था की गई है। राज्य के बन्दीगृह के आन्तरिक परिसर में बन्दियों लिये खुले स्थान भी बनाये गए हैं, जहाँ उन्हें फुटबाल, बालीबाल, जैसे कुछ आउटडोर खेल खेलने की अनुमति है। कुछ राज्य/केन्द्र शासित प्रदेशों में बन्दियों के लिये वार्षिक खेल प्रतियोगिता का आयोजन भी किया जाता है।
4. कुछ राज्य सम्बन्धित राज्य सरकार के जेल विभाग द्वारा **''प्रधानमंत्री**

सुरक्षा बीमा योजना'' में भुगतान किये गये प्रीमियम के तहत नामांकन के लिये सभी बन्दियों को प्रोत्साहित कर रहे हैं।

5. बन्दीगृह में बन्दियों के स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुये, कुछ राज्यों में बन्दीगृह में धूम्रपान पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। बन्दियों की बन्दीगृह के चिकित्सक अधिकारी द्वारा नियमित स्वास्थ्य जाँच बन्दीगृह के स्वास्थ्य केन्द्र में की जाती है। कुछ बन्दीगृहों में रोगी बन्दियों के उपचार के लिये कुछ बिस्तरों वाले छोटे से अस्पताल का भी निर्माण किया गया है।

6. आहार योजना के अन्तर्गत समय–समय पर जेल अधिकारियों एवं प्रख्यात आहार विशेषज्ञों की एक समिति द्वारा समीक्षा की जाती है ताकि तर्कसंगत और निष्पक्ष रूप से कैलोरी की मात्रा, आहार के पोषण मूल्य के साथ–साथ कैदियों की मात्रा, आहार के पोषण मूल्य के साथ–साथ कैदियों के स्वाद का भी ध्यान रखा जाता है। कुछ जेल विभाग माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा आदेशित निर्धारित पौष्टिक भोजन एवं मात्रा प्रदान कर रहे हैं। गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिला बन्दियों के निर्धारित दिशा–निर्देशों के अनुसार अलग–अलग खाद्य/आहार की मात्रा भी निर्धारित की गई है।

7. अधिकतर राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों में बन्दियों के लिये बन्दीगृह नियमित रूप से गैर–सरकारी संगठनों की सहायता से आध्यात्मिक कार्यक्रम, योग अभ्यास, कार्यशाला, कौशल प्रशिक्षण का आयोजन भी किया जाता है। इसके अतिरिक्त, बन्दियों को भी आध्यत्मिक कार्यक्रमों का संचालन करने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है तथा अधिकतर बन्दीगृहों में अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाया जाता है।

8. ध्यान एवं नशा मुक्ति कार्यक्रमों, प्रार्थना और अन्य प्रवचन नियमित रूप से विभिन्न बन्दीगृह के बन्दियों के लिये आयोजित किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त, नैतिक मूल्यों एवं नैतिकता पर विभिन्न संगठनों द्वारा समय–समय पर कार्यशाला भी आयोजित की जाती है।

9. कुछ बन्दियों के लिये व्यायाम हेतु जिम्नेशियम की स्थापना की गई है।

10. बन्दीगृहों में बन्दियों को नियमित समय अंतराल पर परिवार से मुलाकात/नियमित दौरे उनके लिये अलगाव में सांत्वना का कार्य करते हैं। इसके लिये बन्दियों के बीच चिंता/असंतोष को कम

करने लिये और सामाजिक मूल्यों को बनाये रखने की दृष्टि से भी सभी राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश में परिवार व रिश्तेदार से सम्बन्ध बनाये रखने के लिये टेलिफोन सुविधा, परिवार के सदस्यों या रिश्तेदारों या मित्रों से समयानुसार तय समयावधि के लिये एक कमरे में बैठने का प्रावधान भी है। बन्दियों को महत्वपूर्ण अवसरों एवं त्यौहारों पर परिवार से मुलाकात की अनुमति दी जाती है। इस सम्बन्ध में वर्तमान में ई–मुलाकात विडियों कॉन्फ्रेसिंग प्रणाली सफल हुई है।

11. नवरात्रि, दीपावली, रमजान, ईद, जन्माष्टमी, रक्षाबन्धन, गणेश उत्सव, रामनवमी आदि सांस्कृतिक त्यौहारों को भी कई बन्दीगृह में मनाया जाता है जिसमें बन्दीगृह के समस्त बन्दी भाग लेते हैं जिससे कि बन्दीगृह के बन्दियों के बीच सांस्कृतिक मूल्यों को बढ़ाया जा सके।

12. बन्दीगृह के बन्दियों को निश्चित समयावधि में होने वाली बैठक में मुफ्त विधिक सहायता या सलाह आदि लेने की अनुमति दी जाती है। बन्दीगृह में आये नये बन्दियों को विधिक प्रकोष्ठ द्वारा अधिवक्ता/विधिक सलाहकार से परामर्श लेने की सुविधा दी जाती है। बन्दियों के लिये जेल अदालतों एवं विधिक सहायता केन्द्रों का भी आयोजन किया जाता है जिससे कि बन्दियों को अधिक लाभ मिल सके।

13. कुछ बन्दीगृह विभाग सम्बन्धित राज्य सरकार की बाल विकास योजना के तहत अपनी माता के साथ रहने वाले बच्चों को भी बन्दीगृह में भोजन प्रदान कर रहे हैं।

14. कुछ राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों में उनके राज्य क्षेत्रों में प्रतिष्ठित गैर–सरकारी संगठन की सहायता से स्वयं की माताओं के साथ रहने वाले बच्चों के लिये आंगनवाड़ी शुरू की गई है। वर्तमान में कई बन्दीगृहों में बन्दियों के लिये प्राथमिक विद्यालय, क्रैश कोर्स भी प्रारम्भ कर दिया गया है। कुछ राज्य क्षेत्रों में कुछ राज्य दोषियों के साथ रहने वाले बच्चों को बाल कल्याण छात्रवृत्ति की पेशकश कर रहे हैं, जिससे कि उन सभी बच्चों के लिये, जिन्हें अच्छे प्रतिशत प्राप्त हुये हैं, छात्रवृत्ति प्रदान की जा सके।

15. धर्म, सामाजिक मानदण्डों आदि से सम्बन्धित विषयों पर पुस्तकें बन्दीगृह में विभिन्न बन्दियों को प्रदान की जाती है। इस प्रायोजन के लिये कुछ बन्दीगृहों में पुस्तकालय का भी प्रावधान किया गया

है। कुछ राज्यों / केन्द्रशासित प्रदेशों के जेल विभाग ने बन्दीगृहों के पुस्तकालय के लिये पुस्तकें और पत्रिकायें दान करने के लिये नागरिकों और शैक्षिक संस्थानों से अपील करने के लिये विशेष अभियान चलाये हैं। इसके अतिरिक्त, बन्दियों के लिये समाचार–पत्र भी उपलब्ध कराये जाते हैं।

राज्यों / केन्द्रशासित प्रदेशों में पुनर्वास हेतु निष्पाादित करने के लिये विभिन्न योजनायें इस प्रकार हैं–

(I) बन्दियों के पुनर्वास में मदद के एक भाग के रूप में राज्य एवं केन्द्रशासित प्रदेशों द्वारा बन्दियों को मुक्त होने के पश्चात् समाज में उनके लिये विभिन्न व्यावसायिक प्रशिक्षण सह–उत्पादन योजनायें मुख्य रूप से रोटी, बिस्कुट, बढ़ईगीरी, फर्नीचर उत्पादन, सिलाई, टेंट का निर्माण, वस्त्र, मुद्रण / पुस्तक बन्धन, मुलायम खिलौने, साबुन, फिनाइल, स्टाम्प पैड की स्याही, सीलिंग, मोम, डिटर्जेंट पाउडर, बर्तन पाउडर, ब्यूटी पार्लर का पाठ्यक्रम, मोटर साइकल की मरम्मत, बिजली, मिस्त्री, आदि कार्य सिखाये जाते हैं। बन्दियों के पुनर्वास हेतु इन कार्यों में उन्हें प्रशिक्षित करने हेतु इस्पात फर्नीचर, बुनाई, पुस्तक बन्धन, रंगाई, रंगीन व सुंगधित फिनाइल, सिलाई, प्रिंटिंग प्रेस, डीटीपी, बेकरी इकाई, तकिये, डिटर्जेंट व साबुन, सीमेंट ईंट बनाने का कार्य आदि के लिये बन्दीगृहों में ही औद्योगिक इकाईयों की स्थापना की गई है।

(II) अधिकांश राज्यों / केन्द्रशासित प्रदेशों में जिन बन्दियों ने व्यावसायिक प्रशिक्षण पूर्ण कर लिया है उन्हें जेल प्रशासन द्वारा प्रमाण–पत्र भी जारी किये जा रहे हैं।

(III) उपरोक्त पाठ्यक्रमों के अतिरिक्त, जेल विभाग ने निजी भागीदारी के अन्तर्गत, काजू पोलिंग इकाई, डेयरी फार्म, अगरबत्ती निर्माण इकाई, हर्बल बागान, लुगदी के क्लोनल प्रचार, पौधों की प्रजातियों आदि, खोलने के लिए खुदरा बिक्री केन्द्रों की स्थापना के लिये विभिन्न फर्मों के साथ कई समझौतों को निष्पादन किया जा रहा है।

(IV) बन्दियों में सुधार के लिये शिक्षा अति–आवश्यक है, इसके लिये इग्नू (IGNOU) (इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय) एवं राष्ट्रीय विद्यालय शिक्षा संस्थान (NIOS) द्वारा विभिन्न साक्षरता / शिक्षा कार्यक्रम आयोजित किये जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त, बन्दियों को आई.टी.आई के माध्यम से तकनीकी शिक्षा सहित उच्च शिक्षा

के लिये एवं आई.टी.आई. के माध्यम से तकनीकी शिक्षा के लिये प्रोत्साहित किया जा रहा है।

(V) कुछ बन्दीगृहों में शिक्षित बन्दियों को कम्प्यूटर पाठयक्रम में प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम में भाग लेने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है।

(VI) बन्दीगृह में बन्दियों को आधार पंजीयन का विकल्प दिया जाता है।

(VII) कई राज्य/संघ शासित प्रदेश बन्दीगृह विभाग में ''प्रार्थी जनधन योजना'' के अन्तर्गत दोषसिद्ध बन्दियों के लिये शून्य शेष (Zoro Balance) खाता खोलने की योजना लागू कर रहे हैं। इसी प्रकार, बीमा योजनाओं में **'प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना'** और **'प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना'** भी एक सामाजिक सुरक्षा दोषसिद्ध बन्दियों के कल्याण के उपाय के रूप में लागू किये जाते हैं।

(VIII) बन्दीगृहों में बन्दियों में कार्य की आदत डालने के लिये बन्दीगृह के दोषसिद्ध बन्दियों के लिये जेल में उद्योग लगे हुये हैं। इन बन्दियों को उनके वर्गीकरण के आधार पर मजदूरी भी दी जाती है अर्थात् कुशल, अर्द्धकुशल एवं अकुशल और मजदूरी की दर को समय–समय पर संशोधित भी किया जाता है।

राज्यों/केन्द्रशासित प्रदेशों द्वारा बन्दीगृह प्रबन्धन में बदलती हुई परिस्थितियों में भी बन्दियों के लिये कुछ निम्नलिखित कार्य उनके हित के लिये अपनाये गए हैं:–

(i) कुछ राज्यों/केन्द्रशासित प्रदेशों में बन्दीगृहों में शिकायत पेटी लगायी गयी है और इस शिकायत पेटी की चाबी जिला एवं सत्र न्यायाधीश या सम्बन्धित क्षेत्र के न्यायाधीश के पास रखी जाती है।

(ii) वर्तमान में राज्यों/केन्द्रशासित प्रदेशों के अधिकांश बन्दीगृहों में सीसीटीवी कैमरा व चेतावनी (अलर्ट) प्रणाली भी स्थापित की गई है। कुछ बन्दीगृहों में तो मोबाइल के अवैध उपयोग को रोकने हेतु जैमर भी लगाये गये हैं। इसके अतिरिक्त, बन्दीगृह में विभिन्न प्रकार के हैंड होल्ड मेटल डिटेक्टर, डोर फ्रेम मेंटल डिटेक्टर, वॉकी–टॉकी जैसे सुरक्षा उपकरण भी लगाये गये हैं।

(iii) वर्तमान में बन्दीगृहों में बन्दियों हेतु बन्दी पंचायत बोर्ड, बन्दियों के न्यायालय के द्वारा केन्द्रीय बन्दीगृहों के न्यायालय के द्वारा, केन्द्रीय बन्दीगृहों, जिला बन्दीगृहों एवं महिलाओं के लिये विशेष बन्दीगृहों

में बन्दी संख्या में बन्दियों में जिम्मेदारी की भावना पैदा करने के लिये गठित कर रहे हैं।

(iv) बन्दीगृह में बन्दियों के प्रवेश पर ही पूर्ण चिकित्सकीय परीक्षण किया जाता है तथा निर्धारित नियमानुसार वर्गीकृत कर बन्दीगृह में रखा जाता है।

(v) विचाराधीन बन्दियों के प्रकरण को शीघ्र निपटाने या त्वरित न्याय प्रदान करने के लिये बन्दीगृहों में विडियो कान्फ्रेसिंग के माध्यम से बन्दियों को प्रस्तुत किया जाने लगा है।

(vi) बन्दीगृह के बेहतर प्रशासन के लिये बन्दीगृह के अधिकारियों के प्रस्तावित प्रशिक्षण सहित नियमित आधार पर प्रशिक्षण दिया जा रहा है। इसके अतिरिक्त, राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों के बन्दीगृह विभाग के कर्मचारियों को दण्ड सुधारक प्रशासन के क्षेत्र में वर्तमान की घटनाओं से अवगत कराते हेतु राज्य स्तरीय सेमिनारों का भी आयोजन किया जाता है।

(vii) राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों के अधिकतर बन्दीगृहों में शिकायत निवारण तंत्र को मजबूत किया गया है। जेल अधीक्षक, जेल में कार्यरत सदस्यों के साथ हर सप्ताह समय–समय पर कैदियों की बैरकों का निरीक्षण करता है और सहानुभूतिपूर्वक उनकी शिकायतों की जाँच करता है।

(viii) पैरोल पर छोड़े गये बन्दियों के पैरोल मामलों को समय पर निपटाये जाने हेतु निरन्तर प्रयास किये जा रहे हैं। गर्भवती महिला बन्दी को पैरोल देने के लिये विशेष प्रावधान किया गया है।

(ix) अध्यक्ष द्वारा समिति तैयार की जाती है। ये अध्यक्ष सामान्यतः मुख्य न्यायिक न्यायाधीश होते हैं तथा जिला न्यायाधीश के प्रतिनिधि, जिला परिवीक्षा अधिकारी, सहायक निदेशक अभियोजन समिति के सदस्य, सदस्य के रूप में होते हैं एवं जिला में जेल प्रभारी सदस्य सचिव के रूप में बन्दियों की समय–समय पर समीक्षा प्रस्तुत करता है, जिनके प्रकरण विचारण के लिये दीर्घावधि से लम्बित होते हैं तथा वे लम्बे समय से न्यायिक हिरासत में है।

(x) भारत सरकार के नये मॉडल जेल मेन्युअल के अनुसार अधिकांश राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों में सुरक्षा कर्मियों एवं बन्दियों के मध्य 1:6 का अनुपात निर्धारित किया गया है अर्थात् छः बन्दियों की सुरक्षा की जिम्मेदारी एक सुरक्षाकर्मी की है।

(xi) ऊर्जा के पारम्परिक स्त्रोतों पर निर्भरता को कम करने के लिये अधिकतर बन्दीगृहों में सौर जल हीटर स्थापित किये गये हैं।

उपर्युक्त बन्दियों के सामान्य हित कार्यों के अतिरिक्त निम्नलिखित कई राज्यों में निम्न कार्य किये जाते हैं –

1) छत्तीसगढ़ – छत्तीसगढ़ में बन्दीगृह में बन्दियों के लिय निम्न सुविधायें बनाई गई हैं :–

(i) बन्दियों को 'भारत साक्षरता मिशन' एवं ''साक्षरता महापरीक्षा की योजना'' के अन्तर्गत साक्षर बनाया जा रहा है। बन्दीगृहों में सारक्षता समिति (ठतपहंक) का गठन किया गया है, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक बैरक में दो प्रशिक्षित बन्दी अन्य साथी बन्दियों में शिक्षा के लिये जागरूकता फैला रहे हैं।

(ii) राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय शिक्षा संस्थान ने अपने व्यावसायिक शिक्षा पाठ्यक्रम के अन्तर्गत केन्द्रीय जेल, रायपुर को एक मान्यता प्राप्त व्यावसायिक संस्थान का दर्जा दिया है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत बेसिक कम्प्यूटर एवं एप्लीकेशन, बढ़ईगिरी, खान–पान प्रबन्धन (केटरिंग), सिलाई, विद्युत तकनीशियन, फर्नीचर एवं केबिनेट बनाना, वेल्डिंग प्रौद्योगिक आदि व्यावसायिक कार्यक्रम के अन्तर्गत 65 बन्दियों को पंजीकृत किया गया है।

(iii) बन्दीगृहों में 93 लोक अदालतें स्थापित की गई हैं, जहाँ 259 प्रकरण पेश किये गये हैं तथा सुनवाई के पश्चात् 133 मामलों को अस्वीकृत कर दिया गया है।

2) गोवा – गोवा में बन्दीगृह में निम्न सुविधायें दी गई हैं : –

(i) राज्य के बन्दीगृह विभाग के बन्दियों के लिये रोजगार के अवसर पैदा करने के लिये औषधीय पौधों के रोपण के लिये हिमालय औषधि कम्पनी के साथ गठबन्धन किया गया है।

(ii) राज्य के अधिकतर बन्दीगृहों में स्थानीय नगरपालिकाओं की मदद से ठोस अपशिष्ट के निष्कासन को उचित तरह से प्रबन्धन किया जाता है।

(iii) बन्दीगृहों में PRISMS सॉफ्टवेयर स्थापित किया गया है एवं सभी बन्दियों के वास्तविक विवरण के बारे में समय–समय पर जानकारी प्रदान की जाती है।

(iv) गोवा के कोलवले (Colvale) जेल परिसर में जल संचयन परियोजना

को क्रियान्वित करने की प्रक्रिया संचालित हो रही है।

(v) राज्य जी.ई.डी.ए. (Gujrat Energy Development Agency) की सहायता से सौर ऊर्जा एवं वायु ऊर्जा के दोहन की प्रक्रिया प्रारंभ हो रही है और इसका प्रारम्भिक कार्य शुरू हो गया है।

3) हरियाणा – हरियाणा के बन्दीगृह में निम्न कार्य करवाये गये हैं:–

(i) हरियाणा राज्य के जेल विभाग में ''कैदियों के अधिकार एवं कर्तव्य का घोषणा–पत्र'' नामक पुस्तक तैयार की गई है जो जेल में प्रवेश करने पर प्रत्येक बन्दी को परिचालित की जाती है। यह पुस्तिका विभाग की वेबसाइड पर भी अपलोड की गई है।

(ii) हरियाणा में जेल प्रशासन ने स्वयं का सॉफ्टवेयर बनाया है और बन्दियों के सभी आँकड़ों (Data) को कम्प्यूटरीकृत किया गया है, जिसमें हिरासत रिकॉर्ड, जेल अस्पताल के रिकॉर्ड, केन्टीन रिकार्ड आदि शामिल हैं। गुड़गांव, बन्दीगृह से एक पूर्व कैदी द्वारा विकसित PHENIX सॉफ्टवेयर का उपयोग हरियाणा की जेलों के बेहतर और प्रभावी प्रबन्धन के लिये किया जा रहा है और भारत सरकार के गृह मंत्रालय प्रशासन (Home Ministry Administration (HMA)) द्वारा जिसकी अत्यधिक सराहना की गई थी।

(iii) हरियाणा राज्य के प्रधान कार्यालय (पंचकला) में पूरे जेल विभाग के लिये एक वेबसाइट है।

(iv) हरियाणा के अधिकतर बन्दीगृहों में बन्दी कॉलिंग सिस्टम (PICS) स्थापित किया गया है।

(v) जेल विभाग ने बन्दियों के कल्याण के लिये राज्य सरकार के अनुमोदन पर सार्वजनिक निजी भागीदारी (Public Private Partnership) प्रारम्भ की गई है, जिससे उन्हें रोजगार के साथ–साथ अपना स्वयं का व्यवसाय प्रारम्भ करने में सहायता मिलेगी। निजी उद्यमी, सरकार के बिना ही बन्दियों को कार्य करने का अवसर प्रदान करते हैं। इस योजना के अन्तर्गत प्लास्टिक वाशर और डोर मेट के निर्माण के लिये करनाल बन्दीगृह को, जिला जेल, यमुनानगर में इंटरलांकिंग टाईल्स बनाने के लिये एवं सेन्ट्रल जेल, अम्बाला में फर्नीचर निर्माण के लिये जेल अधीक्षक को पूर्व में अनुमति दे दी गई है। सेन्ट्रल जेल अम्बाला में दिसम्बर 2014 में मॉर्डन ऑफसेट प्रिटिंग प्रेस स्थापित की गई है।

(vi) जेल केन्टिन में मौजूद कूपन प्रणाली सुविधा को भी कैसलेस कैंटिन प्रणाली में बदल दिया है और सभी बन्दीगृहों में उचित मूल्य पर बन्दियों को अधिक पारदर्शिता एवं बेहतर सुविधायें प्रदान करना शुरू कर दिया है।

4) हिमाचल प्रदेश – हिमाचल प्रदेश में बन्दी कल्याण के उद्देश्य बन्दीगृह में निम्नलिखित सुविधायें दी गई हैं:–

(i) हिमाचल प्रदेश के बिलासपुर, कान्डा, नाहन, धर्मशाला, सोलन, मण्डी एवं चम्बा में खुली हवादार बन्दीगृह की सुविधा दी जाती है।

(ii) पूरे वर्ष में दोषी बन्दियों को 84 दिन की पैरोल दिये जाने की व्यवस्था है। कृषि प्रयोजनों के लिये 42 दिनों (6 माह) की पैरोल, घर के लिये 28 दिन की पैरोल, घर की मरम्मत व बच्चों की शादी के लिये, अपराधी या बन्दी के परिवार में गम्भीर बीमारी या मृत्यु में 14 दिनों की पैरोल का प्रावधान है।

(iii) 3 A.G.C.Rs कमाई करने वाले बन्दी की कुछ दिवस की अवधि का अवकाश प्रदान किये जाने का पात्र होगा। पहली बार में यह वर्ष में 21 दिवस (3 सप्ताह) और बाद में 14 दिवस (2 सप्ताह)।

(iv) हिमाचल प्रदेश में 3 बन्दीगृहों में मोबाईल कैन्टीन की सुविधा उपलब्ध कराने के लिये बन्दीगृह में रह रहे बन्दियों के द्वारा चलाई जा रही 5 मोबाइल कैन्टिनों को शुरू किया जिससे वे जनता को किफायती दरों पर अच्छी गुणवत्ता वाले भोजन का लाभ मिल सके और बन्दी कुछ धन भी अर्जित कर सकें।

(v) जिला जेल, धर्मशाला; मॉडल सेन्ट्रल जेल, कांडा (शिमला); एवं मॉडल सेंट्रल जेल, वाहन में डेयरी फार्मिंग शुरू हुई।

(vi) जिला जेल धर्मशाला में सूखी सफाई इकाई (Dry Cleaning Unit), कार वांशिग सर्विस सेन्टर शुरू हुआ।

(vii) बन्दियों को बेकरी का कार्य सिखाने के लिये बेकरी इकाईयाँ, जिला जेल धर्मशाला, मॉडल केन्द्रीय जेल कांडा (शिमला), ओपन एयर जेल, बिलासपुर एवं मॉडल सेन्ट्रल जेल, नाहन में स्थापित किया गया है।

5) जम्मू व काश्मीर– जम्मू व कश्मीर में बन्दियों के कल्याण हेतु बन्दीगृह में निम्न कार्य किये गये हैं :–

(i) जम्मू व कश्मीर में बन्दीगृहों में बन्द बन्दियों द्वारा निर्मित सामान

पुलिस सार्वजनिक मेले में एवं जिला जेल जम्मू–परिसर के बाहर नियमित रूप से जेल सांख्यिकी की दुकान पर बिक्री के लिये रखी जाती है।

6) झारखण्ड :–

(i) राज्य साक्षरता मिशन प्राधिकरण एवं जिला साक्षरता समिति, समग्र साक्षरता अभियान के मानदण्डों के अनुसार बन्दीगृहों में शुरू किए गए साक्षरता कार्यक्रम का आयोजन व निगरानी करते हैं। कैदियों को प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान की जाती है तथा पाठ्यपुस्तकों को इन बन्दियों को सर्वशिक्षा अभियान के तहत मुफ्त में वितरित की जाती है।

(ii) राँची में ई–परीक्षण (E-Trial) प्रायोगिक आधार पर शुरू किया गया। हजारीबाग, रॉची व सराईकला एवं सिविल कोर्ट, राँची में भी शुरू किए गए हैं।

7) कर्नाटक – कर्नाटक में बन्दी कल्याण के लिये बन्दियों की निम्न व्यवस्थायें प्रदान की गई हैं:–

(i) बन्दीगृह में बन्दियों के स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुये अस्पतालों की संयोजकता (Connectivity) के साथ दो केन्द्रीय बन्दीगृहों बैंगलोर एवं बेलगाम में टेली मेडिसिन प्रणाली शुरू की गई है।

(ii) एचआईवी/एड्स के बन्दियों के परीक्षण के लिये, केन्द्रीय बन्दीगृह, बैंगलौर में आईसीटीसी केन्द्र की स्थापना की गई है जो आवश्यक अधोसंरचना एवं तकनीकी रू से सुसज्जित हैं एवं यहा पर व्यक्तिगत परामर्श भी दिया जाता है।

(iii) कर्नाटक राज्य के सभी केन्द्रीय बन्दीगृहों में आधुनिक एवं उन्नत बायोमैट्रिक आधारित जेल कॉल सिस्टम स्थापित किये गए हैं।

(iv) जेल विभाग ने बन्दीगृहों में औषधीय पौधों का संख्या को बढ़ाने के लिये विभिन्न फर्मों के साथ कुछ समझौते निष्पादित किए हैं (हिमालय औषधि के साथ एमओयू)। व्हील चेयर नवीनीकरण इकाई (प्रोविजन एशिया के साथ MOU) एवं अगरबती पैकिंग (मेसर्स सराव एण्ड संस, मैसूर के साथ MOU) सार्वजनिक निजी भागीदारी (PPP) के अन्तर्गत किए गए हैं।

(v) समय पूर्व बन्दीगृह से धारा 436 (क) के अन्तर्गत रिहा किये गये व्यक्तियों के आंकड़े मुख्यालय में सरलता से उपलब्ध हैं।

(vi) जेल कर्मचारियों के लिये मुख्यमंत्री पदक स्थापना, जेल कर्मचारियों को उनके कर्त्तव्यों के निर्वहन में प्रोत्साहित करने और प्रेरित करने के दिया जाता है।

(vii) अधिकतर बन्दीगृहों में सौर प्रकाश व्यवस्था प्रणाली स्थापित की गई है।

(viii) प्रदेश के केन्द्रीय बन्दीगृहों में बन्दियों के प्रकरण की निचले एवं उच्च न्यायालय में विचारण, प्रकरण की स्थिति एवं अपील की स्थिति के बारे में जानकारी प्रदान करने के लिये कियोस्कों की स्थापना की गई है।

8) केरल – केरल में बन्दियों के कल्याण हेतु बन्दीगृहों में निम्न व्यवस्थायें की गई हैं:–

(i) केरल के केन्द्रीय बन्दीगृह, तिरूवनंतपुरम में खाद्य पदार्थों की बिक्री के लिये एक अल्प आहार गृह व ले जाने (Caferia cum take away) के लिए काउण्टर खोला गया जिसे जनता द्वारा सराहा गया है।

(ii) केन्द्रीय बन्दीगृह, तिरूवन्तपुरम के परिसर में बन्दियों द्वारा तैयार किये गये फैशनेबल रेडीमेड कपड़े की बिक्री के लिये बुटिक खोला गया है।

(iii) केरल के केन्द्रीय जेल, कन्नूर में **''अभिव्यक्ति स्वतन्त्रता''** (Freedom represasion) नामक एक ब्यूटीपार्लर कम हेयर सलून खोला गया है।

(iv) जिला जेल, एर्नाकुलम में गरीबों को भोजन के वितरण के लिये एक ''शेयर मील'' नामक अभिनव योजना प्रारम्भ की गई है। इसके लिये जेल के आउटलेट से सामान खरीदने वाला व्यक्ति भोजन के लिये कूपन के लिये 2/– रू. का भुगतान कर इसे खरीद सकता है।

9) महाराष्ट्र :– महाराष्ट्र में बन्दियों के कल्याण हेतु बन्दीगृहों निम्नलिखित व्यवस्थायें की हैं:–

(i) महाराष्ट्र राज्य, रिहा किये गये बन्दियों के पुनर्वास के लिये महिला एवं बाल कल्याण विभाग द्वारा प्रति बन्दी 500/– रूपये का अनुदान मंजूर किया जाता है।

(ii) बन्दी द्वारा कारावास के दौरान किये गये कार्य के लिये प्रमाण–पत्र

सम्बन्धित जेल अधीक्षक द्वारा बन्दियों को दिया जाता है।

(iii) बन्दीगृह विभाग "PRISM" सॉफ्टवेयर का उपयोग कर बन्दीगृहों के डिजिटलीकरण की पहल की गई है।

10) मणिपुर :– मणिपुर प्रदेश ने बन्दियों के कल्याण हेतु बन्दीगृहों में निम्नलिखित बदलाव किये हैं:–

(i) राज्य ने बन्दीगृह के उन बन्दियों के परिवार के सदस्यों को, जिनके परिवार के सदस्य व रिश्तेदार एक से अधिक बार मिलने ही नहीं आये हैं, सम्बन्धित पुलिस थानों के माध्यम से सन्देश भेजकर अपने परिवार के सदस्यों के साथ बन्दियों की अनिवार्य बैठक की पहल की है, इससे बन्दियों का अवसाद (Dipresasion) कम हो गया है।

11) मिजोरम :– मिजोरम में बन्दियों के कल्याण निम्न प्रावधान किये हैं– मिजोरम के प्रत्येक जिले में विचाराधीन बन्दी समीक्षा समिति का गठन किया गया है, इस समिति का प्राथमिक कार्य विचाराधीन कैदियों की जमानत पर रिहाई के लिये आवश्यक कार्यवाही करना है जो –

(i) 10 वर्ष या मृत्युदण्ड से दण्डनीय अपराध के लिये 90 दिन एवं अन्य सभी अपराधों के लिये 60 दिन की समय सीमा के भीतर आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किए गए हैं।

(ii) वे अपराधी जो हिरासत में हों और जिन्हें जमानत हेतु जमानतदार नहीं मिला, ऐसे विचारणीय लम्बित प्रकरणों के अभियुक्त बन्दी (UTP) और जिन्हें जमानत तो दी गई है लेकिन वे न्यायालय द्वारा आग्रह की गई जमानत को प्रस्तुत करने में विफल रहे हैं, वे न्यायालय से अनुरोध कर सकते हैं कि जब यह राशि विचाराधीन कैदियों के साधन से पूरी हो तो जमानत राशि में कमी की जाए।

(iii) विधि द्वारा निर्धारित दण्ड के प्रावधान अवधि के लिये परीक्षण की प्रतीक्षा में बन्दीगृह में जो बंद हों।

(iv) विधि के अन्तर्गत आरोपित अपराधों के लिये निर्धारित कारावास की अधिकतम अवधि से अधिक के लिये परीक्षण की प्रतीक्षा में जेल में बन्द कर दिये गये हों।

(v) मरणासन्न रूप से बीमार हो।

12) पंजाब :– पंजाब के बन्दीगृहों में बन्दियों के कल्याण हेतु निम्न व्यवस्थायें की गई हैं :–

(i) पंजाब राज्य के 23 बन्दीगृहों में कॉल सिस्टम स्थापित किया गया जिसमें दो दूरभाष नम्बरों पर कॉल करने की सुविधा प्रदान की गई है। एक नम्बर पर बन्दियों के परिवार के लिये एवं अन्य पर बन्दी के अधिवक्ता के लिये सप्ताह में दो बार पाँच मिनिट की अवधि के लिये बात कर सकते हैं।

(ii) बन्दीगृहों में कूपनों के दुरूपयोग को रोकने एवं व्यवस्था को भ्रष्टाचार से मुक्त रखने के लिये पंजाब राज्य के 23 बन्दीगृहों में स्मार्ट–ई–पर्स कार्ड प्रणाली शुरू की गई है।

(iii) कार्यालय के कर्मचारियों के लिये समय की प्रतिबद्धता सुनिश्चित करने के लिये प्रधान कार्यालय, केन्द्रीय बन्दीगृह, अमृतसर, पटियाला, गुरदासपुर, कपूरथला, फरीदकोट, नाभा एवं जिला जेल संगरूर में बायोमैट्रिक अटेण्डेंस सिस्टम स्थापित किया गया है।

(iv) बन्दियों एवं कर्मचारियों के कल्याण के लिये **"पंजाब के बन्दीगृह के बन्दियों एवं कर्मचारियों के विकास के लिये संस्था"** का गठन किया गया है।

13) राजस्थान :–

राजस्थान राज्य के बन्दीगृहों में बन्दियों के कल्याण हेतु निम्न प्रावधान किये गये हैं :–

(i) सामाजिक समायोजन एवं वित्तीय स्वतन्त्रता को सुविधाजनक बनाने के लिये बन्दियों को बन्दीगृह में दण्डावधि पूर्ण होने के कुछ समय पूर्व बन्दियों को खुले बन्दी शिविरों में रखा जा रहा है।

(ii) इसके अतिरिक्त, जिन बन्दियों को जिनको दी गई कुल दण्डावधि का एक–तिहाई अवधि को पूर्ण कर लिया है और जिनका आचरण में सदाचार पाया गया है, उन्हें राज्य द्वारा गठित समिति की सिफारिशा पर खुले दण्ड शिविर में शेष दण्डावधि के लिए भेज दिया जाता है।

(iii) बन्दीगृहों में बन्दी कल्याण निधि की स्थापना की गई है, जो नजर के चश्मे, परीक्षा शुल्क/पुस्तक, लेखन सामग्री, खेल सामग्री, मनोरंजन के उपकरण, सांस्कृतिक कार्यक्रमों/त्यौहारों के खर्च, भाषण और प्रचार आदि पर खर्च किए जाते हैं।

(iv) बन्दीगृहों में बन्दियों का बैंड समूह –

(क) बैण्ड समूह राजस्थान के जयपुर एवं जोधपुर के केन्द्रीय

बन्दीगृहों में काम कर रहा है। बीकानेर के केन्द्रीय बन्दीगृह में इसे स्थापित करने की प्रक्रिया चल रही है और उन्हें एक निश्चित दर पर निजी कार्यों के लिये भेजा जाता है।

(ख) इस बैंड समूह की आय का आधा भाग बैंड में कार्य कर रहे बन्दियों के बीच वितरित किया जाता है और बाकी आधा भाग बैंड के उपकरणों एवं आवश्यक सामग्री हेतु उपयोग किया जाता है।

(v) बन्दीगृहों के सभी बन्दियों के रिकार्ड रखने के लिये जिला बन्दीगृहों एवं सभी केन्द्रीय बन्दीगृहों में ई–प्रिजन सॉफ्टवेयर स्थापित किया गया है।

14) तमिलनाडु :– तमिलनाडु राज्य के बन्दियों के कल्याण के लिये बन्दीगृह में निम्न प्रावधान किये गये हैं :–

(i) सभी बन्दियों की विशिष्ट प्रकार की स्वास्थ्य समस्याओं की जाँच करने के लिये समय–समय पर चिकित्सा शिविर आयोजित किये जाते हैं।

(ii) बन्दियों के मध्य टी.बी. उन्मूलन के लिये सभी केन्द्रीय बन्दीगृहों में प्रत्यक्ष रूप से निरीक्षण उपचार कार्यनीति केन्द्र (डॉट्स) स्थापित किये गये हैं।

(iii) दोषी बन्दियों के 'ब' स्तर के बन्दियों की वर्दी हॉफ पेंट से बदलकर फुल पैंट कर दी गई है।

(iv) बन्दीगृह में प्रवेश के समय एवं बाद में महिला बन्दी की जाँच एक महिला सहायक सर्जन द्वारा की जाती है और टिप्पणियों को चिकित्सकीय पत्र में दर्ज किया जाता है। गर्भवती महिलाओं की दैनिक देखभाल को प्राथमिकता दी जाती है। महिला रोग परीक्षण सम्बन्धी परीक्षण एवं प्रसव–पूर्व व प्रसवोत्तर देखभाल के प्रत्येक मामले को आवश्यकता अनुसार संपादित किया जाता है। बन्दीगृह में प्रसव कराने के लिये गर्भवती महिला बन्दियों को आपातकालीन अवकाश दिया जाता है। महिला बन्दियों को सेनेटरी नैपकीन निःशुल्क प्रदान की जाती है।

(v) तमिलनाडु ओपन युनिवर्सिटी द्वारा अनुमोदित महात्मा गाँधी सामुदायिक महाविद्यालय सभी केन्द्रीय बन्दीगृहों, महिलाओं के लिये विशेष बन्दीगृह एवं बोर्स्टल विद्यालय, पुडुकोट्टई में स्थापित किये गये हैं। बन्दियों को उनके रिहा होने पर लाभकारी रोजगार

की दिशा में सशक्त बनाने की दृष्टि से बन्दियों को विभिन्न शैक्षिक एवं व्यावसायिक पाठ्यक्रम का प्रशिक्षण दिया जाता है।

(vi) बन्दीगृह के कर्मचारियों को मानवाधिकारों के मुद्दों के प्रति संवेदनशील (Sensetive) बनाया गया है, जो सभी प्रकार के प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के साथ–साथ कार्मिकों के लिये रिफ्रेशर पाठ्यक्रमों का भी अभिन्न अंग है। अधिकारिक आंगुतक (Official Visitor) बन्दीगृह प्रबन्धन एवं बन्दियों के उपचार की जांच करने के लिये बन्दीगृह का समय–समय पर निरीक्षण करते हैं। मानव अधिकार आयोग के सदस्य एवं माननीय न्यायाधीश एवं अन्य गणमान्य व्यक्ति भी बन्दियों की बुनियादी आवश्यकताओं एवं उपचार के प्रावधान की जाँच करने के लिये बन्दीगृहों का निरीक्षण करते हैं। गैर–सरकारी आंगतुक (Visitors) के रूप में नियुक्त जनता के सदस्यों, मानव अधिकारों के उल्लंघन यदि कोई हो तो, उसकी जाँच करने के लिये बन्दीगृह में आकस्मिक निरीक्षण करते हैं।

15) उत्तरप्रदेश :– उत्तरप्रदेश राज्य के बन्दियों के कल्याण के लिये बन्दीगृह में निम्न प्रावधान किये गये हैं :–

(i) राज्य के बन्दीगृह विभाग ने महिला बन्दी निकेतन के सहयोग से, महिला बन्दियों को पुनर्वास कार्यक्रम के तहत 'सब पढ़न, सब बढ़न' के नारे के साथ शिक्षा प्रदान की जाती है।

(ii) लायन्स क्लब इन्टरनेशनल की संस्थाओं के तहत बन्दियों हेतु "आंखों का शिविर" आयोजित किया गया था, जिसमें जाँच व जाँच के पश्चात् उपचार व चश्मा निःशुल्क दिया गया था।

16) पश्चिम बंगाल :– पश्चिम बंगाल राज्य के बन्दियों के कल्याण के लिये बन्दीगृह में निम्न प्रावधान किये गये हैं :–

(i) राज्य के बन्दीगृह विभाग द्वारा केन्द्रीय सुधारगृहों के बन्दियों को शामिल करते हुये स्वयं सहायता समूहों को बढ़ावा दे रहे हैं। स्वयं सहायता समूहों (एस.एच.जी.) द्वारा अलीपुर, दमदम एवं राष्ट्रपति केन्द्रीय सुधारगृह (Presaidenty Central correcional Home) के बन्दियों के लिये कैंटीन की सुविधा दे रहे हैं, जो नाबार्ड (NABARD), आर.बी.आई (RBI), यू.बी.आई. (UBI), एस.बी.आई (SBI) आदि के द्वारा सहायता प्राप्त है।

(ii) प्रदेश में पश्चिम बंगाल बन्दी कल्याण निधि नियम, 2008, द्वारा बन्दी कल्याण निधि का गठन किया गया है। यह बन्दियों एवं

उनके परिवारों को परेशानी के समय घर वापस एवं शिक्षा ग्रहण एवं अन्य रचनात्मक गतिविधियों में सहायता प्रदान करती है।

17) दिल्ली :– दिल्ली के बन्दीगृह में बन्दियों के कल्याण हेतु निम्न प्रावधान किये गये हैं :–

(i) दिल्ली के बन्दीगृह में ''वित्तीय सहायता, शिक्षा एवं बन्दित पालक (माता–पिता), 2014 के अंतर्गत बन्दियों के बच्चों के कल्याण की योजना प्रारम्भ की गई है। इस योजना में उन बच्चों की सहायता की जाती है जिनके जीवित माता या पिता या दोनों बन्दीगृह में हों। इस योजना के अन्तर्गत आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग (EWS) के बच्चों को मासिक भुगतान व निःशुल्क शिक्षा के रूप में वित्तीय सहायता, यूनिफार्म एवं स्टेशनरी प्रदान की जा रही है। इस योजना के अन्तर्गत प्रावधानों में किसी बालक को जेल में चिकित्सा उपचार एवं कानूनी सहायता प्रदान करने के लिये किसी संस्था में भेजने के आदेश पारित करना भी शामिल है। ताकि, बालक बन्दीगृह में बंद स्वयं के माता–पिता के साथ बातचीत करने में सक्षम बन सकें।

(ii) दिल्ली सरकार ने तिहाड़ परिसर में खुली जेल शिविर बन्दीगृह के लिये दिशा–निर्देश को मंजूरी दे दी है। इसके अन्तर्गत एक बन्दी आजीविका अर्जित करने के लिये जेल परिसर से बाहर जा सकता है और उसे शाम को खुली जेल परिसर में वापस आना होगा।

(iii) दिल्ली जेल प्रशासन ने लगभग सभी बन्दीगृहों में संगीत कक्ष स्थापित किया है जिसमें तबला, हारमोनियम, गिटार, कीबोर्ड, बांसुरी आदि जैसे संगीत वाद्ययंत्र बन्दियों के सीखने एवं उपयोग के लिये उपलब्ध है। बन्दियों द्वारा साथी बन्दियों का मनोरंजन करने के लिये फ्लाइंग सोल्स (Flying Souls) नामक एक बैंड भी बनाया गया है।

(iv) 'तिहाड़ कैदी फोन कॉल प्रणाली' सभी बन्दीगृहों में प्रारम्भ की गई है, जो बन्दियों को उनके परिवार के साथ संचार की सुविधा प्रदान करता है। प्रारम्भ में यह सुविधा बन्दियों के लिये सप्ताह में केवल एक दिन के लिये ही रहती थी, परन्तु अब यह सुविधा सप्ताह के सभी दिन अर्थात् सातों दिन के लिये बढ़ा दी गई है।

(v) बन्दियों के साथ जेल कैंटिन के साथ अपने मौद्रिक लेनदेन में बन्दियों की सहायता के लिये पुराने कूपन प्रणाली के स्थान पर स्मार्ट कैश कार्ड प्रणाली शुरू की गई है। प्रत्येक बन्दी को एक

स्मार्ट कार्ड दिया जा रहा है, जिसमें उसके लेन–देन का हिसाब रखा जाता है। अब स्मार्ट कार्ड के लिये उपयोग के लिए बन्दियों का पैसा उनके नाम से उनके खातों में जमा किया जाता है। बन्दीगृह प्रशासन बन्दी के सम्पत्ति खाते का उपयोग करने की प्रक्रिया में हैं।

(vi) बन्दीगृह विभाग ने राष्ट्रीय साक्षरता मिशन, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के ''पढ़ो और पढ़ाओं'' नाम से एक व्यापक शैक्षिक कार्यक्रम शुरू किया है। यह कार्यक्रम किसी भी भारतीय बन्दीगृह में आईसीटी (सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी) द्वारा आयोजित पहला सक्षम साक्षरता कार्यक्रम है। इस कार्यक्रम का पालन सभी बन्दीगृहों में शीघ्रता से किया जा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप निरक्षरता दर पहले की तुलना में 40 प्रतिशत से घटकर 5 प्रतिशत हो गई है।

(vii) बिजली एवं जैव ईंधन उत्पन्न करने के लिये एक पारिस्थितिकी के अनुकूल पहले तिहाड़ बन्दीगृह प्रशासन ने DSIDC एनजी लिमिटेड दिल्ली के जी.एन.सी.टी एवं भाभा परमाणु अनुसन्धान केन्द्र, ट्रॉम्बे से हाथ मिलाया है। सभी बन्दीगृहों में परियोजनाओं के प्रारम्भ होने से बन्दीगृहों में उत्पन्न अपशिष्ट का उपयोग करने के अतिरिक्त बिजली/ईंधन के बिलों में बड़ी बचत होगी।

(viii) दिल्ली के केन्द्रीय बन्दीगृह में आर्ट एण्ड क्राफ्ट गैलरी खोली गई है जिसमें बन्दियों के शिल्पकार्य (क्राफ्ट) एवं पेंटिंग का प्रदर्शन किया जाता है।

(ix) वे बन्दी जिन्हें क्रिकेट खेलने एवं सीखने में रूचि होती है, उन्हें उचित प्रशिक्षण देने के लिये क्रिकेट अकादमी की स्थापना की गई है।

(x) 'तिहाड आइडियल' के बैनर तले जेल संगीत प्रतियोगिता पाँच श्रेणियों अर्थात् गायन, नृत्य, वाद्ययंत्र वादन, अभिनय और लेखन गीत के तहत आयोजित की जाती है।

(xi) जेल में बन्दियों को कविता और निबन्ध लेखन, पत्रकारिता आदि जैसी रचनात्मक साहित्यिक गतिविधियों में भाग लेने हेतु प्रोत्साहित किया जा रहा है, जिससे उनमें आत्मविश्वास की भावना जागृत होती है। उनकी कविता **'तिनका तिनका तिहाड़'** पर एक पुस्तक प्रकाशित की गई है और इसकी व्यापक स्तर पर सराहना की गई है। जेल अधीक्षक भी बन्दियों की सहायता से अपने बन्दीगृहों

का समाचार पत्र ला रहे हैं। बन्दियों के लाभ के लिये दिल्ली के बन्दीगृहों में ई–लायब्रेरी स्थापित की जा रही है।

(xii) दिल्ली में बन्दीगृह प्रशासन ने राष्ट्रीय जूट बोर्ड के सहयोग से फैंसी जूट बैग का निर्माण कार्य शुरू कर दिया है। जूट के आभूषण बनाने एवं इनके प्रशिक्षण का कार्यक्रम भी शुरू कर दिया गया है।

(xiii) बन्दीगृह प्रशासन ने एचआईवी पॉजिटिव बन्दियों के इलाज के लिये केन्द्रीय बन्दीगृह में ही एक एकीकृत परामर्श एवं परीक्षण केन्द्र (ICTS) की स्थापना की है।

(xiv) भारत सरकार के कौशल विकास एवं उद्यमिता मंत्रालय, दिल्ली के सहयोग से प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (PMKVV), के अंतर्गत दिल्ली के बन्दीगृह में यह दिल्ली सरकार ने बन्दियों के कौशल विकास का कार्यक्रम केन्द्रीय जेल, तिहाड़ में प्रारम्भ किया। इस पाठ्यक्रम के सफल समापन पर, प्रशिक्षित बन्दियों को भारत सरकार की ओर से प्रमाण–पत्र भी प्रदान किया जावेगा, जिससे उन्हें बन्दीगृह से रिहाई के पश्चात् उपयुक्त नौकरी या कार्य का अवसर खोजने में सहायता मिलेगी। इन प्रशिक्षित बन्दियों को प्रधानमंत्री मुद्रा बैंक योजना के अन्तर्गत ऋण की सुविधा भी मिल सकती है, जिससे उन्हें स्वरोगजार के रूप में अपना स्वयं का व्यवसाय स्थापित करने में सहायता मिलेगी।

सभी बन्दीगृह प्रशासन एवं सुधारक संस्थाओं का प्रमुख उद्देश्य बन्दियों को समाज में पुनः सामान्य जीवन जीने के लिये वापसी करना है। बन्दीगृह में बन्दियों को बन्दीगृह से मुक्त होने के पश्चात् उत्तरवीक्षा (After Care) द्वारा सुचारू रूप से तैयार किया जाता है जिससे उसे समाज द्वारा लांछन, तिरस्कार या बहिष्कार की समस्या से लड़ने की शक्ति प्राप्त होती है तथा वे अतीत की अपराधिक प्रवृत्ति को भूलकर नये तरीके से सामान्य नागरिक की भाँति जीवन व्यतीत करने की ओर प्रवृत्त होते हैं। बन्दीगृह में बन्दियों के सुधारात्मक व पुनर्वास के लिये विश्व स्तर पर भी कई प्रयास किये जा रहे हैं। फिर भी, वर्तमान समय में बन्दीगृह के बन्दियों को कारावास की दण्डावधि पूर्ण करने के पश्चात् मुक्त होने पर भी समाज में पुनर्वास करने में कई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, जैसे –

1. बन्दीगृह में आये बन्दियों का उचित रूप से वर्गीकरण के अभाव में, उन बन्दियों के लिये कौन–सी उपचारात्मक पद्धति उचित होगी, इसके कोई वैज्ञानिक आधार न होने से पुनर्वास में कठिनाई होती है। इसके अतिरिक्त, बन्दीगृह की अधोसंरचनात्मक सुविधाओं की

कमी भी उचित पुनर्वास के लिये गम्भीर समस्या है।

2. बन्दी के लिये बाहर की स्वतन्त्रता से दूर बन्दीगृह में बन्दी बनकर रहना ही स्वयं के लिये कष्टप्रद दण्ड है। अतः बन्दीगृह में उन्हें प्रताड़ित करना या यातनायें देना उचित नहीं होगा।

3. विधि के द्वारा निरूद्व या बन्दी व्यक्ति को बन्दीगृह में रखना भी अपराध माना गया है।

4. अधिकांश बन्दी अशिक्षित या अल्प–शिक्षित या अकुशल होने पर उनके लिये शिक्षा एवं उचित रोजगार मूलक व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था, उसे भविष्य में रिहाई के पश्चात् समाज में पुनर्वासित होने में सहायक होगी।

5. कुछ ऐसे चुने हुये बन्दियों, जिनका व्यवहार बन्दीगृह में अच्छा हो, सद्व्यवहार की श्रेणी में आते हैं, उन चुने हुये बन्दियों को लम्बी पैरोल (Furlougha parole), लघुदण्ड व क्षमादान आदि उनके पुनर्वास के लिये उपयोगी सिद्ध होते हैं।

6. बन्दीगृह में आये बन्दियों में से यदि कुछ बन्दी आगे पढ़ाई करना चाहते हैं तो उनके लिये बन्दीगृह में वाचनालय, पुस्तकालय, शिक्षक, परीक्षा में सम्मिलित होने की सुविधा उपलब्ध करवायी जानी चाहिये, जो उन्हें रिहाई के पश्चात् पुनर्वास में सहायता करेगी। इस दिशा में IGNOU जैसे मुक्त विश्वविद्यालय एवं संस्थान सहायक होते हैं।

7. बन्दियों को पुनर्वास के लिए तैयार करने हेतु उनकी दण्डावधि के दौरान उन्हें श्रमकार्य या पढ़ाई के लिये भेजना या सामुदायिक सेवा में लगाया जाना उचित होगा।

8. माननीय उच्चतम न्यायालय ने सुनील बत्रा II (ए.आई.आर. 1980 सु.को. 1574) में बन्दियों की सुधारात्मक चिकित्सा के सन्दर्भ में निम्न तीन बातों पर ध्यान देने पर बल दिया –

   (i) अभिरक्षा या निरोध के कारण सम्बन्धित बन्दी का व्यक्तित्व समाप्त नहीं हो जाता है।

   (ii) बन्दियों के भी मानवाधिकार होते हैं।

   (iii) कारावास में बन्दियों को प्रताड़ित करना या यातनायें देना प्रतिबन्धित है।

महिला बन्दी

भारतीय जेल व्यवस्था में बन्दीगृह में रखने वाले बन्दियों का वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से किया गया है –

(i) सिविल बन्दी,

(ii) अपराधिक बन्दी,

(iii) विचाराधीन बन्दी,

(iv) सिद्ध दोष बन्दी,

(v) आदतन अपराधी बन्दी,

(vi) गैर–आदतन अपराधी बन्दी,

(vii) राजनीतिक बन्दी,

(viii) बन्दी,

(ix) पागल–अपराधी बन्दी व गैर–अपराधी बन्दी।

उपरोक्त सभी बन्दियों के वर्गों को महिला एवं पुरूष के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार इन्हें श्रेणी I या II में बाँटा जाता है।

बन्दीगृह में विभिन्न प्रकार के बन्दी होते हैं उनमें से महिला बन्दी भी होती है। महिला बन्दियों को पुरूष बन्दियों से पृथक जेल में रखा जाता है। भारतीय इतिहास में भी महिलाओं को उनके द्वारा किये गए अपराधिक कृत्य के लिए दण्डित किया जाता था। महिला अपराधियों के बारे में साधारण धारणा है कि इनके द्वारा किये गये अपराध पुरूषों द्वारा किये गये अपराधों से भिन्न होते हैं और परिणाम की दृष्टि से कम हानिकारक भी होते हैं। महिलाओं में पुरूषों की अपेक्षा कम अपराधिक प्रवृत्ति पायी जाती है। ज्ञात हो कि महिला की भूमिका माता, पत्नी, बहन या बच्चों के पालन–पोषण करने वाली परिचायिका आदि सभी में से किसी भी प्रकार की हो सकती है।

डॉ. रैकलैस के अनुसार, महिलाओं के द्वारा किये जाने वाले अपराध सामाजिक भूमिका के अनुरूप होते हैं और वे अधिकतर वह अपराध करती हैं जिनमें बल प्रयोग की आवश्यकता कम से कम होती है। इनके द्वारा किये जाने वाले प्रमुख अपराध हैं भ्रूण हत्या, गर्भपात, विष प्रयोग, शिशु वध, पर–पुरूषगमन, वैश्यावृत्ति, ठगी, चोरी आदि। इसके अतिरिक्त, अशिक्षित व अंधविश्वासी महिलायें जादू–टोने के नाम पर कभी–कभी हत्या जैसे अपराध भी करती हैं।

महिला बन्दियों को भी कारागार में रखने के वही नियम है जैसे पुरूष

बन्दियों के लिये। उनका वर्गीकरण भी बिलकुल उसी प्रकार होता है जैसा कि पुरूष का होता है। इसीलिए, महिला बन्दियों के कल्याण के लिये सुधार एवं पुनर्वास के लिये भी समान प्रयास किये जा रहे हैं।

वर्ष 2001 मई 17 व 18, को नई दिल्ली में आयोजित ''हिरासत में महिलायें'' सेमीनार की रिपोर्ट में विभिन्न सुधारगृहों में महिलाओं के सम्बन्ध में दी गई जानकारी के अनुसार महिलाओं की स्थिति दयनीय ही बतायी गई थी। जिन महिला बन्दियों के साथ ये घटनायें घटित हुई हैं उनकी पीड़ा का अंदाजा लगाया जा सकता है। उन्होंने सुधार गृह में प्रवेश करने के बाद महिलायें एच.आई.वी. का शिकार हो गई। उनका शोषण किया गया। उनके साथ पश्विक व्यवहार होने की जानकारी दी गई। वहीं कुछ अन्य सुधार गृहों में महिलाओं की स्थितियों को सुधारने के प्रयासों में सफलता मिली है।

पहले बन्दीगृहों में महिलाओं के साथ पाश्विक व्यवहार किया जाता था एवं अस्वच्छ वातावरण में रखा जाता था वहीं अब उनके मानव अधिकारों की रक्षा भी की जा रही है। अब महिला बन्दीगृहों में उन्हें प्रशिक्षित किया जाता है तथा उन्हें शिक्षा भी दी जाती है एवं उनके पुनर्वास के प्रयासों को भी गम्भीरता से लिया जा रहा है।

महिलाओं के द्वारा किये गये अपराधों के कारण पर किये गये अध्ययनों से ज्ञात होता है कि अधिकतर महिलायें गरीबी, संस्थागत विवशता, उत्पीड़न एवं सामान्य अज्ञानता के कारण अपराध करती हैं। हालांकि, बन्दीगृहों में महिला बन्दियों की संख्या पुरूष बन्दियों से बहुत कम है। एक प्रकरण में उच्चतम न्यायालय का एक दिशा–निर्देश है कि ''नारी जाति का उद्धार करो या दण्ड के लिए न्याय प्रणाली को बदलो।''

हिरासत में आई महिलाओं को संवैधानिक अधिदेश एवं न्यायमूर्ति अय्यर की सिफारिशों के बाद भी आवश्यक एवं उचित सेवायें नहीं दी जाती हैं। इसका मुख्य कारण अशिक्षा व जागरूकता की कमी है। इसके साथ एक कारण यह भी है कि मौजूदा व्यवस्था की निगरानी नहीं हो पाती है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51 (क) में धारा (ङ) के अनुसार यह एक मौलिक कर्त्तव्य है जिसमें अपेक्षा की गई है कि प्रत्येक नागरिक ऐसे कार्यों का त्याग करे, जो महिलाओं की गरिमा का अनादर करते हैं। हालांकि, बन्दीगृह प्रशासन राज्य का विषय है परन्तु बन्दीगृह की अन्र्तव्यवस्था को सुधारने के लिये गृह मंत्रालय द्वारा बल दिया जाता है। 1987 से गृह मंत्रालय बन्दीगृहों की आधुनिकीकरण योजनाओं के अन्तर्गत बन्दियों की स्थितियों को सुधारने में सहयोग करता आ रहा है। यह राज्य सरकारों को बन्दीगृहों की सुरक्षा, सुदृढ़ीकरण, संचार व परिवहन, पुराने बन्दीगृहों की मरम्मत, महिला अपराधियों

या बन्दियों को उचित सुविधायें देना, व्यावसायिक प्रशिक्षण, जेल उद्योग के आधुनिकीकरण, बन्दियों के प्रशिक्षण के लिये निधियाँ प्रदान करता है।

गृह मंत्रालय के अनुसार, महिला बन्दियों के परिवार व समाज में उनकी स्थिति, विशिष्ट आवश्यकताओं/समस्याओं एवं जेल में उनकी कमजोर स्थिति को देखते हुये राज्य के जेल मेन्युअल में उनकी सुरक्षा, देखभाल, उपचार, प्रशिक्षण एवं पुनर्वास का प्रयास करने की व्यवस्था की गई है।

वर्ष 2007 में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने प्रतिवर्ष 20 फरवरी को 'विश्व सामाजिक न्याय दिवस' के रूप में मनाने की घोषणा की थी। इसी में महिला बन्दियों के सम्बन्ध में समाज को सोचने, जागरूक व मदद करने के लिये प्रेरित करना भी शामिल है। लम्बे समय से बंद महिला बन्दियों एवं अपराधियों की आवश्यकताओं को रेखांकित किया जाता है। महिला बन्दियों के अपराधों का स्वरूप, उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति एवं पारिवारिक रिश्ते व जिम्मेंदारियाँ पुरूषों से भिन्न होती हैं। कई बार जेल के विनियमों में उनकी स्थिति की उपेक्षा की गई है। वर्ष 2010 दिसम्बर में संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने महिला बन्दियों के उपचार एवं महिला अपराधियों के लिये गैर हवालात उपायों पर नये नियम बनाये जिन्हें बैंकाक रूल्स के नाम से जाना गया। महिला बन्दियों के शिशु व बच्चे, जो बन्दीगृह में उनके साथ होते हैं, सामान्यतः बच्चों को पिता के साथ रखने की अनुमति नहीं मिलती है, तथा जिनके माता एवं पिता या दोनों ही बन्दीगृह में होने के कारण बच्चे या शिशु अकेले रह जाते हैं, उनके अधिकारों के प्रति ध्यान दिया गया है।

ऐसी महिला बन्दी जो उनके द्वारा किये गये अपराधों के लिये प्राप्त दण्ड की दण्डावधि व्यतीत कर बन्दीगृह से मुक्त होकर आई हो तो यह आवश्यक है कि उन्हें समाज व परिवार में नई शुरूआत करने दी जाये। वहीं जो महिला बन्दी बन्दीगृह में दण्डावधि पूर्ण होने तक रहती है उन्हें सुधारात्मक उपायों द्वारा बेहतर व्यक्ति बनाया जाये।

सभी बन्दीगृह प्रशासन एवं सुधारक संस्थाओं का प्रमुख उद्देश्य बन्दियों को समाज में पुनः सामान्य जीवन जीने के लिये वापसी करना है। बन्दीगृह में बन्दियों को बन्दीगृह से मुक्त होने के पश्चात् उत्तरवीक्षा (After Care) द्वारा सुचारू रूप से तैयार किया जाता है जिससे उसे समाज द्वारा लांछन, तिरस्कार या बहिष्कार की समस्या से लड़ने की शक्ति प्राप्त होती है तथा वे अतीत की अपराधिक प्रवृत्ति को भूलकर नये तरीके से सामान्य नागरिक की भाँति जीवन व्यतीत करने की ओर प्रवृत्त होते हैं। बन्दीगृह में बन्दियों के सुधारात्मक व पुनर्वास के लिये विश्व स्तर पर भी कई प्रयास किये जा रहे हैं। फिर भी, वर्तमान समय में बन्दीगृह के बन्दियों को कारावास की दण्डावधि पूर्ण करने के पश्चात्

मुक्त होने पर भी समाज में पुनर्वास करने में कई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, जैसे –

(1) बन्दीगृह में आये बन्दियों के उचित रूप से वर्गीकरण के अभाव में, उन बन्दियों के लिये कौन–सी उपचारात्मक पद्धति उचित होगी, इसका कोई वैज्ञानिक आधार न होने से पुनर्वास में कठिनाई होती है। इसके अतिरिक्त, बन्दीगृह की अधोसंरचनात्मक सुविधाओं की कमी भी उचित पुनर्वास के लिये गम्भीर समस्या है।

(2) बन्दी के लिये बाहर की स्वतन्त्रता से दूर बन्दीगृह में बन्दी बनकर रहना ही स्वयं के लिये कष्टप्रद दण्ड है। अतः बन्दीगृह में उन्हें प्रताड़ित करना या यातनायें देना उचित नहीं होगा।

(3) विधि के द्वारा निरूद्व या बन्दी व्यक्ति को बन्दीगृह में अपराध भी माना गया है।

(4) अधिकांश बन्दी अशिक्षित या अल्प–शिक्षित या अकुशल होने पर, उनके लिये शिक्षा एवं उचित रोजगार मूलक व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था, उसे भविष्य में रिहाई के पश्चात् समाज में पुनर्वासित होने में सहायक होगी।

(5) कुछ ऐसे चुने हुये दण्ड, जिनका व्यवहार बन्दीगृह में अच्छा हो सद्व्यवहार की श्रेणी में आता है। उन चुने हुये बन्दियों को लम्बी पैरोल (Furlougha parole), लघुदण्ड व क्षमादान आदि उनके पुनर्वास के लिये उपयोगी सिद्ध होते हैं।

(6) बन्दीगृह में आये बन्दियों में ये यदि कुछ आगे पढ़ाई करना चाहते हैं तो उनके लिये बन्दीगृह में वाचनालय, पुस्तकालय, शिक्षक, परीक्षा में सम्मिलित होने की सुविधा उपलब्ध कराया जाना चाहिये, जो उन्हें रिहाई के पश्चात् पुनर्वास में सहयोग प्रदान करेगी। इस दिशा में IGNOU जैसे मुक्त विश्वविद्यालय संस्थान सहायक होते हैं।

(7) बन्दियों को पुनर्वास के लिए तैयार करने हेतु उनकी दण्डावधि के दौरान उन्हें श्रमकार्य, पढ़ाई करने के लिये भेजना या सामुदायिक सेवा में लगाया जाना उचित होगा।

(8) माननीय उच्चतम न्यायालय ने सुनील बत्रा II(AIR 1980 SC 1574) में बन्दियों की सुधारात्मक चिकित्सा के सन्दर्भ में निम्न तीन बातों पर ध्यान देने पर बल दिया है:–

1. अभिरक्षा या निरोध के कारण सम्बन्धित बन्दी का व्यक्तित्व

समाप्त नहीं होता है।

2. बन्दियों के भी मानव अधिकार होते हैं।

3. कारावास में बन्दियों को प्रताड़ित करना या यातनायें देना प्रतिबन्धित है।

बन्दियों का देश प्रत्यावर्तन अधिनियम, 2003

अन्तर्राष्ट्रीय अपराधों एवं विदेशियों द्वारा भारत में कारित अपराधों में अभिवृद्धि हुई है। परन्तु, इस सम्बन्ध में कोई निश्चित विधि न होने से अपराधियों के प्रकरण अपराधिक न्याय प्रशासकों के लिये गम्भीर समस्या बन गये थे। इसी हेतु भारत सरकार द्वारा वर्ष 2003 में ''कैदियों का देश–प्रत्यर्पण अधिनियम' पारित किया गया, जो 1 दिसम्बर 2004 से लागू किया गया है। इस अधिनियम के अन्तर्गत बन्दियों को विचारण के लिये देश से बाहर भेजने या भारत में लाने सम्बन्धी प्रत्यर्पण के नियम लागू किये गये हैं। इस अधिनियम की धारा 16(2) के अनुसार विचारण हेतु प्रत्यर्पण के अतिरिक्त भारत में या विदेश में दण्ड भोग रहे बन्दियों को भेजने या लौटाने सम्बन्धी प्रावधान भी हैं। ऐसे प्रत्येक प्रत्यर्पण के प्रकरणों को संसद के पटल पर रखना आवश्यक होता है।

बन्दियों (कैदियों) का संप्रत्यावर्तन (स्वदेश वापसी) अधिनियम, 2003 (49 ऑफ 2003) कतिपय बन्दियों (कैदियों) को भारत से भारत के बाहर के देश या स्थान स्थानांतरित करने तथा कतिपय बन्दियों (कैदियों) को भारत के बाहर के देश या स्थान से भारत में प्राप्त करने हेतु एक अधिनियम में भारत गणराज्य के चौवनवें वर्ष में संसद द्वारा नियमानुसार अधिनियमित किया गया है–

1. संक्षिप्त शीर्षक एवं लागू होना –

(1) यह अधिनियम बन्दियों (कैदियों) का संप्रत्यावर्तन अधिनियम, 2003 कहलायेगा।

(2) यह ऐसी दिनांक को प्रभाव में आयेगा, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा राजकीय राजपत्र में विज्ञापित द्वारा विनिश्चित किया जाये।

2. परिभाषायें – जब तक कि संदर्भ में अन्यथा अपेक्षित नहीं, इस अधिनियम में,

(क) संविदा राज्य से तात्पर्य है भारत के बाहर के किसी देश या स्थान की सरकार जिनके बारे में केन्द्रीय सरकार द्वारा ऐसे देश या स्थान की सरकार से संधियाँ अन्यथा के माध्यम से भारत से ऐसे देश या स्थान को तथा विपर्ययेन (ठीक उल्टा) बन्दियों (कैदियों) के स्थानान्तरण या एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाने के लिये

व्यवस्था की हुई है और इसमें ऐसे देश या स्थान भी ऐसी अन्य सरकार भी सम्मिलित है जो केन्द्रीय सरकार ने धारा 3 की उपधारा (1) के शासकीय राजपत्र में विज्ञप्ति द्वारा विनिर्दिष्ट की हुई है।

(ख) विहित से तात्पर्य है इस अधिनियम के अन्तर्गत बने हुये नियमों से विहित।

(ग) कैदी (बन्दी) का तात्पर्य है किसी दण्ड न्यायालय जिसमें संविदा राज्यों में तत्समय प्रवृत्त कानून के अन्तर्गत संस्थापित न्यायालय भी शामिल है, द्वारा पारित किसी आदेश द्वारा कारावास की सजा काट रहा व्यक्ति।

(घ) प्राधिकार से तात्पर्य है धारा 7 की उपधारा (1) या धारा 12 की उपधारा (2), जैसा भी मामला हो, जारी किया गया कोई वारण्ट।

(ङ) यहां प्रयुक्त शब्द एवं अभिव्यक्तियों जिनको परिभाषित नहीं किया गया है किन्तु दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 ऑफ 1974) में परिभाषित किया गया है, उस संहिता में उनको दिये गये अर्थों में यथास्थिति प्रयुक्त होंगे।

3. **अधिनियम का लागू होना** –

(1) केन्द्रीय सरकार, शासकीय राजपत्र में विज्ञप्ति द्वारा निर्देश दे सकती है किस अधिनियम के प्रावधान भारत के बाहर किसी देश या स्थान में, जैसा कि विज्ञाप्ति में विनिर्दिष्ट किया जा सकेगा, लागू होंगे।

(2) यदि, उपधारा (1) के अधीन विज्ञप्ति भारत के बाहर किसी ऐसे देश या स्थान से सम्बन्धित है जिससे भारत और उस देश के बीच बन्दियों (कैदियों) के स्थानान्तरण के लिये सन्धि का पूर्ण पाठ भी उपवर्णित होगा और किसी भी मामले में उस कथित सन्धि की अवधि से अधिक प्रभाव में नहीं रहेगी।

(3) यदि, केन्द्रीय सरकार की यह राय है कि भारत के बाहर के देश या स्थान के बारे में ऐसे देश के सम्बन्ध में किसी सन्धि को प्रभावी बनाने के लिये इस अधिनियम के प्रावधानों का उपान्तरण करना अपेक्षित है, तो शासकीय राजपत्र में विज्ञप्ति द्वारा निर्देश दे सकती है कि ऐसे देश में इस अधिनियम का लागू होना ऐसी शर्तों, अपवादों एवं उपान्तरणों जैसा कि विज्ञाप्ति में विनिर्दिष्ट किया गया हो, के अधीन होगा।

4. **बन्दी (कैदी) द्वारा स्थानान्तरण के लिये प्रार्थना पत्र** – कोई बन्दी

(कैदी) जो संविदा राज्य का नागरिक है, अपनी अभिरक्षा के लिए भारत से उस संविदा सरकार में अन्तरण हेतु केन्द्रीय सरकार को एक प्रार्थना पत्र दे सकता है;

परन्तु यह कि यदि कोई बन्दी (कैदी) उसकी अस्वस्थता, मानसिक स्थिति, वृद्धावस्था या अवयस्क होने के कारण स्वयं प्रार्थना पत्र देने में समर्थ नहीं है, तब उसके ऐवज में कार्य करने को पात्र किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रार्थना–पत्र दिया जा सकता है।

5. केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रार्थना पर विचार

(1) धारा 4 के अधीन प्रार्थना पत्र प्राप्त होने पर, केन्द्रीय सरकार उस जेल के प्रभारी अधिकारी जहाँ बन्दी (कैदी) कारावासित है, को निर्देश देगी कि वह ऐसी सूचना जो केन्द्रीय सरकार की राय में स्थानान्तरण के प्रयोजन से सुसंगत है, दे।

(2) उपधारा (1) के अधीन सूचना के प्राप्त होने पर, यदि केन्द्रीय सरकार संतुष्ट हो जाती है कि :–

(क) बन्दी (कैदी) के विरूद्ध कोई जांच विचारण या कोई अन्य प्रक्रिया लम्बित नहीं है।

(ख) बन्दी (कैदी) को मृत्युदण्ड नहीं दिया गया है;

(ग) कैदी (बन्दी) (मिलट्री कानून) के अधीन किसी अपराध के लिये दोषी नहीं है; तथा

(घ) बन्दी (कैदी) की अभिरक्षा संविदा सरकार को स्थानान्तरण करना भारत की संप्रभुता, सुरक्षा या किसी अन्य हित के लिये हानिकारक या प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली नहीं होगी।

तो वह संविदा सरकार को बन्दी (कैदी) का प्रार्थना पत्र अग्रेषित करने हेतु आदेश पारित करेगी।

6. संविदा सरकार की टिप्पणी –

(1) बन्दी (कैदी) का प्रार्थना पत्र विहित साधनों के माध्यम से केन्द्रीय सरकार द्वारा संविदा राज्य की सरकार को, ऐसे प्रार्थना पत्र पर कार्यवाही करने हेतु निम्न सूचना के साथ अग्रेषित किया जावेगा, अर्थात् –

(क) निर्णय की एक प्रतिलिपि तथा कानून के सुसंगत प्रावधानों जिसके अधीन बन्दी (कैदी) के विरूद्ध सजोपारित की गई है, की एक प्रति,

(ख) बन्दी (कैदी) की सजा की प्रकृति, समयावधि तथा उसके चालू होने की दिनांक;

(ग) बन्दी (कैदी) की पूर्वकालिक घटनायें एवं उसके चरित्र के सम्बन्ध में चिकित्सकीय प्रतिवेदन या अन्य कोई प्रतिवेदन, जहाँ उसके प्रार्थना–पत्र के निस्तारण के लिये या उसके विरूद्व या कैद में रखने की प्रकृति के विनिश्चय के लिये यह सुसंगत हो; तथा

(घ) अन्य कोई सूचना जो केन्द्रीय सरकार आवश्यक समझे।

2) जहाँ, किसी बन्दी (कैदी) का केन्द्रीय सरकार द्वारा अग्रेषित कोई प्रार्थना पत्र संविदा सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया गया हो, केन्द्रीय सरकार ऐसी संविदा सरकार से, सभी या निम्न में से कोई सूचना या दस्तावेज संविदा सरकार बन्दी (कैदी) के स्थानान्तरण का निर्णय लेने से पूर्व प्राप्त कर सकती है; अर्थात् –

(क) एक कथन या दस्तावेज यह दर्शाते हुये कि बन्दी (कैदी) उस संविदा सरकार का नागरिक है;

(ख) संविदा सरकार के सुसंगत कानून की एक प्रतिलिपि, जो उसके उस कृत्य या चूक को अपराध गठित करता हो, जिसके लिये भारत में सजा पारित की गई है, जैसा कि ऐसा कृत्य या चूक उस राज्य के कानून के अधीन एक अपराध था;

(ग) उसका स्थानान्तरण होने पर संविदा सरकार में सजा की अवधि एवं उसको प्रभावी करने से सम्बन्धित तथ्य या कोई कानून या विनियम के बारे में एक विवरण;

(घ) संविदा सरकार द्वारा बन्दी (कैदी) के स्थानान्तरण को स्वीकार करने के लिये राजी होना तथा बन्दी (कैदी) की सजा का शेष रहा भाग शासित करने के लिये एक गारण्टी;

(ड) केन्द्रीय सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट शर्तो, यदि कोई हो, को पूरा करने के लिये गारण्टी, तथा

(च) कोई अन्य सूचना या दस्तावेज, जो केन्द्रीय सरकार आवश्यक समझे।

7. **केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रार्थना पर विचार** – (1) यदि केन्द्रीय सरकार, सम्बन्धित संविदा सरकार से संचार प्राप्त होने पर;

(क) बन्दी (कैदी) के स्थानान्तरण को स्वीकार करने की अपनी इच्छानुकूलता व्यक्त करते हुये; एवं

(ख) वारण्ट में विनिर्दिष्ट शर्तों की पालन करने की गांरटी देने पर

इस बात से संतुष्ट हो जाती है कि बन्दी (कैदी) को उस कथित राज्य में स्थानान्तरित किया जाना चाहिये, केन्द्रीय सरकार तत्सयम प्रचलित किसी अन्य कानून में किसी बात के शामिल होते हुये भी, धारा 8 के प्रावधानों के अनुसरण में ऐसे प्रारूप में, जो विहित किया जा सकेगा प्राधिकार (वारण्ट) जारी कर सकती है।

(2) जहाँ उपधारा (1) के अधीन प्राधिकार (वारण्ट) जारी किया जाता है, केन्द्रीय सरकार तदनुसार संविदा सरकार को सूचित करेगी और उस राज्य को प्रार्थना करेगी कि वह उस व्यक्ति को तथा भारत के अन्दर उस स्थान को जहाँ बन्दी (कैदी) की अभिरक्षा को परिदत्त किया जावेगा, विनिर्दिष्ट करें।

8. स्थानान्तरण के लिये प्राधिकार (वारण्ट) जारी करने का प्रावधान–

(1) केन्द्रीय सरकार, किसी अधिकारी, जो राज्य सरकार में संयुक्त सचिव की श्रेणी से नीचे का नहीं होगा, को धारा 7 की उपधारा (1) के अधीन प्राधिकृत करेगी कि वह केन्द्रीय सरकार की ओर से उस जेल (कारागार) के प्रभारी अधिकारी को जिसमें बन्दी (कैदी) स्थानांतरित किया जाना है उस बन्दी (कैदी) से सम्बन्धित समस्त अभिलेखों तथा बन्दी (कैदी) से उसके जेल में प्रवेश करते समय ली गई व्यक्तिगत सामग्रियों सहित प्राधिकार (वारण्ट) की प्रतिलिपि प्रस्तुत करेगा।

(2) उपधारा (1) में संदर्भित प्राधिकार (वारण्ट) के प्रस्तुतीकरण पर जेल (कारागार) का प्रभारी अधिकारी तुरन्त प्राधिकार (वारण्ट) की पालना करेगा और उस पर उस व्यक्ति के हस्ताक्षर प्राप्त करेगा जिसे बन्दी (कैदी) को परिदत्त किया गया है तथा बन्दी (कैदी) से सम्बन्धित अभिलेख एवं व्यक्तिगत वस्तुऐं जो जेल से ली गई हैं, दी गई हो।

(3) उपधारा (2) के अधीन संविदा सरकार से प्राधिकृत व्यक्ति को बन्दी (कैदी) को सौंपने (परिदत्त करने) के पश्चात् उस जेल (कारावास) का प्रभारी अधिकारी, जो बन्दी (कैदी) को स्थानांतरित कर रहा है, प्राधिकार (वारण्ट) की प्रतिलिपि उस न्यायालय को अग्रेषित करेगा,

जिसने बन्दी (कैदी) को जेल (कारागार) में सुपुदर्गी की है एवं इसके साथ एक विवरण होगा कि उपधारा (1) के अधीन संविदा सरकार द्वारा प्राधिकृत व्यक्ति को बन्दी (कैदी) परिदत्त (सौंप) कर दिया गया है।

(4) उपधारा (1) के अधीन जारी किये गये प्राधिकार (वारंट) की अनुपालना में बन्दी (कैदी) का परिदत्त किया जाना, जेल (कारागार) के प्रभारी अधिकारी को उसकी अभिरक्षा में बन्दी (कैदी) को रखे जाने के उत्तरदायित्व से उन्मोचित कर देगा।

9. प्राधिकार (वारण्ट) का प्रचालन तथा बन्दी को वापस लेना –

संविदा सरकार द्वारा प्राधिकृत व्यक्ति, जिसे धारा 8 की उपधारा (2) के प्रावधानों के अधीन बन्दी (कैदी) की अभिरक्षा परिदत्त की गई है के लिये यह विधिपूर्ण होगा कि वह ऐसे बन्दी (कैदी) को प्राप्त करे और उसे अभिरक्षा में रखे और भारत के बाहर ले जावे और यदि बन्दी (कैदी) भारत के अन्दर ऐसी अभिरक्षा से बचकर निकल भागता है तो बन्दी (कैदी) को बिना प्राधिकार (वारण्ट) के किसी व्यक्ति द्वारा गिरफ्तार किया जा सकता है और वह व्यक्ति उस बन्दी (कैदी) को बिना किसी अनावश्यक देरी के निकटतम पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी को सौंपा जायेगा तथा इस प्रकार गिरफ्तार किया गया बन्दी (कैदी) भारतीय दण्ड संहिता (45 का 1860) की धारा 224 के अधीन अपराध कारित करने का दायी होगा एवं भारत में ऐसे कारावास की सजा जो उस बन्दी (कैदी) को यदि धारा 8 के अधीन अभिरक्षा की सुपुर्दगी नहीं करने की स्थिति में दी जा सकती हो, का भी दायी होगा।

10. अभिलेख का हस्तान्तरण– जहाँ कोई बन्दी (कैदी) इस अधिनियम के प्रावधानों के अधीन किसी संविदा सरकार को स्थानान्तरित किया गया है या किया जाना है, केन्द्रीय सरकार किसी प्रक्रिया, जिसमें बन्दी (कैदी) से सम्बन्धित न्यायिक प्रक्रियायें भी शामिल है, का अभिलेख किसी न्यायालय या कार्यालय में माँग कर सकती है और निर्देश दे सकती है कि ऐसे अभिलेख संविदा राज्य की सरकार को भेजा जायेगा।

11. न्यायालय और केन्द्रीय सरकार की शक्ति प्रभावित न होना – भारत से संविदा राज्य को बन्दी (कैदी) के स्थानान्तरण, न्यायालय जिसने निर्णय पारित किया है, के अपने निर्णय के पुनरावलोकन की शक्ति तथा केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार के तत्समय प्रचलित किसी कानून के अनुसार किसी सजा को निलम्बित करने, क्षमा करने या परिवर्तित करने की शक्ति को प्रभावित नहीं करेगा।

12. भारत में स्थानान्तरण –

(1) केन्द्रीय सरकार ऐसी शर्तों एवं निर्बन्धनों के अधीन, जो भारत एवं उस राज्य के बीच समझौते से तय हुई हो किसी बन्दी (कैदी), जो भारत का नागरिक है, को उस संविदा सरकार से जहाँ वह कारावास की कोई सजा कटा रहा है, से स्थानान्तरण पर स्वीकार कर सकती है।

(2) यदि केन्द्रीय सरकार उपधारा के अधीन स्थानान्तरण के लिये प्रार्थना को स्वीकार करती है, तो तत्समय प्रभारी किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुये भी, वह धारा 13 के प्रावधानों के अनुसरण में ऐसे प्रारूप में, जो विहित किया जा सके, बन्दी (कैदी) को जेल (कारागार) में रोके रखने के लिये प्राधिकार (वारण्ट) जारी कर सकती है।

13. जेल (कारागार) का विनिश्चय और भारत में स्थानान्तरण स्वीकार करने के लिये प्राधिकार (वारण्ट) का जारी किया जाना –

(1) केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार से परामर्श कर धारा 12 की उपधारा (2) के अधीन बन्दी (कैदी) जिसके बारे में एक प्राधिकार (वारण्ट) जारी किया गया है के सम्बन्ध में ऐसी राज्य सरकार के क्षेत्राधिकार के भीतर, किसी जेल (कारावास), जहाँ उसे रखा जायेगा और अधिकारी जो उसे प्राप्त करेगा और उसे अभिरक्षा में रखेगा का विनिश्चय करेगी।

(2) केन्द्रीय सरकार, किसी अधिकारी को जो उस सरकार के संयुक्त सचिव से नीचे की श्रेणी का नहीं होगा, को धारा 12 की उपधारा (2) के अधीन प्राधिकार (वारण्ट) जारी करने के लिये प्राधिकृत करेगी और उपधारा (1) में सन्दर्भित (वर्णित) अधिकारी को उस बन्दी (कैदी) जिसके सम्बन्ध में प्राधिकार (वारण्ट) जारी किया गया है, को प्राप्त करने तथा अभिरक्षा में रखने का निर्देश देगी।

(3) उपधारा (1) में सन्दर्भित (वर्णित) अधिकारी के लिये यह विधिपूर्ण होगा कि वह किसी बन्दी (कैदी) जिसे धारा 12 की उपधारा (2) के अधीन जारी प्राधिकार (वांरट) के निर्देश के अधीन परिदत्त किया गया है, को प्राप्त करें एवं अभिरक्षा में रखे तथा ऐसे बन्दी (कैदी) को उस कथित प्राधिकार (वारण्ट) के अनुसरण से व्यवहार करे और यदि बन्दी (कैदी) ऐसी अभिरक्षा से बच कर निकल भागता है तो बन्दी (कैदी) किसी व्यक्ति द्वारा बिना प्राधिकार (वारण्ट) के गिरफ्तार किया जा सकता है और वह ऐसा व्यक्ति ऐसे बन्दी

(कैदी) को बिना किसी असाधारण देरी के निकटतम पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी को सौपेंगा और इस प्रकार गिरफ्तार बन्दी (कैदी) भारतीय दण्ड संहिता (45 का 1860) की धारा 224 के अधीन किसी अपराध के कारित किये जाने के लिये दायी होगा और उस कथित प्राधिकार (वारण्ट) के अनुसरण में भी व्यवहार किये जाने हेतु दायी होगा।

(4) धारा 12 की उपधारा (2) के अधीन एक प्राधिकार (वारण्ट) के लिये प्रावधान करेगा कि–

(क) बन्दी (कैदी) को किसी संविदा सरकार या भारत के बाहर के किसी स्थान से भारत में लाने के लिये;

(ख) ऐसे बन्दी (कैदी) को भारत के किसी भाग में लेने, जो ऐसा स्थान हो सकेगा जिस पर प्राधिकार (वारण्ट) में सन्निहित प्रावधानों को प्रभावशाली बनाया जा सके;

(ग) धारा 12 की उपधारा (1) में संदर्भित शर्तों एवं निर्बन्धनों के अनुसरण में बन्दी (कैदी) की सजा की प्रकृति एवं अवधि तथा ऐसे बन्दी (कैदी) का भारत में कारावास ऐसे तरीके से, जैसा कि प्राधिकार (वारण्ट) में सन्निहित हो सके; और

(घ) कोई अन्य मामला जो विहित किया जा सके।

(5) तत्समय प्रचलित किसी अन्य विधि (कानून) में किसी अन्य बात के होते हुये भी धारा 12 की उपधारा (2) के अनुसरण में जारी प्राधिकार (वारण्ट) के अधीन किसी बन्दी (कैदी) की सजा (कारावास) भारत में किसी सक्षम न्यायालय द्वारा पारित ऐसी सजा समझी जायेगी।

(6) यदि, संविदा सरकार में बन्दी (कैदी) के विरूद्व पारित कारावास की सजा, इसकी प्रकृति, अवधि या दोनों के लिये भारतीय विधि (कानून) से असंगत हो, तो केन्द्रीय सरकार, आदेश द्वारा, ऐसे दण्ड की सजा, इसकी प्रकृति, अवधि या दोनों, जैसी भी स्थिति हो, के अनुसार असंगत होने पर उसे भारत में कारित समान अपराध के लिये उपबन्धित सजा के रूप में अनुकूलित कर सकती है।

परन्तु यह है कि इस प्रकार अनुकूलित सजा, जहाँ तक सम्भव हो सके, बन्दी (कैदी) के संविदा सरकार के निर्णय में अधिरोपित सजा के समान हो और ऐसी अनुकूलित सजा, इसकी प्रकृति, अवधि या दोनों के लिये संविदा सरकार में अधिरोपित सजा से सम्बन्धित दण्ड की वृद्धि नहीं करेगी।

14. नियम बनाने की शक्ति –

(1) केन्द्रीय सरकार, शासकीय राजपत्र में विज्ञप्ति द्वारा, इस अधिनियम के प्रावधानों को क्रियान्वित करने हेतु नियम बना सकेगी।

(2) विशेष रूप में, तथा पूर्वागामी शक्ति की सामान्यतः पूर्वाग्रह के बिना, ऐसे नियम, उप–नियम या कोई मामले प्रावधित कर सकेंगे, अर्थात् –

(क) साधन, जिनके माध्यम से धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन कोई प्रार्थनापत्र अग्रेषित किया जा सके;

(ख) प्रारूप, जिसमें धारा 7 की उपधारा (1) के अधीन प्राधिकार (वारण्ट) जारी किया जा सके,

(ग) प्रारूप, जिसमें धारा 12 की उपधारा (2) के अधीन प्राधिकार (वारण्ट) जारी किया जा सके; और

(घ) कोई अन्य मामला, जो धारा 13 की उपधारा (4) के खण्ड (घ) के अधीन विहित किया जा सके।

15. नियमों इत्यादि का रखा जाना – धारा 3 की उपधारायें (1) एवं (3) के अधीन जारी की गई प्रत्येक विज्ञप्ति तथा धारा 14 के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम इसके बनाये जाने के जितना शीघ्र हो सके, संसद के प्रत्येक सदन के सामने, जब इसका सत्र चालू हो, तीस दिनों के समग्र समय के लिये, जो एक सत्र या दो अथवा अधिक अनुवर्ती सत्रों का हो सकता है, और यदि सत्र तुरन्त आने वाले सत्र या अनुवर्ती सत्रों जैसा कि उपरोक्त प्रकार से कहा गया है, दोनों सदन में विज्ञप्ति या नियम नहीं बनाया जाना चाहिये तो विज्ञप्ति या नियम ऐसे परिवर्धित रूप में या किसी प्रभाव का नहीं होना यथास्थिति उसके बाद में केवल तभी प्रभावी होगा, किन्तु वस्तुतः यह है कि कोई ऐसा परिवर्द्धन या निरस्तीकरण उस विज्ञप्ति या नियम के अधीन पूर्व से की गई किसी बात की वैधता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना होगा।

16. कठिनाईयों को दूर करने की शक्ति – (1) यदि इस अधिनियम के प्रावधानों को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है, तो केन्द्रीय सरकार शासकीय राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा ऐसे प्रावधान बना सकती है, जो इस अधिनियम के प्रावधानों से असंगत नहीं हो और कठिनाई को दूर करने के लिये यह आवश्यक प्रतीत होता हो।

परन्तु यह है कि इस अधिनियम के लागू होने की तिथि से दो वर्षों की अवधि की समाप्ति के बाद कोई ऐसा आदेश नहीं किया जायेगा।

(2) उपधारा (1) के अधीन बनाया गया प्रत्येक आदेश; इसके बनाये जाने के जहाँ तक सम्भव हो शीघ्र बाद, संसद के प्रत्येक सदन के सामने रखा जायेगा।

कैदियों के प्रत्यावर्तन अधिनियम, 2003 के प्रमुख बिन्दु :–

(1) नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों अन्तर्राष्ट्रीय अनुबन्ध अनुच्छेद 12(4) के अनुसार एक व्यक्ति को अपने देश लौटने का पूरा अधिकार है। अपने देश की अपेक्षा अन्य देश में दण्डावधि पूर्ण करना कठिन माना गया।

(2) वर्ष 1963 के कान्सुलर रिलेशंस पर वियना सम्मेलन के तहत दूसरे देश में गिरफ्तारी, हिरासत एवं परीक्षण पर कॉउन्सलर संरक्षण का प्रावधान है।

(3) विदेशी बन्दियों के स्थानान्तरण पर संयुक्त राष्ट्र मॉडल समझौता एवं विदेशी कैदियों के उपचारों की वर्ष 1985 में सिफारिशों के माध्यम से 'विदेश बन्दियों के सामाजिक पुनर्वास पर उनके घरेलू देशों के प्रारम्भिक प्रत्यावर्तन के माध्यम से जोर दिया गया है।

(4) दण्डावधि भोग रहे बन्दियों के सम्बन्ध में कानून युद्ध के पश्चात् मानवतावादी विनियम ('पी.ओ.यू'– युद्ध के कैदी) में निहित है और वर्ष 2004 के दो संयुक्त राष्ट्र सम्मलेन, अन्तर्राष्ट्रीय संगठित अपराध एवं भ्रष्टाचार के विरूद्व विधि में निहित है।

(5) राज्य के बन्दियों के आदान–प्रदान के लिये द्विपक्षीय या बहुपक्षीय समझौते करने के लिये स्वतन्त्र है। यहाँ यह सिद्धान्त शामिल है ताकि 'विदेश में किया गया अपराध स्वयं के देश में भी एक अपराध ही हैं। जब तक कि बन्दियों के हस्तान्तरण की बातों को उत्तेजित या भड़काया न जाये।

भारत कैदियों के प्रत्यावर्तन अधिनियम, 2003 की स्थिति

(1) कैदियों के प्रत्यावर्तन नियम, 2003 में दो भाग शामिल है। जहाँ पहला भाग भारतीय जेलों से सम्बन्धित है वहीं दूसरा भाग अपने देश के किसी भी विदेशी देश से सजायाफ्ता नागरिक भारतीय नागरिकों को लेने से सम्बन्धित है।

(2) लगभग सभी प्रकार के कैदी प्रत्यावर्तन योग्य हैं यदि वे इन शर्तों को पूरा करते हैं।

    (1) वे वापस आने के लिये इच्छुक हों।

(2) उन पर किसी भी देश या राज्य में कोई लम्बित अपील न हो।

(3) अपराध सैन्य कानून के अधिकार क्षेत्र में नहीं आता हो।

(4) उसे मृत्युदण्ड के दण्ड से दण्डित नहीं किया गया हो।

(5) उन्हें सुनाये गये दण्ड में कम से कम 6 माह की दण्डावधि शेष हो।

(6) प्रत्यावर्तन में दोनों देशों की सहमति हो।

कैदियों के प्रत्यावर्तन से सम्बन्धित यह अधिनियम भारत के लिये निम्नलिखित कारणों से महत्वपूर्ण है :–

(1) विदेश मंत्रालय के अनुसार मार्च 2018 तक कम से कम 7,850 भारतीय नागरिक विश्व के अन्य 78 देशों के बन्दीगृहों में बन्दी थे।

(2) राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार, भारतीय जेलों में वर्ष 2015 तक 61185 विदेशी नागरिक बन्दी थे। उनमें से 66 प्रतिशत बन्दी अकेले बांग्लोदश से थे।

(3) भारतीयों को सबसे अधिक सजा देने वाले देशों में सऊदी अरब, अमीरात, कुवैत, ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, नेपाल, भूटान, श्रीलंका, बांग्लादेश, चीन, फ्रांस, जर्मनी, इंडोनेशिया, म्याँमार और थाईलैण्ड शामिल है।

(4) भारत ने प्रत्यावर्तन से सम्बन्धित 30 द्विपक्षीय समझौतों पर हस्ताक्षर किये हैं तथा विदेश में किये गये अपराधों पर अन्तर–अमेरिकी सम्मेलन तथा दोषसिद्ध सजायाफ्ता व्यक्तियों के स्थानान्तरण पर यूरोप परिषद के सम्मेलन के साथ स्थानान्तरण समझौता भी किया है।

(5) बाद वाले दोनों समझौते कम से कम 50 अन्य देशों को भारत के साथ एक सहकारी विधिक ढाँचे के अन्तर्गत आते है।

बन्दियों का प्रत्यार्वतन अधिनियम दोनों ओर से लाभप्रद है – पहला, भारत को विदेशी कैदियों के आवास पर अनावश्यक खर्च करने की अनावश्यक जरूरत नहीं है; दूसरा, भारतीय बन्दियों को अपने देश वापस लाकर भारत विदेशों में स्थिति अपने दूतावास सम्बन्धी सेवाओं के मामले में काफी बचत कर सकता है।

प्रत्यावर्तन के लिये किये गये भिन्न–भिन्न प्रयासों एवं समझौतों के बाद भी यह बहुत अधिक भरोसेमन्द नहीं है। वर्ष 2015 में भारत से केवल

9 विदेशी बन्दियों (जिसमें से 6 युनाइटेड किंगडम से, फ्रांस, जर्मनी एवं संयुक्त राष्ट्र अमीरात से एक–एक) उनके देश में वापस भेजे गये थे। इसके अतिरिक्त, जून 2003 से मार्च 2018 के बीच भारतीय नागरिकों को स्थानांतरित करने के लिये किया गया। 71 आवेदनों में से केवल 63 को ही स्वीकार किया गया है।

◆ ◆ ◆

अध्याय – 5

बन्दियों के मानव अधिकार

जब किसी व्यक्ति द्वारा कोई अपराधिक कृत्य अर्थात् विधि विरूद्ध या समाज के नियमों के विरूद्ध कार्य किया जाता है या ऐसे कार्यों में लिप्त या भागीदार या संशयित पाया गया है तो उसे बन्दीगृह में रखा जाता है और दोषसिद्ध होने पर उसे उसकी दण्डावधि तक बन्दीगृह में रखा जाता है, जहाँ उन्हें बन्दी कहा जाता है। बन्दियों को बन्दीगृह में रखने का उद्देश्य उन्हें उनके द्वारा किये गये विधि विरूद्ध कार्यों के लिये दण्डित एवं उसमें सुधार करना है। उन्हें बन्दीगृह में जनता व समाज से दूर रखा जाता है जहाँ उनके द्वारा किये गये अपराधिक कृत्य के लिये उन्हें पश्चाताप करने का अधिक अवसर मिले और वह स्वयं में सुधार कर सामान्य जीवन की ओर प्रवृत्त हो सकें।

बन्दियों को बन्दीगृह में लाकर उन्हें समाज व परिवार से दूर रखा जाता है, जिससे वे पुनः अपराधिक कृत्य कर समाज व देश को क्षति न पहुँचा सके। बन्दियों को बन्दीगृह में विचाराधीन समय में एवं दण्डित किये जाने के दण्ड की अवधि तक रखा जाता है। बन्दियों को बन्दीगृह के रखने के बाद भी उनके कुछ मानव अधिकार होते हैं।

संघीय एवं राज्य की विधियों में जेल बन्दीगृहों की स्थापना और प्रशासन के साथ–साथ बन्दियों के अधिकारों पर भी नियन्त्रण करते हैं। हालांकि, बन्दियों को पूर्ण संवैधानिक अधिकार नहीं है लेकिन वे क्रूर व असामान्य दण्ड के विरूद्ध संरक्षित हैं। इस सुरक्षा के लिये अवाश्यक है कि बन्दीगृह में बन्दियों को न्यूनतम जीवन स्तर दिया जाये।

बन्दियों को बन्दीगृह में रहने के पश्चात् की सामान्य मानव के रूप में कुछ सीमा तक अधिकार प्राप्त है। भारत में बन्दियों को ये अधिकार **जेल अधिनियम, 1894,** भारत के संविधान आदि के अन्तर्गत प्रदान किये जाते हैं। बन्दी भी एक मानव है और उसके पास कुछ अधिकार है और वे अपने मूल संवैधानिक अधिकारों को खो नहीं सकता है।

मानवाधिकार सभी मानव जन्म से ही स्वतन्त्र, समान गरिमा और अधिकारों में समान होते है। मानव अधिकार सभी मनुष्यों के लिये निहित अधिकार हैं, जो हमारी राष्ट्रीयता, निवास स्थान, लिंग, राष्ट्रीय या जातीय मूल रंग, धर्म, भाषा या किसी अन्य स्थिति के लिये अप्रासांगिक है। राष्ट्र के सभी व्यक्ति बिना किसी भेदभाव के मानव अधिकार के समान हकदार हैं क्योंकि ये अधिकार सभी मानवों

के मौलिक अधिकार हैं। ये मानव अधिकार सभी पारस्परिक रूप से परस्पर निर्भर और अविभाज्य हैं।

वर्ष 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानव अधिकार आयोग की स्थापना की जिसने मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा का मसौदा तैयार किया जिसे संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी सदस्यों ने बिना किसी भेदभाव के स्वीकार कर अपने देश में लागू किया। संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानवाधिकारों की रक्षा के लिये कई महत्वपूर्ण दस्तावेज तैयार किये, जैसे वर्ष 1966 में नागरिक व राजनीतिक अधिकारों एवं आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकारों का प्रतिज्ञा पत्र, वर्ष 1971 में शक्ति के दुरूपयोग एवं अपराध के शिकार व्यक्ति के लिये मूलभूत न्यायिक सिद्धान्तों की घोषणा के साथ–साथ बन्दियों के साथ व्यवहार के मानक नियम, वर्ष 1979 मे कानून के प्रवर्तन अधिकारियों के लिये संयुक्त राष्ट्र संघ की आचारसंहिता तथा वर्ष 1985 में बन्दियों के साथ अन्य क्रूर एवं अपमानजनक व्यवहार या दण्ड के लिये दी जाने वाली यातनाओं के विरूद्ध अभिसमय है।

सार्वभौमिक मानव अधिकार अधिकतर संविधान की विधियों, परम्परागत अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों, सामान्य सिद्धान्तों और अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अन्य स्त्रोतों के रूप में विधि द्वारा व्यक्त एवं गारण्टीकृत होते हैं। उदाहरण के लिये, **"मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा"**। अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकार कानून मानव अधिकारों और मानवों के मौलिक स्वतन्त्रताओं को बढ़ावा देने और संरक्षित करने के किये कुछ तरीकों से कार्य करने या कुछ कृत्यों को न करने के लिये सरकारों के दायित्वों को प्रस्तुत करता है।

अतः मानव अधिकार वे अधिकार हैं जो मानव जीवन के लिये मौलिक हैं। मानव अधिकार विश्व के सभी मानवों के लिये कुछ दावों एवं स्वतन्त्रताओं के अधिकार हैं। मानव के किये चरित्र में मौलिक एवं सार्वभौमिक होने के अतिरिक्त, मानव अधिकारों को अन्तर्राष्ट्रीय आयाम माना जाता है। किसी भी प्रकार के भेदभाव रहित अधिकारों का सार्वभौमिकरण मानव अधिकारों की एक विशेषता है। प्रत्येक देश को अपने राष्ट्र के नागरिकों के मानव अधिकारों को सुनिश्चित करना चाहिये तथा उन्हें वहाँ के सविधान में स्थान देना चाहिए।

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अनुसार

अनुच्छेद 3– प्रत्येक व्यक्ति को जीवन, स्वतत्रन्ता एवं व्यक्तिगत सुरक्षा का अधिकार है।

अनुच्छेद 5–किसी व्यक्ति को शारीरिक यातानायें नहीं दी जायेंगी और न ही किसी के प्रति कठोर अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार किया जायेगा।

अनुच्छेद 9–किसी भी व्यक्ति को मनमाने ढंग से गिरफ्तार, नजरबन्द या

देश से निष्कासित नहीं किया जावेगा।

अनुच्छेद 11(1)–जब किसी व्यक्ति पर दण्डनीय अपराध का आरोप हो, तब तक निरपराधी माना जायेगा, जब तक कि उसे ऐसे न्यायालय में जहाँ उसे अपने पक्ष में सफाई देने की आवश्यक सुविधा हो, विधि के अनुसार दोष सिद्ध न हो जाये।

अनुच्छेद 11(2)–कोई भी व्यक्ति को किसी कृत्य या अकृत्य के कारण दण्डनीय अपराध का अपराधी न माना जायेगा, जिसे तत्कालीन प्रचलित राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अनुसार दण्डनीय अपराध न माना गया हो, और न ही उसे उससे कठोर दण्ड दिया जा सकता है, जो उसे दिया जाना था, जिस समय दण्डनीय अपराध किया गया था।

विश्व में मानव अधिकार के सम्बन्ध में प्रत्येक देश का कर्त्तव्य है कि वह अपने देश के नागरिकों के मूल मानव अधिकारों की रक्षा के लिये कुछ कानून एवं शर्ते विनिश्चित करें। चूँकि भारत एक लोकतान्त्रिक देश होने के कारण अपने नागरिकों को ऐसे मानव अधिकार प्रदान करता है एवं उन्हें अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता सहित कुछ अधिकारों की अनुमति देता है। मानवों को प्राप्त इन अधिकारों को **"मौलिक अधिकार"** कहा जाता है। यह भारतीय संविधान का महत्वपूर्ण भाग है।

बन्दियों को मानव अधिकार एवं उसकी आवश्यकता

जब कोई व्यक्ति विधि विरूद्ध या अपराधिक कृत्य के लिये दोषसिद्ध पाया जाता है या ऐसे कार्यो में संशयित होना न्यायालय में उस कृत्य के लिये प्रकरण विचारण में होना व उस अभियुक्त को बन्दीगृह में रखा जाता है। अभियुक्त इस बन्दीगृह में प्रकरण के निर्णय होने तक अर्थात् विचाराधीन अवधि में या दोष सिद्ध होने पर दण्ड की अवधि तक बन्दीगृह में रहता है।

बन्दीगृह में रह रहा व्यक्ति भी मानव ही होता है। वहाँ जाने से वह अमानव नहीं हो जाता है। अतः वह बन्दी बन्दीगृह की सीमाओं के अन्दर भी वह सभी मानव अधिकारों का पात्र है। ज्ञातव्य है कि कोई भी मानव जन्मजात अपराधी नहीं होता है। अपराध समाज की निष्फलता का परिणाम है। बन्दियों को मानव अधिकार दिया जाने का मुख्य उद्देश्य उनका समाज में पुर्नस्थापित करने की राह सुनिश्चित करना है।

बन्दियों को मानव अधिकार देकर देश सभ्यता के सकारात्मक दिशा की ओर प्रयत्नशील होते हैं। जब किसी अभियुक्त को बन्दीगृह भेजा जाता है तब उसकी स्वतन्त्रता को अवरूद्ध करना ही उसका दण्ड है। इस पर उसे उसके मानव अधिकारों से वंचित करने का और अधिक दण्ड नहीं दिया जा सकता है।

बन्दीगृह में रह रहे बन्दियों के भी आम व्यक्ति की तरह ही मानव अधिकार होते हैं। बन्दियों को भी उनके सामान्य व्यक्ति के रूप विकास के लिये जेल में सुरक्षा प्राप्त होना चाहिये। इस सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्र संघ ने बन्दीगृह के बन्दियों के साथ व्यवहार के कुछ नियम तैयार किये हैं। वर्ष 1955 में बन्दियों के उपचार के लिये मानक न्यूनतम नियम एवं बन्दियों के साथ सुरक्षा में और अन्य क्रूर व प्रताड़ना, अमानवीय या दण्ड के निम्नानुसार व्यवहार या दण्ड में विशेषकर फौजियों, स्वास्थ्य कर्मिकों की भूमिका से सम्बन्धित चिकित्सा ऐथिक्स सिद्धान्त, वर्ष 1984 में बन्दियों के विरूद्ध अभियान, वर्ष 1988 बन्दियों की किसी भी प्रकार की अभिरक्षा या बन्दियों में सभी के लिये सुरक्षा सिद्धान्त, वर्ष 1990 में बन्दियों के लिये भौतिक सिद्धान्त, संयुक्त राष्ट्र संघ का गैर अभिरक्षीय उपाय है। इसीलिये, मानक न्यूनतम नियमावली (टोकियो नियमावली) आदि विलेख इसी दिशा में तैयार किये गए हैं।

भारत में कैदियों के मानव अधिकार

भारतीय संविधान कैदियों के अधिकारों से सम्बंधित प्रावधानों को स्पष्टता प्रदान नहीं करता है, परन्तु **टी.वी. वाथेश्रर बनाम, तमिलनाडु राज्य (1983) (ए.आई.आर. 1983 एस.सी. 36)** के वाद में यह स्वीकार किया गया है कि अनुच्छेद 14, 19 एवं 21 बन्दियों के लिये भी उपलब्ध हैं।

भारत के संविधान 14 के अनुसार राज्य किसी भी व्यक्ति को विधि के समक्ष समानता या भारत के किसी भी क्षेत्र के अन्तर्गत विधियों की समान सुरक्षा से इन्कार नहीं करेगा।

इसी सम्बन्ध में बन्दियों पर विचार करने पूर्व बन्दियों की प्राचीन स्थिति पर विचार करेंगे। प्राचीनकाल में भारत में बन्दीगृहों में यातना देने का चलन व्यापक रहा है। अब सामान्य बन गया है। वर्तमान समय में बन्दियों की अपराधों की जाँच के नाम पर विधि प्रवर्तन संस्थाओं द्वारा अपराधिक कृत्य किये जाने को स्वीकार करने के नाम पर तथा व्यक्तियों को दण्डित करने के नाम पर, न केवल यातनायें दी जाती हैं, बल्कि सशक्त याचिकाकर्ताओं, शिकायतकर्ताओं या सूचनार्थियों को क्रूर, अमानवीय, बर्बर और अपमानजनक उपचार भी मिलता है, जो बेहद अपमानजनक है। कई बार अभिरक्षा में बलात्कार, छेड़छाड़ और यौन उत्पीड़न के अन्य रूपों में महिलाओं को यातनायें दी जाती हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद–21 में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के अधिकार की गारण्टी है और इस प्रकार किसी भी व्यक्ति को किसी भी अमानवीय, क्रूर या अपमानजनक उपचार प्रतिबन्धित करता है, चाहे वह राष्ट्रीय हो या अन्तर्राष्ट्रीय विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार किसी भी व्यक्ति को अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता से वंचित नहीं किया जायेगा।

बन्दियों को संविधान के अनुच्छेद 19, 21, 22, 32, 37 एवं 39—क के अधिकार बन्दियों के अधिकारों को मान्यता दी गई है।

इसी प्रकार, बन्दियों की चिकित्सा सुविधा प्राप्त करने का न्यायालय में विचाराधीन वाद का शीघ्र निपटारा करने व बन्दियों को वेतन या मजदूरी पाने का, अधिवक्ता से परामर्श करने का निःशुल्क विधिक सहायता आदि प्राप्त करने का भी अधिकार है।

बन्दीगृह में आये प्रत्येक कैदी को चिकित्सा सुविधा प्रदान करने का पूर्ण अधिकार होता है। इस अधिकार की उपेक्षा सरकार द्वारा कर्तव्यों की उपेक्षा मानी जायेगी।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अनुसार किसी भी अभियुक्त को न्यायालय में किसी परिसीमा के निर्णय एवं विचारण में अनावश्यक रूप से विलम्ब करना उनके मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण है। अतः वाद का निपटारा शीघ्र किया जाना चाहिये तथा यदि बन्दी को दिये गये दण्ड की अवधि वह पूर्व में अर्थात् विचारण के दौरान व्यतीत कर चुका हो तो उसे छोड़ दिया जाना चाहिये।

जब कोई अभियुक्त न्यायालय की कार्यवाही या विचारण के समय बन्दीगृह में होते हैं तो विचाराधीन बन्दी को दोष सिद्ध होने से पूर्व जमानत के लिये आवेदन करने का अधिकार होता है और न्यायालय को यह संतुष्टि हो कि अभियुक्त पर पारिवारिक दायित्व है तथा न्यायालय को यह विश्वास हो जाता है कि वह सामाजिक बन्धनों के कारण पलायन नहीं करेगा, तो न्यायालय विचाराधीन बन्दी को एक बन्ध—पत्र पर रिहा कर सकता है। इन विचाराधीन बन्दियों में बन्दीगृह से अपना मतदान देने का अधिकार भी है।

बन्दियों को वेतन एवं मजदूरी का अधिकारः— बन्दियों को बन्दीगृह में उनके द्वारा किये गये मासिक कार्य के लिये न्यूनतम मजदूरी मिलना उनका अधिकार है। मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अनुच्छेद 4 में कहा गया है कि किसी भी मानव से दासता नहीं करवायी जा सकती है। अतः बन्दियों से श्रमिक कार्य करवाना और मजदूरी न दिया जाना दासता होगी इसीलिये उन्हें न्यूनतम मजदूरी दी जानी चाहिये।

मानव अधिकारों के सार्वभौमिक घोषणा के अनुच्छेद 23(1) के अनुसार, प्रत्येक मानव को कार्य करने का, कार्य चुनने का, कार्यस्थल पर न्यायपूर्वक एवं अनुकूल परिस्थितियों के साथ ही बेरोजगारी से सुरक्षा का अधिकार होना चाहिये तथा अनुच्छेद 23(3) के अनुसार सही वेतन जो स्वयं और परिवार के गरिमामय आस्तित्व को आश्वस्त करता हो।

इसके अतिरिक्त, मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अनुच्छेद

10(1) के अनुसार, सभी मानवों को जिनसे उनकी स्वतन्त्रता का अधिकार ले लिया गया हो, उनके साथ आदर और मानवता की भावना पूर्ण व्यवहार करना चाहिये।

इसी प्रकार, भारतीय संविधान के प्रत्येक बन्दी को यह अधिकार है कि वह स्वयं के निर्णय से अधिवक्ता या कानूनी सलाहकार से भेंट करें, उसे ऐसा न करने देना संविधान के अनुच्छेद 14 एवं 21 का उल्लंघन होगा तथा बन्दी सीआरपीसी की धारा 16(2)एवं आईपीसी की धारा 179 के अन्तर्गत अभियुक्त परीक्षण या जाँच के दौरान अपने अधिवक्ता या कानूनी सलाहकार को बुला सकता है।

बन्दियों को संविधान के अनुच्छेद 20(3)के अनुसार उसके द्वारा किये किसी भी अपराधिक कृत्य के लिए स्वयं के विरूद्ध साक्ष्य के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता है। अर्थात् न्यायिक प्रक्रिया से अधिक कहने के लिये किसी को भी बाध्य नहीं किया जा सकता है, फिर चाहे वह साक्ष्य के लिये हो या किसी की सूचना देने के लिये हो।

बन्दियों को निःशुल्क विधिक सहायता का अधिकार

बन्दीगृह में आये बन्दियों में से कुछ ऐसे भी अभियुक्त होते हैं जो किसी कानूनी सलाहकार या अधिवक्ता को नियुक्त करने में सक्षम न हो, वह गरीब हो या अन्य कोई परिस्थिति हो, तो निःशुल्क विधिक सहायता प्राप्त करना उसका अधिकार होता है।

1) न्यायालय को यह निर्देश है कि जब भी किसी व्यक्ति को न्यायालय द्वारा कारावास के दण्ड से दण्डित किया जाये, तो उसे फैसले की निःशुल्क कॉपी दे।
2) यह कॉपी जेल अधिकारी को शीघ्रता से देनी चाहिये और उससे लिखित में उस कॉपी की प्राप्ति की सूचना ले।
3) यदि बन्दी इस निर्णय की अपील या पुनरीक्षण फाइल करना चाहे तो उसे जेल प्रशासन से प्रदान की जाने वाली सारी सुविधाओं को पाने का अधिकार है।
4) यदि बन्दी को अधिवक्ता की नियुक्ति में असमर्थ है, तो उसे यह अधिकार है कि वह न्यायालय से समक्ष विधि सलाहकार नियुक्त करने को कहे।
5) न्यायालय द्वारा नियुक्त विधि सलाहकार का खर्च सरकार वहन करेगी।

6) बन्दियों को निःशुल्क विधिक सहायता न्यायाधीश के समक्ष पेश करने के दौरान से ही प्रदान की जाती है।

विचाराधीन बन्दियों के अधिकार

(1) विचाराधीन बन्दियों को मित्रों व परिवारजनों से पत्र व्यवहार का अधिकार।

(2) मित्रों व परिवार के सदस्यों से भेंट करने का अधिकार।

(3) रेडियो, संगीत या टेलिविजन की सुविधा का अधिकार।

(4) अपने अधिवक्ता या विधिक सलाहकार से परामर्श लेने या मशविरा करने का अधिकार

(5) बन्दियों के स्वयं के घरों या परिवारों में महत्वपूर्ण घटनाओं में भाग लेने का अधिकार।

(6) बन्दियों के स्वयं के व्यक्तित्व के विकास के लिये सांस्कृतिक शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार आदि।

सभी बन्दियों को यह भी संवैधानिक अधिकार है कि वह न्यायालय में सुनवाई के दौरान उसे स्वयं के बचाव का अवसर मिले।

अतः बन्दीगृह के सभी बन्दियों को निःशुल्क विधिक सहायता, सलाह व अधिवक्ता की सेवा प्राप्त करने का अधिकार है। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 304 में अभियुक्त को राज्य के व्यय पर विचाराधीन प्रकरणों में भी निःशुल्क अधिवक्ता नियुक्त करवाने या अन्य किसी निर्योग्यता के कारण स्वयं की प्रतिरक्षा से वंचित न हो इसका दायित्व सम्बन्धित न्यायालय को सौंपा गया है। इसका सम्पूर्ण व्यय शासन/जिले का जिला विधिक सेवा प्राधिकरण द्वारा किया जाता है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि कोई भी व्यक्ति चाहे वह महिला हो या पुरूष, जन्म से अपराधी नहीं होता और न ही स्वेच्छा से बन्दीगृह में आता है। समाज में व्याप्त गरीबी, अज्ञानता, भय, क्रोध व दुर्घटनात्मक परिस्थितियों के कारण व्यक्ति से अपराधिक कृत्य कारित हो जाते हैं। इन कारित अपराधिक कृत्यों के प्रकरण के विचारण के दौरान एवं दण्ड के कारण अभियुक्त को बन्दीगृह में रहना पड़ता है। अभियुक्त के बन्दीगृह में रहने के कारण उसकी स्वच्छन्दता को प्रतिबन्धित कर दिया जाता है। किन्तु, अन्य सभी मूल अधिकार, मानव अधिकार, सामान्य तौर पर उसे मूल कर्तव्यों एवं दायित्वों के साथ उपलब्ध रहते हैं।

बन्दियों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्राप्त मानव अधिकार

1. बन्दीगृह में आये बन्दियों के साथ प्रवेश से मुक्त होने तक सम्मानपूर्वक व्यवहार किया जाये और सुनिश्चित वर्गीकरण के आधार पर उन्हें बन्दीगृह में स्थान देना चाहिये। युवा बन्दियों को वयस्क व अभ्यस्त बन्दियों से पृथक रखा जाना चाहिये।
2. शारीरिक या मानसिक प्रताड़ना को कभी भी उचित नहीं माना जायेगा। बन्दियों के साथ बल प्रयोग नहीं किया जायेगा।
3. बन्दियों को बन्दीगृह में स्वस्थ वातावरण एवं उचित व समय पर चिकित्सकीय सुविधा का अधिकार।
4. अपने वकील से भेंट करने का अधिकार बन्दी को न्यायालय द्वारा दिये गये दण्ड की अवधि तक, बन्दी बनाये जाने के विरूद्ध बन्दीगृह में महिला बन्दियों के अधिकारों का ध्यान रखना होगा तथा उन्हें यौन गतिविधियों के लिये विवश किए जाने के विरूद्ध सुरक्षा का अधिकार।
5. बन्दियों के लिये हथकड़ी व बेड़ियों के प्रयोग के विरूद्ध अधिकार।
6. सामान्य बन्दीगृह में दण्ड के लिये काल–कोठरी के दण्ड से दण्डित न किये जाने का अधिकार, मनमाने कारावास के दण्ड के विरूद्ध अपील का अधिकार तथा मानव अधिकारों के हनन होने पर बन्दियों के लिये क्षति पूर्ति को पाने का अधिकार है।
7. बन्दीगृह के प्राधिकारियों के विरूद्ध बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचना करने का अधिकार है।
8. बन्दियों को परिवारजनों व मित्रों से भेंट करने व पत्र लिखने का अधिकार।
9. सुधारात्मक कार्यक्रमों में भाग लेने का अधिकार।
10. बन्दियों को रोजगार तथा श्रमिक कार्य हेतु न्यूनतम मजदूरी पाने का अधिकार।
11. महिला बन्दियों को सुनिश्चित वर्गीकरण का अधिकार, जिसमें सभी महिलाओं को बन्दीगृह की इस प्रकार की कोठरियों में रखा जाता है, जिसमें वे पुरूषों के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क या निगाह में न आयें। उन्हें पृथक बन्दीगृह या उसी जेल में अलग भवन में रखा जाये।
12. विचाराधीन बन्दियों को दोषसिद्ध बन्दियों से पृथक रखा जाना चाहिये तथा किशोर व गैर–आदतन बन्दियों को अभ्यस्त व वयस्क

बन्दियों से पृथक रखा जाना चाहिये।

13. बन्दीगृह में आने से पूर्व भी किसी बन्दी को किसी भी प्रकार की बीमारी से ग्रस्त हो तो उसको इलाज कराने का अधिकार है।

14. बन्दियों को जमानत का एवं प्रकरण के शीघ्र निपटारे का भी अधिकार है।

बन्दीगृह में परिरूद्ध अधिकार

1. **बन्दियों को निःशुल्क विधिक सहायता एवं विधिक सलाह प्राप्त करने का अधिकारः— विधिक सेवा प्राधिकार अधिनियम, 1987** के अनुसार बन्दीगृह में अभिरक्षाधीन अभियुक्त को दाण्डिक न्यायालय, सत्र न्यायालय, उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय में उनके विचाराधीन मामले या मामलों को प्रस्तुत करने में मामले का पूरा व्यय तथा निःशुल्क अधिवक्ता शासन के द्वारा उपलब्ध करावाया जाता है। यह उस बन्दी का अधिकार है। साथ ही, उसे यह भी अधिकार है कि वह उसे आयोजित 'लोक अदालतों' एवं 'प्ली बारगेनिंग' प्रक्रिया के माध्यम से मामलों का निराकरण करवाकर त्वरित लाभ प्राप्त करवाया जाये। इस हेतु उस विचाराधीन बन्दी को जेल अधीक्षक या जेलर को विधिक सहायता प्राप्त करने हेतु आवेदन देकर विधिक सहायता प्राप्त करने का अधिकार है।

2. **सम्पर्क या भेंट करने का अधिकार**— प्रत्येक बन्दी को माह में एक बार अपने परिवार के सदस्यों या विधिक सलाहकार से मिलने या भेंट करने का अधिकार है। बन्दी को 20 मिनिट तक मुलाकात करने का अधिकार है।

3. **शिक्षा एवं अभिव्यक्ति का अधिकारः**— बन्दीगृह में पाठशाला या साक्षरता की भी पूर्ण व्यवस्था रहती है और प्रत्येक बन्दी को अपना अध्ययन पूरा करने का पूर्ण अधिकार है तथा बन्दियों को महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित स्नातक/स्नातकोत्तर परीक्षाओं में भी सम्मिलित होने का पूर्ण अधिकार है।

4. **मारपीट एवं प्रताड़ना के विरूद्ध शिकायतः**— बन्दीगृह में व्यवस्था रखने के लिये हालांकि बन्दीगृह प्रशासन सदैव सतर्क रहता है, फिर भी कभी—कभी बन्दियों द्वारा आपसी तकरार में मारपीट भी हो जाती है। ऐसी स्थिति में, प्रत्येक बन्दी को अपनी शिकायत जेल अधीक्षक से करने का अधिकार है। बन्दीगृह में समय—समय पर जेल अधीक्षकों द्वारा बन्दी परेड का अवलोकन किया जाता है तथा प्रत्येक बन्दी से उसकी समस्या पूछी जाती है। बन्दी को कोई भी परेशानी होने पर वह उनके समक्ष अपनी

समस्या व्यक्त कर सकता है। यदि बन्दी के साथ बन्दीगृह में संवैधानिक या वैधानिक अधिकारों की क्षति हो रही है, तो वह बन्दीगृह के साथ–साथ न्यायालय, मानव अधिकार आयोग एवं अन्य वरिष्ठ अधिकारियों को भी अपनी शिकायत भेज सकता है।

5. **व्यक्तिगत सुनवाई का अधिकारः**— प्रत्येक बन्दीगृह में प्रत्येक बन्दी को यह अधिकार प्राप्त है कि उसे स्वयं के प्रकरणों के निराकरण के समय व्यक्तिगत रूप से न्यायालय के समक्ष सुनवाई हेतु उपस्थित रखा जाये। किसी बन्दी को यह महसूस होता है कि बन्दीगृह में किसी बिन्दु पर असुविधा हो रही है, या उसके किसी भी प्रकार के अधिकारों का उल्लंघन या हनन हो रहा है तो वह न्यायालय में सुनवाई हेतु आवेदन भेज सकता है और यदि न्यायालय उचित समझता है तो उस बन्दी को पुलिस बल के माध्यम से न्यायालय में सुनवाई हेतु बुलवाया जा सकता है।

6. **मनोरंजन की प्राप्त सुविधाओं में भाग लेने का अधिकारः**— बन्दीगृह में रह रहे बन्दियों को खेल–कूद एवं मनोरंजन में भाग लेने का पूर्ण अधिकार है। वे अपनी रूचि के अनुसार प्रतिदिन निर्धारित समय में खेल में भाग ले सकते हैं तथा रात्रि के समय निर्धारित समय में टी.वी. भी देख सकते हैं। इनके लिये योग प्रशिक्षण की सुविधा भी बन्दीगृह में उपलब्ध है।

7. **धर्म पालन का अधिकारः**— बन्दीगृहों में प्रत्येक बन्दी को अपने धर्म का पालन करने की स्वतन्त्रता जेल नियमावली में दी गई है। जेल नियमावली के अन्तर्गत बन्दियों को अपना धर्मग्रंथ अपने साथ बैरक में रखने की अनुमति भी दी गई है। धार्मिक त्यौहारों पर उपवास एवं पूजन आदि नियम–कायदों का पालन करने के लिये पूर्ण स्वतन्त्रता है। कई बन्दीगृहों में उपवास में बन्दियों को फलाहार आदि की व्यवस्था शासन के द्वारा की जाती है।

8. **चिकित्सा एवं उपचार का अधिकारः**—बन्दीगृह में प्रत्येक बन्दी को अस्वस्थ होने की दशा में चिकित्सा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार है। बन्दीगृहों में चिकित्सा के साथ पैरा–मेडीकल स्टाफ भी पदस्थ रहता है। बन्दीगृह में बन्दी को अस्वस्थ महसूस होने पर वह चिकित्सक से मिलकर अपना स्वास्थ्य परीक्षण कराने के लिये स्वतन्त्र है।

9. **जमानत का अधिकारः**— बन्दियों को जिन अपराधों के लिये जमानत दी जा सकती है, उसके लिये उसे जमानत का अधिकार है। पुलिस या न्यायाधीश भी जमानत की राशि बहुत अधिक निश्चित नहीं करें।

10. **प्रकरण में शीघ्र निपटारे का अधिकारः**— सभी विचाराधीन बन्दियों को

अधिकार है कि बन्दी के न्यायालय में प्रकरण की सुनवाई एवं निपटारे को शीघ्र निपटाये जायें या बन्दी को दिये गये दण्ड के विरूद्ध उच्च न्यायालय में की गई अपील के मामलों की शीघ्र सुनवाई का अधिकार है। जेल अधिनियम के अनुसार यह जेल सुप्रिंटेंडेंड का कर्त्तव्य है कि वे एक माह से अधिक लम्बित विचाराधीन बन्दियों के सभी प्रकरणों की जानकारी सम्बधित न्यायालय को दें और यदि जेल अधिकारी बिना किसी उचित कारण से बन्दी का न्यायालय में सुनवाई की दिनांक पर नहीं भेजते हैं तो यह उन बन्दियों के मानव अधिकार का उल्लंघन होगा।

11. **यौन गतिविधियों के विरूद्ध सुरक्षा का अधिकारः**— बन्दीगृह में बन्दियों के साथ जेल कर्मचारियों या अधिकारियों या अन्य बन्दियों द्वारा किसी भी प्रकार की जबरदस्ती यौन गतिविधियों से सुरक्षा का अधिकार होता है। किसी या किन्हीं बन्दियों का जबरदस्ती यौन शोषण किया जाता है तो वह जेलर, चिकित्सा अधिकारी या जेल सुप्रिंटेंडेंट को शिकायत कर सकते हैं, उन्हें जिला न्यायाधीश या सेशन न्यायाधीश को भी शिकायत करने का अधिकार है।

उपरोक्त अधिकारों के अतिरिक्त महिला अपराधी को गिरफ्तारी के समय कुछ और अधिकार भी प्राप्त है। किसी अपराधिक कृत्य में अपराधी महिला है और पुलिस उसे गिरफ्तार करने आती है तो वह अपने निम्न अधिकारों का उपयोग कर सकती है—

1. उसे गिरफ्तारी का कारण बताया जाये।
2. न्यायाधीश का आदेश न होने पर उसे हथकड़ी नहीं लगाई जायेगी।
3. वह अपने अधिवक्ता को बुला सकती है।
4. अधिवक्ता रखने में असमर्थ होने की स्थिति में निःशुल्क विधिक सलाह की माँग कर सकती है।
5. गिरफ्तारी के 24 घण्टें में महिला का न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत करना आवश्यक है।
6. गिरफ्तारी के समय उस महिला के साथ परिवार के किसी सदस्य या रिश्तेदार या मित्र को साथ थाने जाने दिया जा सकता है।

महिला अपराधी को गिरफ्तारी के पश्चात् थाने आने पर उसे अधिकार प्राप्त है कि उन्हें महिलाओं के साथ ही कमरे में रखा जाये, उनके साथ किसी प्रकार की जोर जबरदस्ती न की जाये और मानवीयता के साथ रखा जाये। पुलिस द्वारा मारपीट किये जाने या दुर्व्यवहार किये जाने पर चिकित्सीय जाँच

की माँग किये जाने पर उनकी जाँच केवल महिला चिकित्सक द्वारा की जानी चाहिये।

महिला अपराधियों से पूछताछ के दौरान कभी–कभी छेडछाड़ के मामले भी आते हैं। इसके लिये महिलाओं को अधिकार है कि पूछताछ के लिये थाने या अन्य किसी स्थान पर बुलाये जाने पर महिला इन्कार कर सकती है। पूछताछ केवल महिला के घर पर व परिवार के सदस्यों की उपस्थिति में ही की जाये। उसके शरीर की जाँच केवल महिला द्वारा ही शालीनता से की जाये।

अतः यह कहा जा सकता है कि समय–समय पर बन्दीगृह में रह रहे बन्दियों पर चर्चा होती रहती है। न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णयों में कई बार दण्ड भोग रहे बन्दियों एवं विचाराधीन बन्दियों के अधिकारों पर एवं सरकार के दायित्वों का उल्लेख किया गया है। हालांकि, बन्दीगृह में विचाराधीन बन्दियों या दण्डित किये गये बन्दियों के मूल अधिकार बन्दीगृह में भी बने रहते हैं और उन पर अंकुश सिर्फ विधि के अनुसार ही लगाया जा सकता है। विधि के अनुसार कोई भी व्यक्ति तब तक अपराधी नहीं होता जब तक कि वह न्यायालय द्वारा अपराध के लिये दोषसिद्ध न हो जाये। जब तक उसका प्रकरण न्यायालय में विचाराधीन है, तब तक उस अभियुक्त को अपने बचाव का अवसर मिलने का संवैधानिक अधिकार है।

संविधान के अनुच्छेद 22 में भी अभियुक्त को अपना बचाव का अवसर दिये जाने का संवैधानिक अधिकार है। इसके अन्तर्गत न्यायालय का कर्त्तव्य है कि जब कोई अपराधी न्यायालय में प्रस्तुत किया गया हो और उसे अपने बचाव को प्रस्तुत करने के लिये अधिवक्ता की आवश्यकता हो तो उसके लिये सरकारी खर्चे पर अधिवक्ता की व्यवस्था करवाना चाहिये। ऐसे अधिवक्ता के **एनिकस क्यूरी** कहा जाता है।

अतः प्रत्येक बन्दी चाहे वह विचाराधीन हो या दण्डित हो, दोनों अवस्था में बन्दी को दिये गये दण्ड के अतिरिक्त किसी भी अधिकार से वंचित नहीं किया जायेगा। इन्हें बन्दीगृह के भीतर भी सामान्य रूप से जीवन जीने का अधिकार है।

◆ ◆ ◆

अध्याय – 6

महिला बन्दी

विश्व की महिलाओं को प्राचीनकाल से ही महत्व दिया जाता था। हमारे समाज में नारी का महत्व पुरूष से कहीं बढ़कर होता था। धीरे–धीरे समय के परिवर्तन के साथ–साथ महिलाओं की दशाओं में अपूर्व परिवर्तन हुये। अब वह पुरूष से महत्वपूर्ण न होकर उसके समकक्ष श्रेणी में आ गई। अगर पुरूष ने परिवार के भरण–पोषण का दायित्व सम्भाला है, तो महिला ने घर के भीतर के सभी कार्यों का बोझ उठाना शुरू किया। इस प्रकार महिला एवं पुरूष के कार्यों में काफी अन्तर आ गया। ऐसा होने पर प्राचीन काल की महिला में हीन भावना घर कर गई और उसकी स्वतन्त्रता एवं आत्मविश्वास में कमी के कारण व्यक्तिगत सुन्दरता व आकर्षण में कमी आने लगी।

समय के बदलाव के साथ महिलाओं की स्थिति में भी परिवर्तन आ गया है। वैसे तो महिला प्राचीन समय से अब तक भार्या के रूप में रही। इसके लिये उसे गृहस्थी के मुख्य कार्यों में विवश किया गया, जैसे–भोजन बनाना, बालकों का पालन–पोषण करना, पति की सेवा करना आदि। वह पति की हर प्रकार की भूख शान्त करने के लिये विवश होती गई। अमानवीयता का शिकार बनकर क्रय–विक्रय की वस्तु भी बन जाना अब महिला के जीवन का एक विशेष अंग बन गया है।

शिक्षा के प्रचार–प्रसार के परिणामस्वरूप महिला की वह दुर्दशा नहीं है, जो कुछ अन्धविश्वासों, रूढ़िवादी विचारधारा या अज्ञानता के फलस्वरूप हो गयी थी। समाज के शुभचिन्तकों ने महिला एवं पुरूष के बीच समानता लाने के विचार आने लगे। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने इस पर महिला की स्थिति पर कहा कि –

'एक नहीं, दो–दो मात्रायें, नर से बढ़कर नारी।'

अपराध अर्थात् तत्काल में स्थानीय रूप में या समाज में प्रचलित या राष्ट्रीय विधि के प्रतिकूल किये जाने या उसके लोप को अपराध कहा जायेगा। जिसकी प्रवृत्ति समाज पर प्रतिकूल प्रभाव रखती है और जिसके लिये विधि के अन्तर्गत न्यायिक कार्यवाही के परिणाम स्वरूप दण्ड आरोपित किया जा सकता है।

'अपराधी' शब्द पर सामान्य व्यक्ति की सोच होती है कि वह व्यक्ति होता है, जिसने विधि के अन्तर्गत ऐसा दण्डनीय कार्य किया होगा, जो समाज के

सामान्य हित के विरूद्व होगा तथा जो दुष्टतापूर्ण एवं स्पष्ट रूप से हानिकारक होगा।

मानवजाति के इतिहास से विशेष रूप से भारत में, पता चलता है कि महिला विशेष रूप से और सामान्य रूप से समाज में एक परिवार की नींव का पत्थर है। इसे परिवार की धुरी भी कहा जा सकता है। इसके बिना परिवार चल नहीं सकता है। महिला को सामाजिक मापदण्डों, परम्पराओं, सीमा शुल्क, नैतिकता एवं परिवार की एकजुटता के संरक्षक के रूप में देखा जाता है। वर्तमान समय में विश्व में महिलाओं ने अपने परिवार के पोषण की जिम्मेदारी के साथ–साथ अपनी एक अलग पहचान भी बना ली है।

इसके साथ, वर्तमान समय में महिलाओं ने भारत के सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक परिवेश के साथ–साथ अपराध की दिशा में भी उपलब्धि प्राप्त कर रही हैं। भारत में महिलाओं के प्रति अपराध में वृद्धि के साथ–साथ महिलाओं द्वारा अपराधों में भी वृद्धि हो रही है। महिलाओं के प्रति होने वाले अपराधों में वृद्धि का मुद्दा चिन्तनीय स्तर तक पहुँच गया है, जिसके कारण समस्या में वृद्धि हो रही है।

महिलाओं का इस प्रकार बड़ी संख्या में अपराधिक गतिविधियों की तरफ जाने के मूल कारणों पर सामाजिक रूप से जिम्मेदार सभी विद्वान ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं। कम समझ एवं आसान नियन्त्रण के अधीन महिला अपराधी को सैद्धान्तिक रूप से जटिल कहा गया है। महिला को अपराधी बनने में सामाजिक वातावरण का बहुत योगदान रहा है। महिला अपराधियों के सम्बन्ध में नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो के आँकड़े बताते हैं कि यह चुनौती कई गुना बढ़ जाती है। जबकि महिला अभी भी अल्पसंख्यक है। उनमें से भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत दोषसिद्ध अपराधों की रिपोर्टों को देखा जाये तो **वर्ष 2016 में 1,93,241** महिलाओं को अपराधिक गतिविधियों के लिए गिरफ्तार की गई थीं (एनसीआरबी की रिपोर्ट के अनुसार)। इन महिलाओं द्वारा किये गये अपराधों की प्रवृत्ति धीरे–धीरे गहरी होती जा रही है। महिलाओं द्वारा मादक पदार्थों की तस्करी व वैश्यावृत्ति जैसे नरम अपराधों से जघन्य अपराध जैसे हत्या तक के अपराध शामिल हो रही हैं।

वर्ष दर वर्ष महिलाओं द्वारा किये जाने वाले अपराधों के साथ–साथ अपराध की दर व अपराधों की प्रवृत्ति में भी वृद्धि हो रही है। वर्ष 2001 से विभिन्न अपराधों में गिरफ्तार की गई कुल अपराधियों में से महिला अपराधियों के प्रतिशत में वर्ष 2011 में महिला अपराधियों का प्रतिशत 54 प्रतिशत से बढ़कर 62 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, जिसमें 2017 तक और भी वृद्धि हुई है। अतः एक दशक में 0.8 की वृद्धि हुई माना जा सकता है। इस आधार पर यह भी कहा जा सकता है

कि जिन अपराधों को शामिल किया गया है उनकी प्रकृति एवं गम्भीरता में भी परिवर्तन आया है। पूर्व के रिकार्ड में महिला द्वारा किये गये अपराधों में जघन्य अपराध कम थे, परन्तु वर्ष दर वर्ष को बहुत कठिन और महिलाओं को परिष्कृत अपराधों के लिये गिरफ्तार किया जाता है।

महिलाओं को अपराधी बनाने में समाज का बहुत योगदान होता है। यह पितृसत्तात्मक समाज के साथ और अधिक हो जाता है। भारत के अधिकांश भागों में महिलाओं के प्रति समाज के भीतर भेदभाव जन्म से लेकर अन्तिम सांस तक अभी भी मौजूद है। इसका प्रसिद्ध उदाहरण है पीड़ित **फूलन देवी**। यह समाज द्वारा महिला का अपराधी बनने का उदाहरण है। इस महिला को अपराधी बनाने में समाज की प्रमुख भूमिका रही है तथा इस महिला को न्याय देने में कानून विफल रहा है, जिससे फूलन देवी कुख्यात दस्यु सुन्दरी बन गई, और फिर बाद में राजनीतिज्ञ बन गई।

वर्तमान में, महिलायें समाज की मुख्य धारा में तेजी से शामिल हो रही हैं। भारत एवं अन्य देशों के अपराध के उपलब्ध आँकड़ों से इनके हिस्से का पता चलता है। कहा जाता है, कि पहले अधिकारों की माँग की जाती है, फिर आदेश दिया जाता है और बाद में छीन लिया जाता है। अधिकारों की इस लड़ाई में, या तो प्राप्त करने के लिये या उन्हें बचाने के लिये संघर्ष होता है, जो अपराध की घटनाओं का परिणाम है। सामाजिक सुरक्षा योजनाकारों व वैज्ञानिकों ने महिलाओं के अपराधों में बढ़ रही भागीदारी की तीव्र दर के बाद भी महिलाओं द्वारा किये जाने वाले अपराधों की प्रवृत्ति पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। वर्तमान समय में महिलाओं के द्वारा किये जाने अपराध के बढ़ते आँकड़े राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चिंता का विषय बन गये हैं। महिलाओं के द्वारा किये जा रहे अपराधों की बढ़ती दर ने, अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य दोनों में, मनोवैज्ञानिकों, समाजशास्त्रियों एवं अपराधशास्त्रियों का ध्यान आकर्षित किया है। विश्व भर में प्रतिबद्ध अपराध में गिरफ्तार किये गये व्यक्तियों में पुरूष एवं महिला अपराधी को अनुपात 20:1 है। हालांकि, दुनिया के कुछ अन्य देशों में यह अनुपात आर्थिक रूप से विकसित देशों की तुलना में लगभग चार गुना अधिक है, अर्थात् विकसित समाजों में अपराध में पुरूषों व महिलाओं के अपराधों के अनुपात में अन्तर अपेक्षाकृत कम है। भारत के सन्दर्भ में, महिलाओं एवं बालिकाओं में अपराधिकता के संदर्भ में उल्लेखनीय है कि इसमें अन्तर बहुत ही कम है और इसका एक कारण बुनियादी आँकड़ों में कमी है।

साधारण शब्दों में, महिला अपराधियों के सम्बन्ध में यही धारणा है कि महिलाओं के द्वारा किये जाने वाले अपराध भिन्न होते हैं। महिलाओं के द्वारा किये जाने वाले अपराध पुरूषों की अपेक्षा कम अपराधिक प्रवृत्ति के होते हैं, क्योंकि महिलाओं में पुरूषों की अपेक्षा कम अपराधिक प्रवृत्ति पाई जाती है।

परन्तु, वर्तमान में यह स्थिति बदलती नज़र आ रही है। आज तो महिलाओं के द्वारा भी वे सभी प्रकार के अपराध किये जाते हैं, जो पुरूषों के द्वारा किये जाते हैं। आज महिलाओं को पुरूषों के समान जघन्य अपराधों के लिये भी गिरफ्तार किया जाने लगा है।

अपराधियों के वर्गीकरण में महिला अपराधी को भी एक विशेष प्रकार का बन्दी माना गया है। सामान्य बन्दियों के वर्गीकरण के समान ही महिला बन्दी का भी वर्गीकरण होता है। महिला बन्दी भी सिविल बन्दी, अपराधिक बन्दी, विचाराधीन बन्दी, दोषसिद्ध बन्दी, आदतन अपराधी बन्दी, गैर–आदतन अपराधी बन्दी, राजनीतिक बन्दी, सामान्य बन्दी एवं पागल अपराधी बन्दी तथा गैर–अपराधी बन्दी होती हैं। भारत में प्राचीन समय में भी महिला अपराधी को सजा देने का प्रावधान था। महाभारत के समय में भी महिलाओं को कठोर दण्ड दिये जाने का उल्लेख मिलता है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है कि "हम भारत के **लोग, भारत को सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतन्त्रात्मक, गणराज्य बनाने के लिये तथा समस्त नागरिकों को सामाजिक, अर्थिक एवं राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता को प्राप्त करने के लिये तथा उन सब व्यक्तियों की गरिमा एवं राष्ट्रीय एकता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता को बढ़ाने के लिये दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में दिनांक 26 नवम्बर, 1949 ई. एतद् द्वारा इस संविधन को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मसमर्पित करते हैं।"** भारतीय संविधान द्वारा कल्याणकारी राज्य की स्थापना की गई है। इसमें बालकों एवं महिलाओं का कल्याण बड़े महत्व का है।

महिला बन्दियों पर किये गये विभिन्न अध्ययनों से ज्ञात होता है कि महिलायें गरीबी, संस्थागत विवशता, उत्पीड़न, भेदभाव एवं सामान्य अज्ञानता के कारण अपराध करती हैं। अशिक्षा व जागरूकता की कमी भी इनके द्वारा किए जाने वाले अपराधों का एक कारण है।

महिलाओं के द्वारा अपराध ना केवल उनकी शारीरिक एवं मानसिक विशेषताओं के कारण किये जाते हैं बल्कि यह उसकी सामाजिक–आर्थिक स्थितियों का अन्तिम परिणाम भी हो सकता है। भारत में अपराधों में भारतीय महिलाओं के परिवार भी एक महत्वपूर्ण कारक की भूमिका निभाते हैं। जब महिलाओं के साथ पति व परिवारों के अन्य सदस्यों के साथ सम्बन्ध तनावपूर्ण तथा पति के परिवार में बुनियादी जरूरतों की पूर्ति का अभाव व कुण्ठायें आदि महिलाओं के द्वारा किए जाने वाले अपराधों का कारण होता है। इसके अतिरिक्त,

महिलाओं के द्वारा हत्या जैसे अपराधों का भी प्रमुख कारण है। कई बार गिरफ्तार महिलाओं के अपराधों का प्रमुख कारण पति की अवैध गतिविधियों में मदद करना था।

बन्दीगृह में लाई गई महिला बन्दी, किशोर बन्दी (जिसकी आयु 18 से कम न हो तथा 21 वर्ष से अधिक न हो), वयस्क बन्दी, आकस्मिक बन्दी, अभ्यस्त बन्दी, सिविल बन्दी, नजरबंद बन्दी, दोषसिद्ध बन्दी व विचाराधीन बन्दी में से किसी भी प्रकार की हो सकती हैं और बन्दियों के इसी प्रकार के वर्गीकरण जैसे अपराध की गम्भीरता के आधार पर पिछला इतिहास (चाहे आदतन हो या आकस्मिक), जेल की अवधि, दण्ड आदि के आधार पर भी पृथक रखा जाता है।

महिला बन्दियों के लिये राज्य सरकार द्वारा महिला बन्दिगृहों की व्यवस्था की गई है। यदि किसी राज्य में महिला बन्दियों के लिये अलग बन्दीगृह न हो तो सामान्य बन्दीगृह में ही महिला बन्दी वार्ड पृथक रूप से स्थापित किये जाते हैं।

महिला बन्दीगृह में चिकित्सा अधिकारी, फार्मासिस्ट, प्रशिक्षक, मेटर्न व अन्य कर्मचारी महिलायें ही होंगी। सभी महिला बन्दियों को पृथक–पृथक रखा जायेगा अर्थात् आदतन अपराधियों को अन्य गैर–आदतन अपराधियों से पृथक रखा जायेगा। विचाराधीन बन्दियों को दोषसिद्ध बन्दियों के साथ नहीं रखा जाये। सिद्धदोष बन्दी या अनैतिक दुर्व्यवहार अधिनियम के अन्तर्गत गिरफ्तार महिलाओं व अन्य यौन या गम्भीर अनैतिक आचरण से जुड़ी गिरफ्तार महिलाओं को अन्य सभी प्रकार के बन्दियों से पृथक रखा जाये।

महिला बन्दी गृह में कोई भी पुरूष अधिकारी या वार्डन को महिला वार्ड में आने की अनुमति नहीं होती है। केवल वह अपने किसी वरिष्ठ के आदेश या अपनी ड्यूटी के निष्पादन हेतु ही जा सकता है और उस ड्यूटी के निष्पादन के समय उनके साथ मेटर्न या महिला वार्डन साथ रहेगी। किसी आपातस्थिति में यदि पुरूष अधिकारी या वार्डन को रात्रि के समय जाना पड़े तो प्रवेश द्वार पर गेट रजिस्टर मे आने का कारण, समय एवं साथ में मेटर्न या महिला अधिकारी होगी।

किसी महिला बन्दी को महिला सेल में एकान्त में नहीं रखा जायेगा। यदि कोई अन्य महिला बन्दी उसके साथ नहीं रहने के लिये तैयार हो तो पर्यवेक्षक किसी महिला गार्ड को उसके साथ रहने एवं रात में वही सोने के लिये प्रतिनियुक्त करेगा। यदि किसी उप–सुधारगृह में महिला वार्डन अनुपस्थित हो या न हो तो, दूसरे पैनल में से अन्य महिला वार्डन को बुलाया जायेगा।

किसी आंगतुक के साथ पुरूष के आने पर उस पुरूष को महिला सेल से बाहर ही रहना होगा। बन्दीगृह में लाई गई महिला के फुटप्रिन्ट, अंगुली प्रेषण,

छायाचित्र या अन्य माप किसी दूसरे अधिकारी या मेटर्न या महिला अधिकारी की उपस्थिति में ही लिये जायेंगे। किसी भी महिला बन्दी को उसी प्रकार के श्रम कार्य करने के लिये दिये जाये, जिनमें वे अभ्यस्त हों। बन्दीगृह में आई बन्दी जिसे छः माह से अधिक अवधि के कारावास से दण्डित किया जाये, उसे जीविकोपार्जन की गतिविधियों में प्रशिक्षित किया जायेगा जैसे– सिलाई, बुनाई आदि। उनको प्रशिक्षित करने हेतु महिला प्रशिक्षक की नियुक्त की जायेगी।

बन्दीगृह में आई महिला बन्दी चाहे वह दोषसिद्ध अपराधी या विचाराधीन हो, के साथ कोई शिशु आता है जिसकी आयु पाँच वर्ष से कम अवधि की हो तो उस शिशु को पाँच वर्ष तक माता के साथ रखने की व्यवस्था बन्दीगृह में करनी होगी। शिशु की आयु पाँच वर्ष की पूर्ण होने पर यदि उसके पिता या संरक्षक के पास न भेजा जा सके तो उस शिशु को किसी बालगृह में रखने की व्यवस्था की जानी चाहिये और पाँच वर्ष का होने पर माता के साथ बन्दीगृह में रखे जाने पर उसकी देखभाल एवं पोषण की व्यवस्था की जिम्मेदारी पर्यवेक्षक की रहेगी।

बन्दीगृह में आई महिला बन्दी के गर्भवती होने पर उसकी विशेष देखभाल की जानी चाहिये एवं बन्दीगृह में ही शिशु होने पर जच्चा व बच्चा की देखभाल सुनिश्चित की जायेगी एवं रीति–रिवाजों के अनुरूप उसका नामकरण संस्कार आदि भी किया जायेगा।

बन्दीगृह मे बन्दियों की पंचायत बनाई जाती है, जिसका उद्देश्य बन्दियों व बन्दीगृह के अधिकारियों के मध्य परस्पर सहयोग करने व अनुशासन, भोजन के सुझाव, सांस्कृतिक व मनोरंजक गतिविधियों में सहयोग, जेल में स्वास्थ्य एवं स्वच्छता आदि कार्य निर्धारित करना है। ऐसी बन्दी पंचायत महिलाओं के लिये पृथक बनाई जाती है।

महिलाओं के कल्याण के लिये किये जा रहे अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास–

सम्पूर्ण विश्व में पुरूष और महिलाओं की आबादी देखी जाये तो लगभग आधी–आधी होगी। परन्तु, अपराधिक स्तर पर सम्पूर्ण विश्व में देखा जाये तो कुल अपराधों का 20 प्रतिशत से अधिक अपराध महिलाओं द्वारा नहीं किये गये होंगे अर्थात् महिलाओं द्वारा किये गये सम्पूर्ण अपराधों के कुल अपराध का लगभग 20 प्रतिशत ही होगा। 90 प्रतिशत देशों में महिला बन्दियों का प्रतिशत 5 ही है और वहीं 10 प्रतिशत देशों में महिला बन्दी 6 प्रतिशत ही हैं। इन महिला बन्दियों के द्वारा किये गये अपराधों का विश्लेषण किया जाये तो अधिकतर महिला बन्दी द्वारा किये गये अपराधों के पीछे का कारण या तो पुरूष के आक्रोश से बचने के लिये अपराध की ओर प्रवृत हुई हैं या फिर पुरूष की संगिनी के रूप में उसकी अपराधिक गतिविधियों में उसका साथ देने के कारण। इसके अतिरिक्त, कुछ हिंसक गतिविधियों में भी महिला के द्वारा अपराध किये गये हैं।

वर्तमान में, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न देशों में महिला बन्दियों की संख्या का प्रतिशत देखा जाये तो कहा जा सकता है कि महिला बन्दियों की अपेक्षा अपराधों की दुनिया में पुरूषों का ही वर्चस्व हैं।

विश्व के कुछ देशों जैसे थाईलैंड (13.3 प्रतिशत), बोलीविया (8.2 प्रतिशत), सिंगापुर (11.00 प्रतिशत), अर्जेंटिना (4.5 प्रतिशत), मलेशिया (7.2 प्रतिशत), यूनाइटेड किंगडम (4.6 प्रतिशत), नेपाल (7.3 प्रतिशत), हंगरी (7.4 प्रतिशत), रूस (8.0 प्रतिशत), जापान (8.3 प्रतिशत), न्यूजीलैण्ड (7.2 प्रतिशत), चीन (6.5प्रतिशत), श्रीलंका (4.9 प्रतिशत), भारत (4.3 प्रतिशत), लिबिया (1.2 प्रतिशत) में महिला बन्दियों का प्रतिशत पुरूष बन्दियों से काफी कम है।

विश्व के अनेक भागों में महिलाओं को उनके अपराधिक कृत्यों के लिये दण्ड लोगों या सरपंच द्वारा ही दिये जाते हैं। कई स्थानों पर उन्हें डायन आदि कहकर पानी में डूबाने या जिंदा दफनाने या निर्वस्त्र कर घुमाने आदि प्रकार के दण्ड दिये जाते हैं। इनमें से अधिकतर अपराधों में महिला का कोई दोष ही नहीं होता। फिर भी, उसे अपराधी बनाकर बेगुनाह होने पर भी दारूण दण्ड झेलना पड़ता है।

प्राचीन समय में रोम में तो महिलाओं को इतनी स्वतंत्रता थी कि यदि वे अपराध करती भी थीं और दोषी होने पर न्यायाधीश द्वारा दण्ड भी दिया जाता था परन्तु यह दण्ड परिवार के पुरूष सदस्यों को ही भुगतना पड़ता था। उन्हें तो न्यायालय में शपथ लेने की अनुमति भी नहीं थी।

यूरोप के आंकड़ों के आधार पर कहा जा सकता है कि वहाँ केवल 5 प्रतिशत से 10 प्रतिशत महिलायें ही बन्दी बनाई गई हैं। महिला बन्दियों के आँकडें तो कम हैं ही साथ ही इनके द्वारा किये गये अपराध भी कम हैं। महिलाओं द्वारा किये गये अपराधों में अधिकतर सामान्य चोरी, सेंधमारी जैसे अपराध किये जाते हैं। हत्या के अपराध में भी महिलायें बन्दी हैं परन्तु बहुत कम संख्या में। वर्तमान में ड्रग्स की तस्करी में अधिकतर महिलायें गिरफ्तार की जा रही हैं। अधिकतर महिला बन्दियों का अपराध की दुनिया में आने का कारण शारीरिक, मानसिक या भावनात्मक रूप से यौन शोषण का शिकार होना होता है। लगभग सभी देशों में अभी भी महिला द्वारा किये जाने वाले अपराधों में निरन्तर वृद्धि हो रही है।

वर्तमान समय में महिला बन्दियों की संख्या लगभग सभी देशों में बढ़ रही है। वर्तमान में महिला बन्दियों में से अधिकतर महिलाओं के अपराधी बनने का कारण, उनका गरीब घरों से होना, परिवार में मुखिया का न होना, परिवार से दूरी, मानसिक बीमारी व शोषण का शिकार होना है। युनाइटेड किंगडम में महिला बन्दियों में से 80 प्रतिशत बन्दी महिलाओं को समस्यायें थीं। इनमें से

60 प्रतिशत महिला बन्दियों को न्यूक्रेटिक डिस्आर्डर था। आस्ट्रेलिया में तो कुल महिला बन्दियों में से 7.7 प्रतिशत महिलायें घरेलू हिंसा के वादों में अपराधी थीं। इंग्लैण्ड में महिला बन्दियों के लिये लगभग 14 महिला बन्दीगृह हैं जिनमें महिला बन्दियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है।

महिला बन्दीगृह में एक बार महिला आ जाती है तो उसे रिहा होने के पश्चात् लोगों का सामना करने की सोच से वह कुण्ठित होती है और कई बार तो वे बन्दीगृह में स्वयं को ही हानि पहुँचाती है। बन्दीगृह के पुरूषों को रिहाई के पश्चात् रोजगार मिलने को प्राथमिकता दी जाती है, वहीं महिला बन्दी को बन्दीगृह से रिहा होने पर समाज व लोगों की अवहेलना का सामना करना पड़ता है।

भारत की तरह विदेशों में भी महिला बन्दियों के स्वास्थ्य का ध्यान रखा जाता है। साथ ही गर्भवती महिला के स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रख जाता है तथा जच्चा–बच्चा के लिये पृथक इकाई की भी व्यवस्था की गई है, जहाँ शिशुओं को नौ माह तक रखा जाता है। यहाँ 'एस. खम ग्रेस ओपन प्रिज़न' में भी माँ व शिशु के लिये पृथक व्यवस्था है। शिशुओं के उज्जवल भविष्य के लिये वाद के मेरिट के आधार पर वहाँ प्रवेश दिया जाता है। माँ को बच्चों से आंगुतकों की तरह मिलने की अनुमति दी जाती है।

महिला बन्दियों की स्थिति अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चिन्तन का एक विषय है। कई स्थानों पर महिला बन्दियों की स्थिति पर उचित ध्यान नहीं दिया जाता है। साथ ही, बन्दीगृह में दी जाने वाली सुविधाओं पर भी ध्यान नहीं दिया जाता जिससे कि उनकी स्थिति में सुधार हो और वे बन्दीगृह से मुक्त होने के पश्चात् एक सामान्य जीवन व्यतीत कर सकें। बन्दीगृह में यदि उनके साथ यदि शिशु होते हैं या महिला बन्दी गर्भवती होती है, तो दोनों स्थितियों में उनका विशेष ध्यान रखना कारागार प्रशासन का कार्य होता है एवं पर्यवेक्षक को समय–समय पर उनका निरीक्षण करना चाहिये।

महिला बन्दियों के कल्याण हेतु लगभग सभी देशों में प्रयास किये जा रहे हैं। इनमें से कुछ प्रमुख निम्न हैं–

1. महिला बन्दियों के कल्याण हेतु संयुक्त राष्ट्र के प्रयास––

विश्व के अधिकतर देशों में महिला बन्दीगृहों में रह रही महिलाओं के साथ यौन उत्पीड़न, बलात्कार एवं प्रताड़ना की घटनायें होती आ रही हैं, जिस कारण बन्दीगृह में उनकी सुरक्षा का प्रश्न एक विषय बनकर रह गया है। यू. एन. की ह्ययून राइट्स एण्ड रिफ्यूजिस रिपोर्ट में भी महिला बन्दियों की स्थिति के बारे में बताया गया है।

संयुक्त राष्ट्र के मानव अधिकार प्रणाली के द्वारा महिला बन्दीगृहों में महिला बन्दियों एवं उनके शिशुओं के लिये कुछ प्रयास किये गये हैं।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में बन्दीगृहों में पुरूष बन्दियों की अपेक्षा महिला बन्दियों की संख्या पहले तो कम थी, परन्तु समय के परिवर्तन के साथ महिला अपराधियों व बन्दियों की संख्या में वृद्धि देखी जा रही है। वर्तमान में भी महिला बन्दियों की आवश्यकताओं व उनके अधिकारों का नज़रअन्दाज किया जा रहा है।

बन्दीगृह में रह रही महिला बन्दियों पर कारावास का प्रभाव पुरूषों से भिन्न होता है। बन्दीगृह में महिलाओं को रहने के लिये मिलने वाला स्थान या बैरक, बन्दीगृह के कर्मचारियों का व्यवहार, परिवार से दूरी, शिक्षा एवं कार्य का अभाव, स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी, मानसिक व शारीरिक या यौन उत्पीड़न का शिकार होना, महिला बन्दियों की संख्या बन्दीगृह की क्षमता से अधिक होना, महिला बन्दी को शिशुओं के साथ बन्दीगृह के कुप्रभाव आदि कई समस्यायें होती हैं, जिन पर उचित ध्यान नहीं दिया जाता है।

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में महिला फिर चाहे वह बन्दीगृह में हो, उसे स्वास्थ्य का अधिकार है। इस स्वास्थ्य के अधिकार में अस्वच्छता या किसी भी दी जाने वाली प्रताड़ना से महिला बन्दी का गर्भपात हो जाये, तो इसे उस महिला बन्दी के अधिकार का हनन माना जाता है।

संयुक्त राष्ट्र की **'स्पेशल रिपोर्ट्स ऑन वॉयलेंस अगेन्सट वीमेन'** में महिला बन्दियों की दण्डावधि पूर्ण करने के पश्चात् उनकी सुरक्षा की दृष्टि से आवास के अधिकार को जोड़ते हुये सिफारिश की कि सरकार को कारावास की दण्डावधि पूर्ण कर मुक्त हुई महिला बन्दी के लिये एवं उसके शिशु के लिये रहने हेतु, ट्रांसिट जेल में बन्दियों की संख्या अधिक या बेइन्तहा भीड़ होने पर चिंता व्यक्त की है।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 2005 में सात निकायों में से छः निकायों में महिलाओं एवं शिशुओं तथा उन महिला बन्दियों के शिशुओं के अधिकार विषय पर अपनी चिंता व्यक्त की गई थी।

संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा प्रमुख रूप से निम्नलिखित समझौता किया गया है–

1. इन्टरनेशनल कन्वेनशन ऑन द एलिमिनेशन ऑफ ऑल फार्म्स ऑफ रेशियल डिस्क्रिमिनेशन।
2. इन्टरनेशनल कन्वेनशन ऑन सिविल एण्ड पॉलिटिकल राइट्स।

3. इन्टरनेशनल कन्वेनशन ऑन इकोनॉमिक्स, रेशियल एण्ड कल्चरल राइट्स।

4. इन्टरनेशनल कन्वेनशन ऑन एलिमिनेशन ऑफ आल फार्म्स ऑफ डिस्क्रीमिनेशन ऑन विमेन।

5. इन्टरनेशनल कन्वेनशन अगेंस्ट टार्चर एण्ड क्रूअल, इन ह्यूमन फॉर डिग्रटिंग ट्रीटमेंट फॉर पनिश्मेन्ट।

6. इन्टरनेशनल कन्वेनशन ऑन द प्रोटेक्शन ऑफ ऑल राइट्स ऑफ ऑल माइग्रेंट वर्कर्स एण्ड द मेम्बर्स ऑफ द फैमिली।

संयुक्त राष्ट्र की इन सातों समितियों को समझौता निकाय कहा जाता है। इन समितियों द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट में महिला बन्दियों की स्थितियों पर चिंता व्यक्त की गई है।

नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार अन्तराष्ट्रीय अभिसमय की रिपोर्ट में मानव अधिकार समिति ने संयुक्त राष्ट्र के न्यूनतम नियमों के नियम 53(3) की पुनः पुष्टि की सिफारिश की है। यह नियम 53(3) बन्दीगृह के बन्दियों के उपचार से सम्बन्धित है। इसमें कहा गया है कि महिला बन्दियों के पर्यवेक्षण करने के लिये महिलाओं को ही नियुक्त किया जाये। समिति ने अपनी रिपोर्ट में अनुच्छेद 27 में यह भी कहा है कि बन्दीगृह में माताओं के साथ रह रहे शिशुओं के विकास का ध्यान में रखते हुये वहाँ रहन–सहन की स्थितियों को बेहतर एवं उचित सुविधायुक्त बनाया जाये।

इसके अतिरिक्त, समिति ने उन महिला बन्दियों के लिये जिनके बन्दीगृह में रहने के कारण बच्चे माता से पृथक हो गये हैं, उन बच्चों की शारीरिक एवं मानसिक आवश्यकताओं की समय–समय पर समीक्षा करना एवं बच्चों को माता से नियमित एवं सीधा सम्पर्क करवाना चाहिये।

संयुक्त राष्ट्र के मानव अधिकार निकाय द्वारा क्यूवेर समिति की रिपोर्ट पर सिफारिशें दी। महिला बन्दियों की बन्दीगृह में हिंसा व यौन उत्पीड़न से पर्याप्त सुरक्षा को सुनिश्चित करने एवं उन्हें इस प्रकार की सुरक्षा देने के लिये विशेष रूप से पुरूष अधिकारियों व कर्मचारियों एवं आंगुतकों का प्रवेश निषेद्ध कर एवं महिलाओं के लिये सुविधाओं की अलग व्यवस्था होना चाहिये।

उपरोक्त समितियों की सिफारिशों को पूरा करने के लिये सरकार के लिये आवश्यक है कि–

1) विचाराधीन बन्दियों को बन्दीगृह में रखे जाने की स्थिति की समीक्षा करे।

2) जेल नीतियों एवं व्यवहारों में महिला बन्दियों के लिये बन्दीगृह के सभी कर्मचारी व अधिकारी महिलायें ही हों तथा महिला बन्दियों का पर्यवेक्षण भी महिलाओं के द्वारा ही किया जाये।

3) महिला बन्दियों के साथ होने वाली यौन एवं शारीरिक हिंसा की घटनाओं की शिकायतों को दूर करने की व्यवस्था की जाये।

4) अपराधी महिला को कारावास से दण्डित करते समय यदि उसके साथ शिशु है तो उसके हित का ध्यान रखा जायेगा।

5) यह सुनिश्चित किया जाये कि बन्दीगृह में रह रहे शिशुओं के मध्य हिंसा या अपराध ना हो।

6) अभिभावकों के बन्दीगृह में रहने पर बच्चों को उसके अधिकार प्राप्त हों तथा बन्दीगृह में अपने माता–पिता से समय–समय पर मिल सके। महिलाओं को दिये जाने वाले दण्ड को लघु किये जाने के उपायों पर रिपोर्ट प्रस्तुत करे।

विचाराधीन अपराधी पर आश्रित बच्चों व शिशुओं के लिये किसी विकल्प पर विचार करेगी। किसी महिला को उसके द्वारा कृत अपराध हेतु विचाराधीन बन्दी बनाना आवश्यक है या नहीं, और उस महिला के अपराध की गम्भीरता को देखते हुये वैकल्पिक दण्ड पर विचार करना।

महिला बन्दियों या बालिका बन्दियों को यौन उत्पीड़न व शारीरिक हिंसा से सुरक्षा के लिये कुछ उपाय किये जायें–

बन्दी प्रशासन कर्मचारियों के द्वारा बन्दियों में महिलाओं के साथ हो रहे किसी भी प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक शोषण या यौन हिंसा के मनोवैज्ञानिक कारणों की जाँच करें तथा इसे रोकने के लिये नीति व प्रक्रियायें तैयार करें व उनको लागू करें व दोषियों को उचित दण्ड दे। बन्दीगृह के बन्दियों द्वारा दी गई किसी भी प्रकार की हिंसा की जानकारी के लिए अपनायी गई प्रक्रियाओं का उचित प्रसार करें। इसके लिये बन्दी प्रशासन के कर्मचारियों का शिक्षित होना अनिवार्य है।

संयुक्त राष्ट्र के न्यूनतम मानकों के नियम 8(अ) में महिला बन्दियों के उपचार हेतु नियमानुसार महिला बन्दियों एवं पुरूष बन्दियों को पृथक रखना चाहिये एवं किशोर एवं वयस्क बन्दियों को भी पृथक रखना चाहिये। सरकार को समय–समय पर इसकी समीक्षा करनी चाहिये तथा दण्ड दी गई माता के शिशुओं एवं बच्चों के अधिकारों की रक्षा हो सके। जिन महिल बन्दियों के बच्चे, जो महिला के साथ बन्दीगृह में आये हो या जो बन्दीगृह के बाहर हो उनकी देखभाल के पर्याप्त प्रयास किये जाना, शासन को सुनिश्चित करना होगा। इसी

प्रकार, न्यायाधीन बन्दी के साथ आये बन्दी के बच्चों के लिये विशेष सुविधाओं का प्रावधान होना चाहिये।

जहाँ पर बच्चों को माता के साथ रहने की अनुमति न हो वहाँ महिला बन्दी को बच्चों से सम्पर्क रखने की व्यवस्था व अलगाव के सदमे से उभरने में सहयोग किया जाये। साथ ही, जिन महिला अपराधियों को दोषसिद्ध होने पर दण्ड के पश्चात् सीधे बन्दीगृह ले जाया जाता है और वहाँ उनके बच्चों को रखने की व्यवस्था नहीं है वहाँ उनके बच्चों के लिये व्यवस्था करने हेतु उन्हें समय देना चाहिये।

सरकार को महिला बन्दीगृह में माताओं के साथ रह रहे बच्चों के कल्याण के लिये विशेष नीतियाँ व कार्यक्रम बनाना चाहिये, जो बालकों के अधिकार के कन्वेनशन द्वारा क्रियान्वयन किया जाये। इसी प्रकार, मानव अधिकारों के मानकों के अनुपात में बालिकाओं के लिये भी विशेष नीति व कार्यक्रम तैयार कर उसका क्रियान्वयन करना चाहिये।

जो बालिकायें बन्दीगृह में आने से पूर्व हिंसा का शिकार हुई हो उनके लिये सरकार को यह ध्यान देना होगा कि बन्दीगृह में उन्हें उपयुक्त सहयोग मिले। बन्दीगृह प्रशासन को भी इस सम्बन्ध में महिला बन्दी की सहायता करने के लिये जागरूक किया जाये एवं प्रशिक्षण दिया जाये। उससे मिलने के लिये आये लोगों के सम्बन्ध में उस बालिका को अवगत कराया जाये। महिला बन्दियों द्वारा किये गये अपराध के तरीके, उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थितियाँ एवं पारिवारिक सम्बन्ध भी पुरूषों से भिन्न होते हैं। बन्दीगृह के विनियमों में महिला बन्दी की उपेक्षा की जाती है। वर्ष 2010 में संयुक्त राष्ट्र की जनरल असेम्बली में महिला बन्दियों के उपचार एवं महिला अपराधियों के लिये गैर–हवालात के उपायों पर जो नियम बनाये गए हैं, जिन्हें बैंकाक रूल्स कहा जाता है, क्योंकि ये नियम बनाने में थाई सरकार का महत्वपूर्ण योगदान था।

बच्चों की संयुक्त राष्ट्र समिति ने वर्ष 2010 में 2011 को **'डे ऑफ जनरल डिस्कान',** बन्दियों के बच्चों को समर्पित करने का निर्णय लिया। क्यू. यू. ऐ. ओ. ने वर्ष 2010 में बन्दियों के बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य को सदृढ़ करने के उपाय एवं प्रशमन पर अनुसन्धान किया। इस अनुसन्धान में जर्मनी, रोमानिया, स्वीडन, फ्रांस एवं यू.के. शामिल थे। इससे प्राप्त आँकड़ों पर बच्चों के अभिभावकों के साथ बन्दीगृह में रहने से उनके मानसिक स्वास्थ्य पर अध्ययन किया।

बैंकाक रूल्स– बैंकाक रूल्स में महिला अपराधी बन्दियों की कुछ समस्याओं पर ध्यान दिया गया था, जैसे– महिलाओं की बन्दीगृह में क्षमता से अधिक महिलाओं को रखना, विशेषकर छोटे–छोटे अपराधों के लिये बन्दीगृह

में रखना, महिला बन्दियों के बच्चों पर, वे साथ हो या अलग रखे जाये, दोनों ही स्थितियों पर कुप्रभाव, महिला बन्दियों के लिये अपर्याप्त आवास व स्वच्छता की सुविधायें, बन्दीगृह प्रशासन में कर्मचारियों का अभाव, महिला बन्दियों का मानसिक, शारीरिक शोषण का रिकार्ड। महिला बन्दियों के साथ कार्य करने वाली संस्थाओं से सम्पर्क करना। इस प्रकार, महिला बन्दियों एवं उनके बन्दीगृह की स्थितियों में सुधार के लिये एवं उनके कल्याण के लिये प्रयास किये जा रहें हैं। हालांकि, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महिला बन्दियों की समस्यायें देश, काल व स्थान का भले ही अन्तर हो परन्तु समस्यायें एक जैसी ही हैं, क्योंकि समस्यायें भले ही किसी भी देश की क्यों न हो, वह सदैव से ही परिवार की धुरी होती है जिसमें बच्चों का विकास जुड़ा होता है।

अतः प्रत्येक देश बन्दियों के कल्याण हेतु प्रयासरत है जिससे उनके द्वारा किये जाने वाले अपराध कम हो जाये।

2. महिला बन्दियों के कल्याण की दिशा में दक्षिण आस्ट्रेलिया के प्रयास——

अपराधियों को अपराध से रोकने का अवसर देकर समाज की सुरक्षा में योगदान दे सकते हैं अर्थात् अपराधों को रोककर समाज को सुरक्षित रखा जा सकता है।

दक्षिण आस्ट्रेलिया की सुधारात्मक सेवा विभाग का उद्देश्य है कि अपराधी बन्दियों के पुनर्वास से ही पीड़ित के अधिकारों को सुरक्षित रखा जाये तथा सभी महिला बन्दियों व अन्य बन्दियों को विधि का पालन करने वाला सामान्य नागरिक बनाने के लिये समुदाय आधारित दण्ड दिया जाये या बन्दीगृह में रखा जाता है। फिर बन्दीगृह में रह रहे अपराधी को पुनः समाज में पर्यवेक्षक के संरक्षण रखा जायेगा, इससे वे पुनः अपराध न करें व फिर से बन्दीगृह में न आयें। अपराधी के द्वारा उनके लिये बनाये गये अपराध चक्र से बाहर निकलने के लिये उन्हें अर्थपूर्ण व लक्षित अवसर प्रदान किया जाये। किसी अपराधी बन्दी को समाज में पुनर्स्थापित करने के लिये रोजगार, परिवार का सहयोग व रहने का स्थान अर्थात् आवास प्रमुख कारक हैं, जिसका समाधान आवश्यक है।

दक्षिण आस्ट्रेलिया सरकार द्वारा बन्दियों के कल्याण का यह दृष्टिकोण विश्व के लिये अनुकरणीय है, क्योंकि सर्वविदित है कि अपराधों के अधिकतर मामलों की जड़ रोजी–रोटी की समस्या या आवास की समस्या होती है। अतः दक्षिण आस्ट्रेलिया के अनुसार बन्दियों का कल्याण मुख्य रूप से उनका समाज में पुनर्वास का प्रयास रोजगार देकर कर रहे हैं।

3. इंग्लैण्ड की बन्दीगृह व्यवस्था–

इंग्लैण्ड व वेल्स में कुल 19 बन्दीगृह हैं, जिनमें महिला बन्दियों को रखा जाता है। इसके अतिरिक्त लो–न्यूटन, ईस्टवुड पार्क, बुलबुड पार्क, आस्कहम ग्रेंज (खुले शिविर), मार्टन हॉल एवं ड्रेक हॉल अर्द्ध खुले शिविर हैं तथा युवा व किशोर अपराधियों के लिये बन्दियों की पृथक व्यवस्था है।

इंग्लैण्ड व वेल्स में बन्दियों को बन्दीगृह में रखने से पूर्व उनकी श्रेणी निर्धारित कर दी जाती है। इंग्लैण्ड में बन्दियों को बन्दीगृह में रखे जाने की मुख्यतः चार श्रेणियाँ होती हैं–

(I) **श्रेणी 'अ'** – इस श्रेणी में वे अपराधी बन्दी रखे जाते हैं जिनके हिरासत या बन्दीगृह से भाग जाने पर जनता एवं राष्ट्र की सुरक्षा को खतरा हो।

(II) **श्रेणी 'ब'** – इस श्रेणी में वे अपराधी रखे जाते हैं, जिन्हें अधिकतम सुरक्षा भले ही आवश्यक न हो, परन्तु उन्हें भागने का अवसर नहीं दिया जा सकता है।

(III) **श्रेणी 'स'** – इसमें वे अपराधी रखे जाते हैं, जिन पर इस बात विश्वास न किया जा सके कि वे बन्दीगृह से नहीं भागने का प्रयास नहीं करेंगे।

(IV) **श्रेणी 'द'** – इस श्रेणी में वे बन्दी आते हैं जिन पर यह विश्वास हो कि वे भागने का बिल्कुल प्रयास नहीं करेंगे, इसी विश्वास के कारण इन्हें खुले शिविरों में भी रखा जा सकता है। इन बन्दियों को समूह में कार्य करने के लिये रिलिज़ ऑन टेम्परिरी लाइसेंस (आर.ओ.एल.टी.) प्रदान किया जाता है। फिर, उन्हें घर जाने को भी मिलता है, यह सुविधा उन्हें उनकी कुल दण्डावधि के एक–तिहाई अवधि पूर्ण होने पर फुल लाइसेंस ऑफ इलीज़िबिलीटी डेट्स पूरी करने पर दी जाती है।

ब्रिटिश बन्दीगृह प्रणाली में बन्दीगृह 'खुले' व 'बन्द' दो वर्गों में विभाजित किये गये हैं। उपर्युक्त श्रेणी 'अ', श्रेणी 'ब' एवं श्रेणी 'स' के बन्दियों को 'बन्द' प्रकार के बन्दियों में रखा जाता है जबकि श्रेणी 'द' के बन्दियों को 'खुले' बन्दीगृह के वर्ग में रखा जाता है।

4. महिला बन्दियों के कल्याण की दिशा में यूनाइटेड स्टेट्स के प्रयास–

यूनाइटेड स्टेट्स में भी बन्दियों को बन्दीगृह में रखने के लिये विभिन्न श्रेणियाँ हैं:

1. **सुपर मैक्स**— इस श्रेणी में खूंखार बन्दी एवं आतंकवादी रखे जाते हैं, अर्थात ऐसे कैदी जिन्हें अत्याधिक सुरक्षा की आवश्यकता हो। इन्हें यहाँ 23 घण्टों के लिये 'लॉक डाउन' में रखे जाने की व्यवस्था है। इन्हें खाना भी चेक होल्स से दिया जाता था।
2. **एडनिनिसट्रेटिव** — इस बन्दीगृह ऐसे बन्दियों को रखा जाता है, जो कुछ खास वजहों से मानसिक रोग से पीड़ित हो।
3. **मेक्सिमम**— वे बन्दी, जो दूसरे बन्दियों या जेल कर्मचारियों के लिये खतरा हों, उन्हें अत्यधिक सुरक्षा में रखा जाता है जिन्हें इस श्रेणी में रखा जाता है।
4. **हाईः**— इस श्रेणी में आये बन्दी हिंसक अपराधों के लिये दण्डित किये जाते हैं, जिन्हें उच्च स्तर की सुरक्षा की आवश्यकता होती है।

उपरोक्त श्रेणी के बाद के अपराध के लिये मीडियम स्तर की श्रेणी है। इनकी भागने एवं दूसरे को हानि पहुँचाने की सम्भावायें कम होती है। इस श्रेणी में व्हाइट कालर अपराधियों को रखा जाता है, जिन्हें न्यूनतम सुरक्षा दिया जाना आवश्यक होता है।

यूनाइटेड स्टेट्स में महिला बन्दियों को 1870 से पूर्व से ही पृथक रखे जाने की व्यवस्था है। महिलाओं का प्रतिशत 5.8 भले ही कम है परन्तु पिछले दो दशकों में महिला अपराधियों एवं बन्दियों में पाँच गुना से अधिक की वृद्धि हुई है। विश्व का सबसे प्राचीन बन्दीगृह सुधार संगठन लीग में हावर्ड लीग फॉर पीनल रिफार्म है जिसकी स्थापना वर्ष 1866 में की गई। न्यायाधीशों की एसोशियेशन, पीड़ित और सहायता और बन्दी परामर्श सेवाओं व अन्य संस्थाओं को बन्दीगृह व्यवस्था के सुधार के प्रयास हेतु जोड़ा गया। हावर्ड लीग 21 वर्ष की आयु के युवाओं को विधिक धनराशि देती हैं एवं रिहाई के बाद उन्हें आवश्यक सहयोग भी देती है। यहाँ पर बन्दियों के रोजगार के लिये ग्राफिक डिजाइन स्टूडियो भी बनाया गया है।

यूनाइटेड स्टेट्स के बन्दियों में महिलाओं के कल्याण के निम्न प्रयास सराहनीय हैं—

यहाँ के बन्दियों में माँ को बच्चों से फोन पर बात करने की अनुमति थी। आपस के वार्तालाप का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। बच्चे भी माँ से दूर रहना सहन नहीं कर पाते हैं। फोन के स्थान पर पत्रों के माध्यम से भी बातचीत की जा सकती है। इटली में बन्दियों के द्वारा बनाई गई वस्तुओं की प्रदर्शनी लगाई गई और कुछ सामान बच्चों को भेजे जाने की अनुमति दी गई। डेनमार्क में

बन्दियों को बच्चों से मिलने के समय में उन्हें अभिभावक के कमरे में जाने की अनुमति दी गई तथा फ्रांस में यूनाइट्स डे विजिट फैमिली का कार्य बन्दी के परिवार को बिना बन्दीगृह के कर्मचारियों की उपस्थिति में एकान्त में मिलने का अवसर दिया जाता है। सोवियत रूस में भी मिलने के समय उन्हें स्वयं खाना बनाने एवं साथ में खाने की अनुमति दी गई।

न्यूयार्क एव कैलिफोर्निया में महिला कैदियों और उनसे जुड़े बालकों से परस्पर मुलाकात कराने के लिये चाइल्ड वेलफेयर एजेन्सियों की सहायता से विशेष विजिटिंग क्षेत्र, अभिभावक संस्थाओं एवं सामुदायिक सुधार कार्यक्रम बनाये गये।

5. महिला बन्दियों के कल्याण की दिशा में भारत के प्रयास–

भारत में महिला बन्दियों की स्थिति को देखते हुये इनमें सुधार करने के प्रयास की विभिन्न राज्यों की सरकार का ध्यान आकर्षित हुआ और उन्हें सुधारने के प्रयास भी किये जाने लगे हैं।

बन्दीगृह में रह रहे बन्दियों का कल्याण करने से पूर्व यह आवश्यक है कि बन्दीगृह का आधुनिकीकरण किया जाये। बन्दीगृह आधुनिकीकरण पर बनाई गई विभागीय संसदीय समिति द्वारा सिफारिशें भी गई हैं। इस समिति ने सिफारिशों पर विचार व्यक्त करते हुये एवं जेल अवस्थापना व सुधारात्मक प्रशासन के लिये अतिरिक्त वित्तीय सहायता देने की विभिन्न राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों की माँग को ध्यान में रखते हुये गृह मंत्रालय से विभिन्न बन्दीगृहों के आधुनिकीकरण करने के लिये द्वितीय चरण की योजना बनाने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया, जिसे अभी फिलहाल बन्द कर दिया गया है।

बन्दीगृह प्रशासन को गुणवत्ता में सुधार लाने एवं बन्दीगृह प्रशासन के कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने के लिये भारत में वर्ष 1989 से चण्डीगढ़ में केन्द्र की सम्पूर्ण वित्तीय सहायता से सुधारात्मक प्रशासन देने हेतु चण्डीगढ़, राज्य के पड़ोसी राज्यों विशेष कर हिमाचल प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, संघ राज्य क्षेत्र चण्डीगढ़ आदि के कारागार कर्मिकों को प्रशिक्षण देता है।

बन्दी प्रत्यावर्तन अधिनियम, 2003, भारत सरकार द्वारा भारतीय जेलों में कैद विदेशी नागरिकों के प्रत्यावर्तन और विदेशी जेलों में कैद भारतीय नागरिकों के प्रत्यावर्तन के लिये अधिनियमित किये जाये, ताकि उन्हें अपने–अपने देशों में भेजा जा सके।

बन्दीगृह में बन्दी कल्याण हेतु बन्दियों के स्वयं के कल्याण की गतिविधियों में सहभागिता करने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है। शिक्षा, वोकेशनल ट्रेनिंग, विधिक परामर्श, रसोई, जनसेवा या समाज सेवा में सहयोग देने के लिये पंचायतों

का गठन किया जाता है। इन पंचायतों की एक महापंचायत भी आयोजित की जाती है। समस्त कैदियों की शिकायतों एवं सुझावों को सुनकर उन्हें दूर करने का प्रयास किया जाता है। उन लोगों द्वारा अपनी समस्याओं को सुलझाने पर स्वयं की भागीदारी से उनमें आत्मविश्वास विकसित होगा। जेल कैन्टीनों का प्रबन्ध भी उन्हीं के द्वारा कराया जाता है।

जेल में बन्दियों के कल्याण हेतु वर्ष 1994 में एक हजार बन्दियों के लिये विपश्यना कैम्प शुरू किये गये। यह व्यवस्था बन्दीगृह में अब तक जारी है। कई जगहों पर तो स्थाई विपश्यना केन्द्र खुल चुके हैं, जिनमें बन्दियों के लिये दस–दस दिनों के लिये शिविर आयोजित किये जाते हैं जिसमें ब्रह्मकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय, दिव्य ज्योति जागृति संस्थान आदि प्रमुख हैं, जो बन्दियों को नैतिक शिक्षा, परामर्श व ध्यान योग सिखाते हैं।

बन्दीगृह में रह रहे बन्दियों को जमानत की अर्जियों, अपील व अन्य आवेदन तैयार करने के लिये विधिक सहायता भी दी जाती है। इसके लिये विधि सहायता कक्ष भी होते हैं। गरीब बन्दियों एवं महिला बन्दियों को इससे सरलता से सहयोग प्राप्त हो जाता है।

तिहाड़ बन्दीगृह–

31/12/2018 तक तिहाड़ जेल में महिला बन्दियों की संख्या 530 थी, जिसमें से 113 दोषसिद्ध एवं 113 विचाराधीन बन्दी थीं। इन बन्दियों में कुछ विदेशी महिलायें भी थीं तथा कुछ महिलाओं के साथ बच्चे भी थे जिनकी आयु छः वर्ष से कम थी और वे उनको रख सकती थीं। इस बन्दीगृह को आई.एस. ओ. 900–2000 प्रमाणन, का प्रमाण–पत्र संचार व सूचना मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा मिला है। यह प्रमाण पत्र महिला बन्दियों के उपचार के लिये अन्तर्राष्ट्रीय मानदण्डों का पालन करने के लिये दिया जाता है।

यहाँ महिला बन्दियों को बच्चों के वस्त्र, बिस्तर, चिकित्सा सुविधा एवं शिक्षा प्रदान की जाती है तथा बच्चे की आयु छः वर्ष से अधिक होने पर माता की सहमति से उसे बोर्डिंग स्कूल में भर्ती करवा दिया जाता है।

तिहाड़ जेल में बन्दियों से सम्पर्क बनाये रखने के लिये **'तिहाड़ बन्दी कॉल सिस्टम'** प्रारम्भ किया गया। इस सुविधा का उपयोग बन्दी सप्ताह में एक बार पाँच मिनिट के लिये कर सकते हैं।

बिहार बन्दीगृह विभाग–

बिहार के बन्दीगृह में बन्दियों में कल्याण की दिशा में स्पेशल सेंट्रल जेल, भागलपुर में प्रिटिंग प्रेस एवं बेऊर सेंट्रल जेल में बेकरी की स्थापना की गई तथा बिहार की विभिन्न बन्दियों की इंडस्ट्रीयल ईकाई का आधुनिकीकरण करने का

प्रयास किया जा रहा है। बक्सर, गया, भागलपुर, पटना और मुज्जफरपुर जेलों के उत्पादों में विविधता और आय में वृद्धि हो रही है। मुजफ्फरपुर सेंट्रल जेल चर्म उत्पादों के लिये प्रसिद्ध है।

बिहार में इन सभी व्यवस्थाओं का उद्देश्य बन्दियों में सुधार कर उन्हें रोजगार के लिये प्रशिक्षित करना है, जिससे वे रिहाई के पश्चात् समाज में सरलता से स्वयं को पुनःस्थापित कर सकें। इनमें महिला बन्दियों का कल्याण भी शामिल है।

महाराष्ट्र बन्दीगृह विभाग

महाराष्ट्र में 8 केन्द्रीय बन्दीगृह, श्रेणी 1 के 9 जिला बन्दीगृह, श्रेणी 2 के 15 बन्दीगृह, श्रेणी 3 के 1 जिला बन्दीगृह, खुले बन्दीगृह, खुली कॉलोनी (बन्दीगृह) व बोर्स्टल स्कूल को मिलाकर कुल 35 बन्दीगृह हैं।

महाराष्ट्र के पुणे में जेल अधिकार के लिये भी प्रशिक्षण विद्यालय है, जहाँ जेल अधिकारियों को बन्दीगृह में सुधारात्मक प्रशासन और बन्दीगृह प्रबन्धन से सम्बन्धित विषयों पर प्रशिक्षण दिया जाता है।

यहाँ पर बन्दियों के स्वास्थ्य का परीक्षण कर उस आधार पर उनको कार्य दिया जाता है। यरवदा बन्दीगृह में महिला बन्दियों के कल्याण हेतु प्रथम खुला बन्दीगृह प्रारम्भ किया गया। सामान्य बन्दीगृह में रहने वाली महिला बन्दी को केवल सात दिनों की ही पैरोल पर छोड़ा जाता है। खुले बन्दीगृह में आजीवन कारावास भोग रही महिला बन्दियों को एक माह, 6 से 19 वर्षों की सजा काट रहे कैदियों को 20 दिन और 5 से 15 वर्ष की सजा भोग रहे बन्दियों को 15 दिन की पैरोल दी जाती है।

इन बन्दीगृहों में बन्दियों के शिक्षा की भी व्यवस्था उपलब्ध रहती है तथा ये बन्दी, चाहे पुरूष हो या महिला, विभिन्न शैक्षणिक कार्यक्रमों में भाग ले सकते हैं।

पंजाब बन्दीगृह विभाग

पंजाब सरकार ने बन्दीगृह में रह रही महिला बन्दियों के सशक्तिकरण के लिये कई परियोजनायें शुरू की गई हैं। इन बन्दीगृहों में बुनाई, साफ्ट टॉयेज, सिलाई–कढ़ाई व एम्ब्राइडरी सिखाई जाती है तथा साथ ही उन्हें शिक्षा एवं स्वास्थ्य की जानकारी दी जाती है।

यहाँ महिला बन्दियों की शिक्षा पर भी ध्यान दिया जाता है। पंजाब वेलफेयर सोसाइटी, गुरूनानक देव विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केन्द्र, रेडक्रास सोसायटी एवं यू.एन.ओ.डी.सी. के सहयोग से महिला बन्दियों के कल्याण के लिये

योजनायें चलाई जा रही हैं।

पंजाब के बन्दियों में महिला बन्दियों के लिये गुरूनानक विश्वविद्यालय एवं डिपार्टमेन्ट ऑफ एडल्ट कांटीन्यूइंग एजुकेशन ने ड्रेस डिजाइनिंग का सर्टिफिकेट कोर्स शुरू किया है। इसके अतिरिक्त, होम साइंस विंग व इण्डिया विजन सेंटर के सहायता से मोमबत्ती बनाने, फूड प्रिज़रवेशन, टॉय मेंकिंग, टाई एण्ड डाई, फेब्रिक पेंटिग, पॉट पेंटिग आदि की ट्रेनिंग दी जाती है।

पंजाब में 7 केन्द्रीय बन्दीगृह, 6 जिला बन्दीगृह, 2 खुले बन्दीगृह, 1 महिला बन्दीगृह एवं 1 बोर्स्टल बन्दीगृह हैं।

उत्तर प्रदेश बन्दीगृह विभाग

उत्तर प्रदेश के बन्दीगृहों में महिलाओं के कल्याण हेतु कई प्रयास किये जा रहे हैं। लखनऊ में नारी बन्दी निकेतन जेल का प्रारम्भ किया गया जिसका उद्देश्य बन्दीगृहों को सुधारगृहों में बदलना था। उत्तर प्रदेश बन्दीगृह में प्रयोग में लाए जा रहे कुछ अच्छे व्यवहारों की योजनायें चलाई जा रही हैं। 'नया सवेरा एक पढ़ाये एक' के नारे से साक्षरता कार्यक्रम, योग कक्षायें, पुस्तकालय कम्प्यूटर शिक्षा, महिला बन्दियों के बच्चों के लिये क्रेश सुविधा, नियमित स्वास्थ्य परीक्षण आदि कई सुविधायें महिला कल्याण के लिये चलाई जा रही हैं। यहाँ पर शिकायत निवारण के लिये जगह–जगह शिकायत पेटियाँ रखी गई हैं।

उत्तर प्रदेश सरकार ने उत्तर प्रदेश बन्दीगृह एवं बन्दियों के कल्याण हेतु काफी प्रयास किये हैं। वर्ष 1954 में नारी निकेतन की स्थापना महिला बन्दियों के लिये की गई, जिसमें दोषसिद्ध महिला बन्दियों एवं विचाराधीन महिला बन्दियों के लिये पृथक वार्डों की स्थापना की गई है। यहाँ पर तीन माह से अधिक दण्डावधि के दण्ड से दण्डित महिला बन्दियों को अन्तरित किया जाता है। इसके अतिरिक्त, जिला बन्दीगृहों में महिला बन्दियों के लिये 54 पृथक वार्ड हैं।

गुजरात बन्दीगृह विभाग

गुजरात के बन्दीगृहों में महिला बन्दियों के कल्याण हेतु कई प्रयास किये जा रहे हैं। इस हेतु महिला बन्दियों को कम्प्यूटर एवं ब्यूटीपार्लर का कोर्स साबरमती केन्द्रीय जेल में प्रारम्भ किया गया है। ये कोर्स निःशुल्क चलाये जाते हैं। इन प्रशिक्षणों को देने का उद्देश्य महिला बन्दियों को आत्मनिर्भर बनाना एवं उन्हें परिवार की आर्थिक स्थिति सुधारने में मदद करना है। इसके अतिरिक्त, उन्हें सिलाई–कढ़ाई, बुनाई व अगरबत्ती बनाना भी सिखाया जाता है।

छत्तीसगढ़ बन्दीगृह विभाग

छत्तीसगढ़ सरकार द्वारा बन्दियों के बच्चों को शिक्षित करने के लिये

आवासीय विद्यालय का निर्माण किया जा रहा है। महिला बन्दियों के बच्चे छः वर्ष के होने के पश्चात् बाहर आश्रमों में भेज दिये जाते हैं। इन विद्यालयों के बनने से बच्चे माता के नजदीक होस्टलों में रह पायेंगे। इन विद्यालयों में पुरूष बन्दियों के बच्चों को भी दाखिला दिया जायेगा।

तमिलनाडु बन्दीगृह विभाग

गाँधी जी ने कहा था कि बन्दी राज्य के अश्रित हो न कि गुलाम। तमिलनाडु सरकार ने वर्ष 1980 में प्रथम महिला बन्दीगृह वेल्लोर में व दूसरा 1872 में मद्रास में स्थापित किया। इसके पश्चात् महिला बन्दियों के कल्याण हेतु किये जाने वाले प्रयास में पुझल में भी महिला बन्दियों के लिये विशेष बन्दीगृह बनाये गये हैं। इन बन्दीगृहों में ध्यान केन्द्र, पुनर्वास केन्द्र, ओपन थियेटर, जिम्नेशियम, कम्प्यूटर ट्रेनिंग आदि की व्यवस्था की गई थी। यहाँ पर कैदियों को सप्ताह में एक बार मिष्ठान व चिकन भी दिया जाता था। स्वैच्छिक संगठन भी विशेष अवसर या त्योहारों पर विशेष भोजन दे सकते हैं तथा मनोरंजन के सभी साधन भी उपलब्ध थे।

तमिलनाडु में 9 केन्द्रीय बन्दीगृह, महिला के लिये 3 विशेष बन्दीगृह, 12 बोर्स्टल स्कूल, 5 विशेष उप–जेल (2 पुरूष व 3 महिलाओं हेतु) तथा 21 खुले बन्दीगृह हैं।

आन्ध्रप्रदेश बन्दीगृह विभाग

आन्ध्रप्रदेश में दो विशेष महिला बन्दीगृह विद्यमान हैं, जिसमें महिला चिकित्सा अधिकारी व नर्सिंग स्टॉफ की पूर्णकालिक व्यवस्था है। यहाँ महिलाओं को व्यावसायिक प्रशिक्षण भी दिया जाता है तथा माता को बच्चों के साथ बच्चे की पाँच वर्ष की अवधि पूर्ण होने तक रखे जाने की व्यवस्था है।

मध्यप्रदेश बन्दीगृह विभाग

मध्यप्रदेश में बन्दीगृह व्यवस्था में महिला एवं पुरूषों के लिये पृथक–पृथक वार्डों की व्यवस्था है। गर्भवती महिला एवं शिशुओं के साथ वाली महिला बन्दियों के लिये बन्दीगृह में विशेष व्यवस्था उपलब्ध है। मध्यप्रदेश बन्दीगृहों में महिला बन्दियों को लकड़ी के खिलौने एवं गुड़िया बनाये जाने जैसे कुटीर उद्योगों का भी प्रशिक्षण दिया जाता है।

शिक्षित बन्दियों को पढ़ने–लिखने की ओर प्रोत्साहित किया जाता है। प्रत्येक जेल में शिकायत पेटी भी रखे जाने का अनुदेश है। मध्यप्रदेश में कुल 122 बन्दीगृह हैं। इन बन्दीगृहों की कुल क्षमता 24,103 है तथा बन्दियों की वास्तविक संख्या उससे काफी ज्यादा है।

केरल बन्दीगृह विभाग

केरल में महिला बन्दियों के कल्याण हेतु प्रयास के तौर पर उन्हें उचित प्रशिक्षण देकर पुनर्वास की प्रक्रिया अपनाई जा रही है। इस प्रक्रिया मे महिला बन्दियों को परिवीक्षा पर रिहा करने का प्रयास किया जाता है। इस परिवीक्षा का उद्देश्य उनकी समाज में पुनःस्थापना करना है। कानून उसे उसके दण्ड के साथ लगे लांछन को स्वयं दूर करने में मदद करता है ।

जिन परिवारों की मुखिया बन्दी महिला ही हो तो उनके बच्चों को बन्दीगृह प्रशासन की शिक्षा सहायता प्रदान करने की योजना है। 14 से 21 वर्ष की महिलायें जिन्हें सुधारगृह से रिहाई होने के बाद रहने का कोई स्थान नहीं होता उन्हें यहाँ आश्रय देने व स्वयं के पैरों पर खड़े होने के लिये व्यावसायिक प्रशिक्षण देने की भी व्यवस्था होती है।

महिला बन्दियों की बन्दीगृह से सम्बन्धित समस्यायें

जेल मेन्युअल में विचाराधीन महिला बन्दियों एवं दोषसिद्ध महिला बन्दियों में भेद किया जाता है। दोषसिद्ध महिला बन्दियों को कार्य पर लगाया जाता है विचाराधीन बन्दियों को नहीं। विचाराधीन महिला बन्दियों को किसी कार्यक्रम में भी शामिल नहीं किया जाता है।

भारत में ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में बन्दीगृहों में क्षमता से अधिक बन्दियों को रखे जाने की समस्या है जिसका संसाधनों के आवंटन, सुरक्षा, रहने की स्थितियों आदि सभी पर असर पड़ता है। महिला बन्दीगृहों में भीड़ अधिक होने के कारण हैं– कई दशकों से महिला द्वारा अपराधों किये जाने में वृद्धि होना, महिला बन्दियों में वृद्धि होने से उनके लिये स्थानों में अपेक्षाकृत वृद्धि न होना, महिला बन्दियों को हर शहर के बन्दीगृह में रखना सम्भव नहीं होता अतः उन्हें केन्द्रीय बन्दीगृह या विशेष महिला बन्दीगृहों में स्थानांतरण होने के कारण स्थान की कमी हो जाती है। इसके अतिरिक्त, एक मुख्य कारण यह भी है कि महिला बन्दियों को बन्दीगृह में विचाराधीन के रूप में वाद लम्बित होने की स्थिति रहना पड़ता है।

महिला बन्दियों के बन्दीगृहों में रहने की स्थितियाँ

अधिकतर बन्दीगृहों में महिलाओं एवं पुरूषों को रखने की पृथक–पृथक व्यावस्थायें होती हैं। उनके लिये निर्धारित क्षेत्रों से वे अकेले बाहर आ–जा नहीं सकती हैं।

किसी को भी बन्दीगृह में अधीक्षक की अनुमति के बिना महिला बन्दियों के बन्दीगृह में आने–जाने की अनुमति नहीं होती है, विशेषकर जब वह कोई

पुरूष हो तो।

प्रत्येक कोठरी में महिला बन्दियों की संख्या इतनी अधिक होती है कि उन्हें जमीन पर बिस्तर लगाकर सोना पड़ता है। स्थान की कमी होने से शारीरिक गतिविधियों की कमी के होने के कारण मांसपेशियों में जटिलता व बदन में दर्द आदि की समस्यायें रहती हैं।

महिला बन्दियों के बन्दीगृहों में आवास व रसोई की समस्या

अधिकतर राज्यों में महिला बन्दियों के बन्दीगृहों या अन्य बन्दीगृहों की स्थिति खराब है। इमारतें पुरानी एवं उचित देखरेख न होने से गन्दी व सीलन भरी हैं। बिजली की फिटिंग्स भी सुरक्षा के हिसाब से ठीक नहीं है।

इसके अतिरिक्त, रसोई में फर्श आदि का टूटा होना तथा रसोई की साफ–सफाई में कमी, सब्जी व दालों को ठीक प्रकार से धोकर न बनाना, आटा चक्की की बेस्वाद रोटियाँ, दूध में पानी की अधिकता, बर्तनों की सफाई ठीक से न होना आदि उनका उचित निरीक्षण न होने से गन्दगी फैली ही रहती है।

महिला बन्दियों की बन्दीगृहों में आहार व्यवस्था

महिला बन्दीगृहों के बन्दियों में आहार जेल मेन्युअल में दिये अनुसार नहीं दिया जाता है जबकि चिकित्सक की सिफारिश पर बीमार, रोगी, शिशु वाली माताओं, गर्भवती महिलाओं आदि के लिये विशेष आहार की व्यवस्था होना चाहिये।

महिला बन्दियों की बन्दीगृहों में वस्त्र एवं अन्य आवश्यक वस्तुयें

दोषसिद्ध महिला बन्दियों के लिये बन्दीगृह में वर्ष में एक बार दो जोड़ी सफेद सूती पोशाक दी जाती है। विचाराधीन बन्दियों को वस्त्र जेल प्रशासन द्वारा नहीं दिये जा सकते है। उन्हें दो–चार कपड़े घर से लाये गये रखे जाने की अनुमति दी जाती है। करवा चौथ, दीपावली जैसे त्योहारों पर अच्छे वस्त्र पहनने व मेंहदी लगाने की छूट दी जाती है। प्रत्येक बन्दी को नहाने व कपड़े धोने के लिये साबुन, टूथपेस्ट, तेल व कंघी दी जाती है। बन्दियों को दिए जाने वाले इन सामानों की गुणवत्ता की जांच के लिये कोई निगरानी नहीं रखी जाती है। कई महिला बन्दीगृहों में महिलाओं को सेनेटरी नेपकिन के स्थान पर मोटा कपड़ा इस्तेमाल करने को दिया जाता है।

महिला बन्दियों को बन्दीगृहों में शिक्षा व साक्षरता

वर्तमान में लगभग सभी बन्दीगृहों में एन.जी.ओ. के माध्यम से औपचारिक या अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। इसका उदाहरण दस्यु सुन्दरी

फूलन देवी है जिसने बन्दीगृह में ही पढ़ना–लिखना सीखा था। इस हेतु जेलों में पुस्तकालय की सुविधायें भी दी जाती हैं।

महिला बन्दियों को बन्दीगृहों में चिकित्सा

जेल मेन्युअल के अनुसार महिला बन्दियों के बीमार होने पर उन्हें महिला चिकित्सकों द्वारा ही स्वास्थ्य परीक्षण कराया जाना चाहिये। महिलायें किसी भी उम्र की क्यों न हों उन्हें स्वास्थ्य समस्याओं का सामाना करना ही पड़ता है। बन्दीगृहों में महिलाओं को अपेक्षाकृत ज्यादा समस्या होती है। जेल में प्रवेश के समय भी उनकी पूरी जाँच की जाती है।

कई बार महिलायें बन्दीगृह में आने के बाद मानसिक तनाव में रहती हैं, अवसाद व बैचेनी होना स्वाभाविक है। उन्हें नींद न आने की समस्या भी होती है। कई बार चिकित्सक विशेषज्ञ को रेफर नहीं करते हैं।

महिला बन्दीगृहों में महिला बन्दियों के बच्चे

महिला बन्दियों को बच्चे की आयु पाँच वर्ष तक की होने तक अपने पास बन्दीगृह में रखे जाने की अनुमति होती है। उसके पश्चात् उसे परिवार के पास भेज दिया जाता है। उसके बाद जेल के नियमों के अनुसार दिन में आकर जेल में वह अपनी माता से मिल सकता है। यदि महिला बन्दी के परिवार में उस बच्चे को रखे जाने की व्यवस्था न हो तो उसे किसी एन.जी.ओ. के सहयोग से बालगृह आश्रम में रखे जाने की व्यवस्था की जाती है।

बन्दीगृह में छोटे शिशुओं के लिये विशेष आहार की भी व्यवस्था होती है तथा बीमार होने पर उन्हें शिशु रोग विशेषज्ञों को ही दिखाया जाना चाहिये।

महिला कैदियों के बच्चे की समस्या पर न्यायाधीश अय्यर समिति की रिपोर्ट में कहा था कि भारत में कुछ बन्दीगृहों को छोड़कर शेष बन्दीगृहों में महिला बन्दियों के साथ बच्चे रखने की स्थिति संतोषजनक नहीं थी। बन्दीगृह में उनकी शिक्षा व पुनर्शिक्षा की उपेक्षा की जाती थी तथा बच्चे 8–9 वर्ष के होने तक माता के साथ बन्दीगृह में ही रहते थे।

महिला बन्दियों के बच्चे दो प्रकार के होते हैं। एक उस वर्ग के जिन्हें माता के बन्दीगृह में रहने पर परिवार के पास छोड़ा जा सकता है तथा दूसरा उस आयु के बच्चे जिन्हें माता से अलग नहीं किया जा सकता है।

एक एन.जी.ओ. ने इसे निम्न समूहों में विभाजित किया है–

1. बन्दियों के हिरासत में होने के दौरान बन्दीगृह में पैदा हुये बच्चे।
2. बन्दीगृह में बन्दी माता के साथ आये कम आयु के बच्चे।

3. दोनों अभिभावकों के बन्दीगृह में जाने से घर में छूटे बच्चे

बन्दीगृह में महिला बन्दियों के बच्चों पर हुये कुछ अध्ययनों के आधार पर कहा जा सकता है कि बन्दीगृह में बच्चों के लिये प्रशिक्षित कर्मचारी नहीं होते हैं, जो उनकी शारीरिक या भावनात्मक अपेक्षाओं को पूरा कर सकें। न ही बन्दीगृह में बच्चों के लिये खाने की उचित व्यवस्था होती है, उसे अपनी माता के खाने में से ही खाना पड़ता है। बढ़ती उम्र में उन्हें पौष्टिक आहार की आवश्यता होती है जो उन्हें नहीं मिल पाता है। बन्दीगृह में बच्चों का जीवन किसी त्रासदी से कम नहीं होता है। वे तो बिना किसी जुर्म की सजा काटते हैं तथा समाज के अपराधी वर्ग के मध्य अपना जीवन व्यतीत करने को मजबूर होते हैं।

बन्दीगृह में बच्चों की उचित शिक्षा एवं मनोरंजन का भी अभाव होता है तथा आवश्यकता होने पर भी उचित चिकित्सकीय सुविधायें उपलब्ध नहीं होती हैं। माता के बन्दीगृह में होने पर महिला के बच्चों का बाहर का जीवन भी कठिन होता है। उन्हें भी बाहर समाज के व्यंग्य व ताने सुनने पड़ते हैं। ऐसे बच्चे कई बार अपराध की दुनिया में चले जाते हैं।

महिला बन्दियों को सदैव यह चिंता बनी रहती है कि बन्दीगृह से बाहर जाने के बाद उसे समाज व परिवार अपनायेगा या नहीं। परन्तु हमारे यहाँ पुरूषों को यह चिंता नहीं होती है यह हमारे जीवन की विडम्बना है। महिला बन्दियों को रिहा होने के बाद भी परिवार में जाने पर परिवार के सदस्यों की उसके प्रति कोई संवेदनशीलता नहीं होती है। उसके रिहा होने पर उसके बच्चे भी समाज में स्वयं को असहज महसूस करते हैं।

एक अध्ययन रिपोर्ट से यह ज्ञात होता है कि यू.एस. में 80% महिला बन्दी मातायें हैं, ब्राजील में 87%, यू.के. में 66% महिला बन्दी मातायें हैं।

माता के जेल में रहने पर बच्चों के अधिकारों पर प्रभाव पड़ता है। इस ओर ध्यान नहीं दिया जाता है, जबकि बच्चों के अधिकारों पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। न्यायिक प्रक्रिया में बच्चों के प्रति अनजाने में अपराध हो जाता है। इस बात पर कोई ध्यान नहीं देता है। न्यायाधीश निर्णय देते समय केवल अपराधी पर ध्यान देते हैं। अपराधी की शेष जिम्मेदारी पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है।

विभिन्न प्रकार की रिपोर्टों पर ध्यान दे तो पाते हैं कि इन परिवारों के माता–पिता दोनों या दोनों में से एक भी बन्दीगृह में हो तो बच्चे मानसिक व शारीरिक हिंसा का शिकार होते हैं, विशेष रूप से तब जब माता बन्दीगृह में हो। ऐसे बच्चे कई बार अपराधिक गतिविधियों से जुड़ जाते हैं।

जब किसी बच्चे के माता–पिता दोनों या दोनों में से एक भी, जब बन्दीगृह

में जाते हैं, तो उन्हें कई बार इतना गहरा शारीरिक या मानसिक आघात लगता है कि उससे उबरना सम्भव नहीं हो पाता। अतः वे उस कच्ची उम्र में ही मादक पदार्थों का सेवन, मदिरापान, तम्बाकू, चरस लेने, तनाव आदि के शिकार हो जाते हैं। बच्चे इस स्थिति में न आये इसके लिये उन्हें समय–समय पर माता से मिलाने के लिये जेल में ले जाना चाहिये।

महिला बन्दियों को बन्दीगृह में प्राप्त निःशुल्क विधिक सहायता

विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के अन्तर्गत राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण, राज्य स्तर पर राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण और तालुका स्तर पर तालुका विधिक सेवा प्रधिकरण कार्यरत है। इन सभी विधिक सेवा संस्थाओं द्वारा प्राधिकरण समिति कार्यरत हैं। इन सभी विधिक सेवा संस्थाओं द्वारा समाज के कमजोर वर्ग के व्यक्तियों को विधिक सहायता उपलब्ध कराई जाती है।

विधिक सहायता के तहत पात्र व्यक्तियों को निःशुल्क कानूनी सहायता उपलब्ध करवायी जाती है। इस विधिक अधिनियम में न्याय सुलभ तथा सामान्य व्यक्ति की पहुँच के अन्दर हो, इस उद्देश्य से लोक अदालतें आयोजित किये जाने सम्बन्धी प्रावधान हैं। इस अधिनियम के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1) समाज के कमजोर वर्गों के लिये निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करना;

2) मामलों के त्वरित निपटारे हेतु लोक–अदालतें आयोजित करना;

3) ऐसी न्याय–व्यवस्था लागू करना जिसके अधीन सभी को समान–न्याय के अवसर उपलब्ध हों,

4) संविधान के अनुच्छेद 39(क) के उपबन्धों को कार्यान्वित करने हेतु गरीबों के लिये निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करना।

राज्य के विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं के अन्तर्गत लाभ प्राप्त करने के लिये विधिक परामर्श एवं सहायता उपलब्ध करवाई जाती है। इसके अतिरिक्त, विधिक साक्षरता शिविर एवं अन्य कार्यक्रम आयोजित कर विधिक साक्षरता एवं जागरूकता लायी जाती है। विधिक संस्थाओ की ओर से विधिक सेवायें, पैनल अधिकवक्तागण व पैरा लीगल वालेंटियर्स के माध्यम से उपलब्ध कराई जाती है।

विधिक सहायता निम्नलिखित व्यक्ति प्राप्त कर सकते हैं–

1. ऐसे व्यक्ति जिनकी वार्षिक आय पच्चीस हजार रूपये से अधिक नहीं हो।

2. महिला एवं बालक।

3. अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लोग।

4. मानसिक अस्वस्थ।

5. विचाराधीन बन्दी या कैदी।

6. अभिरक्षा में निरूद्ध व्यक्ति

7. औद्योगिक कर्मकार।

8. प्राकृतिक आपदा बाढ़, हिंसा, भूकम्प से पीड़ित व्यक्ति।

9. मानव दुर्व्यापार एवं बेगार से पीड़ित व्यक्ति।

निःशुल्क विधिक सेवायें–

निःशुल्क विधिक सेवाओं में निम्नलिखित शामिल हैं–

* किसी कानूनी कार्यवाही में न्यायालय का शुल्क एवं देय अन्य प्रभार अदा करना;
* कानूनी कार्यवाही में निःशुल्क अधिवक्ता उपलब्ध कराना;
* कानूनी कार्यवाही में आदेशों आदि की प्रमाणित प्रतियाँ प्राप्त कराना;
* कानूनी कार्यवाही में अपील और दस्तावेज का अनुवाद एवं छपाई सहित पेपर बुक तैयार करना;
* विधिक लेख तैयार करना।

(राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (नालसा) की विस्तृत वर्णन अध्याय–11 में)

मुल्ला समिति की सिफारिशें

बन्दियों में सुधार हेतु न्यायाधीश ए.एन. मुल्ला की अध्यक्षता में वर्ष 1980 में गठित अखिल भारतीय समिति, 1980–83, ने 31 मार्च, 1983 को अपनी रिपोर्ट गृह मंत्रालय में प्रस्तुत की, जिसमें राष्ट्रीय कारागार आयोग का सुझाव था जो भारतीय बन्दीगृहों के आधुनिकीकरण की प्रगति का निरन्तर मूल्यान्कन करता रहे।

किसी भी संगठन की क्षमता को वहाँ कार्यरत कर्मचारियों की योग्यता, प्रशिक्षण एवं प्रोत्साहन से आंकलित किया जाता है। जहाँ मशीनों के स्थानों पर व्यक्तियों से काम लिया जाता है, यह उन संगठनों के लिये और अधिक अपेक्षित है। संगठन प्रशासन को कार्य के लिये कर्मचारियों के चयन और प्रशिक्षण पर और अधिक ध्यान देना आवश्यक है। इन कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिये

वर्दीधारी सेवाओं के अतिरिक्त अन्य निम्नलिखित पहलुओं पर ध्यान दिया जाना चाहिये–

1) शारीरिक स्वास्थ्य एवं साहस;

2) नेतृत्व एवं प्रबन्धन की क्षमता एवं निर्भरता;

3) सहनशील एवं संतुलित व्यक्तित्व;

4) मानव सम्बन्धों एवं समाज कल्याण में रूचि;

5) किसी भी संगठन की कार्यप्रणाली को प्रभावी बनाने के लिये अपने कर्मचारियों की सेवा स्थितियों की उपेक्षा करना सम्भव नहीं है। बन्दीगृह विभाग में कार्य करने के लिये बन्दीगृह प्रशासन में सेवा की शर्तों को उचित एवं आकर्षक होना चाहिये जिससे इस विभाग में कार्य करने के लिये उपयुक्त योग्यता, सही दृष्टिकोण व अपेक्षित योग्यता के साथ–साथ मन लगाकर कार्य करने वाले इस ओर आयें।

6) बन्दीगृह के बन्दियों एवं कार्यरत कर्मचारियों के मध्य सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने के लिये कार्यरत कर्मचारियों के लिये सेवा की शर्तों को इस प्रकार से आकर्षक बनाये रखना होगा जिससे कि वे बन्दीगृह में कार्य करते हुये काम करने की संतुष्टि महसूस करें। कुछ देशों में बन्दीगृहों के कर्मचारी को समाज में अच्छी मान्यता दी जाती है।

7) बन्दीगृह के कर्मचारियों के लिये व बन्दियों दोनों के लिये कल्याणकारी कार्यक्रम प्रारम्भ किये जाने चाहिये।

8) बन्दीगृह प्रशासन को ध्यान रखना चाहिये कि बन्दीगृह में कार्य करने वाले कर्मचारियों की आवासीय व्यवस्था उचित हो एवं उनका आवास बन्दीगृह कैम्पस में ही हो, जिससे वे किसी भी समय आवश्यकता होने पर या आपातस्थिति में तुरन्त बन्दीगृह क्षेत्र में पहुँच सकें।

9) बन्दीगृह में कार्यरत कर्मचारियों द्वारा अच्छा कार्य करने पर उन्हें प्रोत्साहित करने के लिये समय–समय पर प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जाना चाहिये।

बन्दीगृह में रह रही महिलाओं पर हुये एक सर्वेक्षण के दौरान उन महिला बन्दियों से कुछ प्रश्न पूछे गये जिनके उत्तरों से प्राप्त निष्कर्षों में उनकी व्यथा, समस्यायें एवं चिन्तायें स्पष्ट होती हैं। उनके द्वारा दिये गये उत्तरों से भीतर की

तस्वीर बिना कुछ विस्तृत व्याख्या के स्पष्ट हो जाती है, जैसे – उनके अनुसार बन्दियों की स्थिति ऐसी है कि–

1) यहाँ प्रत्येक दण्ड मरने के समान है।

2) किसी ने बताया कि इस बन्दीगृह की चार दीवारी में मुझे घुटन होती है तथा ऐसा महसूस होता है कि जैसे किसी ने मुझे यहाँ पर बाँध रखा है।

3) बन्दीगृह में आने के बाद से मेरा दिमाग काम ही नहीं कर रहा है। मुझ पर अपना ही नियन्त्रण नहीं रहा है।

4) यहाँ पर आने के पश्चात् से मुझे मेरे घर, परिवार एवं बच्चों की बहुत याद आती है। मैं उनके बारे में सोच–सोच कर बैचेन होती रहती हूँ और पागल सी हो जाती हूँ।

5) बन्दीगृह में आने के बाद से ही यह समझ में आने लगा कि मैं यहाँ कुछ भी अपनी मर्जी या अपनी इच्छा से नहीं कर सकती हूँ।

6) कुछ ने तो यह भी कहा कि हमसे ऐसा कुछ भी न पूछो जिसका जवाब हम चाहते हुये भी न दे पायें।

7) यहाँ पर मेरे से साथ जो भी हुआ, सोच कर आत्महत्या करने का मन करता है, एक महिला बन्दी की बन्दीगृह में ऐसी हालत है।

इन बन्दियों से बन्दीगृह की स्वच्छता के बारे में जानने का प्रयास किया गया तो उनका कहना था कि हमने तो स्वच्छता के बारे में सोचना तक छोड़ दिया है। यहाँ पर सदैव ही बदबूदार माहौल रहता है। यह इसलिए की शायद बन्दीगृह की क्षमता से अधिक दण्ड होने पर सफाई कैसे रह सकती है। यहाँ पर महिलायें इतनी अधिक परेशान हैं कि अब उन्हें कंघी तक करने का मन नहीं करता है। वे कई बार अकेले रहना चाहती हैं। उन्हें थोड़ा एकान्त चाहिये, क्योंकि बन्दीगृह में क्षमता से अधिक बन्दी होने के कारण उन्हें इन बन्दीगृहों में ठूँस–ठूँस कर रखा जाता है।

इन महिला बन्दियों को अकेले में भी किसी के होने का डर रहता है। यहाँ तक की नहाते समय, शौचालय व सोते समय उनको ऐसा लगता है जैसे हर कार्य करते समय उन्हें कोई देख रहा है।

प्रतिदिन उपयोग हेतु दिये जाने वाले सामान में साबुन, तेल, टूथपेस्ट, मसिक धर्म में सेनेटरी नेपकिन आदि तथा सामान्य दर्द में दर्द निवारक गोलियां आदि तो दी जाती है परन्तु उसकी गुणवत्ता बिलकुल अच्छी नहीं होती है।

न्यायाधीश मुल्ला समिति ने बन्दीगृहों को अद्यतन बनाने एवं बन्दियों की

दशा को सुधारने हेतु राज्यों को पर्याप्त राशि आवंटित किए जाने की सिफारिश की, लेकिन आर्थिक कठिनाइयों के कारण संघ द्वारा इसे स्वीकार नहीं किया गया।

''इस समिति ने बन्दियों को नये सिरे से वर्गीकरण की आवश्यकता को प्रतिपादित करते हुये, उनकी समस्याओं के निराकरण के लिये अन्य देशों की तरह ही भारत में भी लोकपाल की नियुक्ति की जाने की सिफारिश की। इस समिति ने निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये थे–

(i) बन्दियों की दशा सुधारने के लिये उनकी स्वच्छता, हवादारी, बन्दियों के भोजन, वस्त्रों आदि का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिये।

(ii) बन्दीगृहों के कर्मियों एवं प्रशासकों को विभिन्न संवर्गों में वर्गीकृत करके उनके प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिये।

(iii) बन्दियों को उत्तर वीक्षा, पुनर्वास तथा पैरोल एवं परिवीक्षा को बन्दीगृह व्यवस्था का अभिन्न अंग माना जाना चाहिये।

(iv) प्रचार माध्यम से सम्बन्धित व्यक्तियों तथा लोकसेवी संस्थाओं के प्रतिनिधियों को समय–समय पर बन्दीगृह के निरीक्षण की सुविधा प्रदान की जानी चाहिये ताकि जनता को बन्दीगृहों की वास्तविक स्थिति के बारे में जानकारी प्राप्त हो सके और बन्दियों के पुनर्वास में उनका सक्रिय सहयोग मिल सके।

(v) बन्दीगृहों में विचाराधीन बन्दियों को सिद्धदोष बन्दियों से पृथक रखा जाना अति आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, विचाराधीन बन्दियों के लिये शीघ्र विचारण व्यवस्था होनी चाहिये ताकि उन्हें कम से कम जेल में निरोधित रहना पड़े।

(vi) बन्दीगृहों के उचित रख–रखाव हेतु सरकार को पर्याप्त वित्तीय अनुदान दिया जाना चाहिये।

◆ ◆ ◆

अध्याय – 7

बन्दियों के लिये खुले शिविर के अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य

बन्दीगृह व्यवस्था के अनुसार बन्दीगृहों के मुख्य उद्देश्य हैं, अपराधियों को समाज से पृथक रखना तथा अपराधियों को समाज में पुर्नस्थापित करने के लिये उनकी उन परिस्थितियों का निवारण करना जिसके कारण उन्होनें अपराधिक कृत्य किया था। इसके लिये बन्दी को उसकी दण्डावधि की उत्तर–वीक्षा (after-care) उचित रूप में की जाये, जिससे उसे समाज में पुनः आसानी से पुर्नस्थापित किया जा सके।

बन्दियों को सुधारने के लिये उपचारात्मक दण्ड प्रणाली में बन्दियों के पुनर्वास की प्रक्रिया के रूप में पैरोल का प्रावधान सफल सिद्ध हुआ है। बन्दीगृह में दण्डावधि भोग रहे बन्दियों के लिये खुले शिविर (open jail) भी पैरोल का ही एक विस्तृत रूप है। खुले शिविर की प्रणाली का प्रारम्भ बीसवीं शताब्दी के मध्यकाल में हुआ था। इन शिविरों में बन्दियों को जेल से रिहा होने के पश्चात् व्यापक उत्तर–वीक्षा के द्वारा पुनः समाज में सामान्य जीवन जीने के लिये तैयार किया जाता था।

'ऐंग्लो–अमेरिकन दण्डशास्त्रियों ने अनुभव किया कि दोषसिद्ध अपराधियों को उद्देश्य रहित दण्ड दिये जाने के स्थान पर रचनात्मक पुनर्वास की प्रक्रिया उन्हें समाज में पुनर्स्थापित करने के अधिक अच्छे परिणाम देगी। पिछले पचास वर्षों मे परिवीक्षा, पैरोल, अनियम दण्ड, किशोर न्यायबोर्ड आदि (खुले शिविरों) की स्थापना की गई है। इन खुले शिविरों में बन्दियों को निर्माण स्थल, औद्योगिक प्रतिष्ठान, कृषि फार्म में काम पर लगाया जाता है, ताकि वे बन्दीगृहों के आलस्य व उबाऊ वातावरण में बने रहें।'[24]

खुले शिविर

बन्दीगृह में दण्डावधि भोग रहे अपराधियों को सुधारने या उपचार करने के लिये उनकी रूचि एवं योग्यता के अनुसार किसी कार्य या व्यवसाय को आसान करने के उद्देश्य से खुले शिविर की बन्दीगृह व्यवस्था लागू की गई है। 'खुले शिविर' की परिभाषा में विभिन्न विद्वानों के मत अलग–अलग हैं। कुछ विद्वान इसे बन्दियों के लिये खुले शिविर कहना उचित समझते हैं, वहीं अन्य विद्वान इन्हें पैरोल के रूप कहना सही समझते हैं। अतः खुली जेल (खुले शिविर) अर्थात् ऐसी बन्दीगृह व्यवस्था, जिसमें अपारधियों को दण्डित करने के उद्देश्य से न रखकर उनको सुधार हेतु रखा जाता है। **'अपराध निवारण एवं अपराधों के उपचार'**

पर वर्ष 1985 मे जिनेवा में 'संयुक्त राष्ट्र कांग्रेस' का अधिवेशन आयोजित किया गया। इस अधिवेशन में खुली जेल को परिभाषित करने का प्रयास करते हुये कहा गया कि ''बन्दीगृह, बन्दीगृहों में दण्डावधि भोग रहे बन्दियों के लिये एक ऐसी संस्था है, जिसमें दीवारें, ताले, लोहे की सींकचे व हथियार बन्द सुरक्षाकर्मी आदि का भय नहीं होता तथा इस व्यवस्था में बन्दियों को स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करने का अवसर दिया जाता है जिससे बन्दीगृह व्यवस्था में रह रहा प्रत्येक बन्दी स्वतः अनुशासन की ओर अग्रसर हो तथा स्वयं का उत्तरदायित्व समझ सके। बन्दियों के लिये खुले जेल का प्रमुख लक्षण उन पर भौतिक एवं शारीरिक बन्धन की न्यूनता है, जो उनके जेल से भागने के विरूद्ध अपनायी जाती है।

अतः खुली जेल, समाज की वह महत्वपूर्ण संस्था है, जिसमें अपराधियों को स्वयं ही सुधरने का पूर्ण अवसर दिया जाता है, अर्थात् खुले शिविर ऐसे बन्दीगृह हैं, जिसमें बन्दियों पर न्यूनता रखी जाती है तथा जिससे वे दण्डावधि की समाप्ति या रिहाई के पश्चात् स्वयं को समाज में पुनर्वासित कर सके। विश्व मे इंग्लैण्ड और वेल्स के बन्दीगृह आयोग के अध्यक्ष सर लाइनेल फॉक्स ने खुले शिविरों की उपयोगिता बताते हुये कहा कि बन्दीगृह व्यवस्था में अपनाई जाने वाली विभिन्न तकनीकों में खुली कारागार पद्धति सर्वाधिक उपयोगी एवं प्रभावी सिद्ध हुई है, क्योकि इससे बन्दियों में आत्मसम्मान व आत्म अनुशासन का जन्म होता है। जो उन्हें सामान्य जीवन की ओर लौटने में सहायक होती है।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, कैलीफोर्निया, यूनाइटेड किंगडम, नीदरलैण्ड, फ्रांस, नार्वे, स्वीडन, हंगरी, बेल्जियम, आस्ट्रेलिया, थाईलैण्ड आदि देशों में खुली जेल प्रणाली काफी समय से चली आ रही है। इन देशों में खुले जेलों को सुधार गृह, सुधार फार्म, पुर्नस्थापन गृह, जेल शिविर, आदि नामों से संचालित किया गया है। इनका उद्देश्य अपराधियों को सुधारने के साथ–साथ उन्हें हर तरह से योग्य व सक्षम बनाकर समाज में सम्मानपूर्वक जीने का अवसर दिलवाना है।

खुले शिविरों का इतिहास

उन्नीसवीं शताब्दी में अमेरिका में बन्दीगृह क्षेत्र के रूप में बन्दीगृहों के खुले शिविर आस्तित्व में आये। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में स्विटजरलैण्ड में विट्वविल संस्थान नामक एक अर्ध खुले कारागार की स्थापना भी की गई।

यू के प्रिजन कमीशन के सदस्य सर एलेक्जेंडर पिटरसन ने वर्ष 1922 में 1927 के दौरान माडर्न जेल के विचार को आस्तित्व में लाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अतः वर्ष 1980 में ब्रिटेन में खुली जेलों का प्रारम्भ हुआ जिसमें तत्कालीन बन्दीगृह आयोग के सचिव सदस्य एलेक्जेंडर पिटरसन ने उल्लेखनीय योगदान देकर इसे प्रारम्भ किया। उस समय खुली जेलों को **'न्यूनतम सुरक्षा संस्थायें'** भी कहा गया। बन्दीगृहों की यह व्यवस्था निम्न सिद्धान्तों पर आधारित थी–

प्रथम, किसी भी अपराधी को बन्दीगृह में दण्डस्वरूप भेजा जाता है न कि दण्ड के लिये।

द्वितीय, किसी अपराधी व्यक्ति पर जब तक उस पर लगाई गई बन्दिशों व परिरोधों से मुक्त न कर दिया जाये तब तक उन्हें स्वतन्त्र जीवन जीने के किये प्रशिक्षित नहीं किया जा सकेगा।

तृतीय, बन्दीगृह में रह बन्दी (अपराधी) को विधि का अनुशरण करने वाला सामान्य सदाचारपूर्णी व्यक्ति बनाने के लिये बन्दीगृह के आन्तरिक जीवन व बाहरी स्वतन्त्र जीवन के बीच के अन्तर को कम किया जाना अति आवश्यक है।

चतुर्थ, खुले शिविर प्रमुख रूप से बन्दीगृह में रह रहे अपराधी के प्रति विश्वास पर आधारित है, क्योंकि विश्वास का जन्म होता है।

प्रारम्भ में, बन्दीगृहों में जिन बन्दियों की बन्दीगृह से रिहाई का समय करीब होता था। सामान्यतः बन्दीगृह के जंगली प्रक्षेत्रों में श्रमिक के रूप मे कार्य करने हेतु अन्तरित किये जाते थे। उस समय के खुले शिविर वर्तमान समय के खुले शिविरों से बिल्कुल भिन्न थे। प्रारम्भ में, बन्दियों के खुले शिविर स्वच्छन्द शिविर न होकर 'दास–शिविर' थे। पहरे व निगरानी में बन्दियों से काम लिया जाता था। अतः इन शिविरों द्वारा अनुभव किया गया कि यदि बन्दियों पर विश्वास रखते हुये उन्हें बन्धक विहीन उत्पादक कार्य में व्यस्त रखा जाये, तो वे भागने का प्रयत्न नहीं करेंगे। हालांकि, इस पद्धति में सम्भावना थी कि उचित निगरानी न होने पर बन्दी भाग भी सकते हैं, परन्तु प्रत्यक्ष रूप से भागने वाले बन्दियों की संख्या लगभग नगण्य थी। इसी कारण, समयान्तर में अमेरिका में यह पद्धति अमेरिकी कारागार व्यवस्था का अभिन्न अंग बन गई थी। इस व्यवस्था का सबसे बड़ा गुण था कि इससे बन्दियों में स्वावलम्बन एवं आत्मविश्वास का अनुभव हुआ, जो उनके पुनर्वास के किये आवश्यक है।

खुले शिविरों का विचार सर्वप्रथम यूनाइटेड नेशंस कांग्रेस (यूएनसी) ने सम्भव बनाया था। वर्ष 1955 में यूनाइटेड नेशंस कांग्रेस (यूएनसी) ने जिनेवा में अपराधों पर लगाम कसने एवं बन्दियों को अच्छा व सामान्य जीवन जीने की दिशा में प्रेरित करने हेतु खुले शिविरों के विचार को जन्म दिया था। यह विचार अपराधियों के सामाजिक पुर्नवास और न्यूनतम सुरक्षा में अपराधियों के जीवन में परिवर्तन लाने का एक तरीका था।

हालांकि खुले शिविरों का विचार समाज व जनता के लिये खतरनाक साबित हो सकता था। इस विचार को अमल में लाने व आकार देने के लिये नियम बनाया गया है कि इन जेलों में ऐसे बन्दियों को रखा जायेगा, जो लम्बी अवधि से जेल की सजा भोगते हुये अब अपराधिक प्रवृत्ति के नहीं रहे हैं। फिर सामान्य अपराधियों को इन जेलों में रहने की अनुमति दी जाये।

विश्व की पहली खुली जेल स्विटजरलैण्ड में स्थापित की गई। इस प्रथम खुले शिविर का नाम विट्सिविल था।

मार्डन जेलों का यह विचार यूके में वर्ष 1930 में आया। यहाँ से यूएसए में वर्ष 1940 में आया। यूएसए में ओपन जेल के विचार का अनुशरण किया गया। यहाँ रहने वाले बन्दियों को जंगल में आयोजित किये जाने वाले शिविरों के माध्यम से उन्हें मजदूर के काम में लगाया जाता था। इसके पश्चात् कैलिफोर्निया में 1915 में अस्तित्व में आया, लेकिन यह वर्ष 1936 में शुरू हो पाया।

खुले शिविरों का मुख्य उद्देश्य बन्दियों में स्वालम्बन व आत्मविश्वास की भावना उत्पन्न करने के लिये तथा उनके पुनर्वास हेतु अतिआवश्यक था। इन खुले शिविरों के प्रारम्भ होने का एक कारण बन्दीगृहों में बन्दियों की संख्या (भीड़) को कम करना भी था। मुख्यतः युद्ध एवं राजीतिक उथल–पुथल के दौरान बन्दीगृहों में बन्दियों के संख्या (भीड़) अत्यधिक बढ़ जाने के कारण बहुत सारे बन्दियों को एक ही कोठरी में ढूँस दिया जाता था, जिससे बन्दीगृह व्यवस्था बिगड़ने लगी थी। इसी समस्या को हल करने के लिये, जिनकी दण्डावधि समाप्त होने वाली थी, उन्हें खुले शिविरों में अन्तरित कर दिया जाता था। इससे खुले शिविर की व्यवस्था के फलस्वरूप राज्य बन्दियों पर होने वाले खर्च अपेक्षाकृत कम हो गया था और साथ ही इन बन्दियों को श्रम कार्यों पर लगाये जाने से सरकार का श्रमिकों को देय या परिश्रामिक की बचत हो जाती है। प्रारम्भ मे इन खुले शिविरों में केवल उन बन्दियों की भेजा गया, जिनके भागने की सम्भावना कम थी, सफल होने पर इसे व्यापक रूप दिया गया था।

खुले शिविर अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य

बन्दीगृह में दण्ड भुगत रहे अपराधियों की उत्तर–वीक्षा के लिये खुले शिविरों की भूमिका को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रभावी साधन माना गया है। संयुक्त राष्ट्र संघ के सामाजिक सुरक्षा खण्ड ने अपराधियों को सुधारने की उपचारात्मक पद्धति द्वारा खुले शिविरों में बन्दियों को रखकर उनके पुनर्वास को आसान किये जाने का सदस्य राष्ट्रों को आश्वासन दिया था। यह भी कहा गया था कि यदि बन्दीगृहों के भीतर एवं बाहर (सामान्य) के जीवन का अन्तर यथासम्भव कम किया जाये, तो बन्दीगृहों में रह रहे अपराधियों पर इसका अनुकूल प्रभाव पड़ेगा और वे सुधार की ओर अग्रसर होंगे।

बन्दीगृहों में खुले शिविरों की व्यवस्था अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मुद्दा सर्वप्रथम 1955 जिनेवा में आयोजित **'अपराध निवारण एव अपराधियों का उपचार'** विषय पर राष्ट्र संघ में प्रथम सम्मेलन में उठाया गया। सदस्य राष्ट्रों ने भी इस न्यूनतम सुरक्षा वाले खुले शिविरों को अपनाये जाने की स्वीकृति दे दी। इस सम्बन्ध में सभी राष्ट्रों की एक राय थी कि खुले शिविरों में स्व–अनुशासित

रहने के लिये प्रेरित किया जा सके तथा इन बन्दीगृहों को शिविर कहा जाये और दीवारहीन व न्यूनतम सुरक्षा हो। इसके फलस्वरूप वर्ष 1960 में लन्दन में **'अपराध निवारण एवं अपराधियों के उपचार'** पर आयोजित द्वितीय यू. एन. इन्टरनेशनल कांग्रेस के समय तक **'खुले बन्दी शिविर'** एग्लों–अमेरिकन व्यवस्था का अभिन्न अंग बन गये थे। अतः यह स्वीकार किया गया कि खुले बन्दी शिविर केवल दीर्घ दण्डावधि वाले उन बन्दियों के बन्दीगृह में रहने के पश्चात् उन्हें उनके अच्छे व्यवहार के आधार पर खुले शिविरों में स्थानान्तरित कर सकते हैं।

वर्ष 1955 में जिनेवा में **'अपराध निवारण एव अपराधियों का उपचार'** विषय पर राष्ट्र संघ में प्रथम सम्मेलन में 'खुले शिविरों' पर विस्तृत चर्चा की गई व यह निर्णय लिया गया कि यह व्यवस्था दो सिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिये– प्रथम, इन बन्दीगृहों में दीवारें, सशस्त्र सुरक्षा, बन्दूकें आदि का कम से कम सुरक्षात्मक उपाय होना चाहिये; द्वितीय, बन्दियों में स्वयं की इच्छा से अनुशासित रहने की प्रवृत्ति जागृति की जानी चाहिये।

विश्व के विभिन्न देशों के खुले बन्दीगृह शिविर

1. **अमेरिका के खुले बन्दीगृह शिविरः**– उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में लगभग वर्ष 1915 में अमेरिका के मेसेच्यूसेट्स तथा केलिफोर्निया राज्य में बन्दियों के लिये अनेक खुले शिविर बनाये गये थे। कैलिफोर्निया में खुले शिविरों का प्रारम्भ मुख्यतः इस राज्य के वर्ष 1935 के एक विधेयक से हुई, जिसमें बन्दीगृह व्यवस्था में उल्लेखनीय परिवर्तन हुये। इसमें यह सुनिश्चित भी किया गया था कि बन्दियों के साथ मानवीय व्यवहार किया जाये तथा साधारण बन्दियों को गम्भीर अपराधियों से पृथक रखा जाये। साथ ही व्यावहारिक रूप से सुधारने वाले बन्दियों तथा समाज में पुनर्वासित होने वाले बन्दियों को घोर अपराधियों से पृथक रखा जाना चाहिए। इस व्यवस्था के उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये दक्षिण कैलिफोर्निया के चिनो (Chino) में बन्दियों को रहने एवं कार्य करने को व्यवस्था के साथ 'प्रिज़न फार्म' (Prison Farm) स्थापित करना प्रस्तावित किया गया था, जिसे वर्ष 1938 में सेन **क्वेन्टिन बन्दीगृह** में बन्दियों के बलवे के फलस्वरूप गठित बन्दीगृह आयोग ने इस बन्दीगृह को **न्यूनतम निगरानी वाले शिविर** अर्थात् **खुले शिविर** में बदल दिया।

कैलिफोर्निया के चिनो में खुले शिविर वे पुरूष बन्दियों के लिये बनाये गये, जिसके जेल अधीक्षक कैन्योन जे. श्यूडर (Kenyon J-scudder) नियुक्त हुये और खुले शिविरों की प्रशासनिक व्यवस्था में गति आई। खुले बन्दीगृह शिविरों में सुयोग्य व प्रशिक्षित सुरक्षाकर्मी की नियुक्ति की गई थी। श्यूडर के अनुसार, बन्दियों में वास्तविक सुधार स्वयं के प्रयासों से होना चाहिये न कि आदेश, दबाव

या शीघ्र रिहाई की लालसा से। वर्ष 1941 में केलिफोर्निया में जो बन्दीगृह बनाये गये उस खुले बन्दीगृह शिविर में तीन अधिकारियों के संरक्षण में 34 पुरूष बन्दी रखे गये थे। वर्तमान में, खुले बन्दीगृह शिविरों में बन्दियों की संख्या हजारों में हो गई है। इन खुले शिविरों में बन्दियों को अधिकतर वानिकी कैम्प (Forest camp) में रखा जाता है। इन शिविरों में से 2 से 3 प्रतिशत ही बन्दियों के भागने का प्रतिशत रहा, जो कि बन्दीगृह शिविरों की सफलता को दर्शाता है।

अमेरिका में बन्दियों के उपचारात्मक सुधार हेतु गठित संगठन के घोषणा–पत्र (1960) के अनुसार खुले शिविरों के औचित्य के निम्नलिखित मुख्य कारण हैं–

1) ऐसी कोई विधि, प्रक्रिया या व्यवस्था नहीं होनी चाहिये, जो बन्दियों को भविष्य में पुनः समाज में सामान्य जीवन बिताने के अवसर से वंचित करें।

2) बन्दियों के पुर्नवास हेतु कारावधि के दौरान उनकी शिक्षा, कौशल तथा सार्थक ज्ञान में अभिवृद्धि के प्रयास किये जाने चाहिये, जो खुले–जेलों के स्वछन्द वातावरण में ही सम्भव है।

3) यदि शारीरिक दृष्टि से सक्षम बन्दियों से कारावास की अवधि में कोई उपयोगी श्रम या कार्य नहीं लिया गया, तो यह पुनर्वास–सिद्धान्त के विरूद्ध होगा।

4) खुले बन्दीगृह व्यवस्था में सामूहिक सहयोग एवं सह–आस्तित्व पर विशेष बल दिया जाता है।

5) खुले बन्दीगृह में रहते हुये बन्दी स्वयं समाज से अलग–थलग पड़ा हुआ अनुभव नहीं करता तथा वह सुधार–प्रक्रिया के माध्यम से समाज से जुड़ा रहता है।

6) खुले बन्दीगृह का जीवन बन्दियों को यह अनुभूति दिलाता है कि उन्हें दी गई स्वतन्त्रता का दुरूपयोग न करते हुये स्वयं को समाजोपयोगी बनाने की ओर ध्यान देना चाहिये।

7) खुले– बन्दियों को समाज के विभिन्न घटकों के सम्पर्क में लाने का प्रयास उन्हें सकारात्मक सोच के लिये विवश कर देता है क्योंकि वह परस्पर विश्वास और सहयोग की भावनाओं पर आधारित होता है।'[25]

अमेरिका में अब तक अनेक राज्यों में बन्दियों के लिये न्यूनतम निगरानी–युक्त खुले बन्दीगृह स्थापित किया जा चुके हैं। इन खुले शिविरों में टेक्सास राज्य का सियागोवाइल तथा न्यूयार्क का खुला शिविर उल्लेखनीय है।

इन शिविरों में बन्दियों को अभिरक्षा में नहीं रखकर उन्हें उद्योगों में व्यावहारिक प्रशिक्षण हेतु भेजा जाता है तथा उन्हें स्वछन्द रूप से घूमने की अवसर दिया जाता है। ये सब उन्हें स्वयं की इच्छा से सुधरकर एक अच्छा नागरिक बनाने की ओर प्रयत्न करने से होता है। अमेरिका की बन्दीगृह व्यवस्था में खुले शिविरों का लाभ केवल दीर्घ दण्डावधि वाले बन्दियों को न देकर पैरोल बोर्ड की अनुशंसा पर प्रारम्भिक बन्दियों को भी दिया जाता है।

2. **ब्रिटेन में खुले बन्दी शिविरः—** ब्रिटेन में वर्ष 1924 से 1927 के बीच खुले शिविर का विचार आस्तित्व में आया। इंग्लैण्ड का प्रथम खुला बन्दी शिविर वेकफील्ड के बन्दीगृह से 12 किमी दूरी पर तत्कालीन ब्रिटिश प्रिज़न कमीशन के अध्यक्ष सर एलेक्जेंडर पिटरसन के संरक्षण में शुरू किया गया। वर्तमान में, इंग्लैण्ड में कई खुले शिविर कार्यरत हैं। इनका मूल उद्देश्य बन्दीगृह के भीतरी जीवन एवं बाह्य सामान्य स्वच्छन्द जीवन के मध्य का अन्तर न्यूनतम रहे, जिससे बन्दी दण्डावधि के पश्चात् समाज में एक सामान्य नागरिक की तरह पुनः जीवनयापन कर सके। ब्रिटेन में खुले शिविरों का आधार व्यक्तित्व उपचार पद्धति पर आधारित है तथा ये अधिक आधुनिक एवं सुव्यवस्थित हैं। कुछ वर्ष पूर्व से ब्रिटेन में सुधारने हेतु 'छात्रावास' पद्धति को स्थापित किया है, जिन्हें शिविरों से भी अधिक महत्व दिया जा रहा है।

बन्दियों की दण्डावधि के पश्चात् पुनर्वास हेतु खुले शिविरों की व्यवस्था को अन्य यूरोपियन देशों ने भी प्रभावी माना है। समयानुसार आये बदलावों से बन्दियों के लिये रूढ़िगत बन्दीगृहों का महत्व कम होता जा रहा है और इनके स्थान पर परिवीक्षा, पैरोल, खुले शिविर आदि का प्रयोग बन्दीगृहों में दण्डावधि भोग रहे अपराधियों को सुधारने में किया जा रहा है। यूरोपियन देशों में से कुछ ही देशों ने अर्द्ध खुले बन्दीगृह भी स्थापित किये हैं।

3. **नीदरलैण्ड में खुले बन्दी शिविरः—** नीदरलैण्ड में वर्ष 1957, 1959 एवं 1962 में क्रमशः रोरमोन्ड (Roermond), हूरा (Hoora) में खुले शिविरों की स्थापना की गई है। इन खुले बन्दी शिविरों का प्रयोग केवल उन बन्दियों, जिनकी दण्डावधि पूर्ण होने में कुछ समय शेष है, के पूर्व उपचार—सस्थाओं के रूप में किया जाता है।

4. **फ्रांस में खुले बन्दी शिविर की व्यवस्थाः—** फ्रांस में खुले शिविर एवं अर्द्ध खुले शिविर की स्थापना की गई। फ्रांस के कासाबियंका (Casabianca) में खुले शिविर एवं ओरिमिंगेन (Orimigen) में अर्द्ध खुले शिविर की व्यवस्था की गई थी। वर्ष 1963 में कासाबियंका में खुले शिविर में कुल बन्दियों की संख्या 237 थी तथा ओरिमिंगेन के अर्द्ध खुले शिविर में बन्दियों की कुल संख्या 183 थी। अर्द्ध खुले बन्दी शिविर व्यवस्था में बन्दियों को दिन में श्रम कार्य करते

समय न्यूनतम निगरानी में रखा जाता है, परन्तु रात के समय उन्हें बन्दीगृह में निगरानी में रखा जाता है।

फ्रांस में खुले शिविरों की संख्या अपेक्षाकृत कम है, क्योंकि यहाँ सामान्य बन्दीगृहों में ही बन्दियों को उचित निगरानी में ही बाहर औद्योगिक संस्थानों में कार्य करवाया जाता है, जिससे बन्दीगृहों के व्यय में कमी हो तथा रिहाई के पश्चात् वे स्वावलम्बी व आत्मनिर्भर बने है।

5. **नार्वे व स्वीडन मे खुले शिविर की व्यवस्थाः**– नार्वे व स्वीडन में खुले शिविर व्यवस्था मुख्य रूप से नशाखोरी करने वाले तथा शराब आदि पीने वालों के लिये उपचार की विशेष व्यवस्था के लिये की गयी है। यहाँ खुले शिविरों में बाल एवं किशोर बन्दियों (अपराधियों) के लिये पृथक 'शिक्षा केन्द्र' भी स्थापित किये गये हैं। खतरनाक अपराधियों को खुले शिविरों में अन्तरित किया जाता है जहाँ पर उनके लिये अपेक्षाकृत स्वतन्त्र व खुला वातावरण, स्वच्छन्द विचारों की स्वतन्त्रता भी दी जाती है।

6. **बेल्जियम के खुले बन्दी शिविरः**– बेल्जियम के खुले बन्दी शिविरों की स्थापना का मुख्य उद्देश्य बाल एवं किशोर अपराधियों को सुधारकर पुर्नवास हेतु प्रेरित करना होता है। इन खुले शिविरों में किशोर एवं बाल अपराधियों के लिये प्रशिक्षण की पूर्ण व्यवस्था होती है तथा उनकी शिक्षा पूर्ण होने पर उन्हें उचित रोजगार दिलवाकर, उन्हें दण्डावधि की समाप्ति के पश्चात् समाज में सामान्य नागरिक जीवन के लिये पुनर्स्थापना करना होता है।

7. **हंगरी में खुले बन्दी शिविर व्यवस्थाः**– हंगरी में खुले बन्दी शिविर व्यवस्था अलग प्रकार की है। यहाँ शिविर व्यवस्था में शिक्षाप्रद सुधारात्मक पद्धति का प्रयोग किया जाता है। हंगरी में कम से कम पाँच वर्ष की दण्डावधि के कारावास से दण्डित वयस्क बन्दियों के पुर्नवास हेतु शैक्षणिक सुधारात्मक पद्धति लागू की गई है। इस पद्धति में दोषसिद्ध वयस्क अपराधी को बन्दीगृह में रखने के स्थान पर अन्यन्त्र कार्य पर लगाया जाता है जिससे वह स्वयं को शिक्षित कर सुधार कर पाये। इस प्रकार, अन्य स्थान पर कार्य करना ही उनके लिये दण्ड होता है। इसमें बन्दियों पर न्यूनतम नियन्त्रण रखा जाता है। कार्य करने के दौरान साथ में रहने वाले सहकर्मियों से उसे सुधरने का अवसर मिलता है और कार्य करने के बदले में पारिश्रमिक तो मिलता ही है साथ ही उसके मन में समाज का एक उपयोगी अंग समझे जाने की भावना भी उत्पन्न होती है।

8. **आस्ट्रेलिया की खुले दण्ड शिविर व्यवस्थाः**– वर्ष 1939 में विक्टोरिया राज्य में आस्ट्रेलिया में प्रथम खुले शिविर की स्थापना की गई थी। यह प्रयोग पूर्ण रूप से सफल सिद्ध हुआ, जिससे वर्तमान समय तक खुले बन्दी शिविर की व्यवस्था आस्ट्रेलिया की दण्ड–व्यवस्था का मुख्य अंग बन गया है। इन खुले

शिविरों में केवल प्रत्यावर्ती अपराधियों (Recidivists) को रखा जाता है, ये ऐसे बन्दी होते हैं, जिन्होंने अपनी दण्डावधि का अधिकांश भाग बन्दीगृह में पूर्ण कर लिया होता है और बन्दियों की दण्डावधि पूर्ण होने से कुछ अवधि पूर्व ही इन बन्दियों को समाज में पुर्नस्थापना को आसान करने के लिये खुले बन्दी शिविरों में रखा जाता है। हालांकि इन खुले शिविरों में स्वतन्त्र वातावरण का अनुचित लाभ उठाकर बन्दियों के भागने की संख्या बहुत ही कम या न के बराबर होती है।

9. **थाईलैण्ड में खुले बन्दी शिविर की व्यवस्थाः**– वर्ष 1960 में थाईलैण्ड सरकार ने राष्ट्र संघ द्वारा बन्दियों के उपचार के न्यूनतम मानकों के अनुपालन में खुले बन्दी शिविर की स्थापना की थी। थाईलैण्ड सरकार द्वारा खुले शिविर स्थापित करने का मुख्य कारण बन्दीगृह में बन्दियों की संख्या को कम करना था, क्योंकि बन्दीगृहों में बन्दियों की संख्या अधिक होने से उनके उपचारात्मक कार्यक्रमों पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा था। सरकार द्वारा यह भी पाया गया कि खुली शिविर व्यवस्था अपेक्षाकृत कम खर्चीली भी है।

थाईलैण्ड में खुले बन्दी शिविर में बन्दियों को समाज के लोगों से मिलने की छूट दी जाती है। साथ ही, उनके लिये सामाजिक एवं मनोरंजन के कार्यक्रमों, खेलकूद आदि प्रतियोगिता में खुलकर भाग लेने की भी छूट होती है। इसके साथ–साथ इन बन्दियों को धर्म गुरूओं द्वारा नैतिक शिक्षा एवं अन्य शिक्षा एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था भी की जाती है।

खुले शिविरों में बन्दियों को पुनर्वासित कराने हेतु उन्हें श्रम सेवाओं जैसे– बाँध कार्य, सड़क–निर्माण आदि के द्वारा कार्य भी सिखाया जाता है। दण्डवधि की समाप्ति के एक माह पूर्व बन्दियों को सप्ताह में दो बार अपने मन की शुद्धि के लिये मन्दिर जाना अनिवार्य कर दिया गया था। इन राष्ट्रों में बन्दी शिविरों की व्यवस्था की सफलता को देखकर मध्य–पूर्व देशों, जैसे–इजराइल, ईराक, ईरान आदि राष्ट्रों ने भी अपने देशों में बन्दियों के लिये खुले शिविर की व्यवस्थाओं की। इन राष्ट्रों में अपराधियों के लिये हथकड़ियों का प्रयोग भी कम किया जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी खुले बन्दी शिविरों की उपयोगिता को मान्यता प्रदान की जा चुकी है। संयुक्त राष्ट्र संघ की सामाजिक सुरक्षा शाखा ने खुले बन्दी शिविरों की व्यवस्था हेतु सदस्य राष्ट्रों को तैयार की गई विशेष सामाग्री वितरित करने और खुले शिविरों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया जा रहा है। इसके फलस्वरूप, देशों में दण्ड व्यवस्था में खुले बन्दी शिविर की व्यवस्था का प्रावधान रखा गया, जिसमें बन्दियों को खुले वातावरण में रखकर सुधारने का प्रयास कर उन्हें पुनः समाज में उपयोगी बनाया जा सके।

यह देश के विकासशील दाण्डिक व्यवस्था का संकेत देता है।

खुली शिविर व्यवस्था पद्धति आवश्यक रूप से बन्दियों के प्रति सहानूभूति और विश्वास पर आधारित होना चाहिये तथा यह पूर्ण स्वतन्त्रता तथा बन्दियों के निरोधी जीवन के बीच की व्यवस्था है। वर्ष 1960 में लन्दन में 'अपराध निवारण एवं अपराधियों के उपचार' पर हुये पुनः अधिवेशन तक खुले शिविरों को दण्ड व्यवस्था का अभिन्न बनाया गया था। महिला बन्दियों के लिये प्रसूति सुविधायें एवं अन्य सुविधायें प्रस्तुत की गई एवं बन्दियों को परिवारजनों, बीमार रिश्तेदारों व मित्रों से मिलने की छूट भी दी गई।

भारत में खुले बन्दी शिविर की व्यवस्था

खुले बन्दी शिविर अर्थात् ऐसा बन्दीगृह, जिसमें बन्दीगृहों के नियमों को काफी लचीला रखा जाता है। ऐसे शिविरों के अधिकतर नियमों को काफी लचीला रखा जाता है। ऐसे शिविरों को अधिकतर केन्द्रीय जेल से बाहर स्थापित किया जाता है और यह सलाखों से लगभग पूरी तरह स्वतन्त्र होते हैं। प्राचीन समय से ही भारत में यह मान्यता है कि अपराध से घृणा करें, अपराधी से नहीं। विद्वानों ने यह भी कहा है कि कोई भी व्यक्ति जन्म से अपराधी नहीं होता, बल्कि परिस्थितियाँ उसे अपराधी बनने पर मजबूर कर देती हैं, इसीलिये अपराधियों को कठोर दण्ड देने के स्थान पर उनके सुधार हेतु प्रयास किया जाना चाहिये। भारत में खुले शिविर का विचार सर्वप्रथम वर्ष 1836 में हुआ, जबकि प्रथम **'अखिल भारतीय जेल समिति'** का गठन कर जेल प्रणाली को अधिक उपयोगी एवं सार्थक बनाया गया। इसके पश्चात् इस समिति की कई बैठकों में खुली जेल प्रणाली को स्वीकार किया गया।

भारत के दण्डशास्त्रियों को दण्ड की उपचारात्मक पद्धति में ऐंग्लो अमेरिकन विकास से प्रेरणा लेकर विचार किया गया कि बन्दियों को रूढ़िगत बन्दीगृहों में बन्द कर उनमें सुधार नहीं किया जा सकेगा। अतः बन्दियों को दिये जाने वाले दण्डात्मक दृष्टिकोण में बदलाव लाना अति आवश्यक है। अतः "बन्दियों को समाज में पुनर्स्थापित करने से पूर्व उत्तर–वीक्षा (aaafter-care) के रूप में खुले शिविरों को अपनाया जाना सर्वोत्तम उपाय होगा।"[26] "प्राचीन भारत में भी दण्ड–नीति में कहा गया है कि अपराधियों को सुधारने हेतु उनकी उत्तरवीक्षा पर उचित ध्यान देना चाहिये।"[27]

भारत में बन्दीगृह व्यवस्था में प्राचीन समय में भी बन्दियों को सड़कों आदि के निर्माण कार्य में श्रम के लिये ले जाया जाता था, परन्तु वर्ष 1936 में बन्दीगृहों से सम्बन्धित प्रथम जेल समिति ने बन्दियों से इस प्रकार सड़कों आदि के निर्माण कार्य में श्रम कार्य लिये जाने के प्रति अप्रसन्नता व्यक्त की। इसी कारण बन्दियों को बन्दीगृह से बाहर कार्य करने के लिये ले जाना बन्द कर दिया

गया। इसके पश्चात् वर्ष 1962 में बनी द्वितीय जेल समिति ने बन्दीगृह प्रणाली का अवलोकन किया और वर्ष 1877 के बन्दीगृह अधिनियम के अन्तर्गत बन्दियों को सड़कों, नहरों, निर्माण स्थलों पर कार्य पर लगाये जाने के सम्बन्ध में प्रश्न उठाया गया जिस पर सदस्यों ने राय देते हुए कहा कि बन्दियों को लोकनिर्माण कार्य में लगाया जाना न केवल उचित है, बल्कि सरकार के लिये वित्तीय दृष्टि से लाभदायक भी है।

अखिल भारतीय समिति ने वर्ष 1919–1920 में बन्दियों के प्रति मानवीय व्यवहार करने की आवश्यकता को पुनः दोहराया। उस समय भारतीय जेल समिति के अध्यक्ष सर एलेक्जेन्डर कारड्यू (Sir Alexender Cardew) थे और उनका विचार था कि बन्दीगृहों में रहने से बन्दियों के जीवन का नाजुक क्षण वह होता है जब वह दण्डावधि पूर्ण कर रिहा होने वाला होता है, न कि उसके जेल में प्रवेश करने का। चूँकि बन्दीगृह में आया बन्दी दोषसिद्ध अपराधी होता है, जो अपने किये गए अपराधिक कृत्य हेतु दण्ड भोगता है। इस अपराधिक कृत्य को करने से वह समाज में अपना स्थान व प्रतिष्ठा खो देता है और उसे पुनः समाज में उसी जीवन में लौटने में कई कठिनाइयों का अनुभव होता है।

बन्दीगृह के बन्दियों को बाहर खुला वातावरण व उनकी रूचि के अनुरूप उन्हें बन्दीगृह के बाहर कार्य कराना या बन्दीगृहों में श्रम सेवा लेना, सुधार में बाधक नहीं हो सकता है। हालांकि, कुछ वर्ग कृषि कार्यों से सम्बन्धित होने के कारण उनसे कृषि फार्म पर काम लेना उचित होगा, ऐसा जेल समिति ने विचार व्यक्त किया था। परन्तु, इस विचार में क्षेत्र विस्तृत होने के कारण बन्दियों पर निगरानी रखना कठिन था। अतः इस विचार को हटा दिया गया। वर्ष 1947 में भारत को स्वतन्त्रता मिलने के पश्चात् देश की बन्दीगृह व्यवस्था में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये तथा बन्दियों को सुधारने के प्रयोग किये गये तथा यह भी विचार व्यक्त किया गया कि बन्दियों को बन्दीगृह में बन्द रखने के बाद, दण्डावधि समाप्त होने के पश्चात् समाज मे उनकी पुर्नस्थापना करना कठिन हो जाता है। अतः इस पद्धति में परिवर्तन लाकर बन्दियों को सुधारे जाने की आवश्यकता है। अतः इसके लिये केवल मानव स्वभाव एवं आचरण को ही नहीं सुधारना है, बल्कि बन्दियों के मनो–सामाजिक वातावरण एवं बन्दीगृह की भीतरी एवं बाह्य वातावरण में अन्तर को यथासम्भव कम करने का प्रयास किया जा रहा है। इसमें खुले शिविर की व्यवस्था महत्वपूर्ण होगी।

राष्ट्रसंघ तकनीकी विशेषज्ञ सर वाल्टर रेकलेस द्वारा भारतीय बन्दीगृह के सम्बन्ध में उत्कृष्ट रिपोर्ट प्रस्तुत करने के पश्चात् वर्ष 1952 में भारत के बन्दीगृहों की व्यवस्था के आधुनिकीकरण की दिशा में वास्तविक प्रयास किया जाना प्रारम्भ हुआ। जिसके फलस्वरूप वर्ष 1950–57 में गठित 'अखिल भारतीय जेल समिति' ने निरन्तर तीन वर्षों के प्रयास से बन्दीगृह में सुधार सम्बन्धी सुझाव प्रस्तुत

किए। इन सुझावों में से एक सुझाव भारत में बन्दीगृह में दण्डावधि भोग रहे अपराधियों पर न्यूनतम भौतिक एवं शारीरिक निरोध रखकर उनमें आत्मनिर्भरता व आत्मविश्वास की भावना जगाने का प्रयास करना भी था।

भारत में खुले शिविरों की स्थापना का मुख्य उद्देश्य बन्दीगृह में बन्दियों को खुले वातावरण में न्यूनतम सुरक्षा में रखकर श्रम कार्य करवाना जिससे उनके अन्दर अविश्वास की भावना मिट सके तथा दण्डावधि समाप्त होने पश्चात् वे समाज में सम्मानजनक जीवन जीने के लिये तैयार हो सकें।

खुले बन्दी शिविरों के उदेदश्य एवं विशेषतायें

1) बन्दियों को न्यूनतम सुरक्षा एवं अभिरक्षा के उपायों के साथ बन्दियों को छोटे–छोटे समूह में रखना एवं उन्हें अनौपचारिक संस्थागत जीवन हेतु तैयार करना;

2) बन्दियों को सामाजिक जिम्मेदारियों को प्रति जागरूक करना;

3) बन्दियों को उनकी योग्यता एवं रूचि के अनुसार जैसे कृषि या अन्य व्यवसाय अर्थात् उनके लिये विभिन्न क्षेत्रों में रोजगारपरक पाठ्यक्रम या प्रशिक्षण की व्यवस्था करना;

4) बन्दियों को उनके परिवारजनों एवं मित्रों व रिश्तेदारों से मिलने के अधिक अवसर देना, जिससे वे अपनी पारिवारिक समस्या पर विचार–विमर्श कर उन्हें सुलझा पायें;

5) बन्दियों द्वारा खुले शिविर में अच्छे व्यवहार हेतु उन्हें उदारता से छूट देना, जो माह में 15 दिन का हो सकता है;

6) बन्दियों के स्वास्थ्य एवं मनोरंजन के लिये विशेष व्यवस्थायें करना। कमजोर एवं बीमार बन्दियों के लिये विशेष खुराक एवं भोजन की व चिकित्सा की व्यवस्था करना;

7) खुले शिविरों की प्रबन्ध व्यवस्था का संचालन सुशिक्षित, योग्य एवं प्रशिक्षित अधिकारियों द्वारा किया जाना;

8) खुले शिविर में बन्दियों को उनके द्वारा किये गए कार्य का अंशतः पारिश्रमिक का भुगतान करना तथा कुछ भाग उनके परिवार के सदस्यों को भेजने की व्यवस्था करना;

9) बन्दियों को वित्तीय सहायता हेतु बैंक से ऋण आदि हेतु सहायता उपलब्ध कराना;

10) खुले शिविर में रखे गये बन्दियों को पारिश्रमिक युक्त रूचिनुसार

विभिन्न कार्य उपलब्ध कराना;

11) खुले शिविर में रखे गये बन्दियों की लम्बी निरूद्धि पर रोक लगाना;

12) खुले शिविरों की कार्य व्यवस्था पूर्णरूप से परिवीक्षा एवं पैरोल के सिद्धान्त पर आधारित है।

यह बन्दी शिविर की व्यवस्था दण्ड की उपचारात्मक पद्धति की सर्वोत्तम तकनीक मानी गयी है।

भारत में विभिन्न राज्यों में कार्यरत खुले शिविर

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात्, भारत में बन्दीगृहों की व्यवस्था में वास्तविक रूप से उल्लेखनीय परिवर्तन किये गये है। भारत में प्रथम खुली जेल प्रारम्भ करने का श्रेय उत्तरप्रदेश राज्य को है। वर्ष 1949 में लखनऊ के आदर्श बन्दीगृह के जुड़े एक खुले शिविर की स्थापना की गई। इसके पश्चात् आन्ध्रप्रदेश मौली अली कृषि बस्ती (Mauli Ali Agriculture Colony) की स्थापना की गई। इस शिविर में बन्दियों को सपरिवार रहकर कृषि कार्य करने की सुविधा दी जाती थी। इसमें अधिकतर उन्हीं बन्दियों को रखा जाता है, जो कृषि कार्यों से जुड़े होते हैं।

इसके बाद वर्ष 1955 में महाराष्ट्र के येरवड़ा में भी खुले शिविर की स्थापना की गई। इन राज्यों में शिविरों की व्यवस्था में सफलता से अन्य राज्यों को भी इन खुले शिविरों की व्यवस्था हेतु प्रोत्साहित किया गया जिससे राज्य अपने बन्दीगृहों के बन्दियों को पुर्नस्थापित कर सके। वर्तमान समय में 28 खुले बन्दीगृह हैं जिनमें से एक महिला बन्दीगृह महाराष्ट्र के यरवड़ा में वर्ष 2010 में प्रारम्भ किया गया है।

भारत के प्रमुख खुले शिविर बन्दीगृह

राज्य	खुले बन्दीगृहों के नाम एवं स्थान	प्रारम्भ होने का वर्ष
आन्ध्रप्रदेश	मौली अली कृषक कालोनी, हैदराबाद	1954
आन्ध्रप्रदेश	कारावासियों के लिये कृषक बस्ती	1965
आसाम	कृषि एवं औद्योगिक खुला कारागार, बारपेटा (जोरहट)	1964
गुजरात	खुला कारागार, अमरेली	1968
गुजरात	खुला कारागार, अहमदाबाद	1972

हिमाचल प्रदेश	खुला कारागार, बिलासपुर (हिमाचल प्रदेश)	1962
केरल	खुला कारागार, नेट्टवक्थरी	1962
मध्यप्रदेश	खुला कारागार, होशंगाबाद	2011
महाराष्ट्र	खुली जेल, येरवडा	1955
महाराष्ट्र	खुली जेल, पैठण	1968
महाराष्ट्र	खुली जेल, अमरावती	1971
मैसूर(कर्नाटक)	खुली जेल, सोनदत्ती	1968
पंजाब	खुला कृषक कारागार, नाभा	1970
राजस्थान	खुला कारागार, (कृषि अनुसन्धान फार्म), दुर्गापुर (रात.)	1955
राजस्थान	सम्पूर्णानन्द बन्दी शिविर, संगनेर (जयपुर)	1963
राजस्थान	खुला कारागार, (केन्द्रीय यंत्रीकृत फार्म), सूरतगढ़	1964
तमिलनाडु	खुला कारागार, सिंगलानूर	1956
तमिलनाडु	सेन्ट्रल जेल सलेम से जुड़ा खुला कारागार,	1966
उत्तर प्रदेश	लखनऊ की आदर्श जेल से सम्बद्ध खुला कारागार, लखनऊ	1949
उत्तर प्रदेश	सम्पूर्णनन्द शिविर, घुरमा (मिर्जापुर)	1956
उत्तरांचल	सम्पूर्ण कृषक एवं औद्योगिक शिविर, सितारगंज (नैनीताल)	1960
पश्चिम बंगाल	ओपन जेल, लालगोला (मुर्शिदाबाद जिला)	1987

प्रथम महिला खुला बन्दीगृह महाराष्ट्र के येरवडा (पुणे) में खुला है, जिसमें केवल ऐसी महिला बन्दियों को रखा जाता है, जिन्हें दीर्घ दण्डावधि से दण्डित किया गया हो। इस कारागार में उन्हें अपेक्षाकृत मुक्त वातावरण में रखा जाता था।

सामान्य बन्दीगृहों से खुले बन्दीगृहों में दीवारें, कटीले तार, फेन्सिंग, ताले, बेड़िया, सीकंचे, सशस्त्र गार्ड आदि न्यूनतम सुरक्षात्मक व्यवस्थायें तथा बन्दियों में समाज के प्रति उत्तदायित्व की भावना जागृत करने की दृष्टि से बाह्य स्वच्छन्द समाज अधिक अवसर देता है। खुले कारागारों की उपयोगिता में **रामामूर्ति बनाम कर्नाटक राज्य (1947)2 एस.सी.सी.642 (659)** का वाद महत्वपूर्ण है। इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि खुले बन्दी शिविर बन्दियों को सुधारने एवं समाज में उनकी पुनर्स्थापना कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। खुले

शिविर अपराधियों की समाज में पुनर्स्थापना में दण्ड के व्यैक्तिकरण के सिद्धान्त की उपयोगिता को दर्शाता है क्योंकि इनकी प्रबन्ध व्यवस्था में परिवीक्षा, पैरोल, औद्योगिक प्रशिक्षण, नैतिक शिक्षा आदि शामिल है। खुले जेल की प्रणाली में खर्च भी अपेक्षाकृत कम होता है और उन बन्दियों से श्रम कार्य करवाने से उन्हें दण्डावधि में पारिश्रमिक मिल जाता है तथा सरकार को बाहर से श्रमिक भी नहीं खोजना पड़ता है। खुले बन्दी शिविरों की कार्य शैली इस प्रकार बनायी जाती है कि बन्दी अपनी दण्डावधि पूर्ण कर रिहा होने के बाद समाज में आसानी से सामान्य जीवन जीने के लिये स्वयं को पुनर्स्थापित कर सके, जिससे वह पुनः अपराधिक कृत्य कर बन्दीगृह में न आये।

अतः खुले बन्दी शिविरों की दिनचर्या से बन्दियों में अनुशासन की भावना उत्पन्न होती है तथा वे सामाजिक दायित्वों को भी ठीक से समझने लगते हैं, जो उनके उद्धार में सहायक होती है।

भारत में बने खुले शिविरों में से कुछ की विस्तृत व्याख्या

1. **मौली अली कृषक बस्ती (आन्धप्रदेश, वर्ष 1954 में)** – भारत के आन्ध्रप्रदेश में वर्ष 1954 में हैदराबाद के समीप बन्दियों के पुनर्वास के लिये मौली अली कृषक बस्ती की स्थापना की गई थी। प्रारम्भ में, इसमें ऐसे बन्दियों, जिनका व्यवसाय कृषि कार्य था, को रखा गया था। यहाँ पर उन्हें परिवार सहित रहने की भी सुविधा दी गई थी। यह बस्ती लगभग 93 एकड़ भूमि में फैली हुई थी।

2. **मध्यप्रदेश की नवजीवन शिविर** – वर्ष 1973 नवम्बर में, मध्यप्रदेश के गुना जिले के मुंगावली ग्राम में म.प्र. के खतरनाक एवं अभ्यस्त अपराधियों को सुधारकर पुनर्वासित करने के लिये 'नव–जीवन शिविर' नामक खुले शिविर की स्थापना की गई थी। इस शिविर का मुख्य उद्देश्य स्वर्गीय जयप्रकाश नारायण के प्रयासों से चम्बल के बीहड़ों के आत्मसमर्पण करने वाले डकैतों को पुर्नवासित करना था। कुख्यात डकैत मोहर सिंह तथा माधो सिंह, जिन पर जीवित या मृत पकड़ने के लिये क्रमशः दो लाख व डेढ़ लाख के पुरस्कार की घोषणा की गई थी, के नेतृत्व वाले समूह ने आत्मसमर्पण किया था।

मुंगावली के इस खुले शिविर में कुल आत्मसमर्पण करने वाले 550 डाकुओं को रखा गया, जिनमें से 400 डाकुओं ने दण्डावधि को पूर्ण किया और वर्ष 1980 में उन्हें रिहा कर दिया गया। इसके पश्चात् आजीवन कारवास के दण्ड वाले कैदियों को इस शिविर में रखा गया, जिनकी संख्या 20 या 25 से अधिक नहीं रही। यह खुली शिविर एक हेक्टेयर भूमि में फैली थी तथा इसे तीन मीटर ऊँचे कटीले तारों से घेरा गया था। इसमें जेल अधिकारियों के निवासगृहों को छोड़कर शिविर के बन्दियों के लिये आठ बैरकें थी। यह खुला शिविर पूर्व बेसिक

ट्रेनिंग शाला भवन में स्थापित किया था और इसमें 150 बन्दियों को रखे जाने की व्यवस्था थी।

इस शिविर में रखे गये बन्दियों से डेरी, मुर्गीपालन, सिलाई, बुनाई, कृषि आदि कार्य करवाये जाते थे तथा बन्दियों को कार्य करने हेतु वेतन दिया जाता था, जिससे वे उनके परिवार का भरण–पोषण करते थे। इस शिविर में रहने वालों के लिये अपने भोजन आदि की व्यवस्था सहकारिता के आधार पर की जाती थी। इस शिविर में बन्दियों का अनुशासन में रहना आवश्यक था तथा उनमें आपसी झगड़े होने पर उन्हें निपटाने हेतु पंचायत होती थी। इस शिविर में प्रत्येक छः माह में बन्दियों को 15 दिवस की पैरोल दी जाती थी जिसमें वे अपने परिवारजनों के साथ रह सकें। वे परिजनों को पत्र लिखने के लिये भी स्वतन्त्र थे।

मुंगावली के इस नवजीवन शिविर में 450 डकैतों द्वारा दण्डावधि पूर्ण हो जाने पर रिहा करने के पश्चात् लगभग 15–20 बन्दी ही रह गये थे, जिन्हें इन शिविरों में रखने पर सरकार की काफी धनराशि खर्च हो रही थी। अतः, बाद में इस शिविर में बन्दियों की नगण्य संख्या को देखते हुये इस बात की अनुशंसा की गई कि इतनी धनराशि व्यय करने के स्थान पर इन्हें केन्द्रीय बन्दीगृह में अन्तरित करके इसे महिलाओ हेतु खुले बन्दीगृह के रूप में विकसित किया जाना उचित होगा, परन्तु कुछ समय पश्चात् इस विचार को भी त्याग दिया गया और इस बन्दीगृह शिविर को समाप्त कर दिया गया।

3. **नवजीवन शिविर, लखीमपुर (म.प्र.)**– वर्ष 1975 में मुख्य रूप से बुंदेलखण्ड क्षेत्र के आत्मसमर्पित डाकुओं के पुनर्वास के लिये म.प्र. सरकार ने पन्ना जिले के लखीमपुर में नवजीवन शिविर की स्थापना की। इस शिविर की स्थापना मुंगावली में स्थित नवजीवन की शिविर की सफलता से प्रोत्साहित होकर की गई थी। यह शिविर 124.75 एकड़ भूमि में स्थिति था, जिसमें 112 एकड़ कृषि के लिये उपयोग की जाती थी और शेष 12.75 एकड़ भूमि पर भवन व आवास गृहों का निर्माण किया तथा इनमें सिंचाई की भी पूर्ण व्यवस्था थी। इस शिविर में 50 बन्दियों को रखे जाने की व्यवस्था थी। इस शिविर का मुख्य उद्देश्य आत्म–समर्पण करने वाले डाकुओं एवं गम्भीर अपराधियों का व्यैक्तिक पद्धति से उपचार कर समाज में उन्हें पुनर्स्थापित करना था। परन्तु, इस शिविर को भी पर्याप्त अन्तःवासियों के अभाव में परिसमाप्त कर दिया गया।

मध्यप्रदेश जेल सुधार समिति ने 1974 में बस्तर जिले में केवल महिला बन्दियों हेतु खुले बन्दी शिविर की स्थापना किए जाने का सुझाव दिया था, लेकिन बाद में प्रारम्भ किये गये खुले बन्दी शिविरों की लोकप्रियता कम हो जाने से इस प्रस्ताव को कार्यान्वित नहीं किया गया। इसका कारण यह भी माना

जाता है कि दो नवजीवन शिविरों में ही उस समय बन्दियों की संख्या क्षमता से कम रही थी जिसके कारण सरकार पर वित्तीय बोझ बढ़ गया। अतः तीसरे खुले शिविर के विचार को त्याग दिया गया। साथ ही, उक्त दोनों शिविरों को भी बन्द कर दिया गया।

4. **खुला बन्दी शिविर, होशंगाबाद (म.प्र.)**:– मध्यप्रदेश सरकार द्वारा 3 जनवरी, 2011 में पुनः एक खुला शिविर मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले में स्थापित किया गया। यह शिविर 17 एकड़ भूमि पर लगभग 3.26 करोड़ की निर्माण लागत से बना। यह शिविर मुंगावली व पन्ना के खुले शिविरों से भिन्न था, क्योंकि मुंगावली व पन्ना में खुले शिविरों को स्थापित करने का उद्देश्य उस समय दस्यु उन्मूलन योजना के तहत पकड़े गये डकैतों के पुनर्वास हेतु स्थापित किये गये थे, जबकि होशंगाबाद जिले में बनाये गये इस खुले शिविर में पूरे मध्यप्रदेश के केवल 25 सुधार योग्य चुने गये बन्दियों को रखा गया। वे अपने परिवार के साथ यहाँ रहते हैं। इस खुले शिविर में बन्दियों के बच्चों के लिये शिक्षा की व्यवस्था भी की गई थी व बन्दियों के लिये बन्दीगृह परिसर में मूलक शिक्षा एवं प्रशिक्षण दिया जाता है, जिससे दण्डावधि पूर्ण करने के पश्चात् वह स्वयं का व्यवसाय प्रारम्भ कर समाज मे स्वयं को पुर्नस्थापित करे।

5. **खुला कृषि–शिविर, येरवडा (महाराष्ट्र)**– वर्ष 1955 में यह खुला शिविर स्थापित किया गया था। इस खुले शिविर में सहकारिता के आधार पर बन्दियों से कृषि सम्बन्धी कार्य कराया जाता है। महाराष्ट्र के सतारा में भी जिले के बन्दियों के लिये एक खुला शिविर स्वतन्त्रपुर नामक स्थान में प्रारम्भ किया गया। यह शिविर 50 एकड़ बंजर भूमि में स्थापित किया गया। इन शिविरों में बन्दियों को झोपड़ी बनाकर सपरिवार रहने की भी सुविधा थी। इन शिविरों में बन्दियों पर किसी भी प्रकार का पहरा नहीं दिया जाता था और वे स्वछन्द जीवन व्यतीत करते थे। इस शिविर में छः माह सफलतापूर्वक रहने के पश्चात् बन्दियों को बन्दीगृह महानिरीक्षक की अनुशंसा पर पैरोल पर उन्मोचित किया जा सकेगा और बन्दी चाहे तो कृषि फार्म पर ही कुछ भूमि खरीदकर वहाँ स्थायी रूप से बस सकते हैं।

6. **खुला कृषि कारागार शिविर, दुर्गापुर (राजस्थान)** – यह शिविर बन्दियों के लिये उपचारात्मक दण्ड पद्धति द्वारा उनके पुनर्वास की दिशा में उल्लेखनीय प्रयास किया गया। यह शिविर वर्ष 1955 में जयपुर से कुछ दूरी पर लगभग 116 एकड़ में बना हुआ है। इस शिविर में बन्दियों से श्रम कार्य करवाया जाता था, जिसके लिये उनको पारिश्रमिक दिया जाता था एवं बन्दियों को परिवार के साथ रहने के लिये यहाँ आवास भी उपलब्ध थे।

7. **सम्पूर्णानंद जेल शिविर, सांगनेर (राजस्थान)**– राजस्थान के इस

शिविर को बन्दियों के पुनर्वास की दिशा में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त हुई। यह शिविर वर्ष 1963 में प्रारम्भ हुआ था तथा इस शिविर में 25 वर्ष की आयु से 60 वर्ष तक की आयु के बन्दियों को रखा जाता था। इस शिविर में उन बन्दियों को रखा जाता था जिन्हें कम से कम सात वर्ष की सजा हुई हो परन्तु वे बलात्कार या विस्फोटक पदार्थ के दोषी न हों। वे इस शिविर में परिवार के साथ रहने के लिये स्वतन्त्र थे। परिवर के साथ रहने पर बन्दियों के अन्दर आत्मविश्वास आता है और वे सन्तुष्ट पारिवारिक जीवन बिताते हैं।

इसी प्रकार, उत्तर प्रदेश में चकिया शिविर, नौगढ़ शिविर, शहगढ़ शिविर, नानक सागर शिविर, सानाथ शिविर, घुरमा शिविर, सितारगंज शिविर आदि उल्लेखनीय खुले शिविर हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि बन्दियों के लिये सुधारात्मक एवं उपचारात्मक पद्धति के अन्तर्गत खुले शिविर की दिशा में प्रगति की है। इन शिविरों से प्रेरणा लेते हुये अन्य राज्यों में भी खुले शिविरों की स्थापना होने लगी।

वर्तमान में, तत्कालीन उत्तरप्रदेश के नैनीताल जिले के सितारागंज में सितारागंज शिविर नामक खुला शिविर 3837 एकड़ जमीन पर बना हुआ है। यह विश्व में सबसे बड़ी जेलो में से एक है। इसमें 1000 बन्दियों को रखने की व्यवस्था है। वर्तमान में, यहाँ 650 बन्दी रह रहे हैं। इस जेल में एक सुप्रीटेंडेंट, पाँच जेलर, 12 डिप्टी जेलर, 16 असिस्टेंट जेलर, तीन मेडिकल आफिसर्स, 6 फॉर्मासिस्ट, 126 वार्डस और एकाउटेंट हैं। उत्तरप्रदेश में 24 खुले शिविर एवं अर्द्ध शिविर थे। उत्तरप्रदेश के प्रारूप का कई देशों द्वारा अनुशरण किया गया है।

स्वतन्त्रता पश्चात् भारत देश में प्रथम तीन दशकों में प्रारम्भ किए गए खुले बन्दी शिविरों की व्यवस्था में आशानुसार सफलता मिलने के कारण इन्हें बन्दियों का उद्धार एवं पुनर्वास का सर्वोत्तम साधन माना गया। इन शिविरों में अपराधियों को मुक्त वातावरण में रखा जाता है और उन पर न्यूनतम अंकुश या प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं तथा बन्दियों को दण्डावधि के पश्चात् शीघ्र ही सामान्य व्यक्ति की तरह जीवनयापन हेतु तैयार करने के लिये प्रशिक्षण, शिक्षा, रोजगार आदि की सुविधायें उपलब्ध करायी जाती है।

इन शिविरों में डकैती, अपहरण, हत्या आदि के अपराधिक कृत्य करने वाले गम्भीर बन्दियों को रखे जाने पर उनके वहाँ से भाग जाने की प्रवृत्ति यदा–कदा ही पाई गई है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि बन्दियों के प्रति सामान्य प्रशासन का भरोसा एवं सहानुभूति की भावनाओं पर आधारित शिविर में वे विश्वासघात करना उचित नहीं मानते हैं। इन शिविरों में बन्दियों से कठोर व्यवहार न किये जाने से वे स्वयं द्वारा किये गये अपराध के लिये पश्चाताप

भी कर सकते हैं। इन शिविरों में बन्दियों को अनुशासित जीवन देने पर उनमें आत्मसम्मान, आत्मविश्वास तथा स्वावलम्बन पर आधारित होने से उत्तरदायित्व की भावना आती है। इन्हें इन शिविरों में निर्बन्धित जीवन जीने दिया जाता है और इन्हें शिविरों मे खुले वातावरण में रखकर उनकी मानसिकता को बदलने का प्रयास किया जाता है।

भारत में खुले बन्दी शिविर अन्तर्राष्ट्रीय मानकों पर आधारित हैं। इन शिविरों में बन्दियों पर न्यूनतम प्रतिबन्ध एवं निगरानी रखी जाती है तथा इन शिविरों का क्षेत्रफल विस्तृत रखा जाता है। इस शिविर में बन्दियों को दिन भर कार्यों में व्यस्त रखा जाता है और प्रयास किया जाता है कि वे अपना पूर्व अपराधिक जीवन भूलकर भविष्य में सामान्य जीवन व्यतीत करने हेतु प्रेरित हों। इन शिविरों मे दीर्घ दण्डावधि प्राप्त अपराधियों में जिनकी बन्दियों की दण्डावधि पूर्ण होने में कुछ समय शेष हो उन्हें रखा जाता है।

भारत में खुले शिविरों के लिए महिला अपराधियों, किशोर अपराधियों एवं नव अपराधियों को उपयुक्त नहीं माना गया है। जबकि कुछ देशों में नव अपराधियों को खुले बन्दीगृह शिविरों में सुधार हेतु रखा जाता है। भारत में ये खुले बन्दी शिविर कुछ राज्यों तक ही सीमित हैं। अभी भी, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, केरल, हिमाचल प्रदेश आदि में इस व्यवस्था को ठीक प्रकार से नहीं अपनाया गया है। फिर भी, खुले बन्दी शिविर की सफलता पर कहा जा सकता है कि बन्दीगृहों में रह रहे बन्दियों के लिये कठोर दण्ड पद्धति की अपेक्षा वैयक्तिक उपचार पद्धति से इनका सुधार व पुनर्स्थापना किया जाना एक सार्थक प्रयास है।

हालांकि, खुले शिविर व्यवस्था में गुण के साथ–साथ कुछ दोष भी पाया जाता है। चूँकि, खुले शिविरों के बन्दियों पर अंकुश नहीं लगाया जाता है, अतः बन्दियों को खुले शिविर आरामगृह जैसे लगने लगते हैं और इन शिविरों में वे लम्बे समय तक रहने के लिये स्वयं को 'असामान्य' दर्शाते रहते हैं। इन शिविरों मे बन्दियों को परिजनों व मित्रों आदि से मिलने की भी अधिक छूट दी जाती है, जिससे उनकी तेज बुद्धि इस स्वतन्त्रता का दुरूपयोग खाने–पाने की वस्तुओं की सप्लाई कर की जाती है। इन शिविरों में गम्भीर बन्दियों को सुधारने हेतु रखा जाता है। कई बार बन्दियों द्वारा किए जाने वाले उपद्रवों एवं गड़बड़ियो को रोकने एवं उत्तम व्यवस्था का आभास दिलाने हेतु शिविर के प्राधिकारी प्रायः अपनी अधिकारिक शक्ति सबसे बलिष्ठ व प्रभावकारी बन्दी को देने में ही भलाई समझते हैं और वह बन्दी स्वालम्बन व आत्म अनुशासन के नाम पर बन्दियों का मुखिया बन शिविर में अन्य बन्दियों पर अपना रौब व दबाब बनाये रखता है।

खुले शिविरों के उपरोक्त लाभ–हानियों के आधार पर कहा जा सकता है

कि ये खुले बन्दी शिविर वर्तमान में बन्दीगृह प्रशासन का उपयोगी भाग बन गये हैं, जिनसे बन्दियों को पुनः सामान्य जीवन के लिये पुनर्वासित करना सरल हो जाता है। इन खुले बन्दी शिविरों के आने से समाज भी कहीं न कहीं लाभान्वित हुआ है और पूर्व अपराधी सुधरकर सामान्य व उपयोगी नागरिक बनकर समाज में पुनः लौटते हैं। बन्दियों के लिये बनाये गये इन खुले शिविरों ने दाण्डिक सुधारों के लिये यह सिद्ध किया है कि बन्दियों के प्रति सहायता की नीति अपनाई जानी चाहिये न कि घृणा की। खुले शिविर की सफलता ने सिद्ध कर दिया है कि दीर्घावधि दण्ड प्राप्त बन्दियों को दिये गये वैयक्तिक उपचार सुधार एवं पुर्नवास के लिये उत्तम साधन होते हैं।

बन्दीगृह समिति ने बाद में प्रस्तुत की गई रिपोर्ट में खुले बन्दी शिविरों के दो प्रकारों क्रमशः अर्द्ध खुले एवं खुले शिविरों की अनुशंसा की है। साथ ही समिति ने सुझाव भी दिया कि इन शिविरों मे रखे जाने वाले बन्दियों को उनकी दण्डावधि के दीर्घ या लघु होने के आधार पर न होकर उनमें सुधार के प्रति उनकी रूचि एवं दण्डावधि समाप्ति के समय उनके पुनर्स्थापित होने की सम्भावना के आधार पर करना चाहिये।

इन खुले बन्दी शिविरों में गुणों के साथ–साथ कुछ दोष भी हैं। खुली बन्दी शिविरों के इन दोषों को दूर करने के प्रयास किया जाये, तो यह व्यवस्था निश्चय ही 'दण्ड की सुधारात्मक प्रणाली' पर व्यापक सिद्ध हो सकती है और बन्दियों की अपराधिक प्रवृत्ति को नियन्त्रित कर समाज में शान्ति, न्याय एवं कानून व्यवस्था को सदृढ़ बना सकती है।

◆ ◆ ◆

अध्याय – 8

बन्दियों के कल्याण हेतु क्षमादान, दण्ड का लघुकरण एवं अनियत दण्डादेश

विश्व के अधिकतर देशों में दण्ड व्यवस्था में कार्यपालिका को कुछ अधिकार एवं शक्तियाँ प्रदान दी गई हैं। यह अधिकार एवं शक्तियाँ न्यायिक निर्णयों के कारण अपराधियों को कभी–कभी होने वाले सम्भावित न्याय से संरक्षण दिलाने के लिये प्रदान की गई है। दण्ड व्यवस्था में कार्यपालिका के प्रमुख को क्षमादान, दण्ड का स्थगन, निलम्बन या लघुकरण आदि अधिकार व शक्तियाँ दी गई हैं। वर्तमान समय की दण्ड–व्यवस्था में उपचारात्मक पद्धति को विशेष महत्व दिया जाता है। इसी पद्धति में दण्ड निर्धारण हेतु न्यायाधीश को स्वविवेक की शक्ति दी गई है जिससे कि वे अभियुक्त की वैयक्तिक आवश्यकताओं पर भी ध्यान देते हुये दण्ड की अवधि निर्धारित कर सकें। हालांकि, न्यायाधीश को प्राप्त इस स्वविवेक की शक्ति को निर्धारित करना भी आवश्यक है, जिससे दोषसिद्ध अभियुक्त के प्रति किसी प्रकार का अन्याय न हो सके। इसी कारण कार्यपालिका सर्वोच्च प्रमुख को कुछ विशेष परिस्थिति में अभियुक्त को क्षमादान करने के अधिकार की शक्ति प्रदान की गई है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 72 व 161 में कार्यपालिका की शक्ति का वर्णन किया गया है।

अतः किसी भी दोषसिद्ध अपराधी को क्षमा प्रदान करने की शक्ति कार्यपालिका में निहित होती है। इसके अतिरिक्त, कार्यपालिका द्वारा क्षमा प्रदान कर देने के अधिकार के साथ–साथ कारावास अधिकारियों को भी बन्दीगृह अधिनियमों के अन्तर्गत अच्छे आचरण एवं सद्व्यवहार के निमित्त छूट प्रदान करने का अधिकार है। इसका वर्णन भारत के संविधान के अनुच्छेद 72 एवं अनुच्छेद 161 में किया गया है।

क्षमादान की परिभाषा विभिन्न विद्वानों के अनुसार निम्न है :–

1. **रैडजिनोविक्ज के अनुसार**:– 'क्षमा' अथवा 'क्षमा का परमाधिकार' सन्तुलित अपराधिक न्याय प्रणाली का एक आवश्यक और वास्तविक अपरिहार्य संघटक है।

2. **सर विलियम एन्सन** ने क्षमा को परिभाषित करते हुये कहा है कि –'क्षमा का परमाधिकार वह अधिकार है, जिसे सम्राट वेशविधि या संविधि द्वारा अधिरोपित दण्ड को समाप्त अथवा परिवर्तित कर देता है।'

3. **बेन्थम के अनुसार**:– यदि कानून अत्यधिक कठोर है, तो उनके सुधार के लिये क्षमादान करना आवश्यक है।

जनतन्त्रीय राष्ट्रों में जहाँ एक लिखित संविधान है, वहाँ राज्य के कार्यकारी प्रमुख को प्रदत्त शक्तियों द्वारा क्षमा प्रदान करने का अधिकार है। इन शक्तियों का प्रयोग राज्य दोषसिद्ध के पूर्व भी कर सकता है। ऐसे बन्दी जिन्हें मृत्युदण्ड के दण्ड से दण्डित किया गया है, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 161 के अन्तर्गत दिये गये अधिकार से राज्य सरकार द्वारा क्षमा प्रदान करना, न्यायालय में दोषसिद्ध के निर्णयों के साथ कोई हस्तक्षेप नहीं करना क्योंकि क्षमा प्रदान करने मे न्यायालय द्वारा उद्घोषित दोषसिद्ध की वैद्यता, औचित्य एवं विशुद्धता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। भारत के राष्ट्रपति किसी अपराध के लिये न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध प्राप्त व्यक्ति के दण्डादेश को भारतीय संविधान अनुच्छेद 72 के अन्तर्गत व प्रतिलम्बन आदि स्वीकृत कर सकते हैं।

अमेरिक के बिडल बनाम पेरोविच (IIL.Ed1161(1163) per Justice Holmnes) में उच्चतम न्यायालय ने क्षमादान के औचित्य बताते हुये कहा कि वर्तमान समय में कार्यपालिका के क्षमादान की अधिकारिक शक्ति को एक रियायत के रूप में नहीं देखना चाहिये, बल्कि उसका संविधानिक दायित्व है। कार्यपालिका प्रमुख द्वारा अधिकारिक शक्ति का प्रयोग कर अपराधी को क्षमादान दिया जाना इस बात का संकेत है कि न्यायालय द्वारा दिये गये दण्डादेश व निर्णय की अपेक्षा क्षमा द्वारा जीवन में एक और अवसर दिया जाना जनहित की दृष्टि से उचित एवं आवश्यक होता है।

कार्यपालिका द्वारा क्षमादान दिये जाने के सम्बन्ध में अमेरिका का एक और महत्वपूर्ण वाद **एक्स पार्टी फलॉप ग्रासमेन टेफ्ट** ने कहा कि कार्यपालिका क्षमादान का मुख्य उद्देश्य दण्डविधि प्रवर्तन में हुई भूल या उसकी कठोरता बताता है। ऐसा नहीं है कि न्यायालय द्वारा दिये गये न्याय निर्णय सदैव ही भूल रहित होते हैं। अतः अपराधी के प्रति पूर्ण न्याय करने हेतु तथा न्याय निर्णय की भूल को दूर करने के प्रयोजन से क्षमादान का संवैधानिक प्रावधान आवश्यक होता है।

भारत में कुलजीत सिंह बनाम राज्यपाल (ए.आई.आर. 1982 एस. सी. 774) के वाद में अमेरिका की एक्स पार्टी फिलिप ग्रासमेन के वाद के निर्णय का वर्णन करते हुये उच्चतम न्यायालय ने विनिश्चित करते हुये कहा कि किसी भी ऐसे बन्दी, जिसकी दण्डावधि लम्बी है, को अधिक समय तक बन्दीगृह में बंद रखना न केवल उस बन्दी के लिये अनुचित व अन्यायपूर्ण है बल्कि उसके प्रति यह एक अवांछित निर्दयता भी है। इसके अतिरिक्त, यह समाज पर व्यर्थ का आर्थिक बोझ भी है। इस दृष्टि से हर विकासशील देश की न्यायिक व्यवस्था में क्षमादान का प्रावधान रखा जाना उचित तो है ही साथ ही आवश्यक भी है।

क्षमादानः—

क्षमा का अर्थ है दण्ड की क्षमा से है। जबकि प्रतिलम्बन (Reprieves) का अर्थ विधि द्वारा तय दण्ड के अस्थायी निलम्बन से है। न्यायालय द्वारा प्रतिलम्बन आदेश उस समय स्वीकार किया जायेगा, जब कोई अभियुक्त निर्णय के उपरान्त पागल हो जाये। क्षमा तथा प्रतिलम्बन शब्दों के साथ विराम (Respite) शब्द भी जुड़ा हुआ है, जिसका तात्पर्य मृत्युदण्ड के क्रियान्वयन में अस्थायी विराम लगा देना है। उदाहरण के लिये, दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 416 के अन्तर्गत गर्भवती महिला के मृत्युदण्ड के क्रियान्वयन में अस्थायी विराम लगा देने का अधिकार उच्च न्यायालय को प्राप्त है तथा उपयुक्त स्थितियों में मृत्युदण्ड को आजीवन कारावास में भी परिवर्तित करने का अधिकार है।

भारतीय संविधान में राष्ट्रपति एवं राज्यपाल को क्षमादान देने की शक्ति दी गई है। संविधान के अनुच्छेद 72 में राष्ट्रपति को यह शक्ति दी गई है कि वह किसी अपराध में किसी दोषसिद्ध हुये अपराधी को क्षमादान करने, अस्थायी निलम्बन करने, दण्ड का लघुकरण करने या परिवर्तित करने के लिए निम्नलिखित मानकों में शक्ति प्राप्त हैः—

क. सेना न्यायालय द्वारा दिए गए दण्ड को;

ख. संघ की कार्यपालिका शक्ति के विषय से सम्बन्धित विधि के विरूद्ध अपराध में;

ग. उन सभी मामलो में, जिनमें मृत्युदण्ड दिया गया है।

राष्ट्रपति इस शक्ति का प्रयोग केन्द्रीय मन्त्रीमण्डल के परामर्श से करता है। क्षमादान एक अनुग्रह है, जिसकी माँग अधिकार के रूप में नहीं की जा सकती है। किसी भी बन्दी या अपराधी को क्षमादान से न केवल अभियुक्त का दण्ड समाप्त हो जाता है, बल्कि दण्डित व्यक्ति पूर्व की स्थिति में आ जाता है, जैसे उसने कोई अपराध ही न किया हो। **दण्ड का लघुकरण** करने का अर्थ है, बड़े दण्ड के बदले छोटा दण्ड देना जैसे— मृत्युदण्ड को बदलकर आजीवन कारावास का दण्ड देना आदि।

संविधान के अनुच्छेद 72 में राष्ट्रपति को दी गई क्षमादान की शक्ति के सम्बन्ध में **मारूराम बनाम भारत संघ (ए.आई.आर. 1980 सु.को. 2417)** का वाद महत्वपूर्ण है। इस वाद में उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ ने अभिनिर्धारित किया कि राष्ट्रपति को क्षमादान की अधिकारिक शक्ति का प्रयोग करते समय दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 433 (क) में निहित उद्देश्यों को ध्यान में रखा जाना चाहिये। न्यायालय ने भी स्पष्ट करते हुये यह कहा कि अनुच्छेद 72 के अधीन क्षमादान की अधिकारिक शक्ति का प्रयोग राष्ट्रपति द्वारा केन्द्रीय

सरकार के परामर्श से किया जाना चाहिये, न कि स्वयं के विवेक से तथा राष्ट्रपति ऐसा परामर्श लेने हेतु बाध्य होता है।

पुरूष सुधाकर बनाम आन्ध्रप्रदेश (ए.आई.आर. 2006 सु.को. 3385) के वाद में उच्चतम न्यायालय ने राष्ट्रपति और राज्यपाल के क्षमादान की शक्ति का पुर्नावलोकन किया है। ऐतिहासिक निर्णय देकर सरहानीय कार्य किया। इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने निश्चित किया कि राष्ट्रपति को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 72 के अन्तर्गत प्रदान की गई शक्ति सर्वांगीण होती है। अतः यह न्यायिक पुर्नावलोकन से मुक्त नही है। फिर भी, इसका पुर्नावलोकन कुछ निश्चित दशाओं में ही हो सकता है वे है–

(i) यदि क्षमादान का आदेश बिना सोच–विचार के पारित किया हो;

(ii) यदि आदेश कदाशयपूर्ण (malafide) हो;

(iii) यदि क्षमादान का आदेश बहिरंग (extraneous) या असंगठन (irrelevant) कारणों पर आधारित हो;

(iv) यदि क्षमादान का आदेश पारित करते समय सुसंगत तथ्यों पर विचार न किया गया हो;

(v) यदि आदेश मनमाने ढंग से पारित किया गया हो।

क्षमादान की शक्ति के न्यायिक पुर्नावलोकन की दशाओं में उच्चतम न्यायालय ने **विनित नारायण बनाम भारत संघ (ए.आई.आर. 1998 सु. को. 889), रामेश्वर प्रसाद बनाम भारत संघ** (ए.आई.आर. **2006 सु.को. 980**) आदि वादों को उचित ठहराया है और उच्चतम न्यायालय ने विनिश्चित भी किया है कि क्षमादान की शक्ति एक संविधानिक शक्ति है। इसी कारण, इसका न्यायिक पुर्नावलोकन करना सामाजिक हित में होगा। किसी भी प्राधिकारी चाहे वह कितने ही उच्च पद पर आसीन हो, उसे उसके अहं एवं पद की शक्ति का अनुचित प्रयोग की अनुमति नहीं दी जा सकती है तथा यदि उस प्राधिकारी ने अपनी पद की शक्ति का गलत या मनमाने ढ़ंग से प्रयोग कर कोई आदेश पारित किया हो तो उसे सुधारा जाना जनहित में होगा।

दण्ड के परिहार (Cremission of Sentences) से तात्पर्य है, कि दण्ड के स्वरूप में परिवर्तित किये बिना इसकी अवधि को कम कर देना, जैसे– किसी बन्दी को दी गई सात वर्ष की कार्यवाही को घटाकर 3 वर्ष का कर देना। संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन राज्यों के राज्यपालों को भी दोषसिद्ध व्यक्ति के अपराध को क्षमादान करने या उस दण्ड का निलम्बन या परिहार या लघु करना उसके अधीन राज्यों के राज्यपालों को भी किसी दोषसिद्ध की शक्ति प्रदान करना है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 72 में राष्ट्रपति को क्षमादान की शक्ति प्राप्त है। इसी प्रकार, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 161 में राज्यपाल को किसी दोषसिद्ध व्यक्ति के अपराध को क्षमा करने या उसका निलम्बन, परिहार या लघुकरण करने की शक्ति प्रदान की गई है। फिर भी निम्नलिखित दो ऐसी परिस्थितियाँ हैं, जिनमें राष्ट्रपति एवं राज्यपाल के क्षमादान की अधिकारिक शक्ति में भिन्नता है। प्रथम, राष्ट्रपति को समस्त प्रकार के दण्डों के मामले में क्षमादान की शक्ति प्रदान की गई है, जबकि राज्यपाल को मृत्युदण्ड से सम्बन्धित मामलों में क्षमादान की शक्ति प्रदान की गई है। **द्वितीय,** राष्ट्रपति को सेना न्यायालय के दण्डादेश के वाद में भी क्षमादान करने की शक्ति प्राप्त है, परन्तु राज्यपाल को इस सम्बन्ध में यह शक्ति प्रदान नहीं की गई है।

राज्यपाल एवं राष्ट्रपति की क्षमादान की अधिकारिक शक्तियों में भिन्नता से सम्बन्धित **के. एम. नानावटी बनाम महाराष्ट्र राज्य (ए.आई.आर. 1962 सु.को. 605)** का वाद उल्लेखनीय है। इस वाद में अभियुक्त एम. के नानावटी भारतीय नौसेना में कैप्टन था। उसने एक दिन अपनी पत्नी को उसके प्रेमी के साथ आपत्तिजनक स्थिति में देखा, जिसके कारण वह गुस्से में नौसेना जहाज से एक पिस्तौल ले आया और उसकी पत्नी के प्रेमी (आहुजा) को गोली मार कर हत्या कर दी। उसे इस हत्या का दोषी पाते हुये बम्बई उच्च न्यायालय ने आजीवन कारावास से दण्डित किया।

अभियुक्त ने इस दण्ड के विरूद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की और उच्चतम न्यायालय में विचारण अवधि में महाराष्ट्र के राज्यपाल ने संविधान के अनुच्छेद 161 में प्राप्त अधिकार का प्रयोग कर अभियुक्त के दण्ड का निलम्बन कर दिया। राज्यपाल के इस दण्ड के निलम्बन के आदेश की वैधता को उच्चतम न्यायालय में इस आधार पर चुनौती दी गई है कि याचिका उच्चतम न्यायालय में लम्बित होने की दशा में राज्यपाल संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन प्रदान क्षमादान की शक्ति का उपयोग नहीं कर सकता है। इस याचिका पर उच्चतम न्यायालय ने निर्णय देते हुये कहा कि संविधान के अनुच्छेद 161 के अन्तर्गत राज्यपाल को दण्ड के स्थगन या निलम्बन की शक्ति उच्चतम न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 145 के अधीन निर्मित नियमों के अध्याधीन है जिसमें यह उल्लेख है कि यदि अभियुक्त के दण्ड को निलम्बित रखने के विरूद्ध याचिका उच्चतम न्यायालय में दायर की जाती है, तो उस स्थिति में अभियुक्त को पुलिस अभिरक्षा में रखा जाना आवश्यक या आज्ञापक है। अतः महाराष्ट्र राज्य के राज्यपाल का दण्ड के निलम्बन का आदेश अपास्त किये जाने योग्य है ।

हांलाकि, राज्यपाल संविधान के अनुच्छेद 161 से प्राप्त अधिकार के अन्तर्गत दण्ड का निलम्बन कर सकता है, परन्तु तब जब इस सम्बन्ध में कोई प्रकरण या अपील न्यायालय में लम्बित न हो, अर्थात् यदि याचिका न्यायालय में

लम्बित विचाराधीन होने की स्थिति में राज्यपाल स्वयं को संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन प्राप्त क्षमादान की शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता है।

मारूराम के वाद में दिये गये निर्णय कि राष्ट्रपति व राज्यपाल द्वारा संविधान में क्रमशः अनुच्छेद 72 एवं अनुच्छेद 161 प्राप्त अधिकारिक शक्ति का प्रयोग क्रमशः केन्द्र और राज्य सरकार के परामर्श पर किये जाने चाहिये, को **धनंजय चटर्जी उर्फ धन्ना बनाम पश्चिम बंगाल राज्य** (**ए.आई.आर. 2004 सु.को. 3454**) के वाद को पुनः दोहराया गया और उच्चतम न्यायालय ने आगे कहा कि प्रत्येक क्षमादान के लिये पृथक से आदेश पारित किया जाना आवश्यक नहीं है। फिर भी, आदेश द्वारा स्पष्ट संकेत मिलना चाहिये कि वह किन परिस्थितियों के प्रति लागू किया जाना आशायित है।

इस वाद में पश्चिम बंगाल के न्याय विभाग के उप–सचिव द्वारा न्यायालय को यह सूचित किया गया कि अभियुक्त की क्षमा याचना की याचिका चूँकि राज्यपाल को सम्बोधित थी इसीलिये राज्य–सरकार द्वारा अस्वीकार कर दी गई थी। अतः राज्यपाल द्वारा याचिका को स्वीकार किया जाना उचित था और यह सूचना अभियुक्त को दे दी गई। तत्पश्चात् उच्चतम न्यायालय द्वारा भी याचिका खारिज किये जाने पर उसने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 72 के तहत महामहिम राष्ट्रपति को क्षमादान हेतु याचना की, जिसे राष्ट्रपति द्वारा 4 अगस्त, 2004 को अस्वीकार कर दिया गया और फिर अभियुक्त ने राष्ट्रपति के निर्णय पर पुनरार्वलोकन हेतु उच्चतम न्यायालय में याचिका दायर की, जिसमें अन्त में 12 अगस्त, 2004 को अभियुक्त को फाँसी देकर मृत्युदण्ड के दण्ड का निष्पादन किया गया।

ऐसा ही एक वाद **स्वर्ण सिंह बनाम उ. प्र. राज्य** के वाद में, अभियुक्त उ.प्र. के राज्य मंत्री के विरूद्ध हत्या का अपराध सिद्ध था। अभियुक्त पर अपराध सिद्ध होने पर न्यायालय द्वारा उसे आजीवन कारावास के दण्ड से दण्डित किया था, जिसे राज्यपाल द्वारा क्षमादान दिया गया। उच्चतम न्यायालय ने राज्यपाल के इस आदेश को प्रत्याख्यापित करते हुये कहा कि यह सत्य है कि न्यायालय को राज्यपाल द्वारा संविधान के अनुच्छेद 161 के तहत पारित आदेश में हस्तक्षेप करने की कोई शक्ति नहीं है, परन्तु यदि कोई आदेश संविधान के सिद्धान्तों के विरूद्ध हो तथा मनमाने ढंग से पारित किया गया हो तो न्यायालय का हस्तक्षेप न्यायोचित होगा। इसके अतिरिक्त, **हरबरूसिंह बनाम आंध्रप्रदेश राज्य** में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिनांक 11 अक्टूबर, 2006 का निर्मित वाद भी सम्बन्धित है।

राष्ट्रपति द्वारा कई बार इस दण्ड का मनमाने ढंग से उपयोग करते हुये भी देखा गया, जो जनता में कहीं न कहीं यह संदेश भी देता है, कि महामहिम

राष्ट्रपति भी इस शक्ति का प्रयोग कभी–कभी मनमाने ढ़ंग से करते हैं। राष्ट्रपति की शक्ति का मनमाने ढ़ंग से प्रयोग से सम्बन्धित वाद **जेन्टला विजयवर्धन राव बनाम आन्ध्रप्रदेश राज्य ((1996)6 एस.एस.सी. 241)** के वाद में अभियुक्त दलित वर्ग के दो युवा लड़कों ने लूट के उद्देश्य से बस में आग लगा दी, जिसके कारण बस में सवार 23 व्यक्तियों की जलकर मौत हो गयी और अनेक व्यक्ति घायल हो गए। अपराध के योजनात्मक तरीके तथा गम्भीर परिणामों को देखते हुये विचारण न्यायालय ने इसकी पुष्टि कर दी। अभियुक्त को दिये गये दण्ड पर कुछ मानव अधिकार संगठनों ने आपत्ति जताई और इस दण्ड के विरूद्ध उच्चतम न्यायालय में याचिका दायर की। परन्तु उच्चतम न्यायालय द्वारा इसे खारिज कर दिया गया। फिर राष्ट्रपति के इस मामले में हस्तक्षेप को न्यायोचित समझते हुये संविधान के अनुच्छेद 72 में प्रदान की गई शक्ति का प्रयोग करते हुये मृत्युदण्ड को आजीवन कारावास में बदल दिया।

हांलाकि, राष्ट्रपति द्वारा संविधान के अनुच्छेद 72 में प्रदान की गई शक्ति का प्रयोग करते समय अपने निर्णय के कारणों का उल्लेख करने सम्बन्धी कोई प्रावधान न होने के कारण यह जानना सम्भव नहीं है कि कौन–सा ऐसा कारण है, जिससे प्रभावित होकर महामहिम राष्ट्रपति ने इस वाद में अपनी इस अधिकार शक्ति का प्रयोग मनमाने ढंग से किया है, विशेषकर इसलिये क्योंकि क्षमादान का निर्णय केन्द्रीय सरकार का मंत्रिमण्डल लेता है, जिसे राष्ट्रपति द्वारा स्वीकार किया जाना अनिवार्य है।

राष्ट्रपति को प्रदत्त की गई क्षमादान की शक्ति एक संवैधानिक शक्ति है जिसका प्रयोग राष्ट्रपति द्वारा मन्त्रिण्डल के परामर्श से किया जाता है। इस सम्बन्ध में अमेरिका का एक वाद **बिडल बनाम पेरोविच (71L. Ed. 1661(1163))** है। इस वाद में अमेरिका उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश होम्स ने निर्णय देते हुये कहा कि वर्तमान समय में क्षमादान सर्वोच्च शक्तिधारी व्यक्ति की दया का व्यैक्तिक मामला नहीं है, बल्कि यह सांविधानिक व्यवस्था का एक अंग बन गया है। जब किसी अपराधी की क्षमा याचना को स्वीकार किया जाता है, तो यह संकेत होता है राष्ट्र के सर्वोच्च प्राधिकारी (भारत के सन्दर्भ मे राष्ट्रपति) के विचार से अभियुक्त को न्यायालय द्वारा अधिक दण्ड दिया गया है, इस दण्ड को कम दण्ड में परिवर्तित किया जाना लोक दृष्टि से उचित होगा। संवैधानिक क्षमादान केवल उन्हीं अभियुक्तों को दिया जायेगा जिनकी रिहाई अधिक हानि नहीं पहुँचायेगी।

इसी प्रकार **रंगा बिल्ला मामला अर्थात् कुलजीत सिंह बनाम भारत संघ (ए.आई.आर. 1980 सु. को. 893**) के वाद में उच्चतम न्यायालय ने अभिकथन किया कि किसी सिद्धदोष अपराधी को क्षमा करना है या नहीं, यह पूर्णतः न्यायाधीश के विवेक पर निर्भर करता है। इस सम्बन्ध में अपने निर्णय के

कारणों का उल्लेख करना आवश्यक नहीं होता है।

क्षमादान का प्रावधान इसीलिये रखा गया है कि अभियुक्त के प्रति किसी प्रकार का अन्याय न हो पाये तथा न्ययायलय द्वारा उसको दिया गया दण्ड संदेहास्पद न रहे। राष्ट्रपति या देश के सर्वोच्च प्राधिकारी के द्वारा दिये गये क्षमादान या दण्ड का लघुकरण सशर्त या शर्तरहित भी हो सकता है। सशर्त क्षमादान दिये जाने की दशा में शर्त भंग होने पर दण्ड स्वमेव पुनर्जीवित हो जाता है।

क्षमादान की सीमायें:–

क्षमादान की आलोचना करने वाले विद्वानों के अनुसार माना जाता है कि क्षमादान द्वारा कार्यपालिका अपनी शक्ति का दुरूपयोग कर सकती है, जो न्यायिक दृष्टि से उचित नहीं है। इससे उच्चतम न्यायालय ने **वैंकट रेड्डी** के वाद में दिये गये क्षमादान के निर्णय की सीमायें निश्चित कर दी गई। इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने राज्यपाल या राष्ट्रपति द्वारा दी जाने वाली क्षमादान की शक्ति को न्यायिक परिधि में लेते हुए स्पष्ट किया कि क्षमादान राष्ट्रपति या राज्यपाल को दिया गया विशेषाधिकार है न कि अनुकम्पा। अब तक ये ही माना जाता था कि राष्ट्रपति न्याय व्यवस्था का अन्तिम पड़ाव है, परन्तु उच्चतम न्यायालय ने वैंकट रेड्डी के निर्णय में यह धारणा बदल दी। अब राष्ट्रपति के निर्णय के विरूद्ध उच्चतम न्यायालय में समीक्षा की जा सकती है। इस वाद में गोवरू वैंकट रेड्डी की पत्नी आन्ध्र प्रदेश की कांग्रेस की विधायक थी, उनके विधायक बनने के दो वर्ष पश्चात् आन्ध्र प्रदेश की तत्कालीन सरकार से अपने पति गोवरू वैंकट रेड्डी, जो हत्या के आरोप में दस वर्ष की दण्डावधि से दण्डित था, पैरोल पर रिहा करने की याचना दी, राज्य ने पाँच दिन पश्चात् पैरोल पर छोड़ दिया और पाँच दिन अवधि बढ़ गई। वैंकट रेड्डी की पत्नी ने आान्ध्र प्रदेश सरकार से अपने पति के दण्ड को एक अच्छा सक्रिय कांग्रेसी कार्यकर्ता होने के आधार पर क्षमादान की याचना की।

आंध्रप्रदेश के राज्यपाल श्री सुशील कुमार शिन्दे ने कांग्रेसी नेता वैंकट रेड्डी को न्यायालय द्वारा दी गई दस वर्ष की दण्डावधि को 11 अगस्त, 1995 को लघुकृत कर पाँच वर्ष कर दिया, चूँकि वह पाँच वर्ष की अवधि तक जेल में रह चुका था, अतः उसे तत्काल मुक्त करने का आदेश दिया गया। इस निर्णय का आधार पर उक्त बन्दी एक सक्रिय कर्मठ कांग्रेसी कार्यकर्ता था। इस निर्णय के पश्चात् तेलगु देशम पार्टी ने मुख्यमंत्री श्री जनार्दन रेड्डी केन्द्रीय उर्जा मंत्री सुशील कुमार शिंदे के इस्तीफे की माँग करते हुये, हैदराबाद के राजभवन के समक्ष उग्र प्रदर्शन किया। इस पर उच्चतम न्यायालय ने राज्यपाल के इस दण्ड के क्षमादान के निर्णय को निरस्त करते हुये कहा कि क्षमादान का आधार

कभी भी जाति, धर्म या राजनीतिक नहीं होना चाहिये तथा स्पष्ट किया कि हालांकि संविधान में राष्ट्रपति या राज्यपाल को क्षमादान की शक्ति प्रदान की गई है, परन्तु राष्ट्रपति या राज्यपाल का यह अधिकार कुछ निश्चित सीमाओं पर आधारित है। ये उनका विशेषाधिकार है जिसका प्रयोग वे अपने मनमाने ढंग से कर सकते हैं।

संविधान द्वारा राज्यपाल व राष्ट्रपति को क्षमादान की शक्ति प्रदान करने का कारण किसी व्यक्ति विशेष को लाभ देना नहीं है, बल्कि न्यायिक निर्णयों की भूल, त्रुटियों, विसंगतियों, कमजोरियों को दूर कर अभियुक्त को उचित न्याय देना है जिससे कि अभियुक्त के साथ किसी प्रकार का अन्याय न हो सके।

उपरोक्त वाद में उच्चतम न्यायालय ने राज्यपाल के क्षमादान के आदेश को निरस्त कर विनिश्चित किया कि उच्चतम न्यायालय को ऐसी याचिकाओं पर न्यायिक पुर्नावलोकन की सीमित शक्ति प्राप्त है। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि राज्यपाल के द्वारा क्षमादान का यह आदेश न केवल अविवेकपूर्ण था बल्कि दुर्भावनापूर्ण भी था। साथ ही यह पूर्णतः मनमाने ढंग से पारित किया गया था।

उच्चतम न्यायालय द्वारा वैंकट रेड्डी के मामले में दिये गये निर्णय द्वारा राष्ट्रपति को सन्देश भेजा गया कि किसी अपराधी के दण्ड को क्षमा करने से पूर्व पीड़ित परिवारों एवं देश के बारे में भी सोचा जाना चाहिये, क्योंकि इस शक्ति का प्रयोग सिर्फ सरकार द्वारा ही किया जाता है। अतः तत्कालीन राष्ट्रपति श्री अब्दुल कलाम द्वारा वर्ष 2005 में स्वयं सरकार को सुझाव दिया गया कि क्षमादान याचिकाओं पर निर्णय की अनुशंसा करने से पूर्व मानवीय पहलुओं को भी ध्यान देना चाहिये। अमेरिका में यह शक्ति कार्यपालिका के सर्वोच्च प्रमुख को न देकर पैरोल बोर्ड दी गई है।

दण्ड का लघुकरण (Commutation of Sentence):–

दण्ड का विलम्बन या स्थगन, लघुकरण (Commutation of reprieve or respite) का अभिप्राय है किसी भी दोषसिद्ध अपराधी को दिये जाने वाले दण्ड को किसी निश्चित अवधि के लिये निलम्बित रखना जिससे उसके दोषसिद्ध के सम्बन्ध में पुनः जाँच की जाये तथा दोषसिद्ध व्यक्ति के प्रति अन्याय न हो पाये। दण्ड का विलम्बन या स्थगन अधिकांशतः मृत्युदण्ड से दण्डित अपराधी के मामलों में किया जाता है, जिससे किसी निर्दोष व्यक्ति को भूल से फाँसी पर चढ़ाये जाने से बचाया जा सके।

बन्दीगृह व्यवस्था में बन्दीगृह में अनुशासन व शान्ति बनाये रखने के लिये क्षमादान के अतिरिक्त दण्ड के लघुकरण, विलम्बन, स्थगन आदि का प्रयोग भी किया जाता है। दण्ड के लघुकरण कर दिये जाने से आशय दिये गये दण्ड के

स्थान पर कम गम्भीर दण्ड देना, इससे अपराधियों को दण्ड से मुक्त करना नहीं होता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में अमेरिका ने बन्दियों को बन्दीगृह में नियन्त्रित एवं अनुशासन में रखने के उद्देश्य से अपने बन्दीगृहों में सदाचरण अभिदेय नियम लागू किया था, जिसके अन्तर्गत जो बन्दी अनुशासन प्रिय, सदाचरण वाले बन्दियों को उनके सद्व्यवहार के लिये उनकी दण्डावधि में अनुपातिक छूट दी जाती थी। अमेरिका में बन्दीगृहों में बन्दियों के सद्व्यवहार किये जाने पर प्रतिवर्ष के लिये माह की छूट का प्रावधान था।

वर्ष 1946 में फ्रांस में यह पद्धति अपनाई गई। वहाँ सामान्यतः अच्छा व्यवहार करने वाले बन्दियों के अतिरिक्त अतिविशिष्ट उत्तम व्यवहार करने वाले बन्दियों के लिये 'मेरिट गुड टाइम' नियमों के अन्तर्गत विशेष छूट दी जाती है। इस प्रकार के प्रावधानों को अनेक देशों ने अपनी दण्डावधि में समाविष्ट किया है। इसके विकल्प के रूप में कुछ देशों में ऑनर पद्धति अपनाई गई है। इसके अनुसार अच्छा व्यवहार करने वाले बन्दियों को बन्दीगृह के प्रशासनिक कार्यों में सक्रिय सहकर्मी के रूप में कार्य करने का अवसर दिया जाता है।

अनेक देशों की तरह भारत की बन्दीगृह व्यवस्था में अच्छा आचरण या सदाचरण करने वाले बन्दियों के दण्ड को कम करने का प्रावधान किया गया है। ये नियम राज्यों की बन्दीगृह नियम पुस्तिका (Jail manual) में दिये जाते हैं। सदाचरण के लिये दण्डावधि में छूट प्रदान करने की व्यवस्था लगभग सभी बन्दियों के लिये होती है। सदाचरण के लिये अपराधी को दण्ड में मिलने वाली छूट दण्ड का लघुकरण नहीं होती, क्योंकि किसी भी बन्दी को उसके अच्छे व्यवहार के लिये दण्डावधि में कटौती करना या छूट देना बन्दीगृह अधिकारियों पर एवं उनके स्वविवेक पर निर्भर करता है, जबकि दण्ड का लघुकरण किये जाने की शक्ति संविधान द्वारा कार्यपालिका के प्रमुख को प्रदान की गई शक्ति है।

हांलाकि, बन्दीगृह में दण्डावधि भोग रहे बन्दियों के दण्ड का लघुकरण करना, क्षमादान प्रदान करना, अच्छा व्यवहार (सदाचार) हेतु कारावधि में छूट देना आदि, बन्दियों को सुधारने के लिये बनाये गये उदारवादी पद्धति के तरीके हैं, जबकि इनका व्यापक रूप से प्रयोग करने से विर्निदिष्ट अपराध के लिये न्यायालय द्वारा दिये गये दण्ड के निर्णय के विरूद्ध परिणाम होता है क्योंकि इससे अपराध और उस अपराधिक कृत्य के लिये नियत किये गये दण्ड के मध्य अन्तर लगभग नगण्य होने लगता है। न्यायोचित दृष्टि से, बन्दीगृह प्रबन्ध में कार्यपालिका द्वारा एक सीमा से अधिक हस्तक्षेप किये जाने से न्यायालय द्वारा अपराध की गम्भीरता के अनुसार दिये गये दण्ड पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है,

जो उचित नहीं है।

अनियत दण्डादेश (Indetermine Sentence):–

किसी भी अपराधी व्यक्ति को उसके द्वारा किये गये अपराधिक कृत्य के लिये दण्ड दिया जाता है और उसे उस दण्डावधि में बन्दीगृह में रखा जाता है। उसे बन्दीगृह में रखने का उद्देश्य अपराधियों को सुधारकर समाज में एक सामान्य एवं उपयोगी नागरिक के रूप में पुनर्स्थापित किया जा सके। अपराधियों के मानव स्वभाव में भिन्नता होना स्वाभाविक है, अतः यह कहना कठिन होगा है कि बन्दी को दण्डावधि तक बन्दीगृह में रखकर सुधार कार्यक्रम द्वारा उसे समाज में पुनर्वास योग्य बनाया जा सके। समान दण्ड वाले से सभी अपराधियों की प्रतिक्रिया में भिन्नता होने के कारण सभी को समान दण्ड देना भी सही नहीं है। इसी कारण, किसी भी अभियुक्त को उसके द्वारा किये गये अपराध के लिये दण्ड का निर्धारण करने में न्यायालय के न्यायाधीशों को एक सीमा तक स्वविवेक का उपयोग करने की शक्ति प्रदान की गई है।

अनियत दण्डादेशों के सिद्धान्त के अन्तर्गत किसी देश की दण्ड संहिता में किसी अपराध के निमित्त न्यूनतम व अधिकतम दण्ड की सीमा निर्धारित रहती है और इस निर्धारित सीमा के अन्दर प्राधिकृत न्यायाधीश या बन्दीगृह परिषद को यह अधिकार प्रदान है कि वह अपने विवेक के अनुसार अपराधी की बन्दीगृह में दण्डावधि का निर्धारण करे तथा उचित व आवश्यक समझने पर अपराधी को अल्पावधि में ही बन्दीगृह से मुक्त करने का आदेश प्रदान करें, जिससे अपराधियों में सुधरने एवं पुनर्वास के लिये प्रयास किये जाने में आसानी हो जाये। विभिन्न देशों की विभिन्न दण्ड प्रणालियों में दण्ड विधि के द्वारा प्रत्येक अपराध के लिये एक निश्चित दण्ड निर्धारित किया गया है जिसे **नियत दण्डादेश** कहा जाता है। परन्तु कई देशों की विधि में अपनी दण्ड विधि में विभिन्न अपराधियों के लिये अधिकतम व न्यूनतम दण्ड की सीमा निश्चित की गई है और उनका निश्चितीकरण का कार्य पैरोल बोर्ड के विवेक पर छोड़ दिया जाता है, जिसे **अनियत दण्डादेश** कहा जाता है।

मूलतः विधायिका ही हर अपराध के लिये दण्ड नियत करती है। समयानुसार आये परिवर्तनों से अपराधियों के लिये उपचारात्मक पद्धति का उदय हो चुका है, इसीलिये विधायिका भी अब इस पद्धति की ओर झुक रही है। वह दण्ड विधि में अनुयम दण्डादेश का अर्थ अनिश्चित दण्डादेश नहीं होता बल्कि वह दण्ड की अधिकतम एवं न्यूनतम सीमा के भीतर ही न्याय के अभिकरण निश्चित करें। इस प्रकार विधायिका ने अपना यह प्राधिकार, प्रथमतः न्यायालय को, उसके बाद पैरोल बोर्ड को स्थानान्तरित कर दिया है। सदलैण्ड ने अपनी पुस्तक 'प्रिंसिपल ऑफ क्रिमनोलॉजी' (छठां संस्करण) में अनियत दण्डादेश के अन्तर्गत बन्दियों

को बन्दीगृह से मुक्ति का समय प्रशासकीय बोर्ड द्वारा तय किया जाता है तथा न्याय उस वाद के निर्णय में न्यूनतम एवं अधिकतम न्याय का निर्णय करता है। उन्होंने कहा कि चूँकि इस दण्डादेश में न्यूनतम व अधिकतम सीमायें निर्धारित रहती है, अतः इसे अनियत कहा जाना उचित नहीं है। बल्कि इन्हें अनिश्चित कहना अधिक उपयुक्त होगा। परन्तु यह जानते हैं कि यह तर्क उचित नहीं है, क्योंकि अनियत दण्डादेश में दण्डावधि न्यूनतम से अधिकतम के मध्य कुछ भी हो सकता है, न कि अनिश्चित होता है।

किसी भी अपराध के लिये दण्ड विधि द्वारा निर्धारित अधिकतम दण्डावधि के निर्धारण से समाज को कहीं अधिक क्षति दण्ड के न्यूनतम दण्डावधि से सकती है, क्योंकि अधिकतम दण्डावधि का दण्ड किसी अपराधी को उन्हीं मामलों में महत्वपूर्ण होता है, जिनके अपराधी उपचार के लिये सही प्रगति नहीं करते हैं।

अमेरिका (न्यूजर्सी) के प्रिज़न ब्यूरो के पूर्व संचालक सन्फोर्ड बेट्स (Sunford Bates) ने अनियत दण्डादेश का समर्थन करते हुये कहा कि बन्दीगृहों में रह रहे बन्दियों को अनुशासन में रखने हेतु सदाचरण अभिदेय नियमों के अतिरिक्त उनके दण्ड में नम्यता रखना आवश्यक है। यदि, पैरोल बोर्ड दण्ड की नम्यता का ठीक ढंग से प्रयोग करे, तो बन्दियों को समाज में पुनर्वासन आसान होगा।

मध्यकाल में प्रायः सभी देशों में धर्म को प्रधानता दी गई थी तथा धर्म के नियमों को ही 'विधि' कहा जाता था और धर्म गुरूओं को ही न्यायिक शक्ति प्राप्त थी। अतः किसी भी अपराधी को उसके द्वारा किये गये अपराध के लिये दण्डावधि का निर्धारण भी धर्मगुरूओं के द्वारा ही किया जाता था और उन्हीं के द्वारा दिये गये निर्णय में दी गई दण्डावधि के लिये अपराधी बन्दीगृह में रखा जाता था।

ऐतिहासिक दृष्टि से वर्ष 1835 में स्पेन के बन्दीगृहों से अनियत आदेश का प्रारम्भ माना गया है। इससे पूर्व अमेरिकी बन्दीगृहों में युवा बन्दियों को सुधारने की दृष्टि से श्रम प्रतिष्ठानों में कार्य करवाने की पद्धति अपनाई गई। 1000 से 1500 बन्दियों को समूहो में बाँट दिया जाता था और प्रत्येक समूह के एक बन्दी को उस समूह की देखरेख व संरक्षण का कार्य दिया जाता था, जिसे वे कम्पनी कमाण्डर कहते थे। दण्डावधि में उनके अच्छा व्यवहार किये जाने पर उनकी दण्डावधि में एक–तिहाई की अवधि की छूट दी जाती थी। इसके पश्चात् यह पद्धति बवेरिया में अपनाई गयी। यहाँ पर बन्दियों के सुधार व पुनर्वास के लिये बन्दी सहायता समितियाँ भी बनाई गयी थी। वर्ष 1846 में फ्रांसीसी दण्ड शास्त्री ने 'प्रिपरेटरी लिबरेशन' नामक पुस्तक में अनियत दण्डादेश के महत्व

को बताते हुये कहा कि अनियत दण्डादेश से बन्दियों को नैतिक बल मिलता है और उनकी शिक्षा एवं अनुशासन में भी सहायता मिलती है। वर्ष 1859 मे फ्रांस में परिवीक्षा पद्धति लागू की गई। परिणामस्वरूप, अनियत आदेश को भी इसमें समाहित किया गया।

इसी प्रकार, आयरलैण्ड के नियम में दण्डादेश के स्थान पर अनियत दण्डादेश को ही महत्व दिया गया है। इस दण्ड व्यवस्था में आयरलैण्ड के बन्दीगृह में बन्दियों को अनियत अवधि तक सुधारगृहों में तब तक रखा जाता है, जब तक कि वे सामान्य नागरिक जीवन के लिये पूर्णतः तैयार न हो जाये। आयरलैण्ड के इस प्रयोग का प्रभाव अमेरिका पर भी हुआ और वर्ष 1857 में अमेरिका के न्यूयार्क में एक विधेयक इस सम्बन्ध में पारित किया गया।

वर्ष 1869 में अमेरिका के एल्मिरा सुधारगृह में अनियत दण्डादेश सम्बन्धी उपचारात्मक दण्ड कार्यक्रम कानून का आवश्यक भाग के रूप में लागू किये गये। इसमें सुधारगृह के प्रबन्ध समिति की अनुशंसा पर प्रथम बार अपराध करने वाले नवअपराधी बन्दियों तथा साथ ही ऐसे बन्दियों, जिनकी उम्र 16 से 30 वर्ष के बीच की हो, को अनियत दण्डादेश के अधीन रख सुधारने का प्रयास किया गया। कुछ अपवादिक मामलों में पुनः अपराध करने वाले अपराधियों को भी अनियत दण्डादेश दिया जाना लगा। अनियत दण्डादेश की अवधि 14 से 24 माह तक की होती थी। अनियत दण्डादेश की न्यूनतम अवधि एक वर्ष की होती है। यह दण्ड बन्दी के लिये एक वर्ष से लेकर बन्दियों को उस अपराध के लिये दी जाने वाली अधिकतम दण्डावधि के मध्य कोई भी अवधि हो सकती है। बीसवीं सदी में वी. बुर्गास ने इलियोनिस के अनियत दण्डादेश को उपचारात्मक दण्ड शास्त्र की एक उपलब्धि माना गया है।

अमेरिका में अनियत दण्डादेश का प्रभाव वर्ष 1965 से 1975 में कम होने लगा। दण्ड शास्त्रियों के अनुसार इसका कारण वैयक्तिक उपचार की आवश्यकता से अधिक और उसकी अवधि का निर्धारण पैरोल बोर्ड को दिये जाने के कारण इसका दुरूपयोग होने की आशंका रहती ही है।

अनियत दण्डादेश की यह पद्धति केवल कुछ चुने हुये बन्दियों पर ही लागू होती है। खासकर यह बाल व किशोर अपराधियों के लिये उचित है, जबकि घोर व अभ्यस्त अपराधियों को यह दण्ड दिया जाना उपयुक्त नहीं होगा।

अनियत दण्डादेश पर कुछ प्रतिबन्ध भी है। अनिर्धारित दण्डादेश हर अपराधी को समान रूप से नहीं दिया जा सकता है। कहीं–कहीं पर इस तरह के दण्डादेश मात्र उप–अपराधियों (misdemesanants) के निमित्त दिया जाता है, तो कहीं–कहीं इस तरह का दण्डादेश घोर अपराधियों के भी निमित्त प्रदान किया जाता है। कभी–कभी ऐसे आदेश निश्चित अवस्था के लोगों को ही दिये

जाते हैं। वर्तमान समय की प्रवृत्ति अब अपराधी को अनियत दण्डादेश ही दिये जाने की ओर प्रवृत्त होती है।

अनियत दण्डादेश के गुण व दोषः—

अनियत दण्डादेश की उपचारात्मक पद्धति में दण्ड को साधन के रूप में स्वीकार किया जा चुका है। इस दण्ड का गुण यह है कि इस दण्ड से बन्दी स्वयं ही शीघ्र रिहा होने के लिये प्रयास करता है और स्वयं की अपराधिक मानसिकता को बदल कर स्वयं को समाज में पुनर्स्थापित करने का प्रयास करता है। अनियत दण्डादेश यह भी बताता है कि कभी—कभी न्यायिक नीति भी असफल हो सकती है तब कभी—कभी प्रशासनिक व्यक्तिकरण की नीति सफल होती है। अनियत दण्डादेश के सम्बन्ध में निम्नालिखित तर्क दिये जाते हैं—

(i) अनियत दण्डादेश बन्दियों के सुधार मात्र के निमित्त प्रदान किया जाता है। इस सम्बन्ध में सुधार के अतिरिक्त अन्य पहलुओं पर भी, जैसे— अभ्यस्त अपराधियों के सन्दर्भ में इसकी प्रतिकारिता एवं निवारणात्मकता पर भी विचार करना चाहिये। यदि अनियत दण्डादेश, प्रतिकारात्मकता एवं निवारणात्मकता के आधार पर प्रदान किया जाये तो दण्डादेश की अवधि पर भी इसका प्रभाव पड़ सकता है। प्रतिकारात्मक, निवारणात्मक व सुधारात्मक तीनों भावनाओं से निहित होने से कारण अनिर्धारित दण्डादेश की व्यवस्था स्वीकार करने योग्य है।

(ii) बन्दीगृह में बन्दियों के लिये बनाये गये सुधारात्मक कार्यक्रमों से यह निश्चित करने के लिये कि अपराधी का सुधार हुआ या नहीं, इसके लिये कोई संतोषजनक प्रणाली का विकास नहीं हुआ है। बन्दियों को अधिक में अधिक स्वतन्त्रता देने व पैरोल पर उसके पर्यवेक्षण के लिये अनियत दण्डादेश प्रभावकारी कार्य करता है।

(iii) अनियत दण्डादेश बन्दी को बन्दीगृह से छूटने की अवधि के सम्बन्ध में अनिश्चयात्मकता प्रदान करता है तथा बन्दियों में आकुलता उत्पन्न करता है। अनियत दण्डादेश से दण्डित बन्दी के मन में सदैव ये भावना बनी रहती है कि उसके प्रति अन्याय या पक्षपात किया जा रहा है। उनकी दण्डावधि कुछ भी हो, वे रिहाई की निश्चित तिथि के बारे में सदैव अन्धकार में रहते हैं।

(iv) अनियत दण्डादेश उनको दिया जाता है, जिनमें वास्तव में सुधार के प्रति उतनी अधिक रूचि नहीं होती, जितनी कि वे दिखाते हैं। वे अच्छा होने का दिखावा बन्दीगृह से शीघ्र रिहाई के लिये अपने बारे

में अच्छी रिपोर्ट बनवाने के लिए करते हैं। इसके अतिरिक्त, इस हेतु वे जेल के रक्षकों, वार्डनों तथा अधिकारियों को प्रसन्न रखने के लिये उनकी चापलूसी करते हैं अर्थात् अनियत दण्डादेश से दण्डित कई बन्दी बन्दीगृहों से शीघ्र मुक्त होने के लिये सदाचरण का दिखावा अधिक करते हैं लेकिन उनके व्यवहार में वास्तविकता कम होती है।

(v) उपचारात्मक पद्धति के अन्तर्गत अनियत दण्डादेश की अवधि का निर्धारण बन्दीगृह के प्रशासकीय अधिकारी या पैरोल बोर्ड के द्वारा दिये जाने के कारण समान अपराध करने वाले अपराधियों को अलग–अलग अवधि के लिये बन्दीगृह में रखना सही होगा। इससे अनियत दण्डादेश दिये जाने वाले बन्दियों में निराशा व न्याय के प्रति अविश्वास का भाव आने लगता है।

(vi) अनियत दण्डादेश में दण्ड की अवधि अनिश्चित होने के कारण किसी भी समय बन्दीगृह से मुक्त किये जाने से उन्हें पूर्ण आत्मसंतोष नहीं मिलता है। इससे उसके द्वारा किये गये अपराधिक कृत्य के लिये पूर्ण दण्ड भुगत लिया जाता है, जबकि इन अपराधियों के द्वारा दण्डावधि पूर्ण करने पश्चात् मुक्त होने पर अपराध के लिये पूर्ण दण्ड को भोगने का आत्मसंतोष होता है, न कि इन पर किसी प्रकार की दया या उदारता का भाव आता है।

(vii) अनियत दण्डादेश के क्रियान्वयन के लिये उपयुक्त प्रशासकीय अधिकारियों की कमी है। इस आदेश का क्रियान्वयन प्रशासनिक अधिकारियों की अपेक्षा न्यायाधीशों से ही कराया जाये तो उचित होगा, क्योंकि प्रशासनिक अधिकारियों की अपेक्षा न्यायाधीश अधिक विश्वसनीय व न्यायोचित कार्यक्षमता दिखाते हैं।

'वास्तव में सदाचरण के लिये बन्दियों को मिलने वाली छूट का ही दूसरा रूप अनियत दण्डादेश है। वर्ष 1925 में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सुधारागार अधिवेशन में सुधारगृह के अध्यक्ष **लार्ड क्लोव** ने अनियत दण्डादेश के बारे में कुछ निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये थेः–

1. नियत दण्डादेश का दण्ड अपराधों के लिये दोषी पाये गये अपराधियों को लम्बी अवधि का दण्ड नहीं दिया जाना चाहिये।
2. बन्दीगृह में नव अपराधियों, बाल अपराधियों, किशोर अपराधियों तथा पच्चीस वर्ष से कम आयु के अपराधियों के लिये अनियत दण्डादेश उपयुक्त होगा।

3. अनियत दण्डादेश में दण्ड विधि के अपराध के लिये निर्धारित अधिकतर दण्ड को ही मान्यता दी जानी चाहिये और न्यूनतम दण्ड का उल्लेख आवश्यक नहीं है।

4. इस दण्डादेश के प्रवर्तन से सम्बन्धित प्रशासकीय अधिकारी या पैरोल बोर्ड के सदस्य आदि समाज सुधार कार्यों में अनुभवी, दक्ष एवं प्रशिक्षित होना चाहिये।

5. बन्दियों के वैयक्तिक उपचार को ध्यान में रखते हुये प्रशासनिक या पैरोल बोर्ड को यह विवेक शक्ति देना आवश्यक है, क्योंकि अनियत दण्डादेश के बिना पैरोल पद्धति सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकती है।

6. समान अपराध करने वाले अपराधियों को एक समान दण्ड दिया जाना न्यायिक दृष्टि से भी उचित नहीं है। दण्ड की प्रतिक्रिया सभी अपराधियों के वैयक्तिक स्वभाव व मानसिकता में विभिन्नता के कारण भिन्न–भिन्न होती है अर्थात् अपराधियों को दिये जाने वाले दण्ड में भिन्नता या असमानता उनके वैयक्तिक सुधार की दृष्टि से अति आवश्यक है।[28]

अनियत दण्डादेश की वैधानिक मान्यता के होते हुये अभी भी बहुत कम देशों में इस दण्ड का उपयोग किया जाता है और जिन देशों में अनियत दण्डादेश का उपयोग किया जाता है वहाँ भी बन्दियों को उनके द्वारा किये गये अपराध के लिये दण्ड की न्यूनतम अवधि तक तो कारावास में रहना ही पड़ता है तथा साथ ही बन्दी को दीर्घावधि के लिये कारावासित किये जाने के विरूद्ध संरक्षण प्रदान किया जाता है। बन्दियों को मुक्त करने की अवधि उसकी अभिवृद्धि व समाज की उन परिस्थितियों पर निर्भर करता है जिसमें बन्दियों को जीवन बिताना पड़ता है।

वर्तमान समय में दण्ड प्रणालियो में अपराध के अनुरूप प्रशासित करने की परम्परागत यान्त्रिक प्रक्रिया का कोई स्थान नहीं है। दण्ड निर्धारण नीति अपराधी के वैयक्तिक सुधार के अनुसार होना चाहिये और इसमें पैरोल, परिवीक्षा, अनियत दण्डादेश आदि उपचारात्मक पद्धति के तरीकों को भी उचित स्थान देना चाहिए।

'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' में **'बन्दीगृह एवं अनुशासन'** लेख में जेम्स मिल ने लिखा है कि अपराधी को दण्ड उसके द्वारा किये गये अपराधिक कृत्य की गम्भीरता, प्रकृति, कारण तथा अपराध की मानसिक प्रवृत्ति के अनुसार दिया जाना चाहिये, जिससे अपराधी पर दण्ड का वांछित प्रभाव पड़े और वह स्वयं पश्चाताप कर सुधार व पुनर्वास की ओर कदम बढ़ाये।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि अपराधियों को दिये जाने वाले दण्डों का अन्तिम लक्ष्य समाज के अपराधियों को संरक्षण प्रदान करना है। यदि आवश्यकता हो तो समाज को सुरक्षित रखने के लिये अपराधियों को दीर्घावधि तक बन्दीगृहों में रखा जाता है। ये वे अपराधी होते हैं जो गम्भीर प्रवृत्ति के होते हैं व इन पर किसी भी प्रकार की उपचारात्मक पद्धति का उपयोग करने पर भी सुधार नहीं होता है। इस प्रकार के अपराधियों को केवल नियत दण्डावधि तक बन्दीगृह में रख दिया जाना एकमात्र उपाय है।

अतः अनियत दण्डादेश की तकनीक सैद्धान्तिक रूप से आदर्शात्मक लगती है परन्तु इसमें बन्दीगृह प्रशासकों द्वारा उनके स्वविवेक का दुरूपयोग किये जाने की अधिकाधिक सम्भावना होने के कारण यह व्यावहारिक दृष्टि से उपयोगी नहीं है। किसी भी अपराधी को दण्ड देते समय उसके प्रति अनावश्यक उदारता का व्यवहार करते हुये अपर्याप्त निर्णय को चुनना सामाजिक हित एवं परिणामिक दोनों के संवर्धन में बाधक बनेगा।

◆ ◆ ◆

अध्याय – 9

बन्दियों के लिये बन्दी पंचायत, पैरोल (कारावकाश) एवं परिवीक्षा

बन्दीगृहों में अनुशासन बनाये रखने तथा बन्दियों में आज्ञा पालन की भावना जागृत करने के उद्देश्य से यह आवश्यक समझा गया कि जेलों के आन्तरिक प्रबन्ध को उचित प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिये। सर्वप्रथम, अमेरिका तथा अन्य यूरोपियन देशों में बन्दीगृहों में स्वायत शासन लागू करके बन्दियों को नियन्त्रण में रखने में सफलता मिली। इसी से प्रेरणा लेते हुये भारत में बन्दीगृहों में भी कार्य करने में सहायता करने हेतु बन्दी प्रतिनिधि का चयन करते हैं, जिससे वे अपनी समस्यायें बन्दीगृह प्रशासन को बता सकें जिसे **बन्दी पंचायत** कहा जाता है। बन्दी उपस्थिति तथा अनुशासन आदि में सक्रिय भाग लेते हैं और जेल कर्मचारियों की मदद करते हैं।

प्रत्येक बन्दीगृह में बन्दियों की बन्दी पंचायत बनाई जाती है जिसका उद्देश्य बन्दियों के भोजन की देखभाल एवं सांस्कृतिक गतिविधियों में बन्दियों एवं प्रशासनिक अधिकारियों को सहयोग देना है अर्थात् इस पंचायत का कार्य है कि बन्दियों के मध्य अनुशासन, स्वच्छता, मनोरंजन का ध्यान रखना। साथ ही, उनके लिये भोजन व नाश्ते की उचित व्यवस्था करना भी है।

पर्यवेक्षक किसी एक बन्दी को बन्दी पंचायत के लिये नामांकित करता है, जो पंचायत व प्रशासन के मध्य सम्पर्क बनाये रखता है। बन्दी पंचायत का कर्त्तव्य, कार्य व अवधि भी निर्धारित होती है। बन्दीगृहों में बन्दीगृह पंचायत का मुख्य लक्ष्य बन्दियों को स्वयं को उपेक्षित न महसूस होने देना तथा उनमें आत्मनिर्भरता व संयम की भावना जागृत करना है जिससे इन बन्दियों को विश्वास में लेकर उनसे सहकार्य लेने से उनमें स्वयं के दायित्व के प्रति जिम्मेदारी बढ़ती है और वे उन्हें प्रदान की गई स्वतन्त्रता का उल्लंघन भी नहीं होता है। बन्दीगृह में बन्दी पंचायत बन्दियों की सर्वानुमति से बनायी जाती है। बन्दियों को जेल जीवन में किस प्रकार से रहना है यह बन्दी पंचायत तय करती है।

बन्दी पंचायत में महिला बन्दियों के लिये अलग पंचायत बनाई जाती है, बन्दी पंचायत का वास्तविक रूप से कार्य करना आवश्यक है। इसी पंचायत के माध्यम से मुख्यालय बन्दीगृह के बन्दियों को सही हालात जानेंगे।

पैरोल (कारावकाश)–

पैरोल प्रणाली भी अपराधियों को सुधारने की एक उत्तम विधि है। बन्दियों के पुनर्वास व समाज में पुनर्स्थापन हेतु पैरोल प्रणाली को दण्ड प्रणालियों में सबसे प्रभावी माना गया है। इसमें बन्दियों को कुछ अवधि बन्दीगृह में भुगतने के पश्चात् कुछ अवधि के लिये उसके या अभिभावकों के आग्रह पर, मिलने के लिये छोड़ा जाता है। अतः पैरोल अपराधी की सशर्त मुक्ति है, क्योंकि पैरोल पर छोड़े जाने के बाद अपराधी को प्रोबेशन अधिकारी की देखरेख में रखा जाता है। पैरोल की अवधि में यदि अपराधी का व्यवहार संतोषजनक नहीं रहता है, तो शेष दण्ड व नये अपराध का दण्ड भी उसे ही भुगतना पड़ता है।

यह सही है कि बन्दियों को समाज में पुनर्वासित करने के पूर्व उन्हें सुधारने की दिशा में या तो पैरोल पर छोड़ा जाना या खुले शिविरों में रखना एक उचित कदम है। पैरोल या खुले शिविरों में रखने से पैरोल पर छोड़ना अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि बन्दी को पैरोल पर छोड़ने पर राज्य पर अधिक बोझ नहीं पडता है। इसका एक और कारण यह भी है कि खुले शिविरों की अपनी कुछ सीमायें होती हैं और पैरोल पर छोड़ने पर बन्दीगृह में बन्दियों की भीड़ को कम किया जा सकता है। हालांकि, बन्दीगृह में बन्दियों की भीड़ कम करने के उद्देश्य से बन्दियों को पैरोल पर छोड़ा जाना सदैव एक महत्वपूर्ण एवं विवाद का विषय रहा है। आमतौर पर माना गया है कि बन्दी समाज के लिये हमेशा खतरा उत्पन्न करता है, इसीलिये समाज के लोग बन्दीगृह से दण्डावधि पूर्ण कर आये अपराधियों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं और उनसे सदैव दूरी बनाये रखते हैं। इस प्रकार की उपेक्षा व तिरस्कारपूर्ण व्यवहार से कई बार अपराधियों में दुराचरण की प्रवृत्ति घर कर जाती है। इसका कारण अधिकतर समाज से उन्हें पुनर्स्थापना हेतु उचित सहयोग न मिल पाना होता है।

जब कोई बन्दी बन्दीगृह में अपनी दण्डावधि पूर्ण कर मुक्त होता है, तब उस पर किसी प्रकार का बन्धन नहीं लगाया जा सकता है और वह समाज में स्वतन्त्र और स्वच्छन्द रूप से रह सकता है। परन्तु बन्दीगृह से मुक्त होने के पश्चात् बन्दी के मन में यह भावना न आये कि वह अपने अपराधिक कृत्य के लिये दण्डावधि पूर्ण कर चुका है और वह पुनः अपराध करने के लिये स्वतन्त्र है, इसके लिये उन्हें बन्दीगृह से मुक्त होने के पश्चात् सामान्य एवं सभ्य नागरिक के रूप में समाज में पुनर्वासित करने का प्रयास किये जाने का प्रयास किया जाता है। इसी उद्देश्य से उपचारात्मक पद्धति में पैरोल एक ऐसा साधन है जो बन्दी रह चुके अपराधियों को समाज में संरक्षण दिलाना है तथा उन्हें समाज में पुनः स्थापित होने में मदद भी करता है। **'पैरोल' को 'कारावकाश'** भी कहा जाता है।

पैरोल की परिभाषाः–

पैरोल इतिहास में एक ऐसी सैन्य अवधारणा है जिसमें कुछ बन्दियों को कुछ निश्चित समय में पुनः बन्दीगृह में वापस आने की शर्त पर रिहा किया जाता था, परन्तु वर्तमान में एंग्लो–अमेरिकन दण्ड पद्धति में पैरोल एक महत्वपूर्ण साधन बन गया है। पैरोल की परिभाषा विभिन्न अपराध शास्त्रियों ने निम्न प्रकार से दी है।

सदरलैण्ड के अनुसार, पैरोल किसी बन्दीगृह या सुधार संस्था से, जिसमें वह अपनी दण्ड की अधिकतम अवधि व्यतीत चुका है, और उसे पूर्ण दण्डावधि से पूर्व मुक्ति प्रदान किये जाने तक अच्छा व्यवहार बनाये रखने की शर्त पर राज्य द्वारा अधिकृत संस्था के अधीन एवं संरक्षण में रहने की शर्त पर मुक्त करना मुक्ति की स्थिति में रखने की क्रिया है।

इलियट ने पैरोल को परिभाषित करते हुये कहा है कि पैरोल अपराधी की बन्दीगृह या सुधारगृह से पूर्व की रिहाई है जो पैरोल अधिकारी की अनुशन्सा के बाद प्रदान की जाती है। **फ्रेंच पत्रकार मोनीवाइल डि मारसोली (Monneville De Marsangy)** ने पैरोल को बन्दी के दण्ड व दण्डावधि पूर्ण होने के मध्य की प्रस्थिति है, जिसमें अपराधी को पर्याप्त अवधि तक प्रायश्चित के रूप में दाण्डिक यातना भुगतने के पश्चात् उसके अच्छे व्यवहार के कारण तथा आचरण सुधार के फलस्वरूप अस्थायी रूप में दण्डावधि को पूर्ण करने से पूर्व उसे इस शर्त–सहित कुछ अवधि के लिये मुक्त किया जाता है। यदि इस अवधि में उसके विरूद्ध कोई शिकायत पाई जाती है तो उसे पुनः बन्दीगृह भेजा जा सकता है।

प्रसिद्ध **दण्डशास्त्री डोनाल्ड टेफ्ट (Donald Taft)** के अनुसार, पैरोल बन्दी को बन्दीगृह से मुक्ति का ऐसा साधन माना गया है। बन्दी पर कुछ नियन्त्रण बना रहने पर भी उसे समाज में सामान्य सामाजिक सम्बन्ध बनाने के लिये स्वतन्त्र करती है, जिससे उसकी दण्डावधि समाप्त होने पर उसकी समाज में पुनर्स्थापना में रचनात्मक सहायता की जाये, जिसकी बन्दी को अत्यधिक आवश्यकता होती है। अर्थात्, टेफ्ट के अनुसार, पैरोल बन्दीगृह से बन्दी की एक ऐसी रिहाई है, जो उसे अंशतः दण्डावधि व्यतीत करने के पश्चात् प्राप्त होती है और इसमें बन्दियों पर कुछ शर्तों का भी बन्धन होता है, जिनका उल्लंघन होने पर उन्हें पुनः बन्दीगृह में जाना पड़ सकता है।

सर राबर्ड क्रास ने अपनी पुस्तक **दि इंग्लिश सेन्टेसिंग सिस्टम** में पैरोल को परिभाषित करते हुये लिखा है कि बन्दीगृह में आये दीर्घावधि से दण्डित बन्दी की दाण्डिक या सुधार संस्था से ऐसी मुक्ति को पैरोल कहा जाता है। इसमें बन्दी द्वारा दण्डावधि का कुछ भाग भुगतने के पश्चात् इस शर्त पर

पैरोल प्रदान किया जाता है कि निरन्तर राज्य के पर्यवेक्षण में रहेगा व पैरोल की शर्तों का उल्लंघन करता है तो पुनः बन्दीगृह में भेजा जायेगा।

जे. एल. मिलन ने पैराल को परिभाषित करते हुये कहा कि पैरोल बन्दीगृह के बन्दियों को दाण्डिक एवं सुधार संस्था से ऐसी मुक्ति है जिसमें बन्दी को किसी उपचारात्मक प्राधिकारी के नियन्त्रण में रखा जाता है, जिससे यह पता चल सके कि वह बिना निगरानी के समाज में विचरण के योग्य है या नहीं।

बार्न्स एण्ड टीटर्स ने पैरोल को सशर्त मुक्ति या रिहाई का एक प्रकार निरूपित किया है। जो उसे प्रदान की गई दण्डावधि की कुछ अवधि व्यतीत कर चुकने के पश्चात् प्राप्त होता है।

अतः उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि ''पैरोल दण्ड की अवधि को अंशतः पूर्ण होने से पूर्व कुछ निर्धारित शर्तों पर निश्चित अवधि के लिये बन्दियों को बन्दीगृह से मुक्त करना है।''

पैरोल को परिभाषित करने के सम्बन्ध में **श्रीमति पूनमलता बनाम वाधवान तथा अन्य (ए.आई.आर. 1987 सु.को. 1383)** का वाद उल्लेखनीय है। इस वाद में न्यायालय ने कहा कि बन्दियों के सुधार की प्रक्रिया का प्रमुख भाग पैरोल भी है जो बन्दियों को समाज में सामान्य नागरिक के रूप पुनर्स्थापित करने का प्रयास का अवसर प्रदान करता है। पैरोल के दौरान बन्दियों पर प्रतिबन्ध कम किये जाते हैं और उनकी स्वाधीनता में आंशिक ढील दी जाती है। न्यायालय ने यह भी कहा कि बन्दियों को पैरोल पर छोड़ना उनके प्रति अनुगृह या कृपा है। अतः कोई भी बन्दी अधिकार के रूप में इसकी माँग नहीं कर सकता है।

अतः पैरोल बन्दीगृह का ही भाग होता है। केवल अन्तर यह है कि पैरोल में दण्ड को बन्दीगृह के बाहर समाज में सशर्त स्वतन्त्र जीवन बिताने का अवसर प्रदान किया जाता है।

पैरोल पद्धति का ऐतिहासिक विकासः—

पैरोल अर्थात् बन्दीगृह से दण्डावधि पूर्ण होने से कुछ समय पूर्ण होने से कुछ समय पूर्व रिहाई। दण्डावधि समाप्त होने से पूर्व ही बन्दियों को बन्दीगृह से मुक्त करने की प्रथा प्राचीन काल में भी थी। कई वर्ष पूर्व भी कुछ विशेष अवसरों पर बन्दियों को समय से पूर्व निर्धारित नियमों या शर्तों के आधार पर ही छोड़ा जाता था। पैरोल की शर्तों में कानून का पालन करना, चुनाव में मतदान न करना, शराब व नशीली वस्तुओं से परहेज करना, पैरोल पर आये व्यक्ति द्वारा पीड़ित व्यक्ति के सम्पर्क से बचना, रोजगार प्राप्त करना एवं पैरोल अधिकार में सम्पर्क बनाये रखना आदि शामिल है। चिकित्सकीय पैरोल या अनुकम्पा मुक्ति

(companssionate relesase) पैरोल के विशिष्ट प्रकार हैं जो चिकित्सकीय या मानवीय आधार पर बन्दियों को दिया जाता है।

वर्ष 1791 में मानव अधिकार की घोषणा के पश्चात् फ्रान्सीसी क्रान्ति के नेता मिराबू (Mirabesau) ने दण्ड–व्यवस्था में एक विचार व्यक्त किया कि बन्दीगृहों में बन्दियों को श्रम, अनुशासन एवं पुरस्कार को अंकों के रूप में दिये जायें और योगफल कुछ अंको के आधे से अधिक हो जाने पर उन्हें आंशिक मुक्ति व सहायता दी जाये। यह नीति स्पेन में कर्नल माण्टेसिनोस ने बन्दीगृह के बन्दियों को मुक्त करने के लिये अपनाई और उन बन्दीगृहों में बन्दियों की दो–तिहाई दण्डावधि पूर्ण हो चुकी थी, उन्हें रिहाई दे दी गई तथा जर्मनी में वर्ष 1842 में बन्दीगृह के मुख्य जेल प्रशासक व पूर्व जेल गवर्नर ओवमायन ने बन्दियों के प्रति उदार नीति अपनाते हुये, उन्हें दण्डावधि पूर्ण होने से पूर्व ही, 'रिलीज्ड प्रिज़नर्स एण्ड सोसाइटीज' को सौंपने की व्यवस्था की थी।

कुछ न्याय प्रणाली जैसे संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की संघीय प्रणाली में अभियुक्त का बन्दीगृह की दण्डावधि पूर्ण करने के पश्चात् बन्दीगृह से मुक्त कर निगरानी रखी जाती है, जो पैरोल का रूप नहीं है। कोलोराडो में पैरोल बन्दीगृह की दण्डावधि पूर्ण करने के पश्चात् एक अतिरिक्त दण्ड है जो 'अनिवार्य–पैरोल' कहलाता है।

विभिन्न देशों में पैरोल का इतिहासः–

कनाडा– कनाडा में सामान्य तौर पर बन्दी पूर्ण पैरोल के लिये आवेदन कर सकते हैं। बन्दी दिन पैरोल का आवेदन करने के लिये भी पात्र होंगे और ये पूर्ण पैरोल का आवेदन करने से पूर्व दिन के पैरोल के लिये आवेदन कर सकते हैं।

वे बन्दी जिन्हें दो वर्ष की कम अवधि के लिये दण्ड दिया गया है, वे उस राज्य या क्षेत्र, जिसमें उन्हें दोषी पाया गया है, के सुधार सुविधा में भेजे जायेंगे और जिन बन्दियों को दो वर्ष से अधिक अवधि के लिये दण्ड दिया गया है, वे संघीय सुधार सुविधा में भेजे जायेंगे तथा वे पैरोल के लिये कनाडा पैरोल बोर्ड से व्यवहार करेंगे।

पैरोल अधिकतर बन्दियों के लिये एक विकल्प है। हालांकि, पैरोल की गारण्टी नहीं है विशेष कर जीवन या अनियत दण्डादेश के बन्दियों के लिए। यदि कोई अपराधी केवल हत्या के प्रथम श्रेणी के मामले में दोषी पाया गया है, तो वह दण्डावधि के 25 वर्ष के पश्चात् पैरोल के लिये आवेदन कर सकता है। यद्यपि, कोई अपराधी कई हत्याओं (प्रथम या द्वितीय श्रेणी) का दोषी पाया जाता है, तो न्यायाधीश के पास हमेशा विकल्प रहेगा, उसे पैरोल के लिये अपात्र करने

का। तथापि, किसी अपराधी को 25 वर्ष से अधिक और कुछ दुर्लभ वादों में जीवन अवधि के लिये दण्डावधि दी जाती है तो वह पैरोल के लिए अपात्र होता है।

चीनः— चीन में बन्दियों को अधिकतर चिकित्सा पैरोल या अनुकम्पा रिहाई पैरोल प्रदान किया जाता है, जो उन्हें इस आधार पर दी जाती है कि वे उचित चिकित्सा प्राप्त कर सकें, जो उन्हें बन्दीगृह में नहीं दी जा सकती है। कभी—कभी चिकित्सा पैरोल का उपयोग गलती से कैद का दण्ड दिये जाने से बिना प्रचार से मुक्त करने के लिये किया जाता है। चीन दण्ड संहिता में निर्वसन के लिये कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है। लेकिन अक्सर असंतुष्टो को किसी अन्य देश में चिकित्सा की आवश्यकता के आधार पर यह समझते हुये है कि यदि वे चीन में आते हैं तो उसके लिए पैरोल जारी हो सकता है।

असंतुष्ट बन्दी जिन्हें चिकित्सकीय पैरोल दिया गया है। इनमें Ngawang, Chphel, Ngawang Sangdrad, Phuntsog Nyidron, Jakna Jigrne, Zangno, Wongdan, Wei Jingshang, Gao Zham And Fang Lizhi शामिल हैं।

इजराइलः— इजराइल में वर्ष 2001 तक पैरोल सिर्फ उन्हीं बन्दियों को दिया जाता था, जो अपनी दण्डावधि का दो—तिहाई दण्ड बन्दीगृह में व्यतीत कर चुके हों। 13 फरवरी, 2001 को इजराइल में एक विधेयक रिवेन रिवलीन एण्ड डेविड लिबान के द्वारा प्रस्तुत किया गया। इसके अनुसार वे बन्दी जिन्होंने बन्दीगृह में दण्डावधि की आधी अवधि व्यतीत कर चुके हैं, को शीघ्र रिहा किये जाने की अनुमति दी जाये। इस आदेश को देने का मूल कारण बन्दीगृहों की भीड़ कम करने में मदद करना था।

इटलीः— इटेलियन पेनल कोड में अनुच्छेद 176 लिबेरटा कांडीजिनाटा द्वारा बनाया गया है। कोई भी बन्दी, जो कम से कम 30 माह (या आजीवन कारावास में 26 वर्ष) की दण्डावधि बन्दीगृह में व्यतीत कर चुका है तथा शेष दण्डावधि उसे दी गई कुल दण्डावधि की आधी अवधि से भी कम है या कुल दण्डावधि का एक—चौथाई (यदि पहले दोषसिद्ध हुआ या कभी नहीं हुआ है) शेष हो या पांच साल (जब दण्ड 7 वर्ष 6 माह से अधिक हो) व्यतीत कर चुका हो, तो वह Liberts Condizionata अर्थात् पैरोल के लिये पात्र है। वर्ष 2006 में इटली में 21 बन्दियों को मुक्त किया गया था।

न्यूजीलैण्डः— न्यूजीलैण्ड में बन्दियों को अल्पकालीन दण्ड (अधिकतम दो वर्ष तक) की आधी अवधि पूर्ण होने पर उन्हें स्वतः पैरोल के लिये बिना किसी सुनवाई के छोड़ दिया जाता है जिन बन्दियों को दो वर्ष से अधिक अवधि के लिये दण्ड दिया जाता है। सामान्यतः उन्हें उनकी दण्डावधि के एक—तिहाई दण्डावधि के बाद न्यूजीलैण्ड पैरोल बोर्ड द्वारा ध्यान दिया जाता है। हालांकि, न्यायाधीश उन्हें दण्ड के लिये दो—तिहाई दण्डावधि तक गैर पैरोल का आदेश

दे सकता है। आजीवन कारावास से दण्डित बन्दियों को कम से कम दस वर्ष या न्यूनतम गैर–पैरोल की दण्डावधि के पश्चात् ही पैराल के लिये पात्र माने जाते हैं। पैरोल बन्दियों का कोई स्वतः अधिकार नहीं है। न्यूजीलैण्ड में 30 जून, 2010 तक पैरोल की सुनवाई में 71% की गिरावट आई थी, इसमें कई दण्डों में विशिष्ट गैर पैरोल अवधि भी शामिल है।

यूनाइटेड स्टेट्स:– संयुक्त राष्ट्र में पैरोल देना मूल रूप से पैरोल बोर्ड के अधिकार क्षेत्र में आता था, परन्तु वर्तमान में राष्ट्रीय अपराधी प्रबन्धन सेवा द्वारा विनियमित है। अब इसे रिहाई की शर्तों का लाइसेंस कहा जाता है और अब पैरोल निर्धारित क्षेत्रों पर ही दिया जाता हैं। पैरोल के लिये अधिकतर बन्दियों पर निम्न छः मानक शर्तें लागू होती हैं–

(i) अपने पर्यवेक्षण अधिकारी से सम्पर्क बनाये रखना;

(ii) अपने पर्यवेक्षण अधिकारी से मिलना निश्चित करना;

(iii) अपने स्थायी पते पर रहना;

(iv) सभी रोजगार के लिये अनुमोदित करना;

(v) पैरोल की अवधि में संयुक्त राष्ट्र में रहना;

(vi) अपराधिक व नागरिक अपराधों से बचना, यौन अपराध करने से बचना भी सांतवी शर्ते है।

अमेरिका मे पैरोल पद्धति का इतिहास बहुत पुराना माना जाता है। पूर्व में भी राज्य द्वारा बन्दीगृह के बन्दियों को एक अनुबन्ध के अधीन कार्य करने के लिये नियोजकों को इस शर्त पर सौंपा जाता था कि उनमें से किसी के भी द्वारा उचित आचरण न किये जाने पर उन्हें पुनः बन्दीगृह भेजा जायेगा। कुछ समय पश्चात् राज्य के कुछ अधिकारियों को बन्दियों के पुनर्वास व मार्गदर्शन में सहायता करने का कार्य दिया गया।

अट्ठारहवीं शताब्दी तक बन्दियों की मुक्ति से पूर्व 'मुक्त बन्दी समिति' भी बनाई गई। वर्ष 1840 तक के कार्य केवल संघीय राज्यों द्वारा ही किया जाता था और यह माना गया कि बन्दियों द्वारा किए जाने वाले अच्छे व्यवहार के लिये दण्ड में कटौती का लाभ केवल बन्दीगृह से रिहाई तक ही सीमित रखना चाहिये और शेष दण्डावधि तक उनकी अभिरक्षा तथा देखरेख जारी रखना चाहिये।

वर्ष 1669 में पैरोल पद्धति सर्वप्रथम अमेरिका के न्यूयार्क राज्य के एल्मिरा सुधारगृह में लागू की गई थी। इस समय पैरोल का मुख्य उद्देश्य असामाजिक तत्वों से समाज को सुरक्षा देते हुये बन्दियों को उनके पुनर्वास में मदद करना था। इसके पश्चात्, पैरोल पद्धति को अन्य राज्यों में भी लागू किया गया।

वर्तमान समय में, यूनाइटेड स्टेट्स बोर्ड ऑफ पैरोल रिसर्च नामक संस्था पैरोल को सम्पूर्ण राज्यों पर एक समान लागू करने की लिये पैरोल के मानक नियम बनाने मे लगी हुई है। पैरोल रिफार्म एक्ट, 1977 लागू होने से पूरे देश में वर्ष 1977 से पैरोल व्यवस्था लागू हो गई।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका विश्व का एकमात्र देश है जहाँ पर पैरोल एक राजनीतिक विभाजनकारी मुद्दा बना हुआ है। अमेरिका की न्याय प्रणाली ने सोलह राज्यों में से पैरोल पद्धति को कुछ हिंसक अपराधियों के लिये समाप्त कर दिया है।

अमेरिका न्याय विभाग की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2005 में पैरोल पर आये बन्दियों में से 45% बन्दियों ने सफलतापूर्वक दण्ड पूरा किया, जबकि 38% बन्दी पुनः बन्दीगृहों में लौटे एवं 11% फरार हो गये। कुछ राज्यों (न्यूयार्क सहित) में हिसंक अपराधियों के लिये पैरोल समाप्त कर दिया गया है। संघीय सरकार के संघीय अपराध के दोषियों के लिये भी पैरोल को समाप्त कर दिया गया था, चाहे वे हिंसक हो या नहीं। वर्ष 1995 से वर्ष 2002 के बीच पैरोलियों की संख्या में 1.6% की वृद्धि हुई थी। पैरोल को अच्छे व्यवहार का समय समाप्त (time off) कहा जाता है।

हंगरी:– रूस व हंगरी ने अमेरिका तथा मध्य पश्चिमी देशों में पैरोल की सफलता से प्रभावित होकर पैरोल जैसी उपचारात्मक पद्धति के प्रति रूचि दिखाई। दण्डशास्त्रियों के अनुसार, हंगरी में अपराधिकता में वृद्धि होने का मुख्य कारण सामाजिक व आर्थिक रूप समृद्धि है। यहाँ पर अपराधियों में शिक्षाप्रद सुधारात्मक पद्धति की आवश्यकता है। इसी उद्देश्य से हंगरी में बन्दियों के लिये शिक्षात्मक सुधार अधिनियम, 1950 पारित कर व्यक्तित्व उपचार पद्धति लागू की गई। इस पद्धति में बन्दियों के व्यवहार की छानबीन का कार्य सामाजिक संस्थाओं द्वारा किया जाता है, परन्तु उन्हें शिक्षात्मक सुधार हेतु बन्दीगृह के बाहर कार्य हेतु भेजा जाये या नहीं, इसका निर्णय न्यायाधीश को ही लेना होता है। इस प्रकार, हंगरी में पैरोल के रूप में शिक्षाप्रद सुधारात्मक पद्धति, प्रशासनिक और न्यायिक दोनों संयुक्त रूप से, बन्दियों के सुधार एवं पुनर्वास हेतु कार्य में आती है।

हंगरी में इस शिक्षाप्रद सुधार पद्धति के अन्तर्गत बन्दियों को पैरोल पर न्यूनतम एक वर्ष व अधिकतम दो वर्ष की अवधि पर रिहा किया जा सकता है। यह अवधि निश्चित करना सुधार के प्रति बन्दी की प्रतिक्रिया पर निर्भर करता है और यदि इस पैरोल की अवधि में किसी बन्दी को कार्य पर रखा जाता है तो उसे उसके लिये निर्धारित मजदूरी दी जाती है। पैरोल व्यवस्था का लाभ पाँच वर्ष से अधिक दण्डावधि के दण्ड से दण्डित बन्दियों के लिये नहीं होता है।

इंग्लैण्डः– ब्रिटेन नौसेना के कप्तान **एलेक्जेण्डर मैकोनोची (Alexender Maconochie)** को इंग्लैण्ड मे पैरोल पद्धति लागू करना का श्रेय जाता है। मैकोनोची ने वर्ष 1845 में आस्ट्रेलिया महाद्वीप के समीप नारफोक आइलैण्ड नामक टापू पर बन्दियों के लिये बस्ती बनवायी थी, जिसकी देखरेख वह स्वयं करते थे। इस बस्ती में केवल उन अंग्रेज अपराधियों को रखा जाता था, जो देश से निष्कासन के दण्ड से दण्डित होने की दण्डावधि पूर्ण कर देश (इंग्लैण ड) में आकर पुनः अपराध करते थे। इस बस्ती में सदाचरण करने के वाले बन्दियों के लिये दण्ड में छूट देने की नीति अपनाई गई, जिससे बन्दियों में स्वयं ही सदाचरण व सुधार की रूचि उत्पन्न हुई। इस पद्धति के आधार पर आगे चलकर 'टिकिट ऑफ लिव' की पद्धति आरम्भ की गई जिसमें आस्ट्रेलिया के दाण्डिक स्थानों पर रहने वाले इंग्लैण्ड के निष्कासित बन्दियों को उनके सदाचरण के लिये पुरस्कार स्वरूप स्वदेश लौटने का अनुमति पत्र दिया जाता था। परन्तु, आस्ट्रेलिया गये बन्दियों को इंग्लैण्ड में अपेक्षाकृत कम सम्मानजनक व सुखी जीवनयापन मिलने से उनमें स्वदेश आने के लिये रूचि नहीं दिखाई। परिणामस्वरूप, वर्ष 1852 में टिकट ऑन लीव की पद्धति बन्द कर दी गई।

इस प्रकार उपरोक्त पद्धति असफल होने के कारण समाप्त करने से बन्दीगृहों में बन्दियों की संख्या निरन्तर बढ़ने लगी और जनजीवन असुरक्षित हो गया था। अतः बन्दियों को बन्दीगृह से कम अवधि में बाहर निकालने के लिये नई पद्धति की आवश्यकता हुई। इसी कारण, इंग्लैण्ड में सशर्त पैरोल प्रणाली की व्यवस्था अपनाई गई। इस व्यवस्था में उन बन्दियों, जिन्हें किसी गम्भीर अपराध के लिये तीन वर्ष से अधिक दण्डावधि का दण्ड दिया गया हो, पैरोलियों को पैरोल अवधि में प्रत्येक माह में एक बार पुलिस स्टेशन में हाजिरी दर्ज कराने, या जिन्हें निवारक निरोध कानून के अन्तर्गत दण्डित किया गया हो और वे आदतन अपराधी हो या ऐसे बाल एवं किशोर अपराधियों को जिन्हें बोर्स्टल या संप्रेषणगृह में रखा गया हो; को पैरोल पर रिहा किया जा सकता है।

पैरोल पर छोड़े गये बन्दियों को शर्त सहित बन्दीगृह से रिहाई उसके अच्छे व्यवहार के बदले पुरस्कार के रूप में दी जाती है तथा शर्त भंग पर उन्हें पुनः बन्दीगृह में दण्डावधि समाप्त होने तक रखा जाता है। वर्तमान में, इंग्लैण्ड में पैरोल पद्धति पूर्णतः स्थापित हो चुकी है। वर्ष 1973 में इंग्लैण्ड की दाण्डिक व्यवस्था से सम्बन्धित परामर्शदात्री परिषद की रिपोर्ट में अपराधी की पश्चावर्ती देखरेख का दायित्व सरकार को ग्रहण करने की अनुशंसा पर बन्दियों के पुनर्वास व उत्तरवीक्षा का कार्य राज्य द्वारा स्वयं किया जाने लगा।

भारत में पैरोल व्यवस्था एवं पैरोल बोर्ड का गठन व कार्यः–

भारत में स्वतन्त्रता आंदोलन के दौरान देश के प्रमुख नेताओं को जेल में

बन्द रखे जाने पर, उनका ध्यान बन्दीगृह व्यवस्था एवं बन्दीगृह प्रशासकों द्वारा बन्दियों के साथ किये जाने वाले अमानवीय व्यवहार व अत्याचारों की ओर गया और इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप बन्दीगृहों की गिरती स्थिति व बन्दियों के साथ हो रहे कठोर एवं अमानवीय व्यवहारों के विरूद्ध आवाज उठाई गई। अतः बन्दीगृहों में सुधार स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान राजनीतिक बन्दियों की समस्या को हल करने के परिणामस्वरूप होना प्रारम्भ हो गया। इसी समयावधि में अन्य देशों में भी बन्दीगृह सुधार कार्य प्रारम्भ हो गये और भारत के बन्दीगृह प्रशासकों पर भी इसका प्रभाव पड़ा और इन्होंने भारतीय जेलो में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये।

इन सब के दौरान बन्दियों की स्थितियों पर अनुभव किया गया कि बन्दियों को कोठरियों में बन्द रखने से समाज और बन्दियों को कोई लाभ नहीं होता है तथा इन्हें रखने की पद्धति में भी परिवर्तन करना आवश्यक हो गया।

पैरोल व परिवीक्षा पद्धति को भारत में लागू हुये पचास वर्ष से अधिक समय हो चुका है। इसके लागू होने के पश्चात् भी इसका विकास अव्यवस्थित ढ़ंग से होने के कारण इसके परिणामों की ओर ध्यान नहीं दिया गया। मध्यप्रदेश व उत्तरप्रदेश, जैसे कुछ राज्यों में बन्दीगृह नियमों में बन्दियों को पैरोल पर छोड़ने को **'प्रोबेशन ऑफ प्रिजनर्स'** कहा जाता है जो त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि प्रोबेशन का लाभ सिद्धदोष अपराधी को दण्ड देते समय दिया जाता है न कि बन्दीगृह भेजने के बाद।

अतः कई राज्यों में प्रोबेशन अर्थात् परिवीक्षा व पैरोल में अन्तर ही नहीं मानते हैं और पैरोल के स्थान पर परिवीक्षा का प्रयोग करते हैं, जबकि परिवीक्षा एक न्यायिक कार्य है जो दण्डाधिकारी द्वारा दण्ड देते समय दिया जाता है और पैरोल एक अर्द्धन्यायिक पद्धति है, जिसे पैरोल बोर्ड के द्वारा अभियुक्त को दण्ड देने के पश्चात् बन्दीगृह में जाने के पश्चात् कुछ दण्डावधि व्यतीत करने के बाद दिया जाता है।

भारत में बन्दीगृह में दण्डावधि व्यतीत कर रहे बन्दी को पैरोल पर छोड़ने का कार्य पैरोल बोर्ड द्वारा किया जाता है। इस पैरोल बोर्ड के सदस्य समाज के गणमान्य नागिरक होते हैं। पैरोल बोर्ड के सदस्य को समाज की परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान होता है। बन्दीगृह के बन्दियों को पैरोल पर छोड़ने के सम्बन्ध में पुलिस की राय को विशेष महत्व नहीं दिया जाता था क्योंकि भारत में जनता पुलिस विभाग पर पूर्णतः भरोसा नहीं कर पाती है। अतः पैरोल के सदस्यों को समाजसेवा में रूचि लेने तथा पैरोल पर मुक्त किये जाने वाले बन्दियों के पुनर्वास में उनका मार्गदर्शन करने की अपेक्षा रहती है। पैरोल बोर्ड़ का कार्य अर्द्धन्यायिक स्वरूप का होता है, क्योंकि उसे पैरोल सम्बन्धी प्रशासकीय निर्णय लेते समय बन्दियों के व्यवहार के बारे में पूर्णतः जाँच–पड़ताल कर अत्यन्त सावधानीपूर्वक

निर्णय लेना पड़ता है। साथ ही, इसका सबसे महत्वपूर्ण कार्य है कि बन्दी के व्यवहार सम्बन्धी पूर्ण जाँच–पड़ताल करने के पश्चात् पैरोल पर छोड़े जाने वाले बन्दियों का बन्दीगृह में व्यवहार तथा पुनर्वास के लिये प्रस्तावित उपायों का उल्लेख कर पैरोल का पूर्ववृत्त (case history) तैयार करना होता है।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 432 के अन्तर्गत राज्य सरकार शर्त अथवा बिना शर्त के साथ, किसी भी दण्ड प्राप्त व्यक्ति के दण्ड को कम कर सकती है। इस सम्बन्ध में सम्बन्धित सरकारें अपराधियों को छोड़ने के आवश्यक नियम बनाती हैं। इन नियमों के अन्तर्गत मुक्ति–परिषद् (Board of relesase) बन्दियों को छोड़ने के लिये अपनी संस्तुति राज्य सरकार को देती है। पैरोल पर छोड़ा गया व्यक्ति या तो परिवीक्षक अधिकारी के पर्यवेक्षण में रखा जाता है या फिर राज्य द्वारा नियुक्त किये गये किसी अभिभावक के संरक्षण में।

राज्य सरकार जब किसी को पैरोल पर छोड़ने का आदेश देती है, तब वह तीन प्रतियों में टिकिट जारी करती है। अभिभावक जिला अधिकारी के समक्ष उपस्थित होकर प्रतिभूतियाँ प्रस्तुत करता है और कारावास अधीक्षक बन्दी से बन्धनामा लिखवाता है। इन कार्यवाहियों के पूर्ण हो जाने के बाद ही कारावास अधीक्षक बन्दी को अभिभावक की संरक्षकता में मुक्त करते हैं। कैदी का आचरण यदि संतुष्ट कारक न हो, तो अभिभावक इसकी रिपोर्ट जिलाधिकारी को प्रस्तुत करता है। यह जिला अधिकारी का कार्य है कि वह इस सम्बन्ध में स्वयं को सन्तुष्ट करे कि अभिभावक एक उपयुक्त व्यक्ति है।

किसी बन्दी को जिसे एक बार पैरोल पर मुक्त किया जा चुका है, उपर्युक्त स्थितियों में पुनः बन्दीगृह में रखने के उपरान्त तीन वर्ष की अवधि के अन्दर फिर पैरोल पर नहीं छोड़ा जा सकता।

उत्तर प्रदेश में पैरोल "प्रिज़नर्स रिलिज़ ऑन प्राबेशन" अधिनियम, 1938 के अनुसार प्रशासित होती है जिसमें दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 433–क को दो कारणों से उत्तरजीवित रखा जा सकता है। प्रथम, सरकार को चाहिये कि वह विधिक योजना को विधि के रूप में नहीं बल्कि मार्गदर्शक नियम के रूप में स्वीकार करे। द्वितीय, "कारावास" और कारगृह को विस्तृत अर्थबोध प्रदान करना चाहिये जिसमें ऐसे समस्त स्थानों को सम्मिलित किया जाना चाहिये, जो निरोध के प्रयोजन के लिये अधिसूचित किए गये हों। इस प्रकार उ.प्र. का अधिनियम दो एवं अन्य संविधियों तथा नियम चौदह वर्ष के कारावास की अवधि को अनुज्ञापन पर शिथिल तथा उदार बनाकर पैरोल का प्रयोग करने की अनुमति दे सकता है, क्योंकि पैरोल की ऐसी अवधि भी कारावास की अवधि होगी, और वह स्थान जहाँ पैराल पर छोड़ा गया व्यक्ति रहेगा, कारागार ही माना जायेगा।

पैरोल व्यवस्था में पैरोल बोर्ड के अतिरिक्त कुछ क्षेत्रीय कार्यकर्ता भी होते

हैं, इन्हें अन्वेक्षक कहा जाता है, जिसका कार्य पैरोल पर छोड़े गये दण्ड की देखरेख करना, नियन्त्रण रखना तथा पैरोल की शर्तों का उल्लंघन होने पर पैरोल प्राधिकारियों को आवश्यक कार्यवाही हेतु प्रेषित करना। इसके अलावा, पैरोल व्यवस्था को ठीक प्रकार से कार्यान्वित करने हेतु पैरोल पर्यवेक्षकों को भी नियुक्त किया जाता है। अतः पैरोल व्यवस्था तीन प्राधिकारियों पैरोल बोर्ड, पैरोल क्षेत्रीय कार्यकर्ता एवं पैरोल पर्यवेक्षक के एक–दूसरे के परस्पर सहयोग द्वारा संचालित की जाती है।

भारत में अमेरिका की तरह पैरोल पर बन्दियों को छोड़े जाने का कार्य मनोवैज्ञानिक व मनोचिकित्सक को सौंप कर, उनकी मानसिकता का परीक्षण कर छोड़ने या न छोड़ने का निर्णय लेने की व्यवस्था नहीं है। भारत में पैरोल पर बन्दियों को छोड़ने का निर्णय लेने से पूर्व बन्दियों को बन्दीगृह में सुनवाई का अवसर दिया जाता है।

भारत में पैरोल पर प्रायः उन्हीं अपराधियों को छोड़ा जाता है, जो दीर्घावधि के दण्ड से दण्डित किया गया हो। अतः जब कभी कोई बन्दी, जो दीर्घावधि के लिये कारवास से दण्डित हैं, उसे पैरोल पर रिहा किया जा सकता है। उसकी क्षेत्रीय कार्यकर्ताओं व पर्यवेक्षकों द्वारा निगरानी भी रखी जा सके। साथ ही, उनके पुनर्वास में उन्हें मार्गदर्शन व उचित सहायता दी जा सके।

हालांकि, पैरोल का पर बन्दियों को छोड़े जाने का उद्देश्य उसे समाज में पुनर्स्थापित होने का अवसर प्रदान करना है, परन्तु कुछ बातों का ध्यान रखना आवश्यक है, जैसे पैरोल पर निगरानी व नियन्त्रण रखना जिससे जनता या समाज को उससे खतरे की सम्भावना होने पर उसे पुनः बन्दीगृह भेज दिया जाता है तथा पैरोली में स्वावलम्बी होने व आत्मनिर्भर का भाव उत्पन्न करने व शोषण से बचाने के लिये उन्हें उचित काम देकर पुनर्वास में सहायता करना।

पैरोल (कारावाकाश) पर रिहाई की प्रक्रिया के सर्वेक्षण के अनुसार पैरोली पर निम्नलिखित प्रतिबन्ध लगाये जा सकते हैं:–

1) नशीले पदार्थों का सेवन न करना तथा मदिरालयों तथा जुआ घरों में न जाना।

2) आयुध या अस्त्र–शस्त्र साथ न रखना तथा शिकार के लिये न जाना।

3) अपराधियों तथा असामाजिक तत्वों से दूर रहना तथा उनसे पत्र–व्यवहार न करना।

4) देर रात घर के बाहर न रहना तथा राज्य से बाहर जाने के लिये सम्बन्धित प्राधिकारियों से पूर्व अनुमति लेना।

5) अपने निवास या नौकरी में परिवर्तन की दशा में इसकी पूर्व सूचना सम्बन्धित प्राधिकारियों को देना।

6) नियमित रूप से धर्म–स्थलों पर जाना तथा अपना नैतिक आचरण नियन्त्रित रखना।

7) बिना पूर्व अनुमति के मूल्यवान वस्तुओं को उधार या किस्तों पर न लेना।

8) बिना पूर्व अनुमति के विवाद न करना, आदि।[29]

बन्दीगृह के बन्दियों को दी जाने पैरोल की अवधि विभिन्न देशों में भिन्न–भिन्न व्यवस्था व नियम हैं। अधिकतर दण्डशास्त्रियों के अनुसार, पैरोल की अधिकतम अवधि बन्दी की शेष दण्डावधि तक होना चाहिये और उनकी न्यूनतम अवधि पैरोल अधिकारी को अपने विवेकानुसार तय करने की शक्ति देना चाहिये।

इस पैरोल की अवधि के सम्बन्ध में **डॉ. वाल्टर रेक्लेस** कहा कि पैरोल पर छोड़े गये बन्दी में सुधार की दृष्टि न्यूनतम होने से ही लाभकारी होगी, यदि उसके पर्यवेक्षण की अवधि अधिकतम होती है, तो उस पैरोल की पर नियन्त्रण कम एवं निष्प्रभावी हो जायेगा। अतः रेक्लेस के अनुसार, यदि किसी अपराधी को पुनः अपराध करना हो तो वह बन्दीगृह से रिहा होने के पश्चात् लगभग छः माह में ही करेगा। अतः इन्हें लम्बी अवधि के लिये निगरानी में रखने से उसको अपराधिक प्रवृत्ति से दूर किया जा सकेगा, सोचना व्यर्थ होगा।

भारत में किसी बन्दीगृह के बन्दियों के लिए पैरोल की अवधि पैरोल बोर्ड द्वारा निर्धारित की जाती है। पैरोल बोर्ड को कुछ उचित मामलों में पैरोल की अवधि समाप्त होने से पूर्व ही पैरोल की शक्ति प्रदान की गई है, परन्तु पैरोल बोर्ड को यह भी ध्यान देना होगा कि पैरोल की अवधि उसकी दण्डावधि के शेष अवधि से अधिक न हो।

पैरोल के आवश्यक तत्वः–

पैरोल व्यवस्था की सफलता निम्न आवश्यक बातों पर निर्भर करती है–

(i) पैरोल का उद्देश्य अपराधी में सुधार करना है। अतः यह अपराधियों के सुधार की संस्था के समकक्ष मानी जाती है।

(ii) पैरोल व्यवस्था का लाभ शारीरिक अपराध करने वाले बन्दी को सम्पत्ति सम्बन्धी अपराध करने वाले बन्दी की अपेक्षा लाभ देना होता है, क्योंकि साम्प्रदायिक अपराध करने वाले अपराधी द्वारा अपराध की पुर्नावृत्ति करने की प्रवृत्ति अधिक होती है।

(iii) बन्दीगृह में जिन बन्दियों के द्वारा दण्डावधि के दौरान अच्छा व्यवहार

किया जाता है और सुधार के प्रति उनकी रूचि होती है, उन्हीं बन्दियों को पैरोल पर रिहाई दी जाती है। ये पैरोल उन्हें कुछ निर्धारित शर्तों पर दी जाती है।

(iv) पैरोल की पारिवारिक परिस्थितियों पर भी पैरोल की सफलता निर्भर करती है। सामान्यतः पारिवारिक जिम्मेदार व्यक्ति पैरोल की शर्तों का उल्लंघन नहीं करता है, जबकि देखा गया है कि अविवाहित या परिवार रहित बन्दी शर्तों की परवाह नहीं करते हैं।

(v) पैरोल के आधुनिक अनुसन्धानों में यह सिद्ध हुआ है कि प्रत्यावर्ती अपराधी बन्दियों को पैरोल पर छोड़ने पर वे शर्तों का पालन ठीक से नहीं करते हैं और उन्हें पुनः बन्दीगृह भेजा गया, जबकि नये अपराधी अर्थात् जिन्होनें पहली बार ही कोई अपराध किया हो, को पैरोल पर छोड़ने पर वे स्वयं को समाज में सरलता से पुनर्स्थापित कर लेते हैं।

(vi) पैरोल पर छोड़े गये बन्दियों का समय–समय पर पैरोल व्यवस्था के अन्तर्गत निरीक्षण करना आवश्यक है।

पैरोली द्वारा पैरोल का उल्लंघनः–

बन्दीगृह से बन्दियों को पैरोल पर छोड़ने का उद्देश्य बन्दियों को स्वयं समाज में पुनर्वासित करने का अवसर देना है, परन्तु इस व्यवस्था को सदैव सफलता प्राप्त हो आवश्यक नहीं है। कई बार जिन बन्दियों को पैरोल पर छोड़ा गया, वे पैरोल की शर्तों का उल्लंघन भी करते हैं, ऐसे में उन्हें पुनः उसी बन्दीगृह या दाण्डिक संस्था में भेज दिया जाता है, जहाँ से वे छूटकर आते हैं। किसी बन्दी द्वारा पैरोल की शर्तों का उल्लंघन करने पर उसे बन्दीगृह भेजने के लिये सर्वप्रथम पैरोली को शर्तों का उल्लंघन करने के लिये गिरफ्तारी वारण्ट भेजा जाता है और फिर बिना किसी विचारण के उसे गिरफ्तार कर बन्दीगृह भेज दिया जाता है। बन्दीगृह में उसे सुनवाई का मौका दिया जाता है। उसे अपने बचाव पक्ष को स्वयं या अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत करने की छूट दी जाती है और उसके द्वारा दिये गये स्पष्टीकरण उचित नहीं हुये तो उसे शेष दण्डावधि के लिये बन्दीगृह में रहना होता है। यदि पैरोली ने पैरोल के दौरान शर्तों के उल्लंघन के अतिरिक्त अन्य अपराध भी किया हो, तो उसे नये अपराध के लिये विधिनुसार दण्डित किया जाता है और उस बन्दी को पुनः पैरोल का लाभ भी नहीं मिल सकता है।

भारत में बन्दीगृह का कोई बन्दी बिना उचित कारण के, उन शर्तों का जिन पर उसके दण्ड को निलम्बित किया गया है, या उसे पैरोल पर छोड़ा गया है, का उल्लंघन करता है, तो **कारागार अधिनियम, 1894** (1894 का IX)

की धारा 43(अ) के अन्तर्गत बन्दीगृह सम्बन्धी अपराध किया माना जायेगा तथा बन्दियों के ऐसे उल्लंघनकारी पैरोली के विरूद्ध कारागार अधिनियम के तहत कार्यवाही की जायेगी। भारत में पैरोलियों को स्वेच्छा से बन्दीगृह में वापस लौटने की व्यवस्था नहीं है।

भारत में पैरोल के आधारभूत सिद्धान्तः–

भारत में कारागार व्यवस्था में मानवता के सिद्धान्त को लागू करना पैरोल एक साधन के रूप में काम करता है। पैरोल में बन्दियों को सशर्त समाज में विचरण करने का अवसर दिया जाता है। अखिल भारतीय जेल मैन्युअल समिति की रिपोर्ट के पैरा 101 में पैरोल के उद्देश्य का निम्नानुसार उल्लेख किया गया है–

1) पैरोल का उद्देश्य बन्दियों को स्वयं के पारिवारिक जीवन को यथावत रखने में सहायता करना, जिससे वे अपनी पारिवारिक समस्याओं को हल कर सकें।
2) बन्दियों को दीर्घावधि के कारावास जीवन की बुराईयों से बचाना।
3) बन्दियों में आत्मविश्वास की भावना व जीवन के प्रति रूचि जगाने का प्रयास करना।

इसके अतिरिक्त, **भारतीय जेल समिति, 1983** ने पैरोल के अतिरिक्त कुछ वर्ग के बन्दियों को बन्दीगृह में एक निश्चित दण्डावधि पूर्ण करने के पश्चात् लम्बे समय तक उनके उत्तम व्यवहार का फल अर्थात् एक आकस्मिक दण्डावकाश है, जो वर्ष में कुछ दिवस के लिये बन्दियों को अधिकार के रूप में दिया गया है जिससे वे अपने परिवारजनों व रिश्तेदारों से सम्पर्क बनाये रख सकें। सफल पैरोली की अवधि की गणना भी उसकी दण्डावधि के रूप में की जानी चाहिये।

पैरोल व्यवस्था के गुणः–

1) पैरोल पर छोड़ने पर बन्दियों को बन्दीगृह के दूषित वातावरण से शीघ्र मुक्ति मिलने का अनुभव बताता है कि अपराधी को सामाजिक जीवन के अनुकूलन का सुअवसर प्राप्त हो जाता है।
2) पैरोल पर रिहा होने की आशा में बन्दी बन्दीगृह में अनुशासन में रहने लगता है, जिससे बन्दीगृह में अनुशासन सम्बन्धी समस्यायें कम होती हैं।
3) पैरोल पद्धति में अपराधी के समय से पूर्व घर लौट आने से उसके मन में कानून के प्रति श्रद्धा की भाव उत्पन्न होता है।

4) पैरोल व्यवस्था में पैरोल पर आये अपराधियों के परिवार टूटने से बच जाते हैं। यह पैरोल का सर्वश्रेष्ठ लाभ है। बन्दी घर का एकमात्र कमाऊ सदस्य हो तो पैरोल पर आने से उसका परिवार आर्थिक बर्बादी से भी बच जाता है। वह पैरोल के दौरान ही रोजगार पर लग जाता है।

5) पैरोल में अपराधी को निश्चित शर्तों पर छोड़ने एवं पैरोल की अवधि में पर्यवेक्षण व निगरानी रखने से अपराधी सद्व्यवहार बनाये रखता है व जीवन में सही मार्ग पर चलने का प्रयास करता है जिससे सामाजिक सुरक्षा बनी रहती है।

6) पैरोल प्रणाली कम खर्चीली होती है। इससे राज्यों का बन्दीगृहों पर होने वाला वित्तीय व्यय कम हो जाता है और बन्दीगृहों में बन्दियों की संख्या कम होने से बन्दियों के आवास व रख–रखाव की समस्या भी हल हो जाती है।

7) पैरोल पर छोड़े गये अपराधी के प्रति समाज का रूख सजा पूर्ण कर आने वाले अपराधी की अपेक्षा कम कठोर होता है। पैरोल पर छूटने का आधार उस अपराधी के आचरण व व्यवहार में सुधार आने की आशा की जाती है और उसके साथ सहानुभूति व उदारता का भाव रखा जाता है।

पैरोल व्यवस्था के दोषः– पैरोल व्यवस्था के कुछ गुण होने के साथ–साथ कुछ निम्नलिखित दोष भी हैंः–

1) पैरोल पर छोड़े गये बन्दियों का चयन उचित सावधानी से नहीं किया जाता है, तो इसके गम्भीर दुष्परिणाम हो सकते हैं। हालांकि, बन्दियों का चयन पैरोल बोर्ड व पर्यक्षकों की रिपोर्ट पर आधारित रहता है। अतः बन्दियों का चयन सावधानीपूर्वक व निष्पक्ष नहीं होता है। इस प्रकार असवाधानीपूर्वक व पक्षपातपूर्ण रिपोर्ट के आधार पर भूलवश अयोग्य या अपात्र को पैरोल मिल जाती है, तो यह सामाजिक सुरक्षा की दृष्टि से गम्भीर खतरा उत्पन्न कर सकता है।

2) पैरोल पर छोड़ जाने वाले बन्दियों का चुनाव सामाजिक पक्षपात के द्वारा किया जाता है। अतः पैरोल बोर्ड के सदस्य राजनीतिक दबाव द्वारा पक्षपात कर निर्णय देते हैं, तो यह निर्णय निष्पक्ष व सद्भावनापूर्ण न होकर स्वार्थ प्रेरित हो सकता है और ऐसे बन्दियों को पैरोल मिल जाने से वे अपनी रिहाई का अनुचित लाभ लेते हुये अपराधिकता की ओर प्रवृत्त होते हैं, जो पैरोल व्यवस्था को असफल बनाता है।

3) यह आवश्यक नहीं है कि बन्दीगृह में सदाचरण करने वाले सभी बन्दी पैरोल पर छोड़ दिये जायें। ऐसा भी हो सकता है कि वे पैरोल पर शीघ्र

मुक्त होने के लिये अच्छा व्यवहार करने का ढोंग करें।

4) समाज का पैरोली के प्रति संशय व उपेक्षा उसे समाज में पुनर्वास करने में बाधा उत्पन्न करता है। अनेक पैरोलियों पर समाज की इस उपेक्षा का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और वे पुनः अपराधिकता की ओर चले जाते हैं।

5) कई बार पैरोल पर अधिक बन्दियों को छोड़े जाने पर उन पर निगरानी रखना व उनकी देख–रेख करना कठिन हो जाता है तथा कुछ राज्यों में तो पैरोल पर आये बन्दियों को बिना किसी निगरानी व निरीक्षण के छोड़ दिया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप लाभ के स्थान पर हानि होती है।

पैरोल सम्बन्धी कुछ न्यायिक निर्णय

1. इस सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णित **बाबूलाल दास बनाम पं.बंगाल राज्य (ए.आई.आर. 1975 सु.को. 606)** के वाद में न्यायमूर्ति वी.आर.कृष्ण अय्यर ने विचारण की प्रतीक्षा में जेल में नजरबंद रखे गये कारावासियों के प्रति सहानुभूति दर्शाते हुए टिप्पणी की कि ऐसे बन्दियों को जो बिना विचारण के कारागार में रखे गये हैं, पैरोल का लाभ देकर सुधरने का उचित अवसर दिया जाना चाहिए और इस हेतु आंतरिक सुरक्षा कानून 1971 मीसा की धारा–15 का लाभ देकर उन्हें पैरोल पर छोड़ दिया जाना चाहिए।

   तथापि, समीर चटर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य के वाद में उच्चतम न्यायालय ने उक्त निर्णय को पलट दिया और इस बात से असहमति व्यक्त की कि लम्बी अवधि के लिए निवारक निरोध स्वयं में व्यर्थ एवं अपराधिकता की दृष्टि से प्रतिकूल प्रभाव डालता है। अतः उच्चतम न्यायालय जाने के सम्बन्ध में न्यायालय का आदेश अपास्त कर दिया गया।

2. उच्चतम न्यायालय ने **हीरालाल मलिक बनाम बिहार राज्य (ए.आई. आर. 1975 सु.को. 1165)** के बाद में अभिनिर्धारित किया कि लंबी अवधि के लिए दण्डित बन्दियों को निश्चित अन्तरालों में कुछ समय के लिए पैरोल पर छोड़ा जाना उचित होगा। परन्तु, उनकी इस प्रकार की अस्थायी रूप से पैरोल पर रिहाई के दौरान यह सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है कि वे इस अवधि में सदाचरण बरतते रहें और पैरोल की अवधि समाप्त होते ही कारागार में वापस लौट आयें। इस वाद में अभियुक्त को दण्ड संहिता की धारा–326 के अधीन गम्भीर प्रकार के अपराध के लिए 08 वर्ष के कारावास के दण्ड से दण्डित किया गया था। अपराध की घटना के समय अभियुक्त की आयु केवल 12 वर्ष की थी। पटना उच्च न्यायालय

ने अभियुक्त की किशोरावस्था को ध्यान में रखते हुए उसकी कारावधि 08 वर्ष से घटाकर 04 वर्ष कर दी। इसके विरूद्ध अपील में उच्चतम न्यायालय ने निर्देश दिया कि उक्त 04 वर्ष की कारावधि में अभियुक्त को निश्चित अंतरालों में बीच–बीच में पैरोल पर छोड़ा जाये ताकि वह समाज से पूरी तरह कटने न पाए तथा पशुवत न हो जाए। परन्तु, न्यायालय ने यह भी कहा कि कारावासित व्यक्ति को उचित अंतरालों में पैरोल पर छोड़े जाने के पूर्व यह सुनिश्चित कर लिया जाना चाहिए कि कारागार के बाहर कारावासी का व्यवहार एवं आचरण उचित रहेगा और पैरोल की अवधि समाप्त होते ही वह पुनः कारागार में वापस लौट आएगा।

3. **धर्मवीर बनाम उत्तरप्रदेश राज्य ((1979) 3 सु.को.के. 645)** के मामले में भी उच्चतम न्यायालय ने दीर्घकालीन कारावास भोग रहे कैदियों को बीच–बीच में निश्चित अवधि के लिए पैरोल पर छोड़े जाने की अनुशंसा की, ताकि समाज से उनका सम्पर्क बना रहे। इस वाद में अभियुक्त को आजीवन कारावास से दण्डित किया गया था और उसके दण्ड में कमी की जाने की कोई गुंजाइश नहीं थी। अतः उच्चतम न्यायालय ने राज्य सरकार तथा जेल प्राधिकारियों को निर्देश दिया कि वे अभियुक्त को वर्ष में 02 सप्ताह के लिए पैरोल पर छोड़े बशर्ते कि कारागार में उसका आचरण संतोषजनक रहा हो।

4. **बीरूमचन्नी राघवेन्द्र राव बनाम आंध्रप्रदेश राज्य (1985 क्रि.ला.ज. 1009)** के वाद में उच्चतम न्यायालय में अभिकथन किया कि कारावासी की पैरोल पर रिहाई तथा सुप्रीम कोर्ट में अपील के दौरान अभियुक्त की सजा का निलम्बन राज्य सरकार की सांविधिक शक्ति के परे होने के कारण अपास्त किये जाने योग्य है। इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने आंध्रप्रदेश पैरोल नियम 1981 का नियम 23 तथा आन्ध्रप्रदेश कारागार नियम 1979 का नियम 974(2) को भारतीय दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा–389 के साथ पठित धारा 432(5) से असंगत होने के कारण शून्य प्रभावी घोषित किया गया।

5. उच्चतम न्यायालय ने **केसर सिंह गुलेरिया बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य (1985 क्रि.ला.ज. 1202)** के वाद में विनिश्चित किया कि कारावासियों को अस्थायी तौर पर पैरोल पर रिहा करने का निर्णय लेते समय सम्बन्धित पैरोल अधिकारियों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यदि गरीबी और धनहीनता के कारण कारावासी बन्धपत्र या प्रतिभूति देने की स्थिति में न हो, तो केवल इस आधार पर उसे पैरोल पर मुक्त किये जाने से वंचित नहीं रखा जाना चाहिए। निर्धन कारावासियों को पैरोल पर छोड़ते समय पैरोल अधिकारियों से अपेक्षित है कि वे पैरोली

की पारिवारिक एवं सामाजिक स्थिति पर विचार करके उनसे बन्धपत्र या प्रतिभूति लेने की शर्त को शिथिल कर दें।

6. **किशनलाल बनाम दिल्ली प्रशासन (1976 सु.का.के. 655)** के वाद में उच्चतम न्यायालय ने जालसाजी के अपराध के लिए दण्डित अभियुक्त की कारावधि को उसकी गरीबी या आर्थिक आवश्यकता के आधार पर लघुकृत करने से इन्कार करते हुए अभिनिर्धारित किया कि आर्थिक आवश्यकता को दण्ड कम किये जाने का सुसंगत आधार नहीं माना जा सकता। तथापि, उच्चतम न्यायालय ने इस बात से सहमति व्यक्त की कि यदि कारागार में अभियुक्त का आचरण संतोषजनक हो, तो उस दशा में उसे उचित अन्तरालों में निश्चित समय के लिए पैरोल पर छोड़ा जा सकता है।

उच्चतम न्यायालय ने **सुरेशचंद्र बनाम गुजरात राज्य** के प्रकरण में पैरोल को प्रत्यावर्तिता रोकने का एक सुगम एवं सुलभ दण्डशास्त्रीय नवप्रवर्तन निरूपित किया है। न्यायालय ने कारागारों में बन्दियों की भीड़ कम करने के लिए पैरोल का खुलकर प्रयोग किये जाने पर विशेष बल दिया है। यह अपराधी को समाज में पुनर्वासित होने के लिए अवसर देने का सर्वोत्तम उपाय है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि बन्दीगृह सभी प्रकार के बन्दियों के प्रशिक्षण एवं पुनर्स्थापित करने के लिये उपयुक्त नहीं होते है, खासकर दीर्घावधि से दण्डित बन्दियों के लिये। दीर्घावधि के लिये बन्दियों को कोठरी में रखकर सुधार लाना सम्भव नहीं होता है, परन्तु किसी व्यक्ति का अपराध सिद्ध होने पर बन्दीगृह में दण्डावधि पूर्ण करने के पश्चात् समाज में उसे सामाजिक लांछन, उपेक्षा व तिरष्कार जैसी गम्भीर समस्या का सामना करना पड़ता है। अपने प्रति समाज की इस प्रकार की भावनाओं को देखकर बन्दीगृह से आया व्यक्ति सामान्य लोगों की भाँति ईमानदारी व निष्ठा से जीवनयापन नहीं कर सकता है। बन्दियों की इसी समस्या को हल करने का प्रयास पैरोल पद्धति में किया गया है।

निष्कर्षतः, यह कहा जा सकता है कि बन्दीगृह में दण्डावधि व्यतीत करने वाले बन्दी की बन्दीगृह में भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि पैरोल पद्धति द्वारा बन्दियों को समाज में पुनर्वासित करने में सहायता की जाती है और यह सामाजिक दृष्टि से भी सुरक्षित उपचारात्मक पद्धति है। इस पद्धति से राज्य का बन्दीगृहों के बन्दियों पर होने वाला आर्थिक व्यय कम होने लगता है। पैरोल की सफलता पैरोल बोर्ड द्वारा पैरोल के लिये उचित बन्दी के चयन एवं पैरोल पर छोड़े गये बन्दी की उत्तरवीक्षा की उचित व्यवस्था पर निर्भर करता है, जो

अपराधियों को समाज में पुनर्स्थापित करने में सहायक होती है।

परिवीक्षा

वर्तमान में, दण्ड प्रणाली में उपचारात्मक प्रणाली की ओर विशेष ध्यान दिया जाता रहा है क्योंकि अब यह माना जाने लगा है कि कोई भी व्यक्ति जन्म से अपराधी नहीं होता, बल्कि परिस्थितियाँ उसे अपराधी बना देती हैं। अब अपराधी को बन्दीगृह में रखे जाने के स्थान पर उन्हें सुधारवादी दण्ड व्यवस्था द्वारा सुधारने का प्रयास किया जाता है। और, प्रायः सभी देशों ने माना कि किसी भी अपराधी को देशद्रोही होने के पश्चात् बन्दीगृह भेजे जाने के स्थान पर उसे परिवीक्षा का लाभ देकर समाज में ही परिवीक्षा अधिकारी की निगरानी में रखकर उसे सुधरने में सहायता करता है। अतः परिवीक्षा शब्द का अर्थ है उपचार और अनुशासन। यह अपराधियों को सुधारने का एक महत्वपूर्ण उपाय है।

किन्हीं व्यक्तियों को किये गये अपराधिक कृत्य के लिये दोषी पाये गये अपराधियों को दण्ड़ के भुगतान हेतु बन्दीगृह में रखना प्राचीन समय की रूढ़िगत प्रथा है। परन्तु, वर्तमान दण्ड शास्त्री के अनुसार इस पद्धति में बन्दियों को पूर्णतः बन्दीगृह प्रशासन पर निर्भर होने के कारण निर्भरता का जीवन जीने का आदी होने से बन्दीगृह से दण्डावधि पूर्ण करने के पश्चात् स्वयं को समाज में पुनर्वास करने में कठिनाई होती है।

ऐसे अपराधी को दण्डावधि में बन्दीगृह के कठोर अनुशासन में रखे जाने से उसकी अपराधिक प्रवृत्ति समाप्त हो जायेगी। अपराधियों की दण्डावधि में कठोर अनुशासन में बन्दीगृह में रखा जाता है, तो कभी–कभी इसके कुछ दुष्परिणाम भी होते हैं, जैसे अपराधी के रोजगार में हानि, परिवारजनों से अलगाव, बन्दीगृहों में गम्भीर अपराधी के साथ रहकर अभ्यस्त अपराधी होने की संभावना आदि से प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है और यदि बन्दियों के सुधार की दृष्टि से देखें और उन्हें बन्दीगृह न भेजकर समाज में उचित पर्यवेक्षता तथा मार्गदर्शन द्वारा रखना एक परिणामकारी उपाय सिद्ध हुआ है। अतः इसी कारण आज अनेक देशों में अपनी दण्ड प्रणालियों में अपराधियों को सुधारने के लिये उपचारात्मक पद्धति में परिवीक्षा को शामिल किया गया है।

परिवीक्षा प्रणाली सुधारने का एक महत्वपूर्ण उपाय है। **परिवीक्षा** को अंग्रेजी में प्रोबेशन कहा जाता है, जो लैटिन भाषा के शब्द प्रोबेट से उत्पन्न हुआ है अर्थात् परीक्षा लेना या अपनी विश्वनीयता साबित करना, होता है।

बन्दियों को समाज में ही उचित देखरेख व मार्गदर्शन में रखा जाता है, जिससे उसे सदाचारी बनने का मौका मिल सके अर्थात् अपराधी के प्रति सहानुभूति उसे सजा न देकर उसे सुधारात्मक उपचार दिया जाए। जिस

अपराधी को परिवीक्षा में रखा गया है वह परिवीक्षा की अवधि में यदि कुछ निर्धारित शर्तों का पालन नहीं करता है या उल्लंघन करता है या अपराध करता है तो उसे बन्दी बनाकर न्यायालय में प्रस्तुत किया जायेगा, जहाँ उसे दण्ड सुनाकर शेष दण्डावधि तक बन्दीगृह में रखा जायेगा।

परिवीक्षा की परिभाषा

1. **सदरलैण्ड**:– सदरलैण्ड के अनुसार किसी भी दोष सिद्ध अपराधी के दण्डादेश के निलम्बन की अवधि में, वह स्थिति है जिसमें उस अपराधी को इस शर्त पर स्वतन्त्रता दी जायेगी कि वह अच्छे व्यवहार के साथ रहेगा तथा इस निमित्त राज्य भी उसे व्यक्तिगत पर्यवेक्षण की सुविधा प्रदान कर अच्छे व्यवहार के अनुपालन में सहायता करेगा। सदरलैण्ड की इस परिभाषा से स्पष्ट है कि परिवीक्षा क्षमादान से बिलकुल भिन्न है, क्योंकि परिवीक्षा में अपराधी पर पर्यवेक्षक द्वारा आवश्यक निगरानी रखा जाना व मार्गदर्शन करना एवं विधि अनुसार नागरिक की तरह समायोजित होने में उसकी सहायता करना शामिल है, जो क्षमादान में नहीं है। इसके अतिरिक्त, परिवीक्षा में सिद्धदोष अपराधी को दण्ड नहीं दिया जाता और यदि दिया गया है तो वह कार्यान्वित नहीं किया जाता है और परिवीक्षा की अवधि के दौरान अपराधी द्वारा किसी भी प्रकार से शर्तों का उल्लंघन किया जाता है, तो उसे दिया गया निलम्बित दण्ड पुनः कार्यान्वित हो जायेगा।

2. **डोनाल्ड टैफ्ट**:– टैफ्ट ने परिवीक्षा को परिभाषित करते हुये कहा कि "परिवीक्षा अपराध से सम्बन्धित लिये जाने वाले अन्तिम निर्णय को कुछ समय के लिये निलम्बन की प्रक्रिया है। अपराधी को एक अवसर प्रदान किया जाता है कि वह अपना चरित्र सुधारे और समाज के साथ पुनः अपना सामंजस्य स्थापित करे। प्रायः परिवीक्षाधीन अपराधी को परिवीक्षा की अवधि में न्यायालय की शर्तों एवं परिवीक्षा अधिकारी के मार्गदर्शन एवं संरक्षण के अधीन रहता है।"

3. **डॉ. वाल्टर सी रेक्लेस** के अनुसारः– परिवीक्षा न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध अपराधी को दण्ड के निलम्बन को कहते हैं, जिससे उसको उस अवधि में समाज में रखकर ही उसमें सुधार सम्भव हो सके।

4. **डीनमेन**:– डीन ने परिवीक्षा को परिभाषित करते हुये कहा कि "परिवीक्षा अपराधियों के उपचार का तरीका है, जिससे न्यायालय द्वारा लागू की गई शर्तों के अनुसार सद्व्यवहार करने पर अपराधी मुक्त किये जाते हैं तथा परिवीक्षा अधिकारी के निरीक्षण में समझे जाते हैं।

5. **ईलियर** के अनुसारः– परिवीक्षा दोषसिद्ध अपराधी को न्यायालय या दण्ड देने वाली संस्था द्वारा अच्छा व्यवहार या सदाचार करने की शर्त पर दण्ड सम्बन्धी प्रदान की जाने वाली छूट है।

6. **रिचर्ड चौपल ने** परिवीक्षा के बारे में व्याख्या की है कि परिवीक्षा दोषसिद्ध अपराधी को दण्ड देने की अपेक्षा एक अच्छा विकल्प है, जिसमें अपराधी के प्रति उदारता का व्यवहार करने व सहानुभुति का व्यवहार का आता है, जिससे वह बन्दीगृह के दूषित वातावरण से बच सके। चौपेल के अनुसार अपराधियों के लिये उपचारात्मक दण्ड पद्धति में परिवीक्षा एक अत्यन्त प्रभावी साधन माना जाना चाहिये।

उपरोक्त सभी परिभाषाओं से स्पष्ट है कि परिवीक्षा प्रगतिवादी वैयक्तिक उपचार दण्डनीति की व्यवस्था है, जिसमें दोषसिद्ध अपराधी के बन्दीगृह में राज्य द्वारा नियुक्त परिवीक्षा अधिकारी की देख–रेख में, समाज में, इस आशा से रहने दिया जाता है कि वह अपने व्यवहार में सुधार लायेगा।

किसी दोषसिद्ध अधिकारी को परिवीक्षा का लाभ दिया जाये या नहीं, यह न्यायाधीश परिवीक्षा अधिकारी द्वारा अपराधी के सम्बन्ध में प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर स्वविवेक से तय करेगा। अतः दोषसिद्ध अपराधी के बारे में परिवीक्षा अधिकारी न्यायालय के समक्ष 'दण्ड–पूर्व रिपोर्ट' प्रस्तुत करेगा, जिसके आधार पर न्यायालय द्वारा अपराधी के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय लिया जा सके।

परिवीक्षा की प्रकृति एवं स्वरूप

परिवीक्षा के व्यावहारिक तत्वों के अनुसार दोषसिद्ध अपराधी को सहानुभूतिपूर्वक सुधारने हेतु उसे न्यायालय या किसी दण्ड संस्था द्वारा दिये गये दण्ड का कार्यान्वयन निलम्बित रखकर दोषसिद्ध अपराधी सशर्त या बिना किसी शर्त के समाज में सद्व्यवहार बनाये रखने की शर्त पर छोड़ा जाता है। अपराधी यदि किसी भी कारणवश परिवीक्षा के नियमों का उल्लंघन करता है, तो उसके निलम्बित दण्ड को तुरन्त कार्यान्वित कर उसे बन्दीगृह भेज दिया जाता है, परन्तु यदि दण्ड निर्धारित किये बिना ही उसे परिवीक्षा पर छोड़ा गया है, तो उस स्थिति में परिवीक्षा का उल्लंघन किये जाने पर, पहले उसके दण्ड का निर्धारण होगा, फिर दण्ड का क्रियान्वयन किया जायेगा।

अतः किसी भी प्रकार से परिवीक्षा को क्षमादान नहीं माना जाना चाहिये क्योंकि परिवीक्षा के अन्तर्गत दण्डात्मक व उपचारात्मक दोनों ही प्रतिक्रियायें प्रतिबन्धित होती हैं। इन दोनों दण्डात्मक एवं उपचारात्मक प्रणाली, के मध्य परिवीक्षा प्रणाली समझौता प्रस्तुत करती है।

'प्रसिद्ध दण्डशास्त्री **हषार्ड जोन्स** के अनुसार अपराधी को परिवीक्षा पर

छोड़े जाने से पहले निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है:–

(i) यथासम्भव प्रारम्भ में दण्ड अधिरोपित नहीं किया जाना चाहिये।

(ii) परिवीक्षा आदेश में परिवीक्षाधीन अपराधी को स्वयं में सुधार करने के लिये एक निश्चित अवधि निर्धारित की जानी चाहिये।

(iii) उक्त अवधि में अपराधी को परिवीक्षा अधिकारी की देख–रेख में रखा जाना चाहिये जिससे (क) उसकी प्रगति के बारे में न्यायालय को सूचना मिलती रहे तथा (ख) अपराधी इस उन्मुक्ति का पूरा लाभ उठाते हुये स्वयं को सुधार सके।

(iv) यदि अपराधी परिवीक्षा के अधीन छोड़े जाने की अनुकूल प्रतिक्रिया होती है तो उसका अपराध रद्द माना जाना चाहिये, परन्तु यदि वह स्वयं को सुधारने में असफल रहता है तो उसे न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिये।*26

अतः यह कहा जा सकता है कि दोषसिद्ध अपराधी को परिवीक्षा में निर्बाध छूट निरूपति करना भ्रामक होगा क्योंकि परिवीक्षाधीन अपराधी पर परिवीक्षा की अवधि में यह बन्धन तो रहता है कि या तो वह स्वयं को सुधारे या बन्दीगृह में रहकर दण्ड भोगे। परिवीक्षाधीन अपराधी का मूल अपराध सम्पूर्ण परिवीक्षा की अवधि तक दण्डनीय बना रहता है और परिवीक्षा की शर्तों का किसी भी रूप में परिवीक्षा की अवधि में उल्लंघन करने पर तत्काल दण्डित कर बन्दीगृह भेजा जाता है।

परिवीक्षा को किसी भी प्रकार से बाध्यकारी उपाय नहीं माना गया है क्योंकि परिवीक्षा में तय की गई शर्तों को निर्धारित करना अपराधी की स्वैच्छिक स्वीकृति पर निर्भर करता है। अतः दण्ड का केवल निलम्बन ही नहीं बल्कि सशर्त निलम्बन एवं पर्यवेक्षण, मार्गदर्शन, सहायता तथा दण्ड का डर इस प्रणाली में सदैव संलग्न रहता है।

परिवीक्षा पद्धति का ऐतिहासिक विकास

परिवीक्षा पद्धति के जन्म का इतिहास लगभग नवीं शताब्दी इंग्लैण्ड में प्रचलित 'आश्रय के अधिकार' में मिलता है। ईसाई धर्म में भी उल्लेख किया गया है कि यदि कोई व्यक्ति अपराधिक कृत्य कर किसी धार्मिक स्थल पर आश्रय लेता है तो वह दण्डित होने से बच सकेगा। यह प्रथा पंद्रहवीं शताब्दी तक अस्तित्व में रही और इसके पश्चात् मध्ययुग में 'बेनिफिट ऑफ क्लर्जी' नामक प्रथा आस्तित्व में आई। इसके अनुसार चर्च के पादरियों या सन्यासियों के द्वारा कोई भी गम्भीर अपराध किये जाने पर उन्हें अपना वाद न्यायालय से चर्च में हस्तान्तरित करने का अधिकार था, जहाँ उन्हें या तो न्यूनतम दण्ड से दण्डित किया जाता या

वे दण्ड से बच जाते थे अर्थात् न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध अपराधी के दण्ड के कार्यान्यवन को निलम्बित रखा जाता था और इस दण्ड को अनिश्चित अवधि तक, जब तक कि अपराधी स्वयं में सुधार कर सद्व्यवहार बनाये रखता था, निलम्बित रखा जाने लगा।

विभिन्न देशों में परिवीक्षा का इतिहास

1. **अमेरिका:**— अमेरिका में परिवीक्षा पद्धति का जनक बोस्टर निवासी जॉन आगस्टस (John Augustus) को माना जाता है। जॉन आगस्टक एक चर्मकार थे। इन्होने वर्ष 1841 को बोस्टन के एक स्थानीय न्यायालय में एक अभ्यस्त शराबी को स्वेच्छा से अपनी जमानत पर छुड़ाते हुये न्यायालय को अपराधी द्वारा भविष्य में कोई नशाखोरी नहीं किये जाने का आश्वासन दिलाया जिस पर न्यायालय की सहमति से अभियुक्त पर छोटा—सा जुर्माना लगाकर जॉन आगस्टक को सौंप दिया गया और इस प्रयोग में सफलता प्राप्त होने पर प्रोत्साहित होकर उन्होनें कई अपराधियों जैसे अनेक शराबियों, हठीली महिलाओं विशेष रूप से वैश्याओं, को बन्दीगृह के दण्ड से बचाकर स्वयं अपने पर्यवेक्षण में रखा। सफलता मिलने के पश्चात् उन्होंने यह प्रयोग बाल व किशोर अपराधियों पर किया और उन्हें अपनी चर्मशाला में कार्य पर लगाकर सुधारने का प्रयास किया। जॉन आगस्टक के इस प्रकार के प्रयोग से आगे चलकर परिवीक्षा पद्धति प्रारम्भ हुई।

   ऑगस्टस की इस प्रकार की सफलता को देखते हुये वर्ष 1872 में फादर कुक ने किशोर वयस्क अपराधियों के पुनर्वास को उपयुक्त माना और न्यायालय से प्रार्थना की कि सुधार योग्य अपराधियों को सौंपा जाय व फादर कुक ने न्यायालय को स्पष्ट किया कि जिन अपराधियों ने परिस्थितिवश अपराध किये थे, उन्हें उचित पर्यवेक्षण व निर्देशन में रखकर सुधारा जाना सम्भव है।

   इसी आधार पर वर्ष 1878 प्रथम परिवीक्षा अधिनियम मेसाच्यूसेट्स राज्य (Massachusetts state) में पारित किया गया। इसी के अन्तर्गत बोस्टन शहर के बाल एवं किशोर अपराधियों पर नियन्त्रण का दायित्व एक परिवीक्षा अधिकारी को नियुक्त कर सौंपा गया।

   वर्तमान समय में अमेरिका में परिवीक्षा प्रणाली पूर्णतः स्थापित हो चुकी है। परिवीक्षा की सुविधा वयस्क, पुरूष, महिला व किशोर को दी जाती है। इस परिवीक्षा पद्धति से परिवीक्षा पर छोड़े जाने का लाभ हिंसा—अपराध, घातक हथियार से कारित अपराध, यौन अपराध, देशद्रोह का अपराध जैसे अपराधों में विनिर्दिष्ट आज्ञापक दण्ड की व्यवस्था तथा प्रत्यावर्ती अपराध

आदि अपराधों के लिये दिया जा सकता है। पिछले कुछ वर्षों में अमेरिका के संघीय न्यायालयों की अपराधियों को परिवीक्षा पर छोड़े जाने की शक्ति को अत्यधिक सीमित कर दिया गया है।

2. **इंग्लैण्डः**— वर्ष 1907 में इंग्लैण्ड में परिवीक्षा को संवैधानिक मान्यता परिवीक्षा अधिनियम पारित होने के फलस्वरूप प्राप्त हुई। इंग्लैण्ड के बरमिंघम में बाल अपराधियों के अपराधिक मामलों के लिये पृथक न्यायालय की स्थापना की गई जिसमें एक परिवीक्षा अधिकारी नियुक्त होता था। इंग्लैण्ड के परिवीक्षा अधिनियम में अपराधी की आयु, चरित्र, पूर्व—वृत्त, शारीरिक व मानसिक दशा के अनुसार सशर्त या शर्त रहित तथा दण्ड देकर या बिना दण्ड दिये परिवीक्षाधीन रखा जा सकता है। इन्हें परिवीक्षा अधिकारियों की निगरानी व मार्गदर्शन में रखा जाता है। बाल एवं किशोर अपराधियों एवं वयस्क अपराधियों के लिये पृथक—पृथक परिवीक्षा अधिकारी नियुक्त किये जाते हैं। इस अधिनियम में वर्ष 1908 व 1914 में संशोधन किया गया और 1948 में क्रिमनल जस्टिस एक्ट, जिसके अन्तर्गत अधिनियम की धारा 56(क) के तहत बन्दीगृह आयुक्त को शक्ति दी गई है कि वह 18 वर्ष से कम आयु के अपराधियों को उनकी दण्डावधि प्रारम्भ होने से पूर्व ही लाइसेंस पर रिहा कर सकता है, के पारित होने के फलस्वरूप परिवीक्षा पद्धति को पूरे देश पर लागू किया गया।

इंग्लैण्ड में परिवीक्षा पद्धति पर परिवीक्षा पर छोड़े गये अपराधियों में पुरूष अपराधियों की तुलना में महिला अपराधियों के लिये परिवीक्षा पद्धति बहुत बाद में प्रारम्भ हुई। परन्तु, परिणाम उत्साहजनक रहे और महिला अपराधियों के सुधार एवं पुनर्वास में परिवीक्षा पद्धतियों का योगदान रहा। इसी प्रकार, बाल अपराधियों हेतु ब्रुकलर्न प्लान के अन्तर्गत बाल अपराधियों को दण्डित किये बिना ही परिवीक्षा पर छोड़ने की पद्धति लागू की गई, जो वर्तमान समय में भी प्रयोग की जाती है।

. **स्वीडनः**— विश्व में अपराधियों के लिये उपचारात्मक पद्धति की प्रगतिवादी नीति अपनाने वाले देशों में प्रमुख देश स्वीडन भी है। स्वीडन में अपराधियों का केवल 20% भाग ही बन्दीगृहों में रखा जाता है। शेष 80% अपराधियों को या तो पैरोल या परिवीक्षा की उपचार पद्धति का लाभ देते हुये छोड़ दिया जाता है। बन्दीगृहों में रखे गये आपराधियों का भी समय—समय पर पुनरावलोकन किया जाता है, जिससे उन्हें भी शीघ्र असंस्थागत सेवा में हस्तान्तरित किया जा सके। यहाँ 'कमीशन आफ ट्रस्ट' नामक संस्था है, जिसे परिवीक्षाधीन अपराधियों पर नियन्त्रण रखने का कार्य सौंपा गया है। इस संस्था के स्वयंसेवकों द्वारा परिवीक्षा अधिकारियों को परामर्श दिया जाता है।

4. **जापानः**— जापान की अपराधिक न्याय व्यवस्था में उपचारात्मक पद्धति को संविधानिक स्थान दिया जाता है। जापान दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1922 में लोक–अभियोजनों को उचित कारण होने पर अभियोजन व दण्ड के प्रवर्तन के निलम्बित रखे जाने की स्वविवेक शक्ति प्रदान की गई है। वर्ष 1955 मे जापान में वयस्क अपराधियों के दिये गये दण्ड का प्रवर्तन कर निलम्बित रखते हुये उन्हें परिवीक्षा आदेश पर मुक्त करने की पद्धति को कानून में शामिल किया गया। जापान में 20% अपराधियों को परिवीक्षा में पर्यवेक्षक की देखरेख में रखा तथा शेष 80% परिवीक्षा अपराधियों को किसी निगरानी या पर्यवेक्षक की परिवीक्षा का लाभ देकर स्वतन्त्र कर दिया जाता है। जापान में लगभग पूरे देश भर में परिवक्षा अधिकारियों का परिवीक्षाधीन अपराधियों के देखरेख हेतु जाल फैला रखा है।

इसी प्रकार अन्य यूरोपियन देशों में भी राष्ट्र की दण्ड व्यवस्था में परिवीक्षा पद्धति को लागू किया गया। परिवीक्षा पद्धति किशोर व वयस्क अपराधियों की पश्चातवर्ती देखरेख एवं उपचार के लिये बहुत उपयोगी एवं सफल सिद्ध हुई है। फ्रांस, जर्मनी जैसे देशों में परिवीक्षा पद्धति को सामाजिक सुरक्षा का साधन माना गया है। वर्ष 1957 से ग्रीस में भी इस पद्धति को लागू किया गया है। आस्ट्रिया में तो अठ्ठारह वर्ष के कम के आयु के सभी अपराधियों को परिवीक्षा में रखा जाना अनिवार्य माना गया है। इसी प्रकार, परिवीक्षा पद्धति आयरलैण्ड, इजराइल, इटली, स्विट्जरलैण्ड तथा नीदरलैण्ड में भी सफलतापूर्वक कार्य कर रही है।

भारत में परिवीक्षा पद्धति

परिवीक्षा पद्धति दोषसिद्ध अपराधियों को सुधारने में काफी हद तक सहायक होती है क्योंकि इस पद्धति के अन्तर्गत अपराधी को जेल न भेजकर उसे प्रोबेशन अधिकारी की देखरेख में छोड़ा जाता है, जिससे वह अपने व्यवहार में सुधार कर सके और वह गम्भीर अपराधों में लिप्त न हो सके, इसीलिये उसे बन्दीगृह में रखने से बचाया जाता है जिससे कि वह घोर अपराधी न बन जाये।

भारत में परिवीक्षा पद्धति का प्रयोग एक संस्थागत उपचारात्मक पद्धति के रूप में किया जाता है, जो अपराधियों को सुधारने में सहायता व उचित मार्गदर्शन भी करती है। हालांकि, पाश्चात्य देशों में परिवीक्षाधीन अपराधियों को सुधारने के कार्य हेतु स्वैच्छिक स्वयं–सेवी संस्थाओं और कल्याण मण्डलों की सेवायें लेना उचित समझा जाता हैं, क्योंकि उनमें समाजशास्त्री, मनोवैज्ञानिक व मनोचिकित्सक विशेषज्ञों के रूप में शामिल होते हैं। इन संस्थाओं के कार्यों में न्यायाधीश की भूमिका नहीं होती है, जबकि भारत में परिवीक्षा कानून के अन्तर्गत अपराधी को परिवीक्षा पर छोड़े जाने का कार्य पूर्णतः न्यायालय में निर्णित किया

जाता है, न कि किसी निजी सामाजिक संस्थाओं द्वारा।

भारत में प्रारम्भ में दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 362 (वर्तमान में द. प्र. स. की 1973 की धारा 360) में परिवीक्षा को सांविधिक मान्यता दी गई थी। इसमें कुल 156 अपराधों को परिवीक्षा के लिये चुना गया था। दो वर्ष से कम अवधि के दण्ड से दण्डनीय नव अपराधियों को सद्व्यवहार की शर्त पर परिवीक्षा का लाभ देकर छोड़ने की विशेष शक्ति प्रदान की गई तथा बाल अधिनियम 1986 लागू किया गया। वर्तमान में इसके स्थान पर **किशोर न्याय बालकों की देखरेख व संरक्षण अधिनियम, 2000** प्रभावी है।

अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 के मुख्य लक्षण

भारतीय जेल सुधार समिति के वर्ष 1919–20 में नव अपराधियों के साथ उदारतापूर्वक व्यवहार कर, उन्हें चेतावनी देकर शर्तरहित मुक्त किया जाना चाहिये। नव अपराधियों को दो भागों में, प्रथम, इक्कीस वर्ष से अधिक आयु के पुरूष वयस्क अपराधी एवं द्वितीय, इक्कीस वर्ष से कम आयु के पुरूष वयस्क अपराधी एवं किसी भी आयु वर्ग की महिला अपराध के आधार पर विभाजित किया गया है। परिवीक्षा पद्धति न केवल दण्ड संहिता से सम्बन्धित अपराधों पर लागू की गई बल्कि इसमें विशिष्ट अधिनियम के अन्तर्गत किये गये अपराधों पर भी लागू किया गया है। इसके फलस्वरूप परिवीक्षाधीन अपराधियों की संख्या बढ़ जाने से उत्पन्न समस्या के लिये बम्बई, मद्रास एवं कलकत्ता में अनेक रिमाण्ड गृह प्रमाणित विद्यालय एवं औद्योगिक विद्यालय खोले गये।

भारत सरकार द्वारा परिवीक्षा पर विधेयक तैयार कराया गया परन्तु प्रान्तीय सरकार ने इस पर कोई राय प्रस्तुत नहीं की। अतः 1934 में भारत सरकार ने परिवीक्षा पर कानून पारित होने की सम्भावना के न होने से प्रान्तीय सरकार को अपने प्रान्त में परिवीक्षा कानून पारित करने हेतु स्वतन्त्र कर दिया। अतः केन्द्र सरकार के निर्देशन पर अनेक प्रदेशों ने अपने–अपने परिवीक्षा अधिनियम पारित किये, जिसमें सबसे पहले परिवीक्षा अधिनियम सेन्ट्रल प्राविन्सेस एण्ड बरार ने इस परिवीक्षा अधिनियम को पारित किया। इसके पश्चात् वर्ष 1937 में मद्रास ने, 1938 में बम्बई व संयुक्त प्रान्त ने, वर्ष 1943 में मैसुर ने, वर्ष 1953 में हैदराबाद ने तथा वर्ष 1954 में पश्चिम बंगाल ने अपने–अपने प्रांतो में इसे पारित किया। अतः इनमें एकरूपता का अभाव रहा।

स्वतन्त्रता के पश्चात् संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में कार्यरत उपचारात्मक पद्धति के परामर्श पर भारत में भी समान परिवीक्षा व्यवस्था लागू करने हेतु वर्ष 1952 में बम्बई में एक प्रोबेशन कान्फ्रेंस आयोजित की गई, जो भारतीय परिवीक्षा विधि के इतिहास में मील का पत्थर बनी और इस अधिवेशन में राष्ट्र संघ के तकनीकी विशेषज्ञ डॉ. वाल्टर ने सुधार के लिये कुछ महत्वपूर्ण

सुझाव दिये। इसके फलस्वरूप एक अखिल भारतीय जेल समिति का गठन हुआ। इस समिति ने वर्ष 1957 की अपनी रिपोर्ट में भारत में परिवीक्षा कानून लागू करने में सरकार, परिवीक्षा अधिकारियों, पुलिस, बन्दीगृहों तथा प्रशासकों के परस्पर सहयोग व तालमेल के अभाव का उल्लेख किया। अंततः, सम्पूर्ण देश के किये एक केन्द्रीय परिवीक्षा अधिनियम लागू किया जाना आवश्यक है।

उपर्युक्त रिपोर्ट के अनुपालन में परिवीक्षा विधेयक तैयार किया गया। इस विधेयक को संयुक्त संसदीय समिति के विचारार्थ भेजा गया। इस सयुंक्त संसदीय समिति की कुल सात बैठके हुई। लोकसभा की संयुक्त समिति के अनुमोदन पर वर्ष **1958 में संसद ने अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958** पारित किया जिसे 15 मार्च 1958 को राष्ट्रपति ने अनुमोदित कर दिया। उस समय से यह कानून सम्पूर्ण भारत में लागू है।

अपराधी परिवीक्षा अधिनियम 1958 में 19 धारायें हैं जिनमें अपराधियों को परिवीक्षा का लाभ देकर छोड़े जाने सम्बन्धी विस्तृत नियम उपलब्ध हैं। इस अधिनियम का मुख्य लक्षण–

1) 24 वर्ष से कम आयु के प्रथम अपराधियों को न्यायालय द्वारा उनकी शारीरिक, मानसिक व चारित्रिक परिस्थितियों का निरीक्षण करने के बाद सद्व्यवहार के कारण प्रोबेशन पर छोड़ा जा सकता है। न्यायालय औचित्य के आधार पर यह हिदायत दे सकता है कि अपराधी से अधिक से अधिक 03 साल का बॉण्ड भरवाकर या बिना जमानत के छोड़ दिया जाय। यदि न्यायालय उचित समझता है तो 03 साल की अवधि के बीच अपराधी को बुलाकर दण्ड भोगने के लिए जेल भेज सकता है।

2) यदि अपराधी की आयु 21 वर्ष से कम है और उसके अपराध की सजा 06 महीने से अधिक नहीं है तो न्यायालय उसे अनिवार्य रूप से परिवीक्षा पर छोड़ देगा।

3) यदि अपराधी की आयु 24 वर्ष से कम है तो न्यायालय ऐसे अपराधी को प्रोबेशन अधिकारी की देखरेख में रखने की आज्ञा दे सकता है।

4) प्रोबेशन की शर्तों के आधार पर न्यायालय अपराधी को छोड़ सकता है।

परिवीक्षा की शर्ते

(I) परिवीक्षा का लाभ केवल उन्हीं अपराधियों को दिया जाता है जिनका अपराध गम्भीर प्रकृति का नहीं होता या जो अभ्यस्त

अपराधी नहीं होते हैं।

(II) अपराधी जिसकी आयु कुछ भी हो, तथा उसकी सजा 2 वर्ष की अवधि से कम हो, तो उसे चरित्र व्यवहार एवं परिस्थितियों के आधार पर परिवीक्षा पर छोड़ा जाता है।

(III) किसी अपराधी को परिवीक्षा की अवधि में छोड़ने से पूर्व एक बन्धन–पत्र भरना होता है, जिसमें दी गई शर्तो का पालन करना आवश्यक है और यदि परिवीक्षा अपराधी इन शर्तों को भंग करता है तो उसे दण्ड के भुगतान हेतु बन्दीगृह भेजा जाता है।

(IV) परिवीक्षा की अवधि निश्चित होती है। अतः इस अवधि में परिवीक्षा अपराधी के व्यवहार पर नियन्त्रण रखता है।

(V) परिवीक्षा के दौरान इस बात के लिये प्रेरित किया जाता है वह चुराये गये धन या सम्पत्ति को पुनः लौटाये।

(VI) परिवीक्षा अपराधी को परिवीक्षा काल में परिवीक्षा अधिकारी की अनुमति के बिना वह न तो यात्रा कर सकता है और न हीं विवाह बल्कि उसे परिवीक्षा अधिकारी द्वारा नियुक्त समय पर घर पर ही रहना होगा।

(VII) परिवीक्षा के दौरान परिवीक्षाधीन अपराधी को समय–समय पर अपने परिवीक्षा अधिकारी से मिलते रहना पड़ता है।

(VIII) परिवीक्षा के दौरान परिवीक्षाधीन अपराधी चिकित्सकीय निरीक्षण के अन्तर्गत रहता है एवं उसे अपनी समस्त गतिविधियों की रिपोर्ट परिवीक्षा अधिकारी को प्रस्तुत करना पड़ती है।

परिवीक्षा की उपरोक्त बातों व शर्तों से स्पष्ट है कि परिवीक्षा अपराधियों को सुधारने में सहायक होती है, क्योंकि वर्तमान समय में दण्डनीति अपराधी के उन्नयन एवं व्यक्तिगत सुधार की ओर जा रही है, न कि उसके साथ प्रतिकारी न्याय के बर्ताव की ओर। आधुनिक अपराध शास्त्र में भी यह स्वीकार किया गया है कि कोई भी व्यक्ति जन्मजात अपराधी कृत्यों या कृत्यों का कारण उसकी सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ होती हैं। यद्यपि, कठोर अपराधियों के लिये कुछ भी नहीं किया जा सकता, फिर भी आधुनिक अपराधशास्त्र के अनुसार संगत से बचाया जाये। अपराधी परिवीक्षा अधिनियम इसी उद्देश्य को सर्वाधिक मान्यता प्रदान करता है।

परिवीक्षा के प्रति न्यायिक दृष्टिकोण

बन्दियों के पुनर्वास एवं सुधारकार्य में न्यायालय की भूमिका हमेशा से

ही महत्वपूर्ण रही है। न्यायालय द्वारा दिये गये न्यायिक निर्णय से उपचारात्मक दण्ड व्यवस्था के प्रति आस्था और विश्वास प्रकट किया गया है। परिवीक्षा किसी भी अपराधी को दोषसिद्ध होने के पश्चात् की जाने वाली पद्धति होने से इसका निर्धारण अपराधी के सुधरने की सम्भावना के आधार पर किया जाना चाहिये, इसीलिये न्यायधीश किसी दोषसिद्व अपराधी को परिवीक्षा के सम्बन्ध में निर्णय देते समय न्यायिक विवेक का प्रयोग पूर्ण ईमानदारी व न्यायप्रियता के साथ करना चाहिये।

परिवीक्षा पर किये गये कई सामाजिक विधिक अनुसन्धानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि न्यायालय के दण्ड देने का सम्बन्ध दोषसिद्ध अपराधी के लिंग, आयु, परिपक्वता, पारिवारिक, सामाजिक एवं आर्थिक दशा, शैक्षणिक स्तर, पूर्व अपराधिकता आदि पर गहरा प्रभाव पड़ता है तथा जहाँ एक ओर दल के प्रति उदारता के लिये अल्पव्यवस्था, नारीयता, उत्तम पूर्व रिकार्ड, अपरिपक्वता आदि सिद्धदोष अपराधी के लिये पर्याप्त कारण माने जाते हैं। वहीं, दूसरी ओर हिंसात्मक कृत्य प्रत्यावर्तिता, लैंगिक अनैतिकता आदि उसे कड़ा दण्ड दिलाते हैं। अतः दण्ड के निर्धारण में न्यायालय का निर्णय अपराधी को सुधारने या बिगाड़ने में पर्याप्त सीमा तक कारणीभूत होता है।

परिवीक्षा के प्रति न्यायिक दृष्टिकोण के वाद

1. **रणजीत सिंह बनाम बिहार राज्य** के वाद में अभियुक्त को धोखाधड़ी के अपराध के लिए भारतीय दण्ड संहिता की धारा–467, 468, 471 तथा 420 के अन्तर्गत् 06 वर्ष का साधारण कारावास तथा 1000 हजार रूपये अर्थदण्ड से दण्डित किया गया था। अभियुक्त को परिवीक्षा पर छोड़े जाने सम्बन्धी याचिका को अस्वीकार करते हुए पटना उच्च न्यायालय ने विनिश्चित किया कि अपीलार्थी के अपराध का स्वरूप और गम्भीरता को देखते हुए तथा एक वकील के रूप में उसकी अच्छी प्रैक्टिस (वकालत व्यवसाय) को ध्यान में रखते हुए इस प्रकरण में अनुकम्पा की कोई गुंजाइश नहीं है, अतः उसे परिवीक्षा का लाभ नहीं दिया जा सकता है।
2. **कमरून्निसा बनाम महाराष्ट्र राज्य** के वाद में उच्चतम न्यायालय ने अभियुक्त को चोरी के अपराध की सजा को बहाल रखते हुए उसको परिवीक्षा पर छोड़े जाने की याचिका इस आधार पर अस्वीकार कर दी कि अभियुक्त की आयु 21 वर्ष से कम थी, लेकिन वह बम्बई की उप–नगरीय रेलों में महिला यात्रियों के गले की चेन उड़ाते हुए कई बार पकड़ी जा चुकी थी। अतः वह एक खतरनाक महिला अपराधी होने के कारण उसे परिवीक्षा पर छोड़ना सामाजिक सुरक्षा की दृष्टि से उचित नहीं था।
3. **सुन्ना बनाम राज्य** के वाद में अभियुक्त को एक साइकिल तथा कुछ

कपड़ों की चोरी के आरोप में दण्ड संहिता की धारा–380 के अन्तर्गत् सिद्ध दोष पाया गया था। न्यायालय ने अभियुक्त की भर्त्सना करते हुए उसे चेतावनी देकर परिवीक्षा अधिनियम की धारा–03 के अन्तर्गत परिवीक्षा पर छोड़े जाने का आदेश दिया क्योंकि अभियुक्त के विरूद्ध कोई पूर्व अपराध नहीं था तथा उसने क्षणिक लालच में आकर चोरी का अपराध किया था।

4. **जुगलकिशोर प्रसाद बनाम बिहार राज्य** के वाद में उच्चतम न्यायालय ने अपीलार्थी की आयु 21 वर्ष से कम होने पर भी उसे परिवीक्षा का लाभ दिया जाना उचित नहीं समक्षा, क्योंकि उसे भारतीय दण्ड संहिता की धारा–326 तथा 149 के अन्तर्गत जानबूझकर खतरनाक शस्त्र से गम्भीर चोट से कारित करने का दोषी पाया गया था, जो आजीवन कारावास से दण्डनीय गम्भीर अपराध है।

5. **कृष्णचंद्र बनाम हरवंश सिंह** के वाद में अभियुक्त एक शिक्षित नवयुवक था जिसने अपने पड़ोसी के घर में गृह अतिचार करके पड़ोसी की पत्नी के साथ बलात्कार किया। अभियुक्त की भ्रष्टता, दुश्चरित्रता तथा अपराध की गम्भीरता को ध्यान में रखते हुए न्यायालय ने उसे परिवीक्षा का लाभ देने से इन्कार कर दिया।

6. **मोहम्मद उर्फ बिलिया बनाम राजस्थान राज्य** के वाद में अभियुक्त के विरूद्ध भारतीय दण्ड विधि की धारा–302 के अपराध का आरोप था लेकिन सत्र न्यायालय ने धारा 304 भाग 2 के अन्तर्गत उसकी दोषसिद्धी की तथा 04 वर्ष के कारावास से दण्डित किया। इस दण्डादेश के विरूद्ध अभियुक्त एवं राज्य दोनों ने उच्च न्यायालय में अपील दायर की जिन्हें न्यायालय ने खारिज कर दिया। इसके विरूद्ध अभियुक्त ने उच्चतम न्यायालय में अपील की। अपीलार्थी की आयु का सत्यापन किये जाने पर यह पाया कि इसकी आयु 21 वर्ष से कम थी। अतः उच्चततम न्यायालय ने उसे उचित बन्धपत्र के निष्पादन के पश्चात् 02 वर्ष की परिवीक्षा पर छोड़े जाने का आदेश दिया।

भारतीय दण्ड व्यवस्था में परिवीक्षा का स्थान

दण्ड व्यवस्था में परिवीक्षा का स्थान महत्वपूर्ण था। परिवीक्षा द्वारा दण्ड के प्रतिरोधक तथा उपचारात्मक सिद्धान्तों में समन्यव स्थापित किया गया है जिसमें परिवीक्षाधीन अपराधियों को सुधारने में पर्याप्त सहायता मिलती है। वर्तमान दण्ड व्यवस्था अपराधी व समाज, दोनों के लिये उपयोगी सिद्ध हुई है। अपराधों के प्रति दण्ड देने की प्रक्रिया में परिवीक्षा पद्धति का लाभ परिवीक्षाधीन अपराधियों को परिवीक्षा का लाभ, समाज के लिये परिवीक्षा का लाभ एवं परिवीक्षा अधिकारियों

के लिये परिवीक्षा के लाभों का निम्न वर्णन किया गया है–

परिवीक्षाधीन अपराधी को समाज में विधि का पालन करने वाले नागरिक होने में परिवीक्षा पद्धति पर्याप्त सहायता करती है। परिवीक्षाधीन अपराधी के लिये परिवीक्षा के लाभ हैं:–

1) दोषसिद्ध अपराधी को बन्दीगृह भेजने के स्थान पर परिवीक्षा में छोड़ने पर बन्दी होने के लाँछन से बचाना है। वह दीन भाव व पुनः अपराध की भावना में पड़ने से बचता है।

2) परिवीक्षाधीन अपराधी को परिवीक्षा अधिकारी के नियन्त्रण में रखने का अर्थ है समाज में अपराध को स्वीकार नहीं किया गया, केवल अपराधी के सुधरने का अवसर मात्र दिया गया है और परिवीक्षा का दुरूपयोग करने पर उसे दण्डित कर बन्दीगृह भेज दिया जायेगा।

3) परिवीक्षा में परिवीक्षाधीन व्यक्ति को परोक्षतः सदाचारी बनाये रखने के लिये प्रतिरोध का तत्व विद्यमान रहता है।

4) परिवीक्षा अपराधी परिवीक्षा की अवधि में अपने परिवार के पास रहकर पारिवारिक दायित्वों को पूरी तरह निभा सकता है। यह परिवीक्षा का सर्वश्रेष्ठ लाभ है।

5) परिवीक्षाधीन अपराधी को परिवीक्षा के दौरान स्वयं के प्रयासों से पुनर्वास करना होता है, जिससे उनमें आत्मनिर्भरता एवं स्वावलम्बन की भावना आये।

समाज के लिये लाभ

परिवीक्षा पद्धति समाज की सुरक्षा के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है–

(i) परिवीक्षा पद्धति द्वारा समाज के अवांछित तत्वों पर नियन्त्रण रखा जा सकता है, जो सामाजिक सुरक्षा व शान्ति के लिये अत्यन्त आवश्यक है;

(ii) परिवीक्षाधीन अपराधी को परिवीक्षा की अवधियों में शैक्षणिक, औद्योगिक या व्यावसायिक संस्थाओं में प्रशिक्षण की सुविधा उपलब्ध कराई जाती है, जिससे वह जीवन निर्वाह कर सके।

परिवीक्षा अधिकारियों के लिये लाभ

परिवीक्षा अधिकारी का मुख्य कार्य उनके पर्यवेक्षण में रखे गये परिवीक्षाधीन अपराधियों की देखरेख करते हुये उनका उचित मार्गदर्शन करना भी है। परिवीक्षा पद्धति से परिवीक्षा अधिकारी को कुछ लाभ होते हैं:–

1. परिवीक्षाधीन अपराधियों को उचित मार्गदर्शन देने से एक प्रकार की समाज सेवा करने का अवसर प्राप्त होता है। और परिवीक्षा अधिकारी की इन सेवाओं में परिवीक्षाधीन अपराधी के रूप पूरा राज्य व राष्ट्र भी लाभान्वित होता है।

2. परिवीक्षा के लिये किसी अपराधी को छोड़ना या न छोड़ना, परिवीक्षा अधिकारी द्वारा उस अपराधी के सम्बन्ध में प्रस्तुत की गई दण्ड–पूर्व रिपोर्ट पर निर्भर करता है। परिवीक्षा अधिकारी द्वारा प्रस्तुत इस रिपोर्ट के आधार पर न्यायालयों को अपराधी की व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुसार दण्ड देने में पर्याप्त सहायक होती है। इस प्रकार कार्य में सहयोग न्यायालयों की दाण्डिक प्रक्रिया के समाजीकरण में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

परिवीक्षा अधिकारी की भूमिका को परिवीक्षा प्रणाली धुरी कहा जाता है। अतः परिवीक्षा अधिकारी की इस प्रणाली में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस सम्बन्ध में **सत्तो बनाम उत्तरप्रदेश (ए.आई.आर. 1972 सु. 362625)** का वाद महवत्पूर्ण है। इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने कहा है दण्ड को न्यायाधीश के 'प्री सेन्टेन्स रिपोर्ट' से वंचित रखना वर्तमान दाण्डिक प्रक्रियात्मक नीतियों को अनदेखा करना है जिन्हे सावधानीपूर्वक लागू करने का प्रयास किया जा रहा था।

परिवीक्षा पद्धति से हानियाँ

परिवीक्षा पद्धति के कई लाभ होते हुये भी उनकी प्रायः आलोचना भी की जाती है। इस पद्धति में निम्न हानियाँ हैंः–

1) परिवीक्षा में अपराधी दोषसिद्ध होने पर भी सम्भावित सुधार के नाम पर बच निकलता है और उसका दण्ड के प्रति डर कम होने लगता है। अपराधी का दण्ड से इस प्रकार बच निकलना न्याय के सर्वमान्य सिद्धान्तों के विपरीत है। अतः परिवीक्षा पद्धति में अपराधी के व्यक्तित्व को अनावश्यक महत्व दिया जाना दण्ड के न्यायिक सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं है।

2) परिवीक्षा पद्धति में पूरा ध्यान केवल अपराधी पर ही रहता है। उस अपराधी द्वारा किये गये अपराधिक कृत्य से पीड़ित या अपकारित व्यक्ति की क्षतिपूर्ति या उपचार वंचित रह जाता है। हालांकि **अपराधी परिवीक्षा अधिनियम 1958 की धारा 3** में इस सम्बन्ध में उपबन्ध है। वह न तो पर्याप्त है और न ही न्यायालय का ध्यान उन्हें कार्यान्वित करने की ओर जाता है। अतः न्यायालय को पीड़ित

पक्ष को ओर ध्यान देते हुये परिवीक्षाधीन अभियुक्तो से पीड़ित को क्षतिपूर्ति का भी आदेश जारी करना चाहिये।

3) परिवीक्षा की अवधि का लाभ नव अपराधियों व प्रथम अपराधियों को अधिकतर दिया जाता है। नव अपराधियों व प्रथम अपराधियों को दण्ड मिलने के स्थान पर परिवीक्षा के द्वारा स्वतन्त्रता दी जाने पर वह उस स्वतन्त्रता का दुरूपयोग कर अपराधिक कृत्यों की ओर आकर्षित हो सकते हैं तथा दण्ड न मिलने से उसमें आपराधियों कृत्यों के प्रति तिरस्कार की भावना नहीं पनप पाती है और वे कभी न कभी अभ्यस्त अपराधी भी बन जाते हैं।

4) परिवीक्षा पद्धति के लिये दोष सिद्ध के लिये पूर्ण रूप से यह जानने में कि वह वास्तव में प्रथम अपराधी है या नहीं, की त्रुटि होने पर यदि किसी गम्भीर या घोर अभ्यस्त अपराधी को परिवीक्षा पर छोड़ दिया जाता है तो इससे होने वाले दुष्परिणाम परिवीक्षा पद्धति की विफलता को दर्शाता है।

5) परिवीक्षा पद्धति में नियुक्त परिवीक्षा अधिकारी की योग्यता, कार्यकुशलता तथा इस सामाजिक कार्य के प्रति उसकी रूचि, लगन व ईमानदारी नहीं होना भी है। वे कई बार आवश्यक जाँच–पड़ताल किये बिना ही अपराधी के पूर्व वृत्तान्त की रिपोर्ट न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत कर देते हैं। इससे अपराधियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तथा उनमें सुधार होना कठिन होता है।

6) परिवीक्षा पद्धति गम्भीर एवं आदतन अपराधियों के मामलों में सफल नहीं होती है।

7) परिवीक्षा कार्यक्रमों से जुड़े प्राधिकारियों एवं कर्मचारियों के लिये समुचित प्रशिक्षण व्यवस्था न होने से परिवीक्षा सेल औपचारिकता मात्र बन गई है। कभी–कभी राजनीतिक दबाव के कारण भयंकर अपराधियों को परिवीक्षा पर छोड़ दिया जाता है। ये अपराधी समाज के लिये अधिक खतरा होते हैं।

परिवीक्षा पद्धति में कई कमियाँ हैं, लेकिन इस पद्धति के दोष कम व लाभ अधिक है। मारिस काल्वेल ने 1957 में परिवीक्षा पद्धति के सम्बन्ध में अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि परिवीक्षा अपराधियों में केवल 23.1% अपराधी ही शर्तो का उल्लंघन करते हैं तथा 77% अपराधी परिवीक्षा में लाभ लेते हुये स्वयं को समाज में पुनर्स्थापित कर लेते हैं। अतः, कहा जा सकता है कि भारत में परिवीक्षा पद्धति में सफलता का प्रतिशत कम है क्योंकि भारत में दण्ड व्यवस्था के अत्यधिक उदारीकरण के कारण दाण्डिक संस्थानों के प्रति जनता

का विश्वास कम हो गया है।

परिवीक्षा पद्धति की कठोरता कम करने का महत्वपूर्ण उपाय है इस पद्धति में अपराधी समाज में रहकर स्वयं को सुधारने का प्रयास कर सकता है। हालांकि, परिवीक्षा पद्धति का उपयोग करने में सावधानी बरती जानी चाहिये। परिवीक्षा पद्धति के उपयोग से यदि पूरे समाज को लाभ होता है, तो इस पद्धति के सामाजिक लाभ होगा और यदि केवल वैयक्तिक लाभ होता है तो सामाजिक न्याय का दम घुटेगा। अतः परिवीक्षा पद्धति की सफलता इसी मार्गदर्शक सिद्धान्त पर निर्भर करती है।

पैरोल और परिवीक्षा में अन्तर कई बार सामान्यतः समझने में परेशानी होती है, परन्तु परिवीक्षा एवं पैरोल में बहुत अन्तर होता है, वो एक–दूसरे से पूर्णतः भिन्न हैं। इसे निम्न तालिका द्वारा समझा जा सकता–

पैरोल और परिवीक्षा में अन्तर –

परिवीक्षा	पैरोल
1. परिवीक्षा पर छोड़े जाने पर अपराधी को जेल में एक दिन की भी सजा नहीं काटनी पड़ती।	1. पैरोल में जेल या सुधार संस्था में कुछ सजा काटने के बाद अपराधी को छोड़ा जाता है।
2. परिवीक्षा अपराधी की आयु, चरित्र, परिस्थिति आदि के अनुसार स्वीकृत होती है।	2. पैरोल की स्वीकृति प्रायः जेल में अच्छा व्यवहार रखने के कारण होती है।
3. परिवीक्षा प्रायः न्यायालय द्वारा स्वीकृत होती है।	3. पैरोल प्रायः प्रशासकीय बोर्ड या अधिकारी द्वारा स्वीकृत होता है।
4. परिवीक्षा में सुधार की भावना प्रधान होती है।	4. पैरोल में दण्ड के साथ सुधार भी मिला रहता है।
5. परिवीक्षा का अपराधी अच्छा आचरण रखने पर पूर्णतः मुक्त हो जाता है।	5. अपराधी इससे पूर्ण मुक्त नहीं होता है।
6. परिवीक्षा कम खर्चीली प्रणाली है।	6. प्रोबेशन की अपेक्षा अधिक खर्चीली प्रणाली है।
7. यह विधि प्रायः बाल अपराधियों हेतु प्रयोग में लायी जाती है।	7. पैरोल विधि प्रायः वयस्क अपराधियों के लिए प्रयोग में लायी जाती है।
8. प्रायः प्रथम अपराधी ही इस विधि का लाभ उठा सकते हैं।	8. कुछ विशेष अपराधों को छोड़कर प्रायः सभी अपराधी इससे लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

◆ ◆ ◆

अध्याय – 10

बन्दियों के लिये किशोर अपचारिता एवं सुधारक संस्थायें

जब कोई अपराधिक कृत्य या विधि विरूद्ध कार्य या समाज विरोधी कार्य किसी बालक या अवयस्क के द्वारा किया जाता है, तो उसे **किशोर अपराध या बाल अपराध** कहा जाता है। 8 वर्ष से अधिक व 16 वर्ष से कम आयु के बालकों द्वारा किये गए अपराध के लिए, बाल अपराध न्यायालय में न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा। बाल अपराधी की अधिकतम आयु अलग–अलग राज्यों में अलग–अलग है। इस आधार पर किसी राज्य द्वारा निर्धारित आयु सीमा के अन्तर्गत बालक द्वारा किया गया विधि विरूद्ध कार्य **बाल अपराध** है। बालकों द्वारा किये गये विभिन्न अपराधों का निर्णय केवल बाल अपराध को ही निर्धारित नहीं करता वरन् अपराध की गम्भीरता भी महत्वपूर्ण है। कोई भी 7 वर्ष की आयु से 16 वर्ष की आयु का बालक एवं 7 वर्ष से 18 वर्ष की आयु की लड़कियों द्वारा भी अपराध जैसे हत्या, देशद्रोह, घातक आक्रमण आदि किया गया है, जिसके लिये राज्य मृत्यु दण्ड या आजीवन कारावास की अवधि का दण्ड देता है, तो उसे बाल अपराधी माना जायेगा। बेल्जियम के प्रसिद्ध **सांख्यिकीविद् अडोल्फ क्वेरिलेट** ने लगभग डेढ सौ वर्ष पूर्व कहा था कि किसी भी व्यक्ति में जब शारीरिक बल व जोश चरम सीमा पर होते हैं, परन्तु उसमें विवेक उसके संयुक्त प्रभाव रखने के लिये परिपक्व नहीं होता है, तब अपराध करने की प्रवृत्ति बलवती होती है। इसी पर सर लियोन रेडयिनोविझ ने कहा कि किशोर अवस्था काल में व्यक्ति निर्भीक स्वभाव, दूरदर्शिता की कमी, असीम उत्साह, शारीरिक शक्ति, विलक्षण सहन शक्ति उसे हिंसात्मक कृत्यों को करने में अधिक होती है।

विकासशील व विकसित देशों में किशोर उपचारिता की गम्भीरता वर्तमान में किशोर अपराधिकता के लिये केवल शारीरिक या जैविक होना आवश्यक नहीं है। कई ऐसे कारण भी है जैसे जनसंख्या में वृद्धि, देश में सामाजिक एवं राजनीतिक बदलाव, शिक्षा की कमी भी किशोर अपराधिकता को बढ़ावा देती है। किशोर अपचारिकता के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश कृष्णा अय्यर ने भारतीय विधि संस्थान में विधि का भविष्य विषय पर दिनांक 21 से 25 मार्च 1994 को आयोजित विधि संगठनों में विचार व्यक्त किये कि किसी भी राष्ट्र का भविष्य उसकी युवा पीढ़ी पर निर्भर करता है, इसीलिये बच्चों के प्रति प्रेम, दया एवं सहानुभूति दर्शाना चाहिये और साथ ही साथ उनकी उचित देखभाल व सुरक्षा भी दी जानी चाहिये। बालक जन्म से अबोध और निर्विकार होते हैं। उनका शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा अध्यात्मिक शक्तियों का सर्वांगीण विकास एवं

उन्हें उत्तम नागरिक बनाने के लिये उनका पालन–पोषण सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए। यदि उन्हें दूषित वातावरण में रखा जाये तो वे अपराधिकता की ओर आकर्षित होंगे।

इस सम्बन्ध में नोबल पुरस्कार प्राप्त गोबिल मिस्ट्राल ने अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा कि हम अनेक भूलों एवं गलतियों के लिए दोषी होते हैं लेकिन हमारा सबसे गम्भीर अपराध बच्चों को उपेक्षित छोड़ देना होता है, जो जीवन का आधार होते हैं। अनेक ऐसे कार्य हैं जिनके लिये हम रूक सकते हैं, परन्तु बच्चों की देखभाल लिये नहीं, क्योंकि बच्चे ही आने वाले कल का भविष्य हैं, उन्हें अच्छे गुणवान नागरिक के रूप में तैयार करना हमारा कर्तव्य है। प्राचीन समय में किसी भी व्यक्ति के द्वारा अपराध किये जाने पर सभी को समान रूप से दण्डित किया जाता था। प्राचीन दण्डशास्त्र में दण्ड देने में वयस्क, अवयस्क, बालक, किशोर युवा, वृद्ध में कोई भेद नहीं किया जाता था और न ही बाल व किशोर अपराधियों को दण्ड देते समय किसी प्रकार की उदारता बरती जाती थी। समयानुसार अपराधिक न्याय प्रशासन में सुधारात्मक पद्धति का आरम्भ हुआ। इसी दौरान दण्डशास्त्रियों का ध्यान किशोर अपराधियों की ओर गया तथा अनुभव किया गया कि उनके साथ उदारता व सहानुभूति की नीति अपनाई जाये।

व्यक्ति जब किशोर अवस्था में होता है, तब वह स्वाभावतः चंचल व दु:साहसी होता है, इसीलिये वे जीवन के विभिन्न प्रलोभनों की ओर शीघ्र आकर्षित हो जाता है और जल्द ही अपराधिकता का शिकार होता है। जैसा कि कहा जाता है कि आज का बालक कल का भावी नागरिक है, इसलिए बालक की अपचारिकता प्रवृत्ति पर नियन्त्रण रखा जाना आवश्यक है। अतः बालकों के अपराधी बनने की सम्भावना से चिंतित होकर विश्व के सभी देशों में किशोर अपचारिकता की समस्या को प्राथमिकता के आधार पर दूर किया जाना चाहिए तथा भारत में इन अपचारिकताओं की समस्या से निपटने के लिये किशोर न्याय बोर्डों की विशेष व्यवस्था की गई है। भारत में इन किशोर न्याय बोर्डों की विशेष प्रणाली व प्रक्रिया रूढ़िगत न्यायालय से बिल्कुल भिन्न है। इसी स्थिति से निपटने के लिये तथा अपचारी किशोरों की संरक्षण, देखभाल, उपचार तथा पुनर्वास आदि से सम्बन्धित विषयों पर न्याय–निर्णय एवं आवास की उचित व्यवस्था के लिये किशोर न्याय बालक देखरेख तथा संरक्षण, 2000 पारित किया जाता है।

प्राचीन समय में किशोर व बाल अपराधियों को अन्य अपराधियों के साथ एक ही बन्दीगृह में रखा जाता है क्योंकि उनका विचारण सामान्य न्यायालयों में होता था। इस प्रकार एक ही बन्दीगृह में सभी बन्दियों को रखने से बन्दियों की संख्या में वृद्धि हो गई। ज्यादातर बाल अपराधी गम्भीर व अभ्यस्त अपराधियों की

लैंगिक वासना के शिकार हो जाते थे, जिससे बन्दीगृह में भी किशोर अपराधियों में अपराध करने की प्रवृत्ति बढ़ती रही तथा बन्दीगृह से मुक्त होने के पश्चात् वे पुनः अपराधों को करने के लिये प्रवृत्त होते हैं।

यूरोपियन देशों में अट्ठारहवी शताब्दी के औद्योगिक क्रांति में देश में अनेकों आर्थिक व सामाजिक परिवर्तन हुये। साथ ही साथ, किशोरों के शोषण में वृद्धि हुई और उस समय किशोरों को दास की तरह क्रय–विक्रय किया जाता था। इसी समयावधि में इंग्लैण्ड में जर्मी बेन्थम के प्रभाव के कारण उदारतावादी विचारधारा प्रारम्भ हुई और उनके मानवतावादी सिद्धान्तों के प्रभाव के परिणामस्वरूप अनेक जनकल्याण सिद्धान्त पारित हुये तथा विशेष रूप से किशोर अपराधियों को दण्ड देने के प्रति उदारता की नीति अपनाई गई। ब्रिटेन में वर्ष 1772 में किशोर अपराधियों को दान, वसीयत आदि से सम्बन्धित मामलों में कुछ सुविधायें भी दी गई।

वर्तमान समय में विश्व के लगभग सभी देशों ने यह माना है कि एक निश्चित आयु सीमा से कम आयु के अपराधिक कृत्य करने वाले व्यक्तियों को दण्ड देते समय विशेष सहानुभूति रखना चाहिये। सभी देशों में दण्ड देने की आयु–सीमा में छूट देने के सम्बन्ध में मतभेद है। भारत में दण्ड व्यवस्था में दण्ड प्रक्रिया संहिता धारा 27, धारा 82 व धारा 360 में की गई है। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 82 के अनुसार 7 वर्ष से कम आयु के बालक पर अपराधिक दायित्व अधिरोपित नहीं किया जा सकता है तथा सात वर्ष से बारह वर्ष की आयु के बालक को अपराध के लिये दोषसिद्ध होने पर तथा स्वयं के द्वारा किये गये कृत्य के परिणामों को समझने एवं मानसिक परिपक्वता होने पर ही दण्डित किया जा सकता है।

'अपचारिकता' का अंग्रेजी शब्द डेलीक्वेन्सी (Delinquency) है, जो लैटिन शब्द डेलिनक्वेर (Delinquer) से लिया गया है, जिसका अर्थ 'विलोप करना' (to omit) होता है। रोमन काल में इस शब्द का प्रयोग व्यक्तियों को कर्तव्य में तथा सौंपे गये कार्य में असफल होने के तौर पर प्रयोग किया जाता था। वर्ष 1984 में 'डेलिक्वेन्ट' शब्द का प्रयोग करने वाले प्रथम व्यक्ति विलियम कॉक्सन ने परम्परागत अपराध में दोषी पाये जाने व्यक्तियों के प्रति किया था।

अपचारिता का सरल अर्थ है कि समाज द्वारा सामान्यतः स्वीकृत आचरण या व्यवहार, जो समाज की एकीकृत मान्यताओं के विपरीत हो, होता है।

मोटे तौर पर व्यक्ति के समाज विरोधी या विधि विरोधी व्यवहार को अपराध कहा जाता है और व्यक्ति को अपराधी, जब उसकी अपराधिक प्रवृत्ति की आयु अधिकतम 16 या 17 वर्ष तक के बालकों में पाई जाती है, तो उन्हें बाल अपराधी की श्रेणी में रखा जाता है। कहीं–कहीं बाल अपराधियों में 20–21

वर्ष के अपराधियों को भी बाल श्रेणी में सम्मिलित करते है। रिफार्मेटरी स्कूल अधिनियम, 1897 के अनुसार बाल अपराधियों की अधिकतम आयु 17 वर्ष मानी गयी है। अतः सामान्यतः **17 वर्ष तक से कम आयु वाले बालक को किशोर अपचारी** कहा जाता है।

किशोर अपचारिता की परिभाषा

विभिन्न अपराधशास्त्रियों द्वारा भिन्न–भिन्न प्रकार से की गई है–

1. **डा. सेठना** ने किशोर अपचारिकता में एक राज्य विशेष में उस समय प्रचलित विधि द्वारा निर्धारित एक निश्चित आयु सीमा के बच्चों या युवकों द्वारा किये गये अनुचित कार्यों का समावेश होता है अर्थात् किशोर अवस्था, बालपन और पुरूषत्व या नारीत्व के मध्य की वह अल्हड़पन की उम्र होती है जिसमें व्यक्ति किसी प्रकार का असामाजिक व्यवहार करता है। इस असामाजिक व्यवहार को समय पर नियन्त्रित नहीं किया गया तो उस किशोर बालक के गम्भीर अपराधी बनना तय होता है।
2. **हिस्ले** (Hesaly):– व्यवहार के सामाजिक नियमों से विचलित होने पर बालक को बाल अपराधी या किशोर अपराधी कहा जाता है।
3. **कोहेन एल्वर्ट** ने किशोर अपचारिकता के बारे में परिभाषा देते हुये कहा कि अपचारिकता से आशय उस प्रश्नगत् व्यवहार से है, जो नियमों के वर्गों से सम्बन्धित है। विभिन्न समुदायों में सामाजिक नियमों की भिन्नता होने के कारण नियमों के वर्ग से सम्बन्धित है। ये देशकाल या परिस्थिति के अनुसार भिन्न होते हैं। इसी कारण, अपचारिकता की परिभाषा में भी निश्चितता का अभाव होता है।
4. **काल्डवेल** ने संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में अगस्त 1940 को लंदन में आयोजित 'अपराध निवारण एवं अपराधियों' से सम्बन्धित द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन में अपराधिकता की परिभाषा देते हुये कहा था कि किशोरों द्वारा किये जाने वाले वे कृत्य जिसके कारण वे राज्य की संरक्षणात्मकता के आधीन आ जाते हैं, अपचारिकता है, परन्तु अपचारिकता की परिभाषा की निश्चितता का प्रश्न सदैव से ही विवादस्पद रहा है। अतः इस सम्मेलन में किशोर अपचारिकता पर विचार के सम्बन्ध में निर्णय लिया गया कि अपचारिकता को अनावश्यक महत्व नहीं देना है तथा इसके अन्तर्गत उन सभी प्रकार के दण्ड विधि के उल्लंघनों एवं कुसमायोजित आचरणों का समावेश होना चाहिये जो समाज में पसन्द नहीं किये जाते हैं।

अतः किशोर या बाल अपचारिकता के अन्तर्गत बालकों द्वारा किये गये

वे सभी कृत्य शामिल हैं जो विभिन्न समाजों द्वारा उनकी धारणाओं को स्वीकार नहीं किये जाते हैं।

5. **न्यूमेयर** ने किशोर अपचारिकता को परिभाषित करते हुये कहा है कि एक किशोर अपचारी निर्धारित आयु सीमा से कम आयु का वह व्यक्ति है, जो समाज विरोधी व्यवहार का दोषी है और जिसका आचरण विधि का उल्लंघन हो।

6. कई विद्वानों ने माना कि अपचारिकता को अपराधिकता की प्रस्थिति नहीं माना जाना चाहिये परन्तु इस विचार पर सहमत नहीं होते हुये **पाल टेपन** ने कहा कि अपचारिकता के वाद में सुनवाई या दण्ड की जगह निपटान आदि शब्दों के प्रयोग से यह नहीं भूलना चाहिये कि इसकी सम्पूर्ण न्यायिक प्रकिया रूढ़िगत अपराधिकता की कार्यप्रणाली से भिन्न है, परन्तु यदि इसे सामाजिक न्याय संप्रवर्तित करने के द्वारा न्याय के मूलभूत सिद्धान्तों की अनदेखी की जाने की संभावना बने तो इनके परिणाम गम्भीर हो सकते हैं।

7. **मावरर**:— किशोर अपचारी वह व्यक्ति है जो जानबूझकर इरादे के साथ एवं समझते हुये उसके द्वारा किया गया हो। ये कृत्य समाज की रूढ़ियों व नियमों की उपेक्षा करता है, जिससे वह सम्बन्धित है।

8. **डा. सुशीलचन्द्र** के अनुसार, ऐसा स्थापित आदर्श व्यवहार जो सामाजिक सामान्य व्यवहार होता है, से विचलन अपराधिक व्यवहार का प्रतीक होता है।

अतः कहा जा सकता है कि सामान्यतः अपचारिकता से आशय बाल व किशोर अवयस्कों द्वारा किये गये व्यवहार जो समाज में सही नहीं माने जाते हैं तथा लोकहित की दृष्टि से जिनकी भर्त्सना, चेतावनी व दण्ड या कोई सुधारात्मक उपाय समझा जाता है।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि अपराधिकता से अपचारिकता भिन्न है, जहाँ अपराधिक कृत्य अर्थात् ऐसा किया गया कार्य जो समाज के नियमानुसार सही न हो तथा उसके लिये विधि में दण्ड का प्रावधान किया गया हो, वहीं अपचारिकता, अपराधिकता की पूर्ववर्ती सीढ़ी है, जो भविष्य में अपराध का रूप लेती है और अपचारी को अपराधी में परिवर्तित करती है।

किशोर न्याय (बालकों की देख–रेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 के अनुसार विधि द्वारा निषिद्ध प्रत्येक कृत्य उपचार कृत्य नहीं माना जा सकता है। अतः ऐसा आचरण जो न केवल विधिक दृष्टि से बल्कि वर्तमान सामाजिक मान्यता के भी विपरीत हो, अपचारिक कृत्य होता है। किशोर न्याय

(बालकों की देख–रेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 में पूर्णतः किशोर न्याय अधिनियम, 1986 के प्रमुख शब्द 'अपचारी किशोर' के स्थान पर 'विधि विवादित किशोर' तथा 'उपेक्षित बालक' के स्थान पर 'विधि की देख–रेख एवं संरक्षण की आवश्यकता वाला बालक' लिया गया है। उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर किशोर अपचारिकता में निम्न लक्षणों का उल्लेख किया जा सकता है–

1. उसके द्वारा किया गया कार्य समाज विरोधी व्यवहार न हो।
2. उस अपराधिक कार्य को करने वाला व्यक्ति कच्ची या कम आयु का हो।
3. किशोर आयु के व्यक्ति द्वारा किया गया अपराधिक कार्य अज्ञातवास या उत्तरदायित्व की कमी के कारण किया गया हो।
4. ऐसा कोई कार्य जिससे उस व्यक्ति की अपनी आदत बिगड़ती हो या अन्य किसी प्रकार की हानि होती हो, जो विधिक तौर पर अपराध माना जा सकता हो।
5. इस प्रकार के कार्य करना उसके स्वभाव में शामिल हो गया हो, जिसका ठीक होना कठिन हो।

किशोर अपचारिकता के कारण

किशोर अपचारिकता ने वर्तमान समय में वैश्विक समस्या का रूप ले लिया है। विश्व के अधिकतर देशों में किशोर अपचारिकता के निवारण हेतु कई उपचारात्मक प्रयास किये जाने के बाद भी किशोर आयु के व्यक्तियों में उद्दण्डता, हिंसा तथा विधि विरूद्ध कार्य करने की प्रवृत्ति में दिनोंदिन वृद्धि हो रही है। किशोर अपचारिकता के प्रमुख कारणों को नीचे दिये अनुसार बाँटा जा सकता है–

1. **पारिवारिक कारणः**– विकसित व विकासशील देशों में औद्योगिकीकरण के कारण संयुक्त परिवारों का तेजी से विघटन हो रहा है। विघटित परिवार, आभासी विघटित परिवार या उदासीन गृह, अनैतिक परिवार, माता–पिता या संरक्षण की उपेक्षा, मिली–जुली संस्कृति या सभ्यता, पारिवारिक अपराधिकता, गरीबी, भीड़–भाड़, किशोर अपचारिकता के कारण हैं। आज के वैज्ञानिक समय में व्यस्त जीवन शैली में व्यक्ति अपने बच्चों पर उचित ध्यान नहीं दे पाता है, फलस्वरूप बालक स्वयं को उपेक्षित अनुभव करते हैं और पालकों के उचित स्नेह व संरक्षण के अभाव में अपचारिकता की ओर प्रवृत्त होते हैं।
2. **शारीरिक कारणः**– कोई भी किशोर व्यक्ति शारीरिक दोष, विकृति,

विकलांगता एवं मानसिकता पंगुता या समय से पूर्व शारीरिक अपरिपक्वता तथा बुद्धि का विकास न होना भी हो सकता है। वर्तमान समय में बालिकाओं में लगभग बारह–तेरह वर्ष की आयु से हो कौमार्यगमन के जैविक लक्षण दिखने लगते हैं, जबकि वे मानसिक रूप से उन परिवर्तनों को ठीक प्रकार से समझ नहीं सकती हैं। अतः वे क्षणिक सुख के लिये बिना सोचे–विचारे लैंगिकता का शिकार हो जाती है, जिसके परिणामों की गम्भीरता की कल्पना भी उन्हें नहीं होती है। इस हेतु कई सुधारों द्वारा माना गया है कि विद्यालय में बालक–बालिकाओं को लैंगिक शिक्षा दी जाने की व्यवस्था की जाये।

3. **मानसिक कारणः**– समाज में फैले अनैतिक व भ्रष्ट व्यावहारिक वातारण में बालक मनोवैज्ञानिक विकृतियों का शिकार होने लगता है। भारत में किशोरों में बढ़ती अनुशासनहीनता इसी व्यवहार का ही परिणाम है। मन्दबुद्धि बालक में मानसिकहीनता उत्पन्न होती है, जो बालक के संवेगात्मक संघर्ष एवं अस्थिरता अपराध के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

4. **सामुदायिक व सांस्कृतिक कारणः**– समाज समूह व संगति की सभ्यता का बालकों व किशोरों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। यदि यह सभ्यता बालकों व किशोरों की आदर्श, नैतिकता व स्वस्थ है, तो बालक किशोर विधि अनुगामी बनता है और यदि इसके विपरीत है तो बालक अपराध की ओर प्रवृत्त होता है। जैसे– कई अपराधशास्त्रियों के अनुसार मीडिया, प्रसार–प्रचार, सिनेमा, दूरदर्शन आदि किशोर अपचारिकता का कारण हैं, क्योंकि इन माध्यमों द्वारा दर्शाये जाने वाले छायाचित्र के अश्लील या वीभत्स दृश्यों का बालकों एवं किशोरों के कोमल मन एवं मस्तिष्क पर कुप्रभाव पड़ता है और वे उन्हें जीवन में वास्तविक रूप में अनुशरण करने की प्रवृत्ति से अपराध की ओर बढ़ने लगते हैं।

   इसी प्रकार, उसके समुदाय व उसकी संस्कृति द्वारा अपनाये जाने वाले मनोरंजन के साधन नृत्यघर, अश्लील साहित्य, रेडियो, समाचार–पत्र आदि इन किशोरों में अपराधिक प्रवृत्ति के उत्प्रेरक होते हैं, जिससे बालक व किशोर अपराधिकता की ओर कदम बढ़ाते हैं। इसके अतिरक्त, **सदरलैण्ड के विभेदकारी साहचर्य सिद्धान्त** के अनुसार, जुआ, चोरी, धूम्रपान जैसे कृत्य बालक व किशोर प्रायः अपने समुदाय व संस्कृति से ही सीखते हैं क्योंकि अपराधिक व्यवहार अन्तरंग सहचर्य की अन्तःक्रिया का परिणाम होता है।

5. **औद्योगिक कारणः**– वर्तमान समय में देशों में जिस प्रकार का औद्योगिक एवं आर्थिक विकास हो रहा है उसके कारण पारिवारिक विघटन, आवास,

झुग्गी–झोपड़िया बढ़ती जा रही हैं तथा गावों और कस्बों का शीघ्रता से शहरीकरण होता जा रहा है। शहरों में जीवन मंहगा होने से परिवार की आर्थिक सहायता के लिये महिलायें भी घर से बाहर कार्य पर जाने लगी और फलस्वरूप बच्चों पर नियन्त्रण कम होता गया। आधुनिकीकरण एवं पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से किशोर आयु के बालक–बालिकाओं में उच्छृंखलता की प्रवृत्ति बढ़ती गई, जिससे किशोर अपचारिकता में भी वृद्धि होने लगी।

6. **आर्थिक कारण या निर्धनताः**– निर्धनता किसी व्यक्ति के लिए अभिशाप से कम नहीं है। अतः निर्धनता किशोर अपचारिकता का एक सम्भाव्य कारण है और अपराध के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में निर्धनता का प्रभाव होता है। बच्चे माता–पिता द्वारा या परिवार के अन्य सदस्यों की गरीबी व निर्धनता की स्थिति के कारण खाना न मिलने की स्थिति में भूख को शान्त करने के लिये अवैध गतिविधियों की ओर आकर्षित होते हैं जो उन्हें अपचारी बना देती है। कभी–कभी माता–पिता जानबूझकर उन्हें स्वार्थवश अपराधिकता की ओर प्रवृत्त करते हैं। इसके अतिरिक्त, आवश्यकता से अधिक सम्पन्न बालकों व किशोरों में अपचारिकता का प्रसार होता है। नृत्यकार और क्लब, शराब व सिनेमा, बालकों में विलासिता, धूम्रपान, अनैतिकता आदि प्रवृत्तियों का प्रसार करता है।

7. **वैवाहिक सम्बन्धों में अनबनः**– विवाह के पश्चात् तलाक व झगड़ों की संख्या में समयानुसार वृद्धि देखी जा रही है जिसके कारण पारिवारिक समता बिखर सी गई है। माता–पिता द्वारा बच्चों पर कम ध्यान देना या उनके साथ भेदभाव करना, बालकों की मानसिकता पर प्रभाव डालता है व वे स्वयं को उपेक्षित समझने लगते हैं, इसीलिये वे अपचारिकता के वातावरण को अनुकूल मान उसी ओर प्रवृत्त होते हैं। बालकों के माता–पिता के बीच आपसी कलह, दुर्व्यवहार, मारपीट, गाली–गलौच आदि की स्थिति में भी अपचारिकता का वातावरण अनुकूल मान वे उसी ओर प्रवृत्त होते हैं।

8. **दीनहीन, निराश्रय, अभित्यक्त बालकों का प्रशासनः**– समाज व माता–पिता द्वारा उपेक्षित या त्यागे गये बालक व लावारिस बच्चे अक्सर गन्दी बस्तियों में रहते हैं, जहाँ दरिद्रता के कारण वेश्या व्यवसाय, तस्करी, जुआखोरी, शराब व नशीले पदार्थों का अवैध व्यापार खुलेआम किया जाता है। वे इन असामाजिक व्यक्तियों की कुसंगति में शामिल होकर अपचारिकता में पड़ जाते हैं तथा ये निराश्रित व उपेक्षित किशोर बालक–बालिकाओं को धन का प्रलोभन देकर अवैध व्यापार में शामिल कर अपचारिकता की गतिविधियों में शामिल कर देते हैं।

9. **घनी जनसंख्याः–** देश की जनसंख्या में अनियन्त्रित गति से वृद्धि होना भी बालक व किशोर अपचारिकता का एक कारण है। अधिक जनसंख्या वाले शहरों में मानव जीवन व्यस्त रहता है और बच्चों के विकास पर लोग समुचित ध्यान नहीं दे पाते हैं।

10. **भौतिक कारणः–** आजकल का बालक और युवा भौतिकता की ओर ही भाग रहा है। भारतीय युवा वर्ग पर पाश्चात्य सभ्यता का इतना गहरा प्रभाव हो गया है कि वे अपनी धार्मिक शिक्षा, सभ्यता व आदर्श के सिद्धान्त को गौण समझते जा रहे हैं। आज व्यक्ति लाभ, सुख–सुविधा और ऐश्वर्य की ओर अधिक उन्मुख हो रहा है। अब बालक व किशोर फैशन परस्त भी हो गये हैं। आज के किशोर बालक–बालिकायें सिनेमा, दूरदर्शन, डिस्को, कैबरे आदि ने भारतीय सभ्यता को पूर्णतः विकृत कर दिया है तथा उनकी प्रवृत्ति हिंसा, मारपीट, नशाखोरी, लैंगिकता आदि की ओर जा रही है। अधिकांशतः, सिनेमा भी अपराध प्रधान या वासना प्रधान होने के कारण वे बालकों की मानसिकता को खराब कर रही है व उनके द्वारा किये गये कार्यों से उन्हें अपचारी बनने का कारण भी बन रहा है।

11. **अज्ञान व अशिक्षाः–** किशोर अपरचारिकता की बढ़ती प्रवृत्ति का कारण अशिक्षा, अज्ञान व बालश्रम आदि भी है। अल्पायु के बालकों द्वारा विद्यालय शिक्षा के लिये न जाकर होटलों, दुकानों या कारखानों में कार्य करने के पश्चात् प्राप्त धनराशि को स्वयं पर खर्च करने के उद्देश्य से वे उसका उपयोग कर बुरी आदतों को अपना लेते हैं जिससे वे अपचारिकता की ओर प्रवृत्त होने लगते हैं क्योंकि उन्हें उचित व सही या गलत का ज्ञान ही नहीं मिल पाता है।

किशोर न्याय व्यवस्था का इतिहास

वर्ष 1704 में **पोप क्लेमेंट XI** थे, जिन्होने प्रथम बार सुधार और संस्थागत उपचार में दुर्व्यवहारी युवाओं के मध्य शिक्षा के प्रचार की शुरूआत की थी। इसके पश्चात् एलिज़ाबेथ एवं उसके सहयोगियों ने किशोर अपराधियों के लिये अलग–अलग रिफार्मर होम स्थापित करने हेतु संसाधन आवंटित किये। परिणामस्वरूप, सुधार अधिनियम और औद्योगिक स्कूल अधिनियम को विधि में शामिल कर पारित किया गया। किशोरों के लिये स्थापित विशेष न्यायालयों को पहली बार 1847 में संयुक्त राज्य अमेरिका ने शुरू किया था। हालांकि, प्रथम **'जुवेनाइल कोर्ट' 1899** में, शिकागो में किशोर अपराधी अधिनियम के तहत स्थापित की गई थी और **1905 में इंग्लैण्ड में किशोर न्यायालय पद्धति** की स्थापना की गई थी।

1. **इंग्लैण्डः–** इंग्लैण्ड की अपराधिक न्याय व्यवस्था में किशोर न्याय व्यवस्था

को सामान्य न्याय व्यवस्था से भिन्न रखा गया है। ब्रिटेन में इस न्यायालय की गम्भीरता को देखते हुये अधिकतर दण्डशास्त्रियों ने माना है कि समय के साथ बालकों व किशोरों के द्वारा न्याय व्यवस्था प्राप्त करने के पश्चात् कई वयस्क अपचारिकता का मार्ग छोड़ सामान्य नागरिक का जीवन व्यतीत करते हैं। इसीलिये, अंग्रेजी विधि सुधारकों ने किशोर अपचारियों के लिये न्याय व्यवस्था को सामान्य न्याय व्यवस्था से पृथक रखा है। इंग्लैण्ड में लगभग उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में निराश्रित एवं अपराधी किशोरों के उपचार एवं पुनर्वास के लिये रेगेड इंडस्ट्रियल स्कूल अभियान का प्रारम्भ प्रथम प्रयास के रूप में किया। रेगेड इंडस्ट्रियल स्कूल अभियान के अंतर्गत निराश्रित, लावारिस एवं उपेक्षित बच्चों हेतु एक औद्योगिक विद्यालय स्थापित किया गया। इस दिशा में मिस मेरी कारपेंटर के योगदान व उनके अथक प्रयासों से इन किशोरों व बालकों के लिये वर्ष 1847 में हाउस ऑफ लार्ड्स ने एक विशेष कानून पारित किया। मिस मेरी कारपेंटर ने एक रेगेड औद्योगिक विद्यालय बिस्टोल में प्रारम्भ किया तथा शीघ्र ही एक और दिवसीय औद्योगिक विद्यालय एल्बर्डीन में प्रारम्भ किया।

इंग्लैण्ड में 1838 में परखुर्स्ट बन्दीगृह को किशोरों के लिये सुधारगृह बना दिया गया। वर्ष 1879 में ब्रिटिश संसद ने 'समरी ज्यूरीडिक्शन एक्ट' पारित किया। इस अधिनियम में सात वर्ष के बालकों को अपराधिक दायित्व से मुक्त रखा गया, जिसे बाद में 8 वर्ष कर दिया गया तथा किशोर अपराधियों के विचारण के लिये अत्यन्त सरल प्रक्रिया लागू की गई एवं किशोरों के प्रति उदारता का उपयोग करते हुये व्यैक्तिक सुधार पद्धति अपनाई गई।

इसी प्रकार, वर्ष 1907 में प्रोबेशन ऑफ ऑफेन्डर्स एक्ट 1907 पारित किया गया, जिसमें न्यायाधीशों को किशोर अपराधी को स्वविवेकनुसार केवल चेतावनी देकर या परिवीक्षा पर छोड़ा जा सकता था और परिवीक्षा पर छोड़े गये अपराधी पर निगरानी रखने एवं मार्गदर्शन करने के लिये परिवीक्षा अधिकारियों की नियुक्ति की गई, जिससे वे समाज में रहकर सुधर सकें।

इंग्लैण्ड में बाल अधिनियम, 1908 में किशोर न्यायालय की स्थापना की, जो सामान्य न्यायालयों से भिन्न थी। फिट्सजिराल्ड ने तीन प्रकार के किशोरों को वादों के नियंत्रण से बाहर रखा। किशोर संरक्षण न्यायालय में सुरक्षा पाने वाले किशोर तथा भगोड़े किशोर के वादों का निपटारा किया जाता है। इन न्यायालयों में अपचारियों की पहचान गोपनीय रखी जाती है व इनके फोटोग्राफ आदि भी प्रकाशित नहीं किये जाते हैं।

इंग्लैण्ड में **बाल अधिनियम 1933 की धारा 77** के अन्तर्गत बालकों एवं किशोरों के सुधार हेतु 'रिमाण्ड होम' बनाये गये हैं। इन रिमाण्ड होम्स में सत्रह वर्ष से कम आयु के बालक–बालिकाओं को वाद के विचारण के दौरान संप्रेषण में रखा जाता था एवं सत्रह वर्ष से अधिक आयु के अपराधियों हेतु **क्रिमिनल जस्टिस एक्ट, 1948** के तहत 'रिमाण्ड होम' स्थापित किये गये थे।

इसी प्रकार, इंग्लैण्ड में **वर्ष 1982 में इंग्लिश क्रिमिनल एक्ट** पारित किया गया, जिसमें संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा किशोरों के न्याय प्रशासन हेतु अपनाये गये न्यूनतम मानक नियमों का अनुशरण कर किशोर न्याय को अत्यधिक उदार बना दिया गया।

2. **अमेरिकाः**– अमेरिका के मेसेच्युसेट्स के बोस्टन शहर में वर्ष 1869 में 'स्टेट एजेन्टों' की नियुक्ति से किशोर न्याय का प्रारम्भ माना जाता है। ये अपचारी किशोरों की देखरेख व संरक्षण करते थे। बाद में, वर्ष 1878 में इन स्टेट एजेन्टों का कार्य परिवीक्षा अधिकारियों को सौंप दिया गया।

   अमेरिकन किशोर न्यायालयों की कार्य पद्धति एवं प्रक्रिया सामान्य न्यायालयों की अपेक्षाकृत सरल तथा अनौपचारिक है। अमेरिका में वर्तमान समय में लगभग सभी राज्यों में किशोर न्यायालय हैं। इन न्यायालयों के न्यायाधीश चुनाव पद्धति के द्वारा नियुक्त किये जाते हैं तथा वे राज्य जनकल्याण विभाग के साथ मिलकर काम करते हैं और इनका वित्तीय खर्च स्थानीय सरकार करती है। किशोर न्यायालय में किशोर अपचारी के वाद में विचारण से पूर्व परिवीक्षाधीन अधिकारी द्वारा अपचारी किशोर की जानकारी एवं पूर्ववृत्त प्रस्तुत किया जाता है और आवश्यकता होने पर उन्हें उस किशोर के रहने की उचित व्यवस्था भी करना पड़ता है। यदि किसी कारण से अपचारी किशोर द्वारा परिवीक्षा की शर्तों का उल्लंघन किया जाता है, तो उसे बाल सुधार गृह में भेज दिया जाता है। इसके अतिरिक्त, किशोर अपराधी जिनकी किशोरावस्था समाप्त होने वाली होती है, उनका विचारण किशोर न्यायालय में न कर सामान्य न्यायालयों में किया जाता है।

किशोर न्याय व्यवस्था का अन्तर्रराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य

किशोर न्याय व्यवस्था विश्व के विभिन्न देशों में लागू की जा सकती है। किशोर अपचारी बालक के लिये सुधारात्मक पद्धति को अपनाया जा रहा है जिससे वे दण्ड प्राप्त करने से पूर्व ही स्वयं में सुधार कर सामान्य नागरिक की भांति जीवनयापन करें। किशोर अपचारी वर्तमान समय में सम्पूर्ण विश्व में गम्भीर समस्या का विषय बना हुआ है। इस समस्या से निपटने हेतु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर

प्रयास किया जा रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय दाण्डिक एवं सुधार आयोग द्वारा वर्ष 1951 में अपराध निवारण व उपचार की समस्या पर विचार–विमर्श कर अपराधियों के साथ मानवीय व्यवहार करने तथा उन्हें वयस्क अपराधियों से पृथक रखने पर जोर दिया गया है।

सितम्बर 1985 में अपराध निवारण एवं अपराधियों के उपचार पर आयोजित सातवीं अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंस में किशोर न्याय प्रशासन के लिये कतिपय न्यूनतम मानक नियम बनाये गये, जिन्हें सभी सदस्य राष्ट्रों ने स्वीकार किया। ये न्यूनतम मानक नियम निम्न सिद्धान्तों पर आधारित हैं–

1) कानून के उल्लंघन की चपेट में आये किशोरों को समुचित विधिक संरक्षण प्रदान किया जाना चाहिये।

2) विचारण पूर्व निरोध का केवल अन्तिम रूप में प्रयोग किया जाना चाहिये।

3) बाल एवं किशोर अपचारियों को जेल में नहीं रखा जाना चाहिये, जहाँ वयस्क अपराधियों की संगति के कारण उनके बिगड़ने की सम्भावना अधिक होती है।

4) जब तक जन सुरक्षा को खतरा न हो, किशोर अपराधी को बन्दीगृह में नहीं रखा जाना चाहिये और उन्हें समाज में रखकर उनमें आत्मसंयम की भावना जागृत करने का प्रयास करना चाहिये।

5) सभी सदस्य राष्ट्रों को व्यक्तिगत रूप से व सामूहिक रूप से यह प्रयत्न करना चाहिये कि ऐसे सुधारात्मक उपाय लागू किये जायें, जिससे किशोर अपराधी अपने भावी जीवन के प्रति आशान्वित होकर साफ–सुथरा जीवन जी सके।

भारत में, संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य होने के नाते इन मानक नियमों को अपनाते हुये, किशोर अपचारियों के लिये वर्ष 1986 में एक व्यापक कानून पारित किया गया, जो **किशोर न्याय अधिनियम के नाम से 31 मार्च 2001** तक प्रभाव में रहा।

किशोर न्याय अधिनियम, 1986 चौदह वर्ष तक क्रियान्वयन में रहने के पश्चात् उसे और अधिक प्रभावशाली एवं व्यापक बनाने की आवश्यकता महसूस की गई। अतः, 13 अप्रैल 2001 को किशोर न्याय अधिनियम को निरसित कर **किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000** सम्पूर्ण भारत में लागू किया गया।

भारत में किशोर न्याय व्यवस्था

भारत में किशोर न्याय प्रणाली का लम्बा इतिहास रहा है। भारत में किशोर न्याय प्रणाली ब्रिटिश शासन के दौरान उत्पन्न हुई थी और यह पश्चिमी विचारों और जेल सुधारों और किशोर न्याय के क्षेत्र में विकास का प्रत्यक्ष परिणाम था। अपराधियों से निपटने के लिये भारत में अंग्रेजों द्वारा शुरू किये गये परिवर्तन केवल इंग्लैण्ड के लोगों तक ही सीमित थे। अतः अधिकतर विधायी उपबन्धों में कम या अधिक ब्रिटिश कानून के पैटर्न का पालन किया जाता है। किशोर अपचारियों के लिये अलग–अलग प्रावधान करने वाले ब्रिटिश कानून को उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम तिमाही में भारत में पारित किया गया था। समयानुसार, "प्रशिक्षु अधिनियम, 1950" द्वारा बच्चों का प्रथम कानून पारित किया गया, जो संकट के समय व्यापार व वाणिज्य के लिये तैयार किया जाता था। भारतीय दण्ड संहिता, 1860 के अनुसार सात से बारह वर्ष की आयु के बालकों के लिये भी इसमें छूट दी गई है, जो अपरिपक्वता के कारण अपने स्वयं के अनैतिक कार्य व आचरण से अपराधिक कार्य में लिप्त हो गए और वे इस प्रकार के कार्य को करना अपना दायित्व समझने लगते हो।

वर्ष 1876 में सुधारवादी विद्यालय अधिनियम, 1876 पारित किया गया, जिसे वर्ष 1897 में संशोधित किया गया। जो किशोर अपचारियों के उपचार में मील का पत्थर साबित हुआ। इसने सरकारों को सुधारक विद्यालय स्थापित करने का अधिकार दिया। इस अधिनियम के अनुसार, न्यायालय ऐसी संस्थाओं में किशोर अपचारियों को दो से सात वर्ष की अवधि तक हिरासत में रख सकती है, परन्तु यदि कोई 18 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेता है, तो उसे सुधारावादी विद्यालयों में नहीं रखा जायेगा तथा चौदह वर्ष से अधिक आयु वाले किशोरों को रोजगार प्रदान करने का भी प्रावधान है।

अपराधिक संहिता में किशोर अपचारी को उसकी चौदह वर्ष की आयु तक की प्रतिबद्धता को दर्शाता है तथा उसके अच्छे व्यवहार पर उसकी इक्कीस वर्ष की आयु होने तक परिवीक्षा भी प्रदान करता है। परिणामस्वरूप, देशीय व प्रान्तों द्वारा पारित भारतीय बाल अधिनियमों ने इसी सोच को बनाये रखा। इन्हीं अधिनियमों में बच्चों व किशोरों के उपचारों व प्रबन्धन के लिये एक विशेष तन्त्र की स्थापना का प्रावधान भी था एवं इस सम्बन्ध में भारतीय जेल समिति 1919–20 की सिफारिशों ने विधायी कार्यवाही को और प्रभावी बनाया ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय, सरकार द्वारा किशोर अपराधी समस्या का अनुभव किया जाने लगा व इस सम्बन्ध में सरकार द्वारा विशेष कदम उठाये गये तथा देश के केन्द्र शासित प्रदेशों में बाल अधिनियम, 1960 लागू किया गया। सभी संघ राज्य क्षेत्रों में अधिनियम लागू किया गया था, परन्तु राज्यों में किशोर

अपचारियों के लिये अधिनियम नहीं थे, फिर भी राज्य इसे अपनाने हेतु स्वतन्त्र थे। इस स्तर पर देश में किशोर न्याय एक समान नहीं थे क्योंकि प्रत्येक राज्य के अपने मानक, मानदण्ड और प्रथायें थी। एक ओर इन समस्याओं को किशोर न्याय अधिनियम, 1856 को पारित कर दूर करने की मांग की जा रही थी, तो वहीं दूसरी ओर किशोर न्याय की अवधारणा विभिन्न बुनियादी परिवर्तनों के दौर गुजर रही थी, जो बीजिंग नियमों व संयुक्त राष्ट्र द्वारा बनाये बच्चों के अधिकारो का संकेत दे रहा था। इसके फलस्वरूप **किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000** का गठन किया गया, जिसे वर्ष 2006 के अधिनियम संख्या 33 के द्वारा वर्ष 2006 में व्यापक रूप से संशोधित किया गया और दिल्ली में हुये सामूहिक बलात्कार का निर्भया वाद के कारण नये संशोधित कानून की शुरूआत हुई। जहाँ दिल्ली पुलिस ने इस तथ्य का खुलासा किया कि पीड़िता पर सबसे क्रूर हमला किशोर अपराधी से हुआ था और वह मृत्युदण्ड से बचने में सफल रहा क्योंकि वह किशोर था।

दिल्ली का सामूहिक बलात्कार का मामला एक उदाहरण था, जिसमें किशोर की परिभाषा में तत्काल अधिकारिक तौर पर संशोधन का विचार किया गया और इस परिभाषा में आवश्यक अपवादों को छोड़कर, मामले के तथ्य व परिस्थितियों की गम्भीरता व जघन्यता को समाहित किया गया एवं किसी विशेष मामले में लिप्त सम्बन्धित किशोर द्वारा किए गए अपराध के स्तर को भी शामिल किया गया।

किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 दिनांक 1 अप्रैल 2001 से प्रभावी होने के पूर्व भारत मे **किशोर न्याय अधिनियम, 1986** लागू था। इस अधिनियम के पूर्व बाल अधिनियम, 1960 प्रवृत्त था, जिसमें राज्यों को अपने क्षेत्राधिकार में किशोरों एवं बालकों के संरक्षण हेतु अधिनियम पारित करने की छूट दी गई थी। इसी के अनुसार, अनेक राज्यों जैसे मध्यप्रदेश बाल अधिनियम, 1970; केरल बाल अधिनियम, 1974; बम्बई बाल अधिनियम, 1984; राजस्थान बाल अधिनियम, 1970, हैदराबाद व सौराष्ट्र में बाल अधिनियम क्रमशः 1951 एवं 1956 में पारित किये गये थे। उत्तरप्रदेश में यू. पी. बाल अधिनियम, 1951, के पूर्व से ही लागू किया गया था।

वर्तमान समय में, किशोर अधिनियमों में कुछ सुधार की आवश्यकता है क्योंकि 16 से 18 वर्ष की आयु के किशोरों द्वारा किया जाने वालों गम्भीर अपराधों में वृद्धि हुई तथा वे इस तथ्य का ठीक प्रकार से पालन कर रहे हैं कि 18 वर्ष की कम आयु के किशोरों को अपराधिक अभियोजन से बाहर रखा गया है, इसीलिये **किशोर न्याय (बालकों की देखभाल और संरक्षण) विधेयक** को 2015 को लोकसभा द्वारा 7 मई 2015 को पारित किया गया और 22 दिसम्बर, 2015 को राज्य सभा द्वारा पारित किया गया था एवं राष्ट्रपति की मंजूरी प्राप्त

करने के पश्चात् यह किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2015 बना और 31 दिसम्बर, 2015 से जम्मू और कश्मीर को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में लागू हुआ।

भारत में स्वतन्त्रता के पश्चात् न्याय प्रणाली के विकास में बालकों के लिये नया युग प्रारम्भ हुआ। भारत का संविधान विभिन्न मूल अधिकारों व राज्य नीति निर्देशक सिद्धान्तों से जुड़ा हुआ है, जो बालकों के जीवित रहने की आवश्यकताओं के विकास एवं संरक्षण का ध्यान रखता है।

भारत के विभाजन एवं स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् बाल अधिनियम, 1960 में उपेक्षित और दोषी की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई थी। इन उपेक्षित बालकों और किशोरों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये प्रथम पंचवर्षीय योजना में कुछ विशेष कार्यक्रम शुरू किये गये। समयानुसार आये बदलावों में शहरीकरण के साथ–साथ औद्योगिकीकरण से बालकों व किशोरों की विभिन्न प्रकार की समस्यायें सामने आई हैं। बड़े शहरों में किशोर अपचारियों की संख्या में वृद्धि हुई, इनमें सबसे अधिक अपराध चोरी के थे। पहले दोषी बालकों के सम्बन्ध में अधिनियम का अस्तित्व कुछ ही राज्यों मे था, इसीलिये केन्द्रीय सरकार ने इसे संघ शासित प्रदेशों में लागू किया था, लेकिन राज्य इस अधिनियम का अनुशरण करने के लिये स्वतन्त्र थे। बाल अधिनियम, 1960 में उपेक्षित और अपचारी किशोरों की देखभाल, संरक्षण, कल्याण, शिक्षा और पुनर्वास प्रदान किया गया है। इस अधिनियम द्वारा प्रथम बार किसी अधिनियम में किसी भी परिस्थिति में जेल में (बालकों एवं किशोरों के साथ) कठोर व्यवहार पर ढील लगा दी गई। इस अधिनियम में अपचारी से निपटने के लिये बाल न्यायालय और बाल कल्याण बोर्ड का प्रावधान किया गया है।

बाल अधिनियम ने तीन स्तरीय संस्थाओं की एक कार्य प्रणाली शुरू की। प्रथम, उन अवचारी बालकों या किशोरों के लिये जिनकी कार्यवाही के लम्बित रहने के दौरान रहने के लिये निगरानी गृह (observation room) बनाना। **द्वितीय,** उपेक्षित बालकों व किशोरों को समायोजित करने के लिये बालकों व किशोरों के लिये गृह; **तृतीय व आन्तरिक** अपचारी बालकों व किशोरों के लिये एक विशेष विद्यालय।

इस अधिनियम में बालक व किशोर अपचारियों में लिंग भेदभाव में आयु को निश्चित करते हुये बताया कि "किसी अपचारिता के मामले में बालक की आयु सोलह वर्ष से कम एवं बालिका की आयु अठारह वर्ष से कम हो।" हालांकि, सभी राज्यों के इसके बावजूद इसे पारित कर दिया। इसी प्रकार, राज्यों द्वारा बाल अधिनियमों को अपनाये जाने पर भी अलग–अलग राज्यों में 'बालक' की परिभाषा भिन्न है तथा अपचारी और उपेक्षित बालकों के साथ विभिन्न राज्यों में

अलग–अलग व्यवहार किया जाता है।

पूर्व में घटित हुई घटनाओं का अनुभव होने के पश्चात् बालकों के अधिकारों पर हुये अधिवेशन के साथ सामन्जस्य बनाये रखने के लिये सरकार ने किशोर न्याय अधिनियम को संशोधित कर वर्ष 2000 में किशोर न्याय (बालकों की देखरेख व संरक्षण अधिनियम, 2000) रखा गया।

इस अधिनियम के अधिनियमन में बालकों के प्रति 'न्याय' के साथ–साथ 'अधिकारों' के दृष्टिकोण का भी समर्थन किया गया है तथा इसके अतिरिक्त 'विधि के साथ संघर्ष में किशोर' एवं 'बालकों की देखभाल व संरक्षण की आवश्यकता' के रूप में बेहतर शब्दावली का प्रयोग किया गया। इस पृथक्करण का उद्देश्य उस बालक पर विधि के संघर्ष के दुष्प्रभावों का रोकना, जिसे देखरेख और सुरक्षा की आवश्यकता है। किशोर न्याय अधिनियम, 2000 में पूरे देश में केवल जम्मू–कश्मीर राज्य को छोड़कर, 'बालक' व 'किशोर' की परिभाषा एक समान है। अर्थात् किशोर या बालक वह व्यक्ति है जिसने 18 वर्ष की आयु को पूरा नहीं किया है। किशोर के विधि से संघर्ष में वे सभी बालक शामिल हैं, जिन पर अपराध में शामिल होने का आरोप है या जिन्हें अपराध में दोषी पाया गया है। विधि में दोषी पाये किशोरों को किशोर न्याय बोर्ड की देखभाल एवं संरक्षण करने वाली बाल कल्याण समिति द्वारा सम्भाला जाता है। बालकों व किशोरों की देखरेख करते समय उनके माता–पिता को भी यह सलाह दी जाती है कि वे अपने बालक को अपचारिकता की ओर जाने से रोकें तथा वे उन अपचारी किशोरों के लिये परामर्श की व्यवस्था भी करते हैं। इसमें किशोरों के लिये सामुदायिक कार्यक्रम का व्यापक विकल्प भी प्रस्तुत किया गया है।

वर्ष 2006 में **किशोर न्याय (बालकों की देखभाल और संरक्षण अधिनियम, 2000)** में संशोधन किया गया था, जिसमें स्पष्ट किया गया कि 'अपराधी अपराध कारित करने की दिनांक पर 18 वर्ष की आयु प्राप्त नहीं की थी।' **अरनीत दास बनाम बिहार राज्य (ए.आई.आर. 2000 सु.को. 2264**) में प्रतिपादित विधि के सिद्धान्त के कारण भ्रान्ति बनी हुई थी, इसीलिये उच्चतम न्यायालय की पाँच न्यायाधीशों की संवैधानिक पीठ ने प्रताप सिंह बनाम झारखण्ड राज्य (**ए.आई.आर. 2005 सु.को. 2731**) के वाद में 2 फरवरी 2005 के निर्णय ने इस विवाद को अंतिम रूप से निपटाने हुये तय किया गया कि यदि अपराधिक कृत्य करते समय अपराधी की आयु 18 वर्ष से कम हो, तो उसे 'किशोर' माना जायेगा व उसका विचारण किशोर न्याय अधिनियम, 2000 के अन्तर्गत किया जायेगा।

किशोर न्याय (बालकों की देखरेख व संरक्षण) अधिनियम में यह भी स्पष्ट किया गया था कि किसी भी अवस्था में, विधि में विचारण किये जा रहे मामलों

के अपचारी व्यक्ति को विचारण के दौरान पुलिस लॉकअप या जेल में नहीं रखा जायेगा तथा यह भी तय किया गया है कि उच्चतम न्यायालय व उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को रोकने के लिये प्रत्येक छः माह में बोर्ड में लम्बित मामलों की समीक्षा करने का अधिकार दिया था। प्रत्येक राज्य एवं जिलों में अधिनियम के कार्यान्वयन की जाँच के लिये बाल संरक्षण ईकाईयाँ स्थापित की जानी चाहिये।

किशोर न्याय (बालकों की देखभाल और संरक्षण) संशोधन अधिनियम, 2015 को लोकसभा द्वारा 7 मई, 2015 को पारित किया गया तथा 22 दिसम्बर, 2015 को राज्य सभा द्वारा पारित किया गया था और राष्ट्रपति की मन्जूरी प्राप्त की एवं जम्मू–कश्मीर राज्य को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में 31 दिसम्बर, 2015 को लागू हुआ।

किशोर न्याय (बालकों की देखभाल और संरक्षण) संशोधन अधिनियम, 2015 में बालकों के विधि में विचारण एवं बालकों के संरक्षण व देखरेख दोनों ही स्थितियों के लिये सदृढ़ प्रावधान किये हैं तथा इस अधिनियम में कुछ महत्वपूर्ण एवं नवीन परिभाषाओं जैसे अनाथ, परित्यक्त और आत्मसमर्पण करने वाले बालक आदि भी शामिल किया गया है। इसके अतिरिक्त बालकों द्वारा किये गये छोटे गम्भीर व जघन्य अपराध; किशोर न्याय बोर्ड (JJB), तथा बाल कल्याण समिति (CWC) की शक्तियाँ, कार्य व जिम्मेदारियों में स्पष्टतया किशोर न्याय बोर्ड (JJB) द्वारा जाँच के लिये समय सीमा को स्पष्ट किया गया। सोलह वर्ष की आयु से अधिक आयु के बालकों द्वारा किये गये गम्भीर अपराधों के लिये विशेष प्रावधानों को भी शामिल किया गया तथा अनाथ, परित्यक्त और आत्मसमर्पण करने वाले बालकों को गोद लेने के लिये दत्तक ग्रहण का नया अध्याय, बालकों के विरूद्ध किये गये नये अपराध तथा बाल संरक्षण संस्थाओं का आवश्यक पंजीकरण करना, शामिल किया गया।

भारत में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग और किशोर न्याय प्रणाली राष्ट्रीय स्तर पर मानव अधिकारों के संवर्धन और संरक्षण को रोकने के लिये एक स्वायत्त निकाय है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के प्रारम्भ होने के बाद से, उन किशोरों की दुर्दशा, जो विधि के विचारण की श्रेणी में आते है तथा वे बालक जिन्हें देखरेख व संरक्षण की आवश्यकता थी, की चिंता थी। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग बालकों के विरूद्ध शिकायतों की निगरानी करता है। राष्ट्रीय स्तर पर परियोजनाओं व कार्यक्रमों प्रभाग और नीति निर्माण एवं नीतियों के कार्यान्वयन की मानिटरिंग करना भी शामिल है। इसमें अन्तर्राष्ट्रीय मानकों का प्रभावी प्रयोग करने की सिफारिश की जो भारत में किशोर न्याय प्रणाली के समग्र कार्यकरण के लिये आवश्यक है।

वर्ष 1980 में वेनेजुएला में छठवां संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में बालकों के

अधिकारों पर आयोजित अधिवेशन में किशोर अपराधों की समस्या, अपराधों का संरक्षण एवं अपचारियों के उपचारों पर विस्तृत चर्चा की गई। इसके अनुसार, किशोर न्याय प्रणाली के प्रशासन में कुछ मानक न्यूनतम नियम निर्धारित किए गए। प्रत्येक विधि ने बालकों का मानव अधिकार है और यह उन्हें जन्म से प्राप्त होते हैं तथा इसे किसी के भी द्वारा अस्वीकार नहीं किया जा सकता है, इसीलिये बालकों के मानव अधिकारों की रक्षा के लिये पर्याप्त कानून होने चाहिये, विशेषकर शहरी क्षेत्रों में किशोर अपचारिकता को रोकने के लिये बेघर व सड़कें पर रहने वाले बालकों पर ध्यान दिया जाना चाहिये।

संयुक्त राष्ट्र के बालकों के अधिकारों पर अधिवेशन में ''बालक'' को परिभाषित करते हुये कहा कि ''बालक, एक व्यक्ति जो 18 वर्ष से कम की आयु तक का बचपन, पूर्व बचपन, मध्य बचपन एवं किशोर है।'' बाल अधिकारों पर आयोजित अधिवेशन में बालकों के लिये अधिकारों को चार भाग में नागरिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक अधिकार, प्रदान किये हैं–

(I) **जीवित रहने का अधिकारः**– इस अधिकार में अपचारी बालकों के शोषण के विरूद्ध अधिकार, स्वास्थ्य एवं जीवन के अच्छे मानक शामिल हैं।

(II) **सुरक्षा का अधिकारः**– इसमें बालक के साथ शोषण, अमानवीय व्यवहार, हिंसा, दुर्व्यवहार जैसी समस्याओं से सुरक्षा की जानी चाहिये तथा आपातकालीन नागरिक एवं सशस्त्र संघर्षों की महत्वपूर्ण स्थितियों में विशेष सुरक्षा का अधिकार शामिल है।

(III) **विकास का अधिकारः**– इसमें शिक्षा का अधिकार, बचपन की देखभाल एवं विकास, सामाजिक सुरक्षा एवं मनोरंजन और सास्कृतिक गतिविधियाँ शामिल हैं।

(IV) **अभिव्यक्ति का अधिकारः**– इसमें बालक के विचारों का सम्मान, भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, विचार और विवेक की स्वतन्त्रता भी शामिल है।

यह सम्मेलन समाज में बालकों एवं किशोरों के अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिये विधिक उपचार प्रदान करता है। बाल अधिकारों पर संयुक्त कन्वेंशन के **अनुच्छेद 34** के अनुसार, बालकों को सभी प्रकार के यौन शोषण से बचाना राज्यों का कर्तव्य है। इसके कार्यान्वयन के लिये राज्य को सभी आवश्यक उपाय किये जायें–

(i) किसी भी विधि विरूद्ध यौन गतिविधियों मे संलग्न होने के लिये बालक को प्रेरित करना;

(ii) बालकों का वेश्यावृत्ति में प्रयोग; एवं

(iii) पोर्नोग्राफी में बालकों का उपयोग, आदि।

अनुच्छेद 35 के अनुसार, राज्य किसी उद्देश्य या किसी भी रूप में बालकों का अपहरण, बिक्री या तस्करी को रोकने के लिये सभी उपयुक्त राष्ट्रीय द्विपक्षीय और बहुपक्षीय उपाय करेंगे।

इसी प्रकार, **अनुच्छेद 36** के अनुसार, राज्य बालकों को सभी प्रकार के शोषण से बचायेगें, जो बाल कल्याण को किसी भी रूप में प्रभावित करते हैं। बालक को जीने के लिये देखरेख एवं सहायता की आवश्यकता होती है क्योंकि प्रकृति मानव शिशु को किसी प्रकार की सुरक्षा नहीं प्रदान करती है।

बालक को परिपक्वता की आयु प्राप्त होने तक जीवन जीने के लिये देखरेख व संरक्षण की आवश्यकता होती है। बालकों के विकास के लिये शिक्षा, जीवन, कौशल, पोषण, स्वास्थ्य और आश्रय से सम्बन्धित विभिन्न कार्यक्रमों की व्यवस्था की जानी चाहिये।

भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् संवैधानिक उपबन्धों ने भारत में किशोर न्याय प्रणाली के क्षेत्र में विकास को प्रोत्साहित किया। भारत के संविधान का भाग 3 एवं 4 जो क्रमशः ''मूल अधिकार'' एवं ''राज्य के नीति निर्देशक'' सिद्धान्तों से सम्बन्धित है। इसमें बालकों की देखभाल और संरक्षण के सम्बन्ध में विशेष प्रावधान शामिल हैं। भारतीय संविधान **अनुच्छेद 15** (3) के अनुसार राज्य को बालकों एवं महिलाओं के लिये विशेष प्रावधान करने की अनुमति देता है। **अनुच्छेद 21** (क) के अनुसार राज्य छः से चौदह वर्ष की आयु के सभी बालकों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा। **अनुच्छेद 23** के अनुसार मानव दुर्व्यापार और बेगार तथा इसी प्रकार का अन्य बलात् श्रम प्रतिषिद्ध किया जाता है। **अनुच्छेद 39 (ङ**) के अनुसार पुरूष व महिला कर्मकारों के स्वास्थ्य और शक्ति का तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरूपोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हो; **अनुच्छेद 39** (च) के अनुसार राज्य बालकों को स्वतन्त्र और गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधायें दी जाये और बालकों और अल्पवय व्यक्तियों की शोषण से तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग से रक्षा की जाये। **अनुच्छेद 45** के अनुसार राज्य को दस वर्ष की कम आयु के बालक को मुक्त एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करे। **अनुच्छेद 47** के अनुसार राज्य का यह कर्तव्य है कि वह सुधारों के पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊँचा एवं लोक स्वास्थ्य में सुधार को प्राथमिकता दे।

किशोर न्याय बोर्ड की कार्य प्रणाली

किशोर न्यायालय का मुख्य उद्देश्य किशोर एवं उनका कल्याण करना है, ना कि प्रक्रिया या परिणाम का, जो उनको न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने का कारण बना होगा। अतः किशोर अपचारियों से सम्बन्धित न्याय प्रशासन मे किशोर न्याय बोर्ड विशेष भूमिका निभाता है। किसी किशोर के द्वारा किये गये विधि विरूद्ध कार्य के कारण किशोर का अपराधिक मामला किशोर न्याय बोर्ड के द्वारा निदानित किया जाता है, किसी सामान्य अपराधी न्यायालय के द्वारा नहीं। 20वीं शताब्दी में बनाये गये किशोर कानून का यह जनादेश है तथा ये अपराधी प्रक्रिया कोड 1998 व 1973 और सी. आर. पी. सी. 1973 की धारा 27 को उद्धृत करता है। इन बोर्डो के दायित्व अन्य न्यायालयों से भिन्न होते हैं। किशोर न्याय बोर्ड इस धारणा पर कार्य करता है कि ये बोर्ड अपचारी किशोर के संरक्षक हैं तथा उनके द्वारा अपचारी किशोर के संदर्भ में लिया गया कोई भी निर्णय किशोर के कल्याण के लिए होना चाहिये। इसी कारण, किशोर न्याय बोर्ड की कार्यप्रणाली सामान्य दण्ड न्यायालय की कार्यप्रणाली से भिन्न होती है।

किशोर न्याय बोर्ड प्रणाली एवं सामान्य न्यायालय की कार्यप्रणाली में डोनाल्ड टेफ्ट ने अन्तर स्पष्ट करते हुये निम्न भिन्नतायें बताई हैं–

(i) जैसे अपराधिक न्यायालय में दण्डाधिकारी द्वारा अपराधी की दोषसिद्ध तय की जाती है जबकि किशोर न्याय बोर्ड में उसके द्वारा किये अपराधिक कृत्य के दौरान की परिस्थितियों पर ध्यान देता है जो उस के अपचार के कारण होते हैं।

(ii) सामान्य अपराधिक न्यायालय में अभियुक्त के दोषसिद्ध होने पर उन्हें दण्डित किया जाता है जबकि किशोर न्याय बोर्ड में दोषी अपचारी किशोर को दाण्डित न कर उसके माता–पिता या संरक्षक या अन्य योग्य व्यक्ति की अभिरक्षा में रखे जाने या किशोर गृह में सुधार हेतु भेजने का आदेश दिया जाता है।

(iii) सामान्य न्यायालयों में अभियुक्त के वाद विचारण में न्यायालय के न्यायाधीश का अभियुक्त को दोषी या निर्दोष सिद्ध किया जाना प्रस्तुत साक्ष्य पर केन्द्रित होता है जबकि किशोर न्याय बोर्ड के न्यायाधीश अपचारी किशोर के 'अपचार' कृत्य के कारण एवं परिस्थितियों को महत्व देकर निर्णय करता है।

(iv) सामान्य अपराधिक न्यायालय में अभियोजन पक्ष अभियुक्त का अपराध साक्ष्यों के आधार पर सिद्ध करने का प्रयास करता है तथा अभियुक्त के अधिवक्ता अपने बचाव पक्ष को प्रस्तुत करता है तथा किशोर बोर्ड न्यायालय में अधिवक्ता को पैरवी का अधिकार नहीं

होता है तथा किशोर अपचारी के बारे में परिवीक्षा अधिकारी द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर किशोर न्याय बोर्ड द्वारा कार्यवाही की जाती है।

(v) किशोर न्याय बोर्ड के न्यायाधीश को अनिवार्य रूप से बाल मनोविज्ञान एवं बाल कल्याण का विशेष ज्ञान होना आवश्यक है, जबकि सामान्य अपराधिक न्यायालय के न्यायधीशों के लिये यह आवश्यक नहीं है।

(vi) सामान्य अपराधिक न्यायालय का कार्य अभियुक्त की साक्ष्य व सबूतों के आधार पर दोषसिद्ध तय करना और दोषी को दण्ड देना, जबकि किशोर न्याय बोर्ड के न्यायाधीश या सक्षम अधिकारी का अपचारी किशोर के उपचार एवं पश्चात्वर्ती देख–रेख एवं उनके परिणाम पर अधिक ध्यान केन्द्रित होता है।

किशोर न्याय बोर्ड की कुछ निम्न विशेषताएं हैं

1) किशोर न्याय बोर्ड की सुनवाई प्रक्रिया सामान्य अपराधिक न्यायालयों से अपेक्षाकृत सरल व अनौपचारिक होती है। किशोर न्यायालय की साक्ष्य की विधिक मान्यताओं पर विचार करने के स्थान पर अपचारी किशोर का विचारण बोर्ड के सदस्य, परिवीक्षा अधिकारी, अपचारी, उसके माता–पिता या अभिभावक, सामाजिक कार्यकर्ता, इन सभी को सभा में बैठकर अपचारी के अपराध और उसके कारणों तथा परिवीक्षा अधिकारी द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर विचार कर निर्णय दिया जाता है। किशोर न्याय (बालकों की देखरेख व संरक्षण) अधिनियम, 2000 के अनुसार परिवीक्षा रिपोर्ट गोपनीय होती है। उसका सार को केवल माता–पिता या संरक्षक को सूचित किया जाता है।

2) किशोर न्याय बोर्ड द्वारा किशोर अपचारी के लिये भी गई कार्यवाही गुप्त रहेगी। इस कार्यवाही में केवल अपचारी किशोर के माता–पिता या संरक्षक एवं बोर्ड के सक्षम अधिकारी तथा प्रक्रिया से सम्बन्धित पुलिस अधिकारी ही सम्मिलित होते हैं तथा बोर्ड द्वारा अपचारी से पूछताछ के समय किसी भी व्यक्ति को बाहर जाने का आदेश दिया जा सकता है। इन अपचारियों की पहचान व फोटो आदि छापने की मनाही होती है।

3) किशोर न्याय बोर्ड के न्यायाधीश के नियुक्ति के सम्बन्ध में किशोर न्याय (बालकों की देखरेख व संरक्षण) अधिनियम, 2000 की धारा 4(3) में स्पष्ट किया गया है किशोर न्याय बोर्ड का न्यायाधीश कोई भी तब तक नियुक्त नहीं किया जायेगा जब तक कि वह राज्य सरकार की राय में बाल

मनोवैज्ञानिक तथा बाल कल्याण में विशेष दक्षता न रखता हो। अतः, इस धारा के अनुसार किशोर न्यायालय के दो अवैतनिक समाजसेवी सामाजिक कार्यकर्ताओं में कम से कम एक महिला तथा दोनों समाजसेवी सदस्यों को निर्धारित अर्हतायें प्राप्त होना चाहिये, जिससे वे अपचारी किशोर के सम्बन्ध मे न्यायाधीशों या सक्षम प्राधिकारी को निर्णय लेने में उचित सहायता प्रदान कर सकें।

4) किशोर न्याय बोर्ड की स्थापना का उद्देश्य अपचारी किशोर को सुधारने के साथ किशोर को उसके अपराधिक कृत्यों के विधिक परिणामों का उसके जीवन पर होने वाले दुष्प्रभावों एवं चरित्र पर लगने वाले अपराधी या कैदी के लांछन से संरक्षण प्रदान करना भी है।

5) किशोर न्याय बोर्ड की कार्य प्रणाली में अपील का अधिकार सीमित रखा गया है, जिससे अपचारी किशोर को कम से कम अवधि के लिये न्यायिक प्रक्रिया में रहना पड़े। अपचारी किशोर यदि किशोर न्यायिक बोर्ड द्वारा निर्दोष पाये जाने के विरूद्ध अर्थात् किशोर कल्याण बोर्ड द्वारा किशोर 'उपेक्षित' नहीं है, अपील नहीं की जा सकती है। अर्थात् किशोर न्याय बोर्ड का निर्णय अन्तिम होता है और यदि किशोर दोषसिद्ध या बोर्ड द्वारा 'उपेक्षित' घोषित किये जाने के विरूद्ध सेशन न्यायालय में अपील कर सकता है, तब सेशन न्यायालय का निर्णय अंतिम होगा। जबकि सामान्य अपराधिक न्यायालयों की न्यायिक प्रक्रिया में अपराधियों को सजा या दोषमुक्त के विरूद्ध प्रायः दुबारा अपील का प्रावधान होता है।

6) किशोर न्याय बोर्ड में अपचारी किशोर पर दोषसिद्ध होने पर उसे बन्दीगृह में न भेज किशोर गृह में रखने का आदेश दिया जाता है। किशोर गृह में उन्हें रखे जाने का उद्देश्य, उन्हें बन्दीगृह के प्रौढ़ अपराधियों की संगति से दूर रखना है। सम्भवतः इन अपचारी किशोरों को माता–पिता, संरक्षक या किसी योग्य व्यक्ति की देख–रेख में रहने के लिये घर भेजा जाता है। यदि उनमें से उसका कोई नहीं होता, तो वह किशोर गृह में भेजा जाता है और अच्छा व्यवहार करने पर परिवीक्षा पर छोड़ा जाता है।

अतः उपरोक्त आधार पर कहा जा सकता है कि अपचारी किशोर के द्वारा किये गये अपराधिक कृत्य का विचारण उनके लिये विशेष रूप से गठित किशोर न्याय बोर्ड में किया जाता है, जिससे अपचारी किशोर को सामान्य अपराधिक न्यायालय की विधि की कठोरता से बचाया जाये एवं बोर्ड के द्वारा अपनाई गई अनौपचारिक प्रणाली को अनुचित भेदभाव के आधार पर संविधान के **अनुच्छेद 15 एवं 21** के अधीन चुनौती न दी जा सके। अपचारी किशोरों अर्थात् विधि विरूद्ध कृत्य करने वाले किशोरों के विचारण के लिये गिरफ्तारी, अभियोजन,

बचाव, दोषसिद्ध आदि की न्यायिक प्रक्रिया से गुजरने पर किशोर न्याय प्रणाली का उद्देश्य सफल नहीं हो पाता है। अतः उनके विचारण के लिये अनौपचारिक प्रक्रिया ही उचित है।

कुछ दण्डशास्त्रियों के अनुसार वर्तमान में किशोर न्याय पद्धति के परिणाम संतोषजनक नहीं है। इसका कारण है कि अभी भी अपचारी किशोरों को अपराधिक कृत्य की दोषसिद्ध के विचारण में न्यायिक न्यायाधीश एवं पुलिस की भूमिका प्रमुख है, जबकि इन दण्ड शास्त्रियों का विचार है कि अपचारी किशोरों के कृत्य के विचारण को प्रारम्भ से अन्त तक पूर्णतः किन्हीं सिविल या सुधारात्मक संस्थाओं के स्वयंसेवकों द्वारा संचालित करना चाहिये। परन्तु, वर्तमान समय की किशोर अपचारिता की व्यापकता को देखकर यह व्यावहारिक एवं न्यायिक दोनों ही दृष्टि से उचित नहीं है।

किशोर न्याय से सम्बन्धित प्रमुख वाद

1. **हवा सिंह बनाम हरियाणा राज्य (ए.आई.आर. 1987 सु.को. 2001)** का वाद उल्लेखनीय है। इस वाद में अपचारी किशोर को भारतीय दण्ड विधि की धारा 302/34 के अन्तर्गत सिद्ध दोष पाया जाने के कारण आजीवन कारावास से दण्डित करके पंजाब बोर्स्टल अधिनियम, 1926 के अधीन बोर्स्टल–संस्था में भेजा गया। वहाँ 21 वर्ष की आयु पूरी हो जाने के कारण उसे शेष सजा भुगतने के लिए कारागार अन्तरित कर दिया गया और उसने अगले सात वर्ष जेल में बिताए। उच्चतम न्यायालय ने अपीलार्थी को तत्काल रिहा किये जाने का आदेश देते हुए विनिश्चत किया कि अभियुक्त का विचारण सेशन न्यायालय द्वारा किया गया है, अतः सात वर्ष की अधिकतम निरोध की अवधि पूरी हो चुकने के कारण वह मुक्त किये जाने का हकदार है।
2. **रघुवीर बजाज बनाम हरियाणा राज्य (ए.आई.आर. 1981 सु.को. 2037)** के वाद में उच्चतम न्यायालय ने विनिश्चित किया कि सोलह वर्षीय किशोर अपराधी की दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 5 एवं 27 के अन्तर्गत दोषसिद्ध एवं सजा को केवल उस अवधि तक ही सीमित रखा जाना चाहिए, जो वह कारागार में भुगत चुका है। अतः अब उसे किशोर न्यायालय में विचारण हेतु भेजे जाने की आवश्यकता नहीं हैं। प्रस्तुत वाद में वयस्कता प्राप्त करने के बाद अभियुक्त सात वर्ष की सजा भुगत चुका था, अतः उसे रिहा कर दिया गया। न्यायालय ने इस बात का विशेष उल्लेख किया कि किशोरों का विचारण प्रौढ़ अपराधियों के साथ संयुक्त रूप से किया जाना निषिद्ध है।
3. **कृष्ण भगवान बनाम राज्य (ए.आई.आर. 1989 पटना 217)** के वाद

में न्यायालय ने विनिश्चित किया कि किशोर–न्याय अधिनियम, 1986 की धारा 56 के प्रयोजनों के लिए 'किशोर' माने जाने के लिए अपराधी की आयु उसके द्वारा अपराध कारित किये जाने की तारीख को लड़का होने की दशा में 16 वर्ष अथवा लड़की होने की स्थिति में 18 वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए। यदि किशोर न्यायालय में विचारण के समय उसकी आयु उपर्युक्त आयु से अधिक भी हो, तो भी उसका मामला किशोर न्यायालय में ही निर्णीत होगा और पश्चात्वर्ती कार्यवाही भी इसी अधिनियम के अन्तर्गत होगी, अर्थात् उसे कारावासित नहीं किया जा सकेगा।

4. **संजय प्रसाद यादव बनाम बिहार राज्य (1995 (1)CRIMES 476 (Pat))** के वाद में उच्चतम न्यायालय के समक्ष विवादाग्रस्त प्रश्न यह था कि क्या किसी ऐसे किशोर अपराधी को जिसकी भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302/34 के अन्तर्गत दोषसिद्धि हुई है उसे अन्वेषण के दौरान संप्रक्षेण–गृह में रखे जाने हेतु आदेशित किया गया था, निर्णीत वाद कृष्ण भगवान बनाम बिहार राज्य का सन्दर्भ देते हुए विनिश्चित किया कि ऐसे विचाराधीन बालक द्वारा संप्रेक्षण गृह में 16 वर्ष की आयु पूरी कर ली जाने पर भी उसे कारागार या अन्यत्र आन्तरित नहीं किया जाएगा और उसके मामले में अन्तिम फैसले तक उसे संप्रेक्षण गृह में ही रखा जाएगा।

5. **रामदेव उर्फ राजनाथ चौहान बनाम असम राज्य (ए.आई.आर. 2001 सु.को. 2231)** के प्रकरण में निर्णय दिया गया कि किशोरवय के निर्धारण हेतु स्कूल–रजिस्टर में दर्शाई गई जन्म तारीख को विचार में लिया जाना चाहिए, बशर्ते उसे सक्षम अधिकारी द्वारा अंकित किया गया हो। प्रस्तुत वाद में अभियुक्त की स्कूल–रजिस्टर में अंकित जन्मतिथि के अनुसार वह किशोरवय था, लेकिन इस बात का कोई साक्ष्य नहीं था कि यह प्रविष्टि किसी लोक सेवक अथवा प्राधिकृत सक्षम अधिकारी द्वारा की गई थी, अतः उसे विश्वसनीय नहीं माना गया।

6. **गोपीनाथ घोष बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (1984) एस.सी.सी.क्रि. 478,** के वाद में उच्चतम न्यायालय ने विनिश्चित किया कि किशोर के प्रकरण में उसे जमानत पर छोड़ा जाना चाहिए जब तक कि किशोर–न्याय बोर्ड को यह युक्तियुक्त आशंका न हो कि इसके परिणामस्वरूप उस पर विपरीत प्रभाव न पड़े और वह अभ्यस्त अपराधियों की संगति में न पड़ जाए, उसे शारीरिक, मानसिक या नैतिक खतरा उत्पन्न न हो जाए। यदि जमानत मंजूर करना न्यायोचित न हो तो उसे संरक्षण गृह में भेजा जाना चाहिए।

7. **राजेश कुमार बनाम राजस्थान राज्य (1989 क्रि.लॉ.रि. 560 (राजस्थान))** में मामले में भी राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि राज्य को ऐसे मामलों में जमानत स्वीकार कर दी जानी चाहिए जहाँ इस बात की आशंका न हो कि अपचारी किशोर के जमानत पर छूटे जाने पर वह कुख्यात अपराधियों की संगति में पड़ जाएगा।

8. **आन्ध्र प्रदेश राज्य बनाम घनश्याम दास (1994 क्रि.लॉ.रि. 351 (आ. प्र).** के मामले में भी आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि मजिस्ट्रेट द्वारा भर्त्सना के पश्चात् किशोर को छोड़ दिया जाना एक प्रकार से उसकी निन्दा और चेतावनी होती है जो उसे पुनः अपराध करने की दशा में दण्डित किये जाने का भय दिलाती है।

   यदि किशोर न्याय बोर्ड उचित समझे, तो अपचारी किशोर को अधिनियम की धारा–15(E) के अन्तर्गत परिवीक्षा का लाभ देकर उसके माता–पिता, संरक्षक या किसी अन्य योग्य व्यक्ति की देखरेख में सौप सकता है। यदि आवश्यक हो तो किशोर से बन्धपत्र भी लिया जा सकता है, जो प्रतिभूति सहित या रहित हो सकेगा। लेकिन यह अवधि तीन वर्षो से अधिक नहीं हो सकेगी।

9. **जयपाल सिंह, तेज सिंह बनाम राम अवतार देवीलाल (1981 म.प्र. लॉ.ज. 478)** के प्रकरण में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने विनिश्चित किया कि अपचारी किशोर को **किशोर–न्याय अधिनियम, 2000 की धारा 15 (क)** के अधीन भर्त्सना देकर छोड़ने के पूर्व किशोर न्याय बोर्ड निम्नलिखित बातों पर विचार करेगा–

   (i) प्रकरण की परिस्थितियाँ;

   (ii) अपराध की प्रकृति; तथा

   (iii) अपचारी किशोर का चरित्र एवं पूर्व–वृतान्त।

किशोर न्याय–बोर्ड किशोर को यह चेतावनी भी देगा कि यदि वह पुनः अपराध को दोहराता है या कोई अन्य अपराध करता है, तो उसे दण्डित किया जायेगा।

किशोर न्याय प्रणाली के दोष

किशोर न्याय पद्धति पूर्णतः अपचारी किशोर एवं उसका कल्याण ही केन्द्र में होता है। अतः, यह मानवीय सिद्धान्तों पर आधारित पद्धति है, परन्तु किशोर न्याय की संकल्पना व्यक्ति स्वतन्त्रता के विरूद्ध है, क्योंकि इसमें अपचारी किशोर

को उसके विरूद्ध लगाये गये विनिर्दिष्ट अपराध के आरोप की संसूचना नहीं दी जाती है। किशोर न्याय प्रणाली मे निम्नलिखित दोष हैं:–

(I) अपचारी किशोरों उनके द्वारा किये गये विधि विरूद्ध या अपराधिक कृत्य के लिये पुलिस के अतिरिक्त गिरफ्तार करने की वैकल्पिक व्यवस्था नहीं होती है। अतः अपचारी किशोर की गिरफ्तारी पुलिस द्वारा की जाने पर उसका प्रथम चरण में ही पुलिस से सम्पर्क होता है, जो उपचारात्मक पद्धति के अन्तर्निहित सिद्धान्त के विपरीत है।

(II) किशोर न्याय बोर्ड द्वारा अपचारी किशोर के सम्बन्ध में दिया गया निर्णय पूर्णतः परिवीक्षा अधिकारी द्वारा दी गई रिपोर्ट पर निर्भर करता है। परिवीक्षा अधिकारी द्वारा सम्भव है कि मामले की जाँच ठीक प्रकार से न कर औपचारिकता मात्र की हो और अपचारी किशोर के पक्ष या विपक्ष में गलत रिपोर्ट भी बना कर प्रस्तुत करे। इस प्रकार से अपचारी किशोर के साथ अन्याय होने की सम्भावना रहती है। अतः किशोर न्याय में उचित सफलता प्राप्त नहीं होती है।

(III) किशोर न्याय बोर्ड प्रणाली अनौपचारिक प्रक्रिया पर आधारित है। अतः इसमें साक्ष्य विधि के नियमों का अनुशरण करना आवश्यक नहीं है। अतः किशोर न्याय बोर्ड के न्यायाधीश या सक्षम अधिकारी द्वारा अपचारी किशोर से पूछताछ में ही अपराधिक कृत्य की स्वीकृति करवा लेता है, जो अपराधिक न्याय के सिद्धान्त के विरूद्ध है। इसके अतिरिक्त, किशोर बोर्ड के न्यायिक निर्णय परिवीक्षा अधिकारी द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर निर्भर करते हैं, जो अनुचित है। किशोर न्याय बोर्ड में न्यायिक निर्णय में किशोर अपचारी को स्थानीय भाषा का समुचित ज्ञान न होने पर भाषा की कठिनाई युक्तियुक्त विचारण की कार्यवाही में बाधा बन सकती है।

(IV) किशोर न्याय बोर्ड में कार्यवाही में न्यायिक न्यायाधीश के द्वारा अपनाई जाने वाली अनौपचारिक पद्धति में न्यायिक स्वविवेक की काफी सम्भावना होती है, जिसका अपचारी किशोर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

अतः किशोर न्याय पद्धति के उपरोक्त दोषों के आधार पर कहा जा सकता है कि इस पद्धति में वास्तविक दोष, इसमें अंतर्विनिष्ट नीति का नहीं बल्कि इसके उचित कार्यान्वयन का है। अतः यह कहना उचित होगा कि किशोर न्याय (बालकों की देखरेख व संरक्षण) अधिनियम, 2000 एक व्यापक विधायन है, जिसमें किशोर अपचारियों की उचित देखभाल एवं संरक्षण करने तथा उनमें

सुधार करने हेतु संस्थाओं एवं प्राधिकारियों की व्यवस्था की गई है। परन्तु इस कल्याणकारी विधायन का प्रवर्तन प्रभावी ढ़ंग से न किये जाने का कारण राज्य द्वारा इसके क्रियान्वयन में रूचि का अभाव है।

किशोर अपचारिता का विरोध

वर्तमान समय में किशोर अपचारिता की संख्या में वृद्धि राष्ट्र के साथ–साथ विश्व में भी चिंतनीय विषय बन गया है, क्योंकि किसी भी राष्ट्र के किशोर वहाँ के कर्णधार होते हैं। यदि बालक व किशोर भ्रष्ट एवं अपराधी हुये तो राष्ट्र का कल्याण होना कभी सम्भव नहीं होगा। अतः किशोर अपचारिता के प्रयास या उपाय की आवश्यकता है। किशोर अपचारिता को निम्ननिलिखित कार्यों एवं उपायों द्वारा नियंत्रित करने का प्रयास किया जा सकता है–

1) परिवार के सभी सदस्यों के परिवार में ऐसा वातावरण बनाये रखना चाहिये ताकि बालक व किशोर व्यवहार सम्बन्धी अच्छी बातें सीखें, मानसिक रूप से संतुष्ट रहें तथा अपनी आवश्यकता की पूर्ति उचित ढ़ंग से करें। इससे बालक पारिवारिक जीवन में संतुष्ट रहेगें और अपराधिक प्रवृत्ति की ओर अग्रसर नहीं होगें।

2) बालकों व किशोरों में सद्‌गुणों के विकास के लिये उनकी उचित शिक्षा का प्रबन्ध अनिवार्य है। विद्यालय में बालकों की शिक्षा में नैतिकता, चरित्र एवं श्रेष्ठ आचरणों की शिक्षा देना चाहिये, साथ ही अध्यापकों को भी स्वयं वैसा ही आदर्श उपस्थित करना चाहिये।

3) राष्ट्र की सरकारों को बालकों व किशोरों को मानसिक रूप से स्वस्थ रखने के लिये मानसिक स्वास्थ्य वैज्ञानिकों की समुचित व्यवस्था करनी चाहिये।

4) अपचारी किशोरों में से अधिकतर अशिक्षित एवं निर्धन होते हैं, अतः इन्हें सुधारने हेतु इन्हें निःशुल्क शिक्षा तथा आर्थिक सहायता प्रदान करना चाहिये। सरकारी एवं गैर–सरकारी तालमेल से नगरों से गंदी व घनी बस्तियों को दूर करना चाहिये, जिससे बालक अच्छे वातावरण में रहे और उसमें अच्छे गुणों का विकास हो सके।

5) बालकों एवं किशोर अपचारियों की रोकथाम के लिये किशोर न्यायालय, प्रोबेशन विभाग, विद्यालय, पुलिस विभाग, समाज कल्याण संस्थाओं आदि के प्रतिनिधित्व की संयुक्त परिषदों या समितियों के निर्माण पर बल दिया जाना चाहिये, जिसमें ऐसी परिषदों के द्वारा बालकों के पारिवारिक एवं सामुदायिक वातावरण को सुधारना होता है।

किशोर न्याय का उपचार एवं उनके किये सुधारक संस्थायें

किशोर न्याय का मुख्य उद्देश्य किशोरों की अपराधिक प्रवृत्ति को नियन्त्रित कर उनमें सुधार करना है। यह न्याय पद्धति उपचारात्मक पद्धति का ही प्रकार है। अतः उपचारात्मक दण्डप्रणाली में अपराधी को दण्डित करने से पूर्व अपराधिक कृत्य के समय की परिस्थितियों का विश्लेषण किया जाता है, इसके पश्चात् उसकी व्यैक्तिक आवश्यकता के अनुसार उसे दण्डित किया जाता है। अपचारी किशोरों व बालकों को सुधारने हेतु कई स्वयं सेवी संस्थाये भी कार्यरत हैं। **किशोर न्याय अधिनियम, 2000** में अपचारी किशोरों को बन्दीगृह के दूषित वातावरण से दूर रखने के लिये सम्प्रेषण या रिमाण्ड गृह, किशोर गृह, विशेष गृह, सुधार विद्यालय व बोर्स्टल संस्थाये आदि की स्थापना की गई है, जहाँ इन्हें एक विशिष्ट आयु सीमा तक बन्दीगृह एवं अभ्यस्त अपराधी की संगति से दूर रखा जाता है। बालकों एवं किशोरों को सुधारने के लिए निम्नलिखित विभिन्न संस्थायें कार्यरत हैं—

1. संप्रेषण गृह या रिमाण्ड गृहः— किशोर न्याय (बालकों की देखरेख व संरक्षण) अधिनियम, 2000 की धारा 8 के अनुसार विचार के दौरान कुछ समय के लिये अभिरक्षा में रखे जाने के लिये सम्प्रेषण गृह या रिमाण्ड गृह की स्थापना की गई है अर्थात् अपचारी किशोर या बालक द्वारा किये गये अपराध की जाँच—पड़ताल करने के दौरान उसे रिमाण्ड गृह में रखा जाता है। किसी भी अपचारी बालकों को विचारण के दौरान रिमाण्ड गृह या सम्प्रेषण गृह में भेजे जाने का आदेश न्यायाधीश द्वारा दिया जाता है। इन सम्प्रेषण गृहों में अपचारी किशोर बालकों को निवास, भरण—पोषण एवं चिकित्सा परीक्षण व उपचार आदि की पूर्ण सुविधाये ंदी जाती हैं। इन्हें उपचार के साथ—साथ उनके लिये उपजीविका की सुविधायें भी उपलब्ध कराती है।

2. सुधार गृह या आश्रय गृहः— अपचारी किशोरों में उपेक्षित एवं अभित्यक्त किशोरों को सुधारने एवं उनकी नियमित देखरेख के लिये आश्रय या सुधार गृह की व्यवस्था रहती है। यहाँ अपचारी किशोरों को भविष्य में जीवन सुधार करने के लिये उचित अनुशासन में रखा जाता है। भारत में सुधार—गृह भारतीय सुधार गृह अधिनियम, 1987; बाल एवं किशोर अपचारियों को सुधारने की दिशा में प्रथम कदम था। इस अधिनियम के अनुसार राज्यों में सुधारगृहों या आश्रयगृहों को स्थापित कर सकते हैं।

3. विशेष गृहः— विधि विरूद्ध कृत्य करने वाले बालक व किशोर के लिये **किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000 की धारा 9** में राज्य को विशेष गृह स्थापित किये जाने का प्रावधान है। इन गृहों में अपचारी किशोरों को उनकी आयु व किये गये अपराध की प्रकृति के

अनुसार वर्गीकृत कर उन्हें पृथक किया जाता है। इन गृहों में अपचारी किशोरों के निवास, भरण–पोषण, व्यावसायिक प्रशिक्षण और पुनर्वास की सुविधाओं की व्यवस्था रहती है।

4. प्रमाणिक विद्यालयः– वर्तमान समय में उन सभी राज्यों में प्रमाणित विद्यालय स्थापित हो चुकी है, जहाँ बाल अधिनियम पारित हो चुका है। ये विद्यालय उन्नीसवीं शताब्दी के सुधारगृहों एवं औद्योगिक विद्यालयों का ही उपान्तरित रूप है। इनमें लावारिस, उपेक्षित या अपचारी बालकों और किशोरों का रखा जाता है। वर्तमान व्यवस्था में विद्यालय राज्य द्वारा संरक्षित किये जाते हैं, जिनमें विभिन्न आयु, लिंग और धर्म के अपचारी किशोरों को रखा जाता है। यहां 14 वर्ष की आयु के बालक अपचारियों को जूनियर प्रमाणित विद्यालयों में रखा जाता है तथा 14 से 16 वर्ष तक की आयु के बाल अपचारियों को सीनियर प्रमाणित विद्यालयों में रखा जाता है। इन विद्यालयों में सामान्य शिक्षा के साथ औद्योगिक शिक्षा भी दी जाती है।

प्रमाणित विद्यालय में प्रवेश से पूर्व बालक या किशोर अपचारी को रिमाण्ड गृह में रखा जाता है। वहाँ परिवीक्षा अधिकारी उसके व्यक्तित्व की भूमिका तथा सामाजिक, मनोवैज्ञानिक पहलुओं का अध्ययन करता है। इसके पश्चात् उसे किशोर न्यायालय के सामने प्रस्तुत किया जाता है। यदि किशोर न्यायालय यह उचित समझता है कि किशोर अपचारी संस्थागत उपचार चाहता है तो उसे प्रमाणित विद्यालय में प्रवेश की छूट दी जाती है।

5. बोस्टर्ल संस्थायेः– ऐसे किशोर अपचारी जिन्हें, उन्हें विनिर्दिष्ट अपराधिक कृत्य के लिये दीर्घावधि के लिये उपचार हेतु 'बुक' ('बुक' किये जाने का आशय बोस्टर्ल संस्था में रखे जाने का आदेश) गये हो, उन्हें बोस्टर्ल जो कि एक सुधार संस्था है, में रखा जाता है। बोस्टर्ल शब्द की उत्पत्ति इंग्लैण्ड के बोस्टर्ल नामक जगह से हुई थी, जहाँ वर्ष 1902 में सर्वप्रथम रोचेस्टर बन्दीगृह को बदलकर बालकों के लिये सुधारगृह बनाया गया था। इंग्लैण्ड में अपराध निवारण अधिनियम, 1908 में सोलह से इक्कीस वर्ष की आयु के किशोरों को सामान्य बन्दीगृह में न रखकर सुधार हेतु बोस्टर्ल संस्था में रखे जाने की व्यवस्था थी। इन बोस्टर्ल संस्थानों को स्थापित करने का श्रेय सर एलेक्जेंडर पिटरसन को जाता है। ब्रिटेन में बोस्टर्ल संस्थानों में पन्द्रह से इक्कीस वर्ष के अपचारी किशोरों में से केवल उन्हीं को भेजा जाता था जिसका अपचारिक कृत्य कारावास के दण्ड से दण्डनीय होता है। इन अपचारी किशोरों को बोस्टर्ल में रखकर प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। बोस्टर्ल में अपचारी किशोरों को रखने की न्यूनतम अवधि छः माह तथा अधिकतम अवधि 2 वर्ष तक की हो सकती है। किसी अपचारी किशोर को बोस्टर्ल में रखने की अनुसंशा करने के पूर्व उस किशोर की मानसिक एवं शाररिक स्थिति बोस्टर्ल में रखने योग्य है या नहीं,

निश्चित किया जाता है।

अपचारी किशोरों को बोस्टर्ल में रखने का उद्देश्य उन्हें उचित अनुशासन में रहने एवं औद्योगिक प्रशिक्षण देकर आने वाले जीवन के लिये तैयार किया जाता है। इन बोस्टर्लों में अपचारी किशोरों के निवास, भरण–पोषण, चिकित्सकीय परीक्षण एवं शिक्षा प्रशिक्षण व मनोरंजन आदि की उचित व्यवस्था की जाती है। उन्हें समाज में पुनर्वासित करने के लिये प्रशिक्षण व्यवस्था विभिन्न चरणों में दी जाती है तथा उन्हें समाज के साथ व्यावहारिक होने का पर्याप्त अवसर दिया जाता है।

भारत में निम्न सुधार गृह या स्कूल हैं

1) **हिसार रिफार्मेटरी स्कूल**– इस सुधारगृह में दिल्ली व पंजाब के 15 वर्ष तक की आयु के किशोर अपचार भेजे जाते हैं। बालकों को यहां 5 वर्ष तक की अवधि तक रखा जाता है और मिडिल तक शिक्षा के साथ–साथ प्रौद्योगिक शिक्षा, मनोरंजन, स्काउटिंग आदि की समुचित व्यवस्था है।

2) **लखनऊ रिफार्मेटरी स्कूल**– इसमें उ.प्र. राज्य के 9 से 15 वर्ष तक की आयु के बालक किशोर अपचारी रखे जाते हैं। इन अपचारियों को इस सुधारगृह में 4 से 7 वर्ष तक रखा जाता है। यहाँ बालकों को सामान्य व औद्योगिक शिक्षा के साथ–साथ खेलकूद, मनोरंजन आदि का भी उचित प्रबंध हैं।

3) **जबलपुर रिफार्मेटरी स्कूलः**– इस सुधार गृह में मध्यप्रदेश के बाल एवं किशोर अपचारियों को रखा जाता है। इस सुधारगृह में सामान्य व औद्योगिक शिक्षा के साथ–साथ आत्मनिर्भर रहने का गुण भी सिखाया जाता है।

4) **हजारीबाग रिफार्मेटरी स्कूलः**– इस सुधार गृह में बंगाल, बिहार, आसाम और उड़ीसा के बाल एवं किशोर अपचारी प्राथमिक शिक्षा ग्रहण करते हैं और प्रतिभाशाली बालकों को बाहर की शिक्षा संस्थाओं में भेजा जाता है।

इन सुधारगृहों के अतिरिक्त बम्बई के डेरिड सेन्स औद्योगिक स्कूल, पूना में यरवदा औद्योगिक स्कूल, सतारा में छत्रपति बोर्डिंग हाउस, नासिक में सेवा सदन और दिल्ली में दिल्ली सुधार गृह आदि सुधारगृहों में किशोर अपचारियों को सुधारने का प्रयास किया जा रहा है।

भारत में बोस्टर्ल संस्थान

भारत में बोस्टर्ल संस्थान सर्वप्रथम मद्रास में वर्ष 1926 में स्थापित किया गया। यहाँ बोस्टर्ल की स्थापना बोस्टर्ल स्कूल एण्ड रिफामेंटरी एक्ट, 1897 के अन्तर्गत की गई। इस बोस्टर्ल में किशोर न्याय बोर्ड द्वारा दोषसिद्ध अपचारी किशोरों को उचित शिक्षण एवं प्रशिक्षण के लिये रखा जाता है। इन संस्थानों से छूटने बाद अपचारी किशोरों को शर्तो सहित या शर्तो रहित न्याय बोर्ड के द्वारा नियुक्त अधिकारी के संरक्षण में रखा जाता है।

अनेक राज्यों में अपचारी किशोरों को सदाचार बंधपत्र या प्रतिभूति पर रिहा होने के नियम बनाये गये हैं और इन बन्धपत्रों पर मुक्त अपचारी द्वारा पुनः अपराध करने पर उस अपचारी के माता–पिता या संरक्षण को आर्थिक दण्ड से दण्डित किया जा सकता है।

सर्वप्रथम, बोस्टर्ल संस्थान मद्रास में खुलने के पश्चात् बंगाल, मैसूर तथा मध्यप्रदेश में भी एक–एक बोस्टर्ल संस्था की स्थापना की गई है। इन बोस्टर्ल स्कूलों में 15 वर्ष की आयु से कम एवं 21 वर्ष की आयु तक के बालकों को व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाता है तथा अनेक प्रकार का औद्योगिक प्रशिक्षण दिया जाता है, जिससे वे अपने आने वाले जीवन के जीवनयापन के लिये तैयार हो सके। चैन्नई एवं बम्बई राज्यों में 23 वर्ष तक के अपचारियों को ऐसे संस्थानों में रखा जाता है। इन बालकों को छोटे–छोटे समूहों में विभाजित कर दिया जाता है तथा प्रत्येक समूह में एक मानीटर चुना जाता है, जो हाउस मास्टर कहलाता है। अच्छे व्यवहार करने वाले बालकों को बैज, धनराशि देकर सम्मानित किया जाता है।

वर्तमान समय में पूरे भारत में अनेक बोस्टर्ल संस्थायें कार्यरत हैं और प्रभावी ढ़ंग से कार्य कर रही हैं, विशेष रूप से मद्रास व महाराष्ट्र में। वहाँ के बोस्टर्ल संस्थाओं में आये अपचारी किशोरों को उनकी दण्डावधि का दो–तिहाई दण्ड बीत जाने के पश्चात् उन्हें पैरोल पर छोड़ा जाता है और पूर्ण होने तक परिवीक्षा अधिकारी की देखरेख व संरक्षण में रखा जाता है और इसके पश्चात् उनके पुर्नवास के लिये पश्चात्वर्ती देख–रेख संगठन एवं बाल सहायता समितियाँ गठित की गई हैं।

इसी प्रकार से गुजरात, मध्यप्रदेश एवं उत्तरप्रदेश में भी अपचारी किशोरों को बोस्टर्ल से छूटने के पश्चात् सहायता हेतु उचित व्यवस्था है तथा जिसमें बोस्टर्ल से छूटने के पश्चात् अपचारी किशोरों की घर जाकर जानकारी ली जाती है एवं उन पर निगरानी रखी जाती है। इन किशोरों पर परिवीक्षा अधिकारी तीन वर्ष से अधिक नियन्त्रण नहीं रख सकेगा। अतः बोस्टर्ल संस्थानों के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

1. प्रशिक्षण देना एवं पुनर्वास में मदद करना;
2. अपराधियों का सुधार करना;
3. समाज को अधिक संगठित करना;
4. अपराधिक भावना को समाप्त करना।

बोस्टर्ल संस्था से अपचारी किशोर को निम्न दशाओ में मुक्त किया जा सकता है :–

1) किशोर अपचारी की बन्दी सुधार संस्थाओ में निर्धारित अवधि पूरी हो जाने पर। इस अवधि के दौरान किसी किशोर अपचारी बन्दी को सदाचार का प्रमाण पत्र प्रस्तुत किये जाने पर छूट दी जा सकती है।

2) किशोर अपचारी बन्दी को इस संस्था से इस आधार पर मुक्त किया जाता है कि वह एक सभ्य नागिरक की भाँति जीवन व्यतीत करेगा।

3) अधिकारी इस बात से आश्वस्त हो जाये कि अपराधी पुनः अपराध नहीं करेगा।

महाराष्ट्र प्रदेश में किशोर अपचारियों के सुधारने के लिये हुई उपचार संस्थायें कार्य कर रही है, जैसे– सेंट कैथोलीन होम, अन्धेरी डेविड ससून, महिला औद्योगिक विद्यालय, चेम्बूर, बालकगृह मानखुर्द, सेल्वेशन आर्मी होम, सायन सेवा समिति कासिम, महिला सेवा आश्रम आदि प्रमुख हैं। वर्ष 1939 में उत्तरप्रदेश के बरेली ग्राम मे किशोर व बाल अपराधियों को सुधार हेतु किशोर सदन नामक संस्था ने सुधार कार्य प्रारम्भ किया। प्रारम्भ में इसका नाम किशोर बन्दी गृह रखा गया था परन्तु बाद में इस बदलकर किशोर सदन रख दिया गया। इस संस्था में 198 किशोर व बाल अपचारियों को रखने के लिये 5 भवन हैं। प्रत्येक भवन में प्रत्येक अपचारी के लिये अलग–अलग कमरे हैं। बालकों को विभिन्न प्रकार के व्यवसायों जैसे कनाई, बुनाई, सिलाई, बढ़ईगिरी, जूते या खिलौने बनाने के लिये अलग–अलग विभाग हैं। इसके अतिरिक्त, इन्हें खेलकूद, मनोरंजन, पुस्तकालय, वाचनालय आदि का समुचित प्रबन्ध है। किशोर सदन की अपनी एक पंचायत निर्वाचित पंचायत होती है, जो अपने उत्तरदायित्व को समझने अपनी समस्याओं को स्वयं सुलझाने एवं नेतृत्व को उचित तौर पर विकसित करने का अवसर देती है।

इसके अतिरिक्त, राजस्थान के उदयपुर में विद्यालय की एक प्रकार की बोस्टर्ल संस्था है, जहाँ अपचारी किशोरों को रखा जाता है तथा मध्यप्रदेश के जबलपुर एवं नरसिंहपुर में बाल सुधारगृह हैं एवं पुणे, भड़ौच, दिल्ली, अहमदाबाद,

सूरत, सोलापुर, सतारा आदि अनेक स्थानों पर स्वयंसेवी बाल कल्याण संस्थायें बालकों एवं किशोरों के सुधार कार्य में लगी हुई हैं।

भारत में किशोर अपचारियों को सुधारने हेतु किशोर न्याय पद्धति की उपचारात्मक प्रक्रिया सफल सिद्ध हुई है। इस दिशा में वर्ष 1980 की उपचारात्मक प्रक्रिया सफल सिद्ध हुई है। इस दिशा में भारत में अखिल भारतीय अपराध निवारण समिति राष्ट्रीय स्तर पर किशोर अपचारिता के नियन्त्रण हेतु उल्लेखनीय कार्य कर रही है। इस समिति ने भारतीय अपराधिक विधि एवं साक्ष्य विधि को संशोधित कर आधुनिक उपचारात्मक पद्धति के अनुरूप बनाये जाने का सुझाव दिया है। इसके अतिरिक्त, यह सुझाव भी दिया है कि रिहाई के पूर्व बन्दी को रोजगार उपलब्ध कराया जाता है। अपचारी किशोर बालकों के सम्बन्ध में हुये अनुसन्धानों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि किशोरों व बालकों में अपराधिक प्रवृत्ति को रोकने के लिये सर्वोत्तम उपाय घरों एवं विद्यालयों में इन्हें उचित शिक्षा व प्रशिक्षण दिये जाने की व्यवस्था करना है, जिसमें अपचारी किशोर पालकों एवं शिक्षकों का परस्पर सहयोग प्राप्त कर सकता है। इस कार्य में परिवार की भूमिका महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि किशोरों व बालकों का अधिकतर समय इन्हीं के साथ व्यतीत होता है। प्रायः परिवार से उपेक्षित व प्रताड़ित बालक या किशोर ही अपराधिकता की ओर प्रवृत्त होते हैं।

उपरोक्त किशोर अपचारिता की व्याख्या के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि अधिकतर किशोर परिस्थितिवश अपराधी बनते है स्वेच्छा से नहीं। किशोरों में अपचारिता की प्रवृत्ति को रोकने के लिये उन्हें प्रतिकूल परिस्थितियों एवं अपराधिक वातावरण से दूर रखा जाये। अपचारी किशोरों में अपचारिकता पर नियन्त्रण करने के लिये सामाजिक चिकित्सा विज्ञान पद्धति को किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000 के प्रभावी क्रियान्वयन पर निगरानी रखी जाये जिससे इसके अधीन कार्यरत कार्यकर्ता व अधिकारी अपने–अपने दायित्व ईमानदारी से निभाये, जिससे देश में किशोर अपचारिता पर नियन्त्रण रखा जा सके।

◆ ◆ ◆

अध्याय – 11

बन्दियों के कल्याण हेतु निःशुल्क विधिक सहायताः संवैधानिक स्थिति एवं राष्ट्रीय विधि सेवा प्राधिकरण (NALSA)

बन्दीगृह का नाम सुनते ही आज भी एक अच्छा या सामान्य व्यक्ति ठिठक जाता है। सामान्य व्यक्ति के मन में सदैव यही भाव रहता है कि उससे ऐसा कोई कार्य न हो जो उसे बन्दीगृह ले जाये। बन्दीगृह अपराधियों को समाज से दूर कर उनके द्वारा किये गये गलत कार्यों के दण्ड को भुगतने का उचित स्थान माना जाता है। बन्दीगृहों की स्थिति प्रारम्भ से ही अच्छी नहीं रही है। प्राचीनकाल से वर्तमानकाल तक बन्दीगृहों में कई सुधार किये जा चुके हैं और अभी भी किये जा रहे हैं। बन्दीगृहों की स्थिति को देखते हुये माननीय उच्चतम न्यायालय ने तीन सदस्यीय समिति का गठन किया था जिनका कार्य बन्दीगृह में बन्दियों की संख्या, बन्दीगृह की क्षमता एवं बन्दीगृह में महिला बन्दियों की स्थिति को देखेगी। उनका यह भी कहना था बन्दियों को बन्दीगृह में जानवरों की तरह नहीं रखा जा सकता है।

वर्ष 2016 मई व अक्टूबर माह में उच्चतम न्यायालय ने राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों को कई निर्देश दिये गये थे। न्यायालय ने बन्दीगृह में बन्दियों की बढ़ती हुई संख्या पर राज्य एवं संघ शासित प्रदेशों से सुझाव भी माँगे, परन्तु न्यायालय द्वारा दी गई समय–सीमा में किसी भी राज्य या संघ शासित प्रदेशों ने कोई रिपोर्ट नहीं सौंपी।

मोटे तौर पर कहा जाये तो देश में तीन प्रकार के बन्दीगृह हैं। इनमें सबसे अधिक उप–बन्दीगृह लगभग 741 हैं। इसके अतिरिक्त, 379 जिला बन्दीगृह एवं 134 केन्द्रीय बन्दीगृह हैं। शेष बन्दीगृहों को महिला बन्दीगृह, विशेष बन्दीगृह आदि की श्रेणी में रखा जाता है जिनका संख्या काफी कम है।

वर्ष 2016 के वार्षिक बजट सत्र में राज्यसभा में केन्द्र सरकार द्वारा बताया गया कि 31 दिसम्बर 2016 तक सम्पूर्ण देश में 1,412 बन्दीगृहों में 4.33 लाख बन्दी रखे गये हैं जबकि इन बन्दीगृहों की क्षमता 3.81 लाख थी। नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार 2015 में भी बन्दीगृहों की क्षमता से 14 प्रतिशत ज्यादा बन्दियों को बन्दीगृहों में रखा गया था। वर्ष 2018 तक बन्दीगृह में बन्दियों की संख्या में वृद्धि हो रही हैं।

एक सभ्य समाज में बन्दीगृह का उद्देश्य बन्दियों में सुधार कर उन्हें बेहतर इन्सान बनाना है। कोई भी जीवित व्यक्ति चाहे वह बन्दीगृह में हो या बन्दीगृह के बाहर, उसे पूर्ण रूप से सम्मान से जीने का अधिकार है।

भारत में अनेक ऐसे लोग है जो न्यायालय में अधिवक्ता की सेवा लेने के लिये आर्थिक रूप से सक्षम नहीं होते हैं। अर्थात्, इस प्रकार कई लोग न्याय प्रणाली तक नहीं पहुँच पाते हैं। पीड़ित पक्ष के लिये प्रायः सरकार की ओर से सरकारी अधिवक्ता के रूप में विधिक सहायता मिल भी जाती है किन्तु आरोपी पक्ष को अपना अधिवक्ता करना पड़ता है जिसका आर्थिक वहन आरोपी पक्ष करता है। **भारतीय दण्ड संहिता, 1973** के अनुसार कोई भी व्यक्ति जब तक दोषी सिद्ध नहीं हो जाता, तब तक अपराधी घोषित नहीं होता है। इस प्रकार जिस व्यक्ति पर आरोप लगा है, उसे दोष सिद्ध होने तक अपराधी नहीं माना जायेगा।

इसके अतिरिक्त, जब कोई व्यक्ति किसी विधि विरूद्व किये गये कृत्य के आरोप में हिरासत में लिया जाता है, तो न्यायालय का कर्तव्य है कि वह सुनिश्चित करे कि न्यायालय में उसका वकील हो, चाहे वह अभियोजन पूर्व या अभियोजन के चरण में हो। यदि अभियुक्त अधिवक्ता करने में सक्षम नहीं है, तो अदालत सरकार के खर्चें पर उसके लिये तत्काल एक अधिवक्ता नियुक्त करती है, परन्तु यह केवल अपराधिक प्रकरणों में किया जाता है। सिविल प्रकरणों में वादी या प्रतिवादी किसी भी पक्ष को सरकार अधिवक्ता मुहैया नहीं कराती है। यदि न्यायालय को लगता है कि उन पक्षकारों में से कोई भी पक्षकार अधिवक्ता करने में सक्षम नहीं है, तब न्यायालय सरकारी खर्चें पर ऐसे पक्षकार को अधिवक्ता करवा कर देती है।

बन्दियों के कल्याण हेतु निःशुल्क विधि सहायता की संवैधानिक स्थिति–

वर्ष 1952 से भारत सरकार में विभिन्न विधि मंत्रियों तथा विधि आयोगों की बैठकों में गरीबी के लिये विधिक सहायता पर चर्चा की गई। वर्ष 1960 में सरकार द्वारा विधिक सहायता योजनाओं के लिये कुछ दिशानिर्देश तैयार किये गये तथा विभिन्न राज्यों में विधिक सहायता बोर्ड, सोसाइटियों और विधिक विभागों के माध्यम से विधिक सहायता योजनायें शुरू की गई। वर्ष 1980 में लगभग पूरे देश में **न्यायाधीश पी.एन. भगवती** (तत्कालीन न्यायाधीश) की अध्यक्षता में विधिक सहायता कार्यक्रम की निगरानी एवं निरीक्षण के लिये एक–एक राष्ट्रीय स्तर की समिति का गठन किया गया। इस समिति को CILAS (सिलास) (Commitee for Implimeting legal aido scheme) के नाम से जाना जाता है और इसने अपने गठन के साथ ही पूरे देश में कानूनी सहायता सम्बन्धी गतिविधियों पर कार्य प्रारम्भ कर दिया था।

भारतीय संविधान की उद्देशिका के अन्तर्गत भारत के समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय को बताया गया है। समाज के सभी वर्गों को भारतीय न्यायिक प्रणाली में न्याय पाने का समुचित एवं समान अवसर

मिले, इस हेतु भारतीय संविधान के अनुच्छेद 39(क) के अनुसार भारत देश के निर्धन एवं पिछड़े वर्ग के लोगों को निःशुल्क विधिक सहायता प्रदान करता है। निःशुल्क विधिक सहायता का अर्थ अभियुक्त या प्रार्थी को अधिवक्ता की सुविधा उपलब्ध कराना है। अतः सरल शब्दों में कहे तो भारत देश में बन्दीगृहों में रखे गई कई बन्दी, जिन पर न्यायालय में कार्यवाही चल रही है, गरीब व अशिक्षित व अति पिछड़े वर्ग के लोग हैं, जिन्हें अपने अधिकारों का भी ज्ञान नहीं है, इस प्रकार के कारणों से वे बन्दीगृहों में कई यातनाओं का सामना भी कर रहे हैं, ऐसे हालातों में यह आवश्यक हो जाता है कि उन्हें न केवल उनके अधिकारों का ज्ञान कराया जाये बल्कि उन्हें उपयुक्त विधिक सहायता भी उपलब्ध करवायी जाये। माननीय उच्चतम न्यायालय ने ''कीर्ति II बनाम स्टेट ऑफ बिहार'' में इन्हीं बातों पर बल देते हुये निर्णय में कहा कि ''न्यायाधीश का यह संवैधानिक दायित्व है कि जब भी किसी असक्षम एवं आर्थिक रूप से असहाय अभियुक्त को उनके सामने प्रस्तुत किया जाये, तब पहले ही यह सुनिश्चित किया जाये कि अभियुक्त को निःशुल्क विधि सहायता अधिवक्ता की सहायता से प्राप्त हो रही है या नहीं। यदि नहीं प्राप्त हो रही है तो उसके लिये अधिवक्ता का प्रबन्ध न्यायालय करेगी एवं जिसका आर्थिक व्यय राज्य के कोष से किया जायेगा।''

भारतीय संविधान में अनुच्छेद 39 (क) को शामिल किये जाने के कुछ समय पश्चात् ही **हुसैनखारा खातून बनाम बिहार राज्य** के प्रसिद्ध वाद में उच्चतम न्यायालय ने विधिक सहायता एवं अनुच्छेद 39(क) पर महत्वपूर्ण निर्णय दिया। इस वाद में यह निर्धारित किया गया कि निःशुल्क विधिक सेवा निष्पक्ष एवं न्याय संगत प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग है जिसके बिना आर्थिक या अन्य कठिनाईयों से पीड़ित कोई व्यक्ति न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित हो जायेगा। अतः, निःशुल्क विधिक सेवाओं का अधिकार किसी अपराध के आरोपी व्यक्ति के लिये प्राकृतिक न्याय के अन्तर्गत न्यायिक प्रक्रिया का आवश्यक घटक है तथा **अनुच्छेद 21** के अन्तर्गत दिये गये अधिकार में यह अवश्य निहित किया जाना चाहिये। इस वाद के द्वारा न्यायमूर्ति भगवती ने निःशुल्क विधिक सहायता के अधिकार को **अनुच्छेद 21** का अनिवार्य अंग बना दिया है (जो कि जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का मौलिक अधिकार प्रदान करता है।) अर्थात् न्यायमूर्ति भगवती ने न्यायिक व्याख्या के द्वारा राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त का मौलिक अधिकार के रूप में शामिल कर उन्नयन कर दिया जिससे निर्धन एवं कमजोर वर्गों को निःशुल्क विधिक सहायता उपलब्ध कराने में सहायता मिली।

भारतीय संसद ने वर्ष 1987 में 'विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987' में पारित किया, जो 9 नवम्बर, 1995 को पूरे भारत देश में लागू किया गया। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य है कि सभी को न्याय प्राप्त करने का समान अवसर प्राप्त हो। समाज का कोई भी व्यक्ति निर्धन, दिव्यांग, कमजोर या पिछड़े या अति

पिछड़े वर्ग का होने के कारण न्याय प्राप्त करने से वंचित न रह जायें, इसीलिये इस अधिनियम के द्वारा क्रमशः राष्ट्रीय, राज्य एवं जिला स्तर पर **''विधिक सेवा प्राधिकरण''** उनको निःशुल्क विधिक सहायता उपलब्ध कराने के लिये बनाये गये हैं। यदि वादी एवं प्रतिवादी का वाद उच्चतम न्यायालय में चल रहा है तब वह **'राष्ट्रीय विधिक प्राधिकरण'** में या उच्चतम न्यायालय की **''विधिक सेवा समिति''** से सहायता प्राप्त कर सकता है। इनके लिये दोनों विकल्प हैं। यदि किसी का वाद किसी राज्य के उच्च न्यायालय में चल रहा है, तो वह चाहे तो राज्य द्वारा गठित ''विधिक सेवा समिति'' या उसी राज्य में स्थित ''विधिक सेवा प्राधिकरण'' से विधिक सहायता ले सकता है। इसके पश्चात् उसके प्रकरण से सम्बन्धित अधिवक्ता को उसकी विधिक सेवा के लिये नियुक्त किया जायेगा। जिन व्यक्तियों का प्रकरण जिला न्यायालय में विचाराधीन है, वे व्यक्ति जिला विधिक सेवा प्राधिकरण में सहायता हेतु जा सकते हैं। यह प्राधिकरण प्रायः जिला न्यायालय में ही बनाये जाते हैं। किसी के राजस्व न्यायालय में विचारणीय प्रकरणों में विधिक सहायता देने हेतु तहसील स्तर पर ''विधिक सेवा प्राधिकरण'' प्रारम्भ किये गये हैं। विधि के विद्यार्थियों में भी इस विषय का बोध कराने के लिये लगभग सभी विश्वविद्यालयों एवं संस्थानों में ''विधिक सेवा केन्द्र'' खोले गये हैं। विद्यार्थी यहाँ जाकर अपने प्रकरण से सम्बन्धित विधिक परामर्श ले सकते हैं। प्राधिकरणों की तरह इस विधिक सेवा केन्द्रो पर भी अधिवक्ताओं का एक समूह होता है, जिससे व्यक्तियों को सरलता से अधिवक्ता उपलब्ध कराया जा सके।

विधिक सेवा प्राधिकरण 1987 की धारा 112 के अनुसार निम्न व्यक्ति विधिक सहायता पाने का अधिकारी है–

अनुसूचित जाति व जनजाति की महिलायें व बच्चे जो मानव तस्करी से पीड़ित हो, सामूहिक आपदा जैसे बाढ़, सूखा से परेशान व्यक्ति, जातीय हिंसा से पीड़ित वर्ग विशेष का व्यक्ति, अत्याचार से पीड़ित जो अल्पसंख्यक समुदाय का हो, दिव्यांग व औद्योगिक श्रमिक अर्थात् ऐसे व्यक्ति जिनकी आय 1,20,000/– रूपये से कम हो।

कोई भी व्यक्ति जो उपरोक्त में से किसी एक वर्ग में आता हो, निःशुल्क विधिक सहायता प्राप्त करने हेतु अपने नजदीकी प्राधिकरण समिति में विधिक सेवा प्राधिकरण द्वारा जारी किये गये आवेदन–पत्र से आवेदन कर सकता है। यदि व्यक्ति लिखने में सक्षम नहीं है तो वह मौखिक माध्यम से भी आवेदन कर सकता है। प्राधिकरण में उपस्थित अधिकारी उस व्यक्ति की सभी जानकारी को आवेदन–पत्र में लिखेगा।

इस सम्बन्ध में **शीला बारसे बनाम महाराष्ट्र राज्य (1983 क्रि. लॉ. ज. 642 सु.को.)** वाद में उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि किसी भी व्यक्ति

की गिरफ्तारी के पश्चात् पुलिस का प्रथम कर्त्तव्य है कि वह नजदीकी विधिक सहायता केन्द्र में उसकी खबर करे, जिससे की उचित समय पर अभियुक्त की विधिक सहायता की जा सके।

राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण (नालसा) का परिचय एवं इतिहास

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 39 (क) में सभी के लिये न्याय सुनिश्चित किया गया है तथा निर्धन तथा समाज के कमजोर वर्गों के लिये निःशुल्क कानूनी सहायता की व्यवस्था की गई है। संविधान के अनुच्छेद 14 एवं 22(1) के अन्तर्गत राज्य का यह दायित्व है कि वह सभी के लिये समान अवसर सुनिश्चित करें। समानता के आधार पर समाज के कमजोर वर्गों को सक्षम विधि सेवायें प्रदान करने के लिये एक तन्त्र की स्थापना करने के लिये वर्ष 1987 में विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम पारित किया गया एवं इस विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 9 नवम्बर, 1995 को अस्तित्व में आया। इसी के तहत राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण (नालसा) का गठन किया गया। इसका कार्य विधिक सहायता कार्यक्रम लागू करना एवं उसका मूल्यांकन एवं निगरानी करना है। साथ ही, इस अधिनियम के अन्तर्गत विधिक सेवायें उपलब्ध कराना भी इसी का कार्य है।

विधिक सहायता का प्रारम्भ वर्ष 1851 से पूर्व से माना जा सकता है, जब फ्रांस में स्वेदशी लोगों को विधिक सहायता उपलब्ध कराने के लिये विधि बनायी गई थी। ब्रिटेन में निर्धन एवं जरूरतमन्दों को राज्य की ओर से विधिक सेवायें प्रदान किये जाने के लिये संगठित प्रयासों की ऐतिहासिक तारीखें 1944 तक दिखायी देती हैं, जब वहां के **लार्ड चांसलर, विस्काउंट साइमन** ने यह जाँच करने हेतु **रेडक्लिफ कमेटी** का गठन किया था कि इंग्लैण्ड और वेल्स में निर्धनों को विधिक परामर्श देने वाली उपलब्ध सेवाओं की स्थिति क्या है और इस कमेटी को राज्य द्वारा जरूरतमंदों को बेहतरीन विधिक परामर्श एवं सेवायें प्रदान या उपलब्ध कराने हेतु सुझाव देने के लिये कहा गया था। वर्ष 1952 से भारत सरकार ने भी विभिन्न विधि मंत्रियों तथा विधि आयोगों की बैठकों में निर्धनों के लिये विधिक परामर्श के प्रश्न को सम्बोधित करना प्रारम्भ किया था। वर्ष 1960 में, सरकार द्वारा विधिक सहायता योजनाओं के लिये कुछ दिशानिर्देश तैयार किये गये। विभिन्न राज्यों में विधिक सहायता बोर्ड, सोसायटी प्रारम्भ की गई। वर्ष 1980 में, पूरे देश में विधिक सहायता कार्यक्रम की निगरानी एवं निरीक्षण के लिये माननीय न्यायाधीश श्री पी.एन. भगवती, उच्चतम न्यायालय के तत्कालीन न्यायाधीश, की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय समिति का गठन किया गया। इस समिति को **सिलास/सी.आई.एल.ए.एस.(कमेटी फॉर इम्लिमेंटिंग लीगल एण्ड स्कीम्स)** के नाम से जाना जाता है, और इसके माध्यम से विवादित पक्षों को अपने प्रकरण, सुलहनामे के माध्यम से सुलझाने का एक पूरक मंच प्रदान

करने में सफलता प्राप्त की। वर्ष 1987 में विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम बनाया गया जिससे सम्पूर्ण भारत देश में एक समान तरीके से विधिक सहायता कार्यक्रमों को एक विधिक जामा पहनाया जा सके। वर्ष 1994 के अधिनियम में कुछ संशोधनों के पश्चात् अंततः 9 नवम्बर 1995 को वह अधिनियम लागू कर दिया गया। सर्वोच्च न्यायालय के तत्कालीन न्यायाधीश श्री आर.एन. मिश्रा ने इस अधिनियम को लागू करने में अहम भूमिका निभाई थी।

नालसा की इमारत जनजागरूकता, समान अवसर एवं प्रदेश न्याय आदि के आधार पर टिकी है। नालसा का मुख्य उद्देश्य समाज के निर्धन व कमजोर वर्गों को निःशुल्क एवं सक्षम विधिक सेवायें उपलब्ध कराना है तथा यह सुनिश्चित करना है कि कोई भी व्यक्ति आर्थिक कारणों से न्याय से वंचित न रह जाये। साथ ही, विवादों को सौहार्दपूर्ण निपटारे के लिये लोक अदालतों का आयोजन किया जाना चाहिये। उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त भी नालसा का कार्य विधिक साक्षरता एवं जागरूकता फैलाना, सामाजिक न्याय के प्रकरणों पर कार्यवाही करना आदि भी शामिल है।

अलग–अलग सामाजिक–आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक पृष्ठभूमियों वाले विविध परिवेशों के लोगों तक पहुँचने के उद्देश्य के साथ नालसा देश की विविध आबादियों से सीमान्त एवं वंचित विशिष्ट समूहों या वर्गों की पहचान करता है तथा विभिन्न प्रकार की योजनायें तैयार करता है, जिससे विभिन्न स्तरों पर विधिक सेवा प्राधिकरणों तथा अन्य संस्थाओं के सहयोग एवं सामन्जस्य के साथ कार्य करता है जिससे प्रासंगिक जानकारियों का आदान–प्रदान, विभिन्न प्रचलित योजनाओं के अमल एवं प्रगति पर निगरानी व अद्यतन (Updating) होती रहे।

संगठन का ढांचा

राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण (नालसा) की स्थापना केन्द्र सरकार द्वारा की गई है जिससे विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम के अन्तर्गत शक्तियों का उपयोग करते हुये प्रदत्त दायित्वों का निर्वहन कर सके।

भारत के उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश नालसा के पेट्रन–इन–चीफ हैं। भारतीय उच्चतम न्यायालय के सबसे वरिष्ठ जज इसके कार्यकारी अध्यक्ष होते हैं। केन्द्र सरकार ने भारत के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से नालसा के सदस्य सचिव की भी नियुक्ति की है।

इसी प्रकार, राज्य स्तर पर उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण के पेट्रन–इन–चीफ होते हैं तथा उच्च न्यायालय के सबसे वरिष्ठ जज उसके कार्यकारी अध्यक्ष होते हैं। इसके अतिरिक्त, राज्य स्तर

पर सदस्य सचिव का एक कार्यालय भी होता है। जिला विधिक सेवा प्राधिकरण की अध्यक्षता जिला जज द्वारा की जाती है।

राष्ट्रीय स्तर	–	राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण
राज्य स्तर	–	राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण
उच्चतम न्यायालय में	–	उच्चतम न्यायालय विधिक सेवा समिति
उच्च न्यायालय पर	–	उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति
जिला स्तर पर	–	जिला विधिक सेवा समिति
तालुका स्तर पर	–	तालुका विधिक सेवा समिति

नालसा एवं सालसा का कार्य

निर्धन एवं कमजोर वर्ग के लोगों के लिये विधिक सेवाओं का मार्गदर्शन अतीत में धर्मार्थ एवं परोपकार की भावनाओं से प्रेरित था। हालांकि, एक अधिकारवादी समाज में विधिक सहायता की सोच को एक नया अर्थ दिया गया है। सभी मानवों के लिये समानता की सोच के साथ मानव अधिकारों के सार्वभौमिक सिद्धान्तों पर लगातार बढ़ते हुये उपयोग के साथ ही, समाज निर्धन एवं हाशियाबद्ध सदस्यों के लिये निःशुल्क विधिक सहायता को अब ऐसे उपायों के रूप में देखा जाने लगा है, जिसके द्वारा ऐसे लोगों को एक नागरिक एवं आर्थिक अधिकारों व हितों का लाभ उठाने के लिये विधि की ताकत का उपयोग करने में सशक्त बनाती है। विधिक सहायता की अवधारणा में आने वाले इस ध्रुवीय बदलाव का महत्व तब और बढ़ जाता है जब भारत को एक उभरती हुई आर्थिक ताकत के रूप में देखा जाने लगा है।

इसी प्रकार, विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम की धारा 4, धारा 7, धारा 10 एवं धारा 11–ख में विधिक सेवा प्राधिकरणों के कार्यों के लिए दिये गये विवरणों का उद्‌देश्य विधि सेवा संस्थानों को समाज के कमजोर वर्गों तक पहुँचाने के लिये स्व–विकास अभिनव एवं सक्रिय (प्रो–एक्टिव) संस्थानों के रूप में गठित करना है। यह अधिनियम कार्यकारी एवं न्यायिक तंत्रों की बाधाओं एवं सीमाओं पर भी ध्यान देता है एवं स्वैच्छिक सामाजिक कल्याण संस्थानों के सहयोग को भी शामिल करता है।

विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम द्वारा विधि सेवा संस्थानों के आदेशित व्यापक कार्यों का ब्यौरा निम्न है :–

(1) पात्रता रखने वाले व्यक्तियों को विधिक सहायता व परामर्श के साथ निःशुल्क व सक्षम विधिक सेवायें उपलब्ध कराना।

(2) लोगों के मध्य विधिक साक्षरता एवं विधिक जागरूकता फैलाने तथा विशेष रूप से समाज के कमजोर वर्गों को उनके अधिकारों, लाभों

एवं विशेषाधिकारों के सम्बन्ध में शिक्षित करने के लिये समुचित उपाय करना, जो उन्हें विभिन्न समाज कल्याण विधियों तथा अन्य अधिनियमों के साथ प्रशासनिक कार्यक्रमों व उपायों द्वारा प्रदान किये गये हैं।

(3) लोक अदालतें आयोजित करना;

(4) प्रतिरोधात्मक एवं रणनीति विधिक सेवा योजनायें;

(5) समाज के कमजोर वर्गों की विशिष्ट समस्याओं से जुड़े मामलों में अनिवार्य सामाजिक न्याय याचिकाओं के माध्यम से कदम उठाना;

(6) विधिक सेवाओं के अधिवक्ताओं एवं पैरा–लीगल स्वैच्छिक कार्यकर्ताओं की क्षमता का विकास करना;

निःशुल्क विधिक सेवा प्राधिकरण का अनुदान स्त्रोत

नालसा एक केन्द्रीय प्राधिकरण होने के कारण इसे अनुदान के रूप में वित्तीय सहायता प्राप्त होती है, जो संसद द्वारा **विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987** के उद्देश्यों को पूरा करने के लिये उचित विनियोग के बाद ही केन्द्र सरकार, जैसा भी उचित, समझे जारी करती है।

विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 की धारा 15 के अनुसार केन्द्रीय प्राधिकरण द्वारा राष्ट्रीय विधिक सहायता कोष की स्थापना का प्रावधान करती है और इसमें शामिल होते हैं –

(अ) धारा 14 के अन्तर्गत केन्द्र सरकार द्वारा अनुदान के रूप में दी जाने वाली समस्त धनराशियाँ;

(ब) अन्य अनुदान व दान, जो केन्द्रीय प्राधिकरण को किसी अन्य व्यक्ति द्वारा इस अधिनियम के उद्देश्यों को पूरा करने के लिये दिया गया हो,

(स) केन्द्रीय प्राधिकरण द्वारा किसी न्यायालयीन आदेश या अन्य किसी स्त्रोत से प्राप्त की जाने वाली कोई भी धनराशि।

उपरोक्त प्राप्त धनराशि अर्थात् राष्ट्रीय विधिक सहायता कोष का उपयोग निम्न व्ययों को वहन करने के लिये किया जायेगा :–

(i) इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रदान की जाने वाली विधिक सेवाओं में उपयोग धनराशि जिसमें राज्य प्राधिकरणों को दिये जाने वाला अनुदान भी शामिल है।

(ii) उच्चतम न्यायालय विधिक सेवा समिति द्वारा प्रदान की जाने वाली

विधिक सेवाओं में उपयोग धनराशि;

(iii) अन्य व्यय, जो केन्द्रीय प्राधिकरण द्वारा आवश्यकता अनुरूप किये जाते हो।

राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण (नालसा) का गठन विधिक सेवा प्राधिकरण, 1987 के अन्तर्गत समाज के कमजोर वर्ग को निःशुल्क विधिक सेवायें प्रदान करने के लिये और विवादों का सौहार्दपूर्ण समाधान के लिये लोक अदालतों का आयोजन करने के लिये की गई है।

नालसा नई दिल्ली में स्थित है। प्रत्येक राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण की नीतियों एवं नालसा के निर्देशों को प्रभावी बनाने के लिये विधिक सेवायें देने एवं राज्यों में लोक अदालतों का संचालन करने के लिये नालसा गठित की गई है। राज्य के उच्च न्यायालय के माननीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण की अध्यक्षता की जाती है, जो इसके मुख्य संरक्षक हैं।

नालसा/राज्य प्राधिकरण/जिला प्राधिकरण द्वारा दी जाने वाली निःशुल्क विधिक सेवायें :–

नालसा पूरे देश में विधिक सहायता कार्यक्रमों एवं योजनाओं को लागू करने के लिये राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण के माध्यम से दिशा निर्देश जारी करता है।

मुख्य रूप से राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण, जिला विधिक सेवा प्राधिकरण, तालुक विधिक सहायता समितियाँ आदि को निम्नलिखित दो कार्य नियमित आधार पर करते रहने की जिम्मेंदारी होती है :–

सुपात्र लोगों को निःशुल्क विधिक सहायता प्रदान करना।

विवादों को सौहार्दपूर्ण ढंग से निपटाने के लिये लोक अदालतों का संचालन करना।

विधिक सेवा गतिविधियां

विधिक सेवा संस्थानों की मूल गतिविधि ऐसे व्यक्तियों को दीवानी या अपराधिक प्रकरणों में निःशुल्क कानूनी सहायता उपलब्ध कराता है जो किसी न्यायालय ट्रायब्यूनल या विधिक प्राधिकरण के समक्ष अपने प्रकरण या विधिक कार्यवाही के लिये किसी अधिवक्ता की सेवायें प्राप्त करने में असमर्थ होते हैं।

निःशुल्क विधिक सेवाओं में निम्नलिखित सम्मिलित है –

(क) किसी विधिक कार्यवाही में न्यायालय में न्यायालय या अन्य प्राधिकरण के समक्ष चल रहे वाद में कानूनी कार्यवाही के सम्बन्ध

में किसी प्रकार की सेवा का प्रतिपादन।

(ख) विधिक कार्यवाही एवं प्रक्रियाओं के लिए अधिवक्ता उपलब्ध कराना।

(ग) विधिक कार्यवाही में आदेशों आदि की प्रमाणित प्रतियाँ प्राप्त करना;

(घ) विधिक कार्यवाही में याचिकाओं की तैयारी, अपील का ज्ञापन और दस्तावेज का अनुवाद एवं मुद्रण सहित पेपर पुस्तक तैयार करना।

(ङ) कानूनी दस्तावेजों, विशेषकर सहायता याचिका आदि का प्रारूप तैयार करना।

◆ ◆ ◆

अध्याय – 12

अध्ययन रिपोर्टें

भारत में बन्दीगृहों की स्थिति देखते हुए, उसमें सुधार लाने हेतु भारत सरकार की ओर से समय–समय पर विभिन्न संस्थानों के द्वारा अध्ययन करवाये जाते रहे हैं। इन अध्ययन रिपोर्टों की सिफारिशों के आधार पर बन्दीगृह व्यवस्था में सुधार करवाये जाते हैं।

बन्दीगृह बन्दियों को उनकी स्वतन्त्रता से वंचित करता है और इसमें उन्हें उन अपराधों के दण्ड से दण्डित करने के लिये रखा जाता है जो विधि द्वारा प्रतिबद्ध हैं। अपराधियों को बन्दीगृह में रखे जाने का उद्‌देश्य उस अपराधी से जनता की रक्षा करना, समाज में सुरक्षा एवं व्यवस्था बनाये रखना, अधिक अपराध होने से रोकने के लिये अपराधी में सुधार करना एवं बन्दियों को रिहाई के पश्चात् सामान्य नागरिक की भाँति पुनर्वास के लिये तैयार करना है।

बन्दीगृहों की स्थिति एवं बन्दियों की स्थिति को सुधारने के लिये कई समितियों ने अध्ययन कर रिपोर्ट एवं सिफारिशें प्रस्तुत की हैं। इनमें प्रस्तुत रिपोर्टों में भारतीय जेल सुधार समिति (1919–1920) (काड्र्यू समिति की सिफारिशें); राष्ट्रीय बन्दीगृह आयोग की पहल (मुल्ला समिति की सिफारिशें); महिला बन्दियों पर राष्ट्रीय विशेषज्ञ समिति, 1987 (न्यायाधीश अय्यर समिति रिपोर्ट); सोशयो–डेमोग्राफिक प्रोफाइल एण्ड फैक्ट्र्स एसोसियट टू नेचर ऑफ क्राइम ऑफ प्रिजनर सेन्ट्रल जेल ऑफ कोटा, राजस्थान; सोशयो इकानॉमिक प्रोफाइल ऑफ वुमन प्रिजनर्स; पुलिस अनुसन्धान व विकास ब्यूरो का 'बन्दी महिलाओं एवं न्याय के पहुंच' विषय पर सम्मेलन; वर्ष 2004 उ.प्र. योजना आयोग की अध्ययन रिपोर्ट, जेल सुधार पर सलाहकार समिति की रिपोर्ट, वर्ष 2001 में राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा आयोजित सेमिनार में अनुशंसा की सिफारिशें, कुछ रिपोर्ट राष्ट्रीय महिला आयोग की महिला बन्दीगृह की रिपोर्ट आदि प्रस्तुत है, जिनकी सिफारिशें प्रस्तुत हैं।

भारत में बन्दीगृह व्यवस्था का अस्तित्व आदिकाल से है। प्राचीन समय में भारत में आध्यात्मिकता को महत्व दिया जाता था, इसीलिये उस समय अपराधियों को बन्दीगृहों में पश्चाताप, आत्मचिंतन एवं आत्मशुद्धि करने के लिये पर्याप्त समय देने के उद्‌देश्य से एकान्त में रखा जाता था। भारत में हिन्दू एवं मुगल शासकों के शासनकाल में दण्ड का उद्‌देश्य प्रतिरोध के सिद्धान्त पर ही आधारित रहा था। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में भारत में ब्रिटिश राज्य स्थापित

होने से भारतीय बन्दीगृहों के बन्दियों की दशायें सुधारने हेतु प्रयत्न किया गया जिससे बन्दी जीवन की यातनायें कम की जा सकें।

भारत की बन्दीगृह व्यवस्था में सुधार वर्ष 1836 से माना जाता है। उस समय बन्दीगृहों की व्यवस्था में सुधार के लिये बन्दीगृह जाँच समिति की गठन किया गया। उस समय इस समिति ने बन्दियों से सड़क निर्माण कार्य के लिये मजदूर के रूप में कार्य लिया जाना बन्द करवाये जाने की अनुशंसा की थी।

इसके पश्चात् मैकाले (Macanulay) के सुझाव पर एक बन्दीगृह सुधार समिति का गठन किया गया, जिसमें निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये गए—

1) एक ऐसे केन्द्रीय बन्दीगृह की स्थापना की जाये, जिसमें लगभग ऐसे एक हजार बन्दियों को रखे जाने की व्यवस्था हो, जिनकी सजा एक वर्ष से अधिक अवधि की हो।

2) प्रान्तों में सभी बन्दीगृहों में उचित नियन्त्रण बनाये रखने के लिये प्रत्येक बन्दीगृह में एक बन्दीगृह निरीक्षक की नियुक्ति की जाये। इसी सुझाव पर उत्तरप्रदेश (1844), पंजाब (1812), बंगाल (1854) एवं बम्बई व मद्रास (1862) में बन्दीगृह निरीक्षकों की नियुक्ति की गई।

3) बन्दीगृहों में महिला अपराधियों को रखने की पृथक व्यवस्था की जाये।

इसी प्रकार, वर्ष 1862 में द्वितीय कारागार समिति गठित की गई, जिसमें बन्दीगृहों की गन्दगी एवं अस्वस्थकारी दशाओं पर सुधार की अनुशंसा की व बन्दीगृह चिकित्सक की नियुक्ति की भी अनुशंसा की और 1866 में बन्दीगृहों में चिकित्सक नियुक्त किये गये।

इसके पश्चात् तृतीय, चतुर्थ व पंचम बन्दीगृह समितियों ने समय—समय पर बन्दीगृह व्यवस्था सुधारने हेतु अनुशंसायें की जिन्हें विभिन्न चरणों में लागू भी किया गया था।

बन्दीगृहों में एकरूपता बनाये रखने के लिये वर्ष 1894 में **भारत कारागार अधिनियम, 1894** पारित किया गया, जो वर्तमान में लागू है। इसमें बन्दियों के वर्गीकरण हेतु एवं बन्दियों को दिये जाने वाले अमानवीय दण्डों को समाप्त करने हेतु आवश्यक कदम उठाये गये।

भारतीय जेल सुधार समिति 1919—1920 (कार्ड्यू समिति)

सर एलेक्जेण्डर कार्ड्यू की अध्यक्षता में वर्ष 1919—20 में जेल सुधार समिति का गठन किया गया जिसमें भारतीय बन्दीगृहों के अतिरिक्त अन्य देशों

के बन्दीगृहों की व्यवस्थाओं का अध्ययन कर निष्कर्ष निकाला कि बन्दीगृहों में भोजन, स्वास्थ्य व श्रम आदि में सुधार की आवश्यकता है, तथा बन्दीगृहों में बन्दियों की दण्डावधि के दौरान उनकी अपराधिक मानसिकता में परिवर्तन लाकर उनमें सुधार की भावना जागृत करने की आवश्यकता है।

कार्ड्यू समिति की सिफारिशें

1) बन्दियों से कठोर व्यवहार नहीं बल्कि उनके प्रति मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाकर उनमें सुधार करना।

2) बन्दीगृह प्रशासन के लिये प्रशिक्षित व अनुभव व्यक्तियों की नियुक्ति व वार्डन के लिये भी शिक्षित व्यक्ति को ही नियुक्त किया जाये।

3) प्रत्येक बन्दीगृह में एक चिकित्सक अधीक्षक की नियुक्ति की जाये।

4) बन्दियों को आदतन या अभ्यस्त अपराधी एवं सामान्य या आकस्मिक अपराधी दो श्रेणियों में रखा जाये।

5) बन्दियों के साथ अमानवीय व्यवहार जैसे–कोड़े मारना, आदि दण्ड समाप्त किये जायें तथा छः माह से अधिक समय के लिये दण्डित बन्दियों को सद्व्यवहार पर कुछ रियायतें दी जायें।

6) किशोर व बाल अपराधियों को घोर अपराधियों के साथ न रखकर उनके लिये पृथक सुधारागृहों की व्यवस्था की जाये।

7) बन्दियों के लिये पैरोल (कारावकाश) पर छोड़े जाने सम्बन्धी नियमों को लागू किया जाये व बन्दीगृहों से मुक्त होने वाले बन्दियों को रिहाई के समय समाज में पुनर्वासित होने के लिये आर्थिक सहायता दी जाये।

8) 'काले पानी' की सजा के लिये अण्डमान भेजने की व्यवस्था गम्भीर अपराधियों के लिये ही की जाये।

इन अनुशंसाओं के फलस्वरूप वर्ष 1996 में पुनः जेल सुधार समिति का गठन किया गया तथा आदर्श जेल स्थापित करने के सुझाव प्रस्तुत किये गये एवं अपराधियों का फिर वर्गीकरण कर उन्हें, बाल अपराधी, वयस्क अपराधी, महिला अपराधी, अभ्यस्थ अपराधी, आकस्मिक अपराधी, मनोरागी आदि श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया।

भारत सरकार अधिनियम, 1935 द्वारा किये गये संवैधानिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप जेलों का नियन्त्रण राज्य सरकारों को स्थानान्तरित कर दिया गया तथा भारतीय जेल समिति 1919–20 की सिफारिशों के समान कार्यान्वयन की सम्भावनाओं को कम कर दिया गया। हालांकि, वर्ष 1937 से 1947 की अवधि

भारत के बन्दीगृहों के इतिहास में महत्वपूर्ण थी क्योंकि इससे कम से कम कुछ प्रगतिशील राज्यों जैसे पश्चिमी बंगाल, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, आदि में बन्दीगृह सुधारों के लिये जन चेतना एवं जागरूकता उत्पन्न हुई।

इस अवधि में नियुक्त कुछ समितियाँ निम्न थीं:–

(1) जेल सुधार सम्बन्धी, मैसूर समिति, 1940–41।

(2) उत्तरप्रदेश जेल सुधार समिति, 1946, एवं

(3) बाम्बे जेल सुधार समिति, 1946–48

इस अवधि के दौरान प्रगतिशील अधिनियम –

(1) अपराधी अधिनियम, 1936 की बाम्बे जाँच।

(2) द.सी.पी. एण्ड बेरार कन्डीशनल रिलीज ऑफ प्रिजनर एक्ट, 1936।

(3) उ.प्र. प्रथम अपराधी जाँच अधिनियम, 1938 पारित किये गये।

तीस के दशक के अन्त में, उत्तर प्रदेश राज्य सरकार ने एक जेल जाँच समिति का गठन किया एवं इसकी सिफारिशों के अनुशरण में प्रथम प्रशिक्षण विद्यालय जेल अधिकारियों एवं वार्डनों के प्रशिक्षण के लिये 1940 में लखनऊ में स्थापित किया गया था।

आजादी के पश्चात् पहला दशक जेलों में रहने की स्थिति में सुधार के लिये कठोर प्रयासों से चिहिन्त किया गया था। बन्दीगृह की स्थितियों के मानवीकरण के लिए एक निश्चित उपाय को प्राप्त करने एवं अपराधियों के उपचार को वैज्ञानिक स्तर पर रखने के लिये राज्य सरकारों द्वारा कई बन्दीगृह सुधार समितियों की नियुक्ति की गई थी। इस आधार पर कुछ निम्नलिखित समितियाँ थी जिन्होंने उल्लेखनीय सिफारिश की थी–

(1) पूर्वी पंजाब जेल सुधार समिति, 1948–49।

(2) मद्रास जेल सुधार समिति, 1950–51।

(3) उड़ीसा की जेल सुधार समिति, 1952–55।

(4) त्रावणकोर एवं कोचीन की जेल सुधार समिति, 1953–।।

(5) उ.प्र. जेल उद्योग एवं जांच समिति, 1955–56।

(6) महाराष्ट्र जेल उद्योग पुनर्गठन समिति, 1958–59।

वर्ष 1951–52 में भारत की बन्दीगृह प्रशासन की स्थिति पर सुधार एवं

सुझाव हेतु **संयुक्त राष्ट्र के विशेषज्ञ डॉ. डब्ल्यू. सी. रेकलेस** ने भारत का दौरा किया। उनकी रिपोर्ट **''भारत में बन्दीगृह प्रशासन''** बन्दीगृह सुधारों के इतिहास में एक और ऐतिहासिक दस्तावेज था। उनके द्वारा निम्नलिखित सिफारिशें दी गई –

(1) किशोर अपराधियों को न्यायालय द्वारा उन बन्दीगृहों को नहीं सौंपना चाहिये, जो वयस्क अपराधियों के लिये हैं।

(2) बन्दीगृह सेवाओं के लिये प्रशिक्षित कर्मचारियों का एक संवर्ग आवश्यक था।

(3) सुधार के लिये चुने गये बन्दियों के लिये विशेष प्रशिक्षण प्रारम्भ किया जाना चाहिये।

(4) पुराने बन्दीगृह नियमावली को उपयुक्त रूप से संशोधित करना एवं छोटे दण्डों के लिये कानूनी विकल्प प्रस्तुत करना।

(5) समय से पूर्व रिहाई के लिये बन्दियों के चयन के लिये बोर्ड की स्थापना की जावे तथा पश्चात्वर्ती के बाद पूर्णकालिक जाँच व संशोधन बोर्ड भी स्थापित किये जायेंगे।

(6) प्रत्येक राज्य में बन्दीगृह, बोर्स्टल, बाल सुधार संस्थाये, परिवीक्षा सेवायें व देखरेख आदि शामिल करते हुये सुधार प्रशासन का एक विभाग स्थापित किया जाये।

(7) बन्दीगृहों के सुधारात्मक कार्यक्रमों के विकास में राज्य सरकारों की सहायता हेतु केन्द्र सरकार के स्तर पर सुधार प्रशाासन के लिये एक सलाहकार बोर्ड की स्थापना की जानी चाहिये।

9 अप्रैल, 1979 को भारत सरकार ने वर्तमान बन्दीगृह प्रबन्ध प्रणाली की कमियों का आंकलन करने एवं जेल की स्थितियों के मानकीकरण के लिये दिशानिर्देश निर्धारित करने हेतु केन्द्र व राज्य क्षेत्रों के मुख्य सचिवों का एक सम्मेलन आयोजित किया। इस पूरे सम्मेलन में बन्दीगृह प्रशासन से सम्बन्धित विभिन्न मुद्दों की विस्तृत जाँच की गई एवं भारत सरकार ने सम्मेलन में आ रही सर्वसम्मति के आधार पर केन्द्र एवं राज्य सरकार से अनुरोध किया कि–

(1) वर्ष के अन्त तक मॉडल जेल मैनुअल के आधार पर जेल नियमावली में संशोधन करना।

(2) जिला एवं राज्य स्तरों पर विचाराधीन बन्दियों के लिये समीक्षा समितियाँ नियुक्त करना।

(3) बन्दियों को विधिक सहायता प्रदान करना एवं बन्दीगृहों में

पूर्णकालिक या अंशकालिक विधि अधिकारियों की नियुक्ति करना।

(4) जांच एवं जांच के लिये समय पर सीमाओं के सम्बन्ध में दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 के प्रावधानों का कड़ाई से पालन करना।

(5) जमानत प्रदान करने के सम्बन्ध में उपलब्ध प्रावधानों को लागू करना एवं इसके सभी पहलुओं पर विचार करने के बाद जमानत प्रणाली को उदार बनाना।

(6) प्रत्येक राज्य में किशोर अपराधियों के लिये बोर्स्टल स्कूल अधिनियम, 1929 के अन्तर्गत कम से कम एक बोर्स्टल स्कूल की स्थापना की जाये।

(7) महिला अपराधियों की देखरेख, उपचार एवं पुनर्वास के लिये पृथक–पृथक सुविधायें उपलब्ध कराना।

(8) मानसिक रोगी व पागल बन्दियों के लिये उपचार की व्यवस्था विशिष्ट संस्थानों में करना।

(9) बन्दियों के लिये स्वच्छता सुविधाओं, जल आपूर्ति, विद्युतीकरण को प्राथमिकता के साथ बन्दियों के रहने के लिए उपलब्ध परिस्थितियों में सुधार कर एक समयबद्ध कार्यक्रम तैयार करना एवं इसे अनुमोदन के लिये गृह मन्त्रालय भेजना।

(10) बन्दीगृह में शिक्षा व प्रशिक्षणों के कार्यक्रमों को व्यवस्थित रूप से विकसित करना।

(11) बन्दीगृह विकास कार्यक्रम के निरीक्षण, पर्यवेक्षण एवं देखरेख के लिये उचित व्यवस्था सुनिश्चित करना एवं सातवें वित्त आयोग द्वारा कारागार प्रशासन के उन्नयन के लिये किये गये वित्तीय प्रावधानों का समुचित उपयोग किया जावे।

(12) राज्य एवं क्षेत्रीय स्तर पर बन्दीगृह कर्मियों के प्रशिक्षण के लिये व्यवस्थित कार्यक्रम आयोजित करना।

(13) चरणबद्ध तरीके से दोषी अधिकारियों की प्रणाली को समाप्त करना।

(14) बन्दीगृहों का आधुनिकीकरण एवं जेल में सुधार सेवाओं के विकास के लिये अतिरिक्त संसाधन उपलब्ध कराना।

(15) बन्दीगृहों का नियमित दौरा करने एवं राज्य सरकार के विचारार्थ बन्दीगृहों की वर्तमान स्थिति की रिपोर्ट करने के लिये राज्य आंगुतक (Visitors) बोर्ड की स्थापना करना।

राष्ट्रीय बन्दीगृह आयोग की पहल या मुल्ला समिति की रिपोर्ट

भारत सरकार ने वर्ष 1980 में **न्यायमूर्ति श्री ए.एन.मुल्ला** की अध्यक्षता में जेल सुधार सम्बन्धी एक अखिल भारतीय समिति का गठन किया गया था। न्यायाधीश मुल्ला समिति ने बन्दीगृहों से सम्बन्धित अपनी रिपोर्ट 31 मार्च 1983 को गृह मन्त्रालय को प्रेषित की थी। समिति ने अपनी रिपोर्ट में एक राष्ट्रीय बन्दीगृह आयोग का सुझाव प्रस्तुत किया था, जो भारतीय बन्दीगृहों के आधुनिकीकरण की प्रगति का निरन्तर मूल्यांकन करता रहे।

न्यायाधीश मुल्ला समिति ने (**शीला बारसे बनाम भारत संघ (ए.आई. आर. 1988 सु.को. 2211**) के वाद में) तिहाड़ जेल तथा आगरा संप्रेक्षण गृह में बाल अपराधियों के साथ हो रहे अनाचार के प्रति चिंता व्यक्त करते हुये बाल व किशोर अपराधियों को गम्भीर व वयस्क बन्दियों से पृथक रखने का सुझाव प्रस्तुत किया जिसके परिणामस्वरूप वर्ष 1986 में किशोर न्याय अधिनियम पारित हुआ, जिसमें किशोर अपराधी बन्दियों के विचारण तथा वे अभिरक्षा सम्बन्धी विस्तृत प्रावधान था। समिति ने विक्षिप्त व मानसिक रोगी अपराधी बन्दियों को भी पृथक रखे जाने का सुझाव प्रस्तुत किया।

न्यायाधीश मुल्ला समिति (वर्ष 1980–83) ने बन्दियों के नये वर्गीकरण की आवश्यकता बताते हुये बन्दियों की बन्दीगृह से सम्बन्धित समस्याओं के निराकरण हेतु अन्य देशों की तरह भारत में भी लोकपाल (Obudsman) को नियुक्त करने की सिफारिश भी की। इसके अतिरिक्त, इस समिति के अन्य सुझाव निम्नलिखित थे –

(1) बन्दीगृहों पर राष्ट्रीय नीति पर निदेशात्मक सिद्धान्त बनाये जाने चाहिये और संविधान के भाग IV में शामिल किया जाये।

(2) भारतीय संविधान की सातवीं सूची की समवर्ती सूची में बन्दीगृह एवं सहायक संस्थाओं को शामिल किया जाना चाहिये।

(3) सिद्ध दोष एवं अपराधी बन्दियों के लिये बनाये गये बन्दीगृह में सिविल बन्दियों को न रखा जाये।

(4) बन्दीगृहों की स्थिति सुधारने के लिये उनकी स्वच्छता, हवादारी (Ventilation), बन्दियों के ताजा एवं पौष्टिक आहार, कपड़ों आदि का विशेष ध्यान रखा जाये।

(5) बन्दीगृह के कर्मचारियों एवं प्रशासकों को विभिन्न संवर्गों में वर्गीकृत करके उनके प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था किया जाना आवश्यक है।

(6) बन्दियों की उत्तरवीक्षा (After Care), पुनर्वास एवं पैरोल व परिवीक्षा

को बन्दीगृह व्यवस्था का अभिन्न अंग माना जाये।

(7) प्रचार माध्यम से सम्बन्धित व्यक्तियों तथा लोकसेवी संस्थाओं के प्रतिनिधियों को समय–समय पर बन्दीगृहों के निरीक्षण की सुविधा दी जाये जिससे जनता को बन्दीगृह की वास्तविक स्थिति की उचित जानकारी प्राप्त हो सके और बन्दियों का समाज में पुनर्वास करने में उनका उचित सहयोग प्राप्त हो सके।

(8) सिद्धदोष बन्दियों व विचाराधीन बन्दियों को पृथक–पृथक रखना अति–आवश्यक है तथा विचाराधीन बन्दियों के लम्बित वादों पर शीघ्र विचारण की व्यवस्था होना चाहिये जिससे उन्हें बन्दीगृह में कम से कम अवधि के लिये निरोधित रहना पड़े।

(9) बन्दीगृह के उचित रख–रखाव के लिये पर्याप्त अनुदान सरकार द्वारा दिया जायेगा।

(10) इस समिति ने जेल सुधारों से सम्बन्धित विभिन्न संस्थाओं, प्राधिकारियों एवं समाजसेवी संगठनों से गहन चर्चा करके प्रस्तावित राष्ट्रीय बन्दीगृह सुधार नीति तैयार कर वर्ष 2007 में केन्द्र सरकार के गृह मन्त्रालय को प्रेषित किया, जिसे गृह मंत्रालय द्वारा परामर्श हेतु परिचालित किया गया है।

महिला बन्दियों पर राष्ट्रीय विशेषज्ञ समिति, 1987 (न्यायाधीश अय्यर समिति रिपोर्ट, 1987)

26 मई 1986 में भारत सरकार द्वारा न्यायमूर्ति श्री कृष्ण अय्यर की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ समिति का गठन किया गया। यह समिति महिला बन्दियों पर राष्ट्रीय विशेषज्ञ समिति थी। इस समिति ने 18 मई 1987 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में महिला अपराधियों के लिये अधिकाधिक महिला पुलिस कर्मियों की नियुक्ति की अनुशंसा की। इस रिपोर्ट को आवश्यक अनुवर्ती कार्यवाही करने के लिये सभी राज्यों को परिचायिका कर दिया गया। इस समिति के विचार से भारत के वर्तमान परिवर्तित सामाजिक परिवेश में महिला पुलिस अधिकारी कारगार भूमिका निभा सकती हैं, क्योंकि अधिकतर महिलायें शान्त एवं सहिष्णु स्वभाव की होने के कारण वे अपराधियों से कुशलतापूर्वक व्यवहार कर सकती हैं। इसी समिति की बाल अपराध प्रकोष्ठ की सिफारिश या अनुशंसा के फलस्वरूप किशोर न्याय (बालकों की देखरेख व संरक्षण) अधिनियम 2000 में समाविष्ट किया गया है।

इस रिपोर्ट में महिला बन्दियों की समस्याओं पर विचार किया गया और कारागार अधिनियम के तहत महिला बन्दी को अपने बच्चे को 5–6 वर्ष की आयु

तक बन्दीगृह में रखने का अधिकार है। महिलाओं एवं उनके साथ रह रहे बच्चों के लिये भोजन, कपड़ा, पढ़ाई, देखरेख एवं मुलाकात आदि करने का अधिकार पृथक से दिये जाने के लिये समिति सदस्यों ने सुझाव दिया।

अय्यर समिति रिपोर्ट में यह भी कहा गया कि महिला, भले ही वह अपराधी हो, उसे स्त्रीत्व व मातृत्व दोनों से ही वंचित नहीं किया जा सकता है। समिति ने यह भी पाया कि महिलायें के साथ अभिरक्षा में होने वाले दुर्व्यवहार एवं अपराध पुरूषों की अपेक्षा अधिक प्रभावित करता है। वे सदैव से ही अपराध की दुनिया में निभाने के लिए बनी रहती हैं, और स्वयं के विरूद्व होने वाले अत्याचारों व अन्याय से नहीं लड़ पाती हैं, इसीलिये उनके लिये सुरक्षा के विशेष प्रयास किये जाने की आवश्यकता है।

महिलाओं की नीति मार्ग निर्देशों में, गिरफ्तारी, पूछताछ, जाँच, बन्दी बनाने, जमानत व दण्ड, दण्ड के पूर्व पूछताछों, सामाजिक विधिक परामर्श, मनोवैज्ञानिक सेवायें, विचाराधीन व दण्ड प्रक्रिया का वैज्ञानिक वर्गीकरण, पुलिस जिला में महिलाओं के लिये विधि सहायता कक्ष, न्यायिक प्रक्रिया में महिला अपराधियों का ध्यान दूसरी ओर ले जाना, गैर संस्थागत विकल्प, स्वयं सेविका व स्वयं सेवी संस्थानों की जांच व न्याय प्रक्रिया व अभिरक्षा की स्थितियों पर सहयोग आदि स्थिति पर ध्यान केन्द्रित कराया गया।

इस समिति द्वारा महिलाओं की अभिरक्षा न्याय पर राष्ट्रीय नीति बनाने की सिफारिश की एवं महिलाओं के लिये अपराधिक न्याय प्रणालियों, महिला समूहों, विधि सहायता, समाज कल्याण, मानसिक स्वास्थ्य एवं अन्य समूहों के द्वारा इन पर विचार–विमर्श कर राष्ट्रीय स्तर पर लागू करने की अनुशंसा भी की। इस नीति को लागू करने के लिये महिलाओं को अभिरक्षा न्याय पर राष्ट्रीय प्राधिकारी के रूप में सांविधिक स्वायत्त वित्तीय निकाय की सिफारिश की। इस प्राधिकारियों में न्यायिक विधि प्रक्रिया, विधिक सहायता, पुलिस, बन्दीगृह परिवीक्षा एवं उत्तरवीक्षा, समाज कल्याण एवं चिकित्सीय स्वास्थ्य संस्थाओं आदि के प्रतिनिधि शामिल होना चाहिये।

अय्यर समिति की कुछ अन्य सिफारिशें निम्नलिखित हैं:–

1) हालांकि महिला बन्दियों की संख्या पुरूष बन्दियों की तुलना में काफी कम है, तो इस कारण उनके लिये अभिरक्षा सुविधाओं का पृथक रूप से निर्माण न करना वैध नहीं माना जा सकता है। अतः महिला बन्दियों के लिये बन्दीगृह की पृथक व्यवस्था होना चाहिये।

2) वर्तमान में जिन बन्दीगृहों में महिला बन्दियों की पर्याप्त संख्या है वहाँ उन्हें सामाजिक आंकलन व अपराध सुनिश्चित होने पर

वर्गीकरण किया जाना चाहिये जिसके अनुसार उन्हें रोजगार, प्रशिक्षण, शिक्षा एवं पुनर्वास की व्यवस्था की जा सके।

3) महिला बन्दियों को समय–समय पर चिकित्सीय सुविधायें उपलब्ध होनी चाहिये। जिन बन्दीगृहों में पूर्णकालिक एवं अंशकालिक महिला चिकित्सक उपलब्ध न हो उस स्थिति में समय–समय पर सरकारी चिकित्सालय से स्थानीय महिला चिकित्सक को बुलाया जाना चाहिये।

4) वर्तमान समय में भी बन्दीगृहों की स्थिति सोचनीय बनी हुई है, विशेषकर महिलाओं से सम्बन्धित बन्दीगृह की। महिलाओं के लिये नये बन्दीगृहों के निर्माण में भवन निर्माण के समय ही उनकी शारीरिक अपेक्षाओं के अनुसार एवं अधिक सुरक्षा वाली संरचनायें बनाई जानी चाहिये।

5) महिला बन्दियों के लिये बने सभी हिरासती परिसरों में एकान्तता, सुरक्षा एवं स्वच्छता का वातावरण होना चाहिये।

6) प्रत्येक राज्य में कम से कम एक महिला बन्दीगृह अवश्य होना चाहिये।

7) दोषसिद्ध बन्दी एवं विचाराधीन बन्दी महिलाओं को रखने के लिये बन्दीगृह में पृथक–पृथक स्थान होना चाहिये। इनके लिये पृथक स्थान की आवश्यकता होती है क्योंकि जरूरत पड़ने पर विचाराधीन प्रकरण में हवालात में वापस भेजी गई महिलाओं को रखा जा सके। बड़े शहरों, जिलों मुख्यालयों एवं महिला अपराध प्रवण क्षेत्रों में स्थापित किये जाने चाहिये जहाँ सिद्धदोषी महिला एवं विचाराधीन अपराधी एक संस्थान में रहते हैं। उन्हें स्वतन्त्र सुविधाओं की स्थापना होने तक पृथक प्रकोष्ठों में रखा जाये।

8) महिला को बन्दीगृह में या अन्य हिरासत केन्द्र में रखे जाने पर उचित चिकित्सा सुविधायें तथा चिकित्सीय जांच की सुविधायें प्रदान की जायेगी।

9) हिरासत में रखी गई महिला गर्भवती है तो उसकी नियमित चिकित्सीय जाँच एवं पोषण सम्बन्धी देखभाल, बच्चे का पालन–पोषण आदि का विशेष ध्यान रखा जाएगा।

10) बन्दीगृह में आई कोई महिला बन्दी यदि किसी संक्रामक रोग से पीडित है तो उन्हें ठीक होने तक अलग देखभाल में रखा जायेगा और आवश्यकता हो तो स्वास्थ्य केन्द्र में भी रखा जायेगा।

11) महिला बन्दियों के लिये चिकित्सीय मानदण्डों के अनुसार एवं चिकित्सक के परामर्शानुसार आवश्यकता होने पर विशेष अतिरिक्त आहार भी दिया जा सकता है।

12) प्रत्येक महिला बन्दी को आवश्यकतानुसार धारण योग्य वस्त्र, कंघा, दर्पण, धुलाई, साबुन, नहाने का साबुन, तेल, सेनेटरी नैपकिंस आदि दिये जाते हैं।

13) महिला बन्दियों में काम को दण्ड नहीं बल्कि सुधार कार्य समझा गया। इनको बन्दीगृह में कराये गये कार्य के लिये न्यायसंगत पारिश्रमिक दिया जायेगा।

14) बन्दीगृह में महिला बन्दियों को आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाने एवं रिहाई के बाद समाज में पुनर्वास करने हेतु उनकी योग्यतानुसार प्रशिक्षण दिया जायेगा, जैसे मिट्टी के बर्तन बनाना, हाथकरधा बुनाई, होजरी, खिलौना बनाना, लेख–सामग्री, बागवानी, फल परिरक्षक आदि। इसके अतिरिक्त, बचत योजनाओं, रोजगार केन्द्र, स्वास्थ्य केन्द्र, डाकखाने आदि के प्रयोग का सामाजिक दृष्टि से उपयोगी ज्ञान दिया जायेगा।

15) महिला बन्दियों को रिश्तदारों, परिवारजनों से उचित बार मिलने एवं पत्र लिखने की छूट होना चाहिये।

16) अनपढ़ महिला बन्दियों को पढ़ने के लिये प्रेरित करना चाहिये।

17) महिला कैदियों को मनोरंजन की सुविधाओं, पुस्तकें एवं पाठन सामग्री की उचित व्यवस्था कराना एवं उन्हें इनका प्रयोग करने के लिये प्रोत्साहित भी करना चाहिये। इसके अतिरिक्त, उनकी रूचि के अनुसार गायन, संगीत, नाटक व चित्रकारी के व्यवसायों के लिये भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।

18) बन्दीगृह में अभ्यस्त अपराधी, वैश्याओं या वैश्यालयों के मालिक को अन्य बन्दियों से पृथक तथा किशोरी या बालिकाओं को जाने की पृथक व्यवस्था होना चाहिये।

19) बन्दी महिलाओं के साथ बच्चे भी हो तो बन्दीगृह प्राधिकारी को उन पर विशेष ध्यान देना चाहिये तथा बच्चे के हितार्थ न्यायालय से उपयुक्त आदेश लेना चाहिये।

20) महिला बन्दियों के सम्बन्ध में यदि सम्भव हो तो पैरौल, परिवीक्षा या उदारात्मक व्यवहार की अन्य गैर संस्थागत कार्य विधि का व्यापक रूप से प्रयोग किया जायेगा।

21) किसी भी महिला बन्दी को अनुशासन के नाम पर बेड़िया या हथकड़ी नहीं पहनाई जायेगी और न ही उन्हें किसी प्रकार का शारीरिक दण्ड दिया जायेगा तथा उसे अलग एकान्त में नहीं रखा जायेगा।

22) महिला कैदियों की शिकायतों को सुनने व दूर करने के लिये बन्दीगृह में शिकायत पेटी रखी जायेगी तथा बन्दीगृह कर्मचारियों से शिकायत होने पर उनके विरूद्व साक्ष्य हेतु शिकायतकर्ता को परेशान नहीं किया जायेगा।

23) महिला बन्दी की रिहाई से पूर्व उसके परिवारजनों या रिश्तेदारों को सूचित किया जाना चाहिये तथा किसी के न आने पर आरक्षी द्वारा उसे भेजा जायेगा।

24) महिला बन्दी की दण्डावधि पूर्ण होने के पश्चात पुनर्वास की व्यवस्था करने के लिये स्वयं सेवी संस्था द्वारा आवश्यक कदम उठाये जायेगें।

25) महिला बन्दीगृहों में महिला कर्मचारियों को ही रखना चाहिये, विशेषकर महिला बन्दियों से सम्बन्धित कार्यों की देखरेख करने के लिये। अधिमानतः बन्दीगृह सेवा से राज्य मुख्यालय में एक महिला उपमहानिरीक्षक होगी।

26) महिला बन्दियों के कल्याण एवं उन्हें निःशुल्क विधिक सहायता एवं सलाहकार की व्यवस्था होना चाहिये।

(5) सोशयो–डेमोग्राफिक प्रोफाइल एण्ड फेक्टर्स एसोसियेट टू नेचर ऑफ क्राईम ऑफ प्रिजनर्स इन सेन्टल जेल ऑफ कोटा (राजस्थान) –

(Socio-Democgraphic profile and factors associate to nature of crime of prisoners in central jail of kota (Rajesthan))

यह अनुसन्धान अपराध की एक मानव निर्मित अवधारणा है। अपराध एवं इस अवधारणा का विभिन्न सामाजिक–जनसांख्किीय कारकों पर अक्सर चर्चा का विषय सदैव बना रहा है। अपराध प्रकृति में विविध एवं बढ़ती हुई आवृत्ति के साथ व्यापक स्तर पर फैला हुआ है। इस अध्ययन का उद्देश्य सामाजिक–जनसांख्यिकीय प्रोफाइल को इंगित करना है और इनके मध्य सम्बन्धों का पता लगाना एवं इनकी अपराधिक व्यावहारिक प्रकृति का मापदण्ड जानना था।

इस अनुसन्धान के परिणामतः युवा अवस्था में अपराधियों में अधिकांश

पुरूष (55.80 प्रतिशत) थे, तथा 20–40 वर्ष की आयु के पुरूष (74 प्रतिशत) तथा विवाहित (64 प्रतिशत) तथा (57 प्रतिशत) दण्ड ग्रामीण पृष्ठभूमि के थे एवं 66 प्रतिशत बन्दी निम्न एवं निम्न मध्य सामाजिक आर्थिक स्थिति के थे। 44 प्रतिशत बन्दी अनपढ़ थे। हत्या के अपराध की श्रेणी में आधे, अपराध मकसद से करने वालों में 50 प्रतिशत आपसी झगड़ा और पारिवारिक प्रतिशोध एवं झगड़े वाले थे, जमीन के झगड़े के मकसद के 22.06 प्रतिशत थे। इसके अतिरिक्त 60.5 प्रतिशत बन्दी अपराध के अनुसार हिंसक श्रेणी के थे।

इस अनुसन्धान में निष्कर्ष के रूप में कहा गया था कि नौकरी उन्मुख शिक्षा प्रणाली को मजबूत किया तथा बचपन से IEC के माध्यम से मजबूत पारिवारिक मूल्यों को शामिल किया गया था।

(6) सोशयो–इकोनॉमिक प्रोफाइल ऑफ वुमेन प्रिजनर्स (महिला कैदियों की सामाजिक –आर्थिक स्थिति – एस. नागेश कुमारी)

अनुसन्धान के अनुभव हमें बताते हैं कि पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं के व्यक्तित्व उपलब्धियों, निर्भरता एवं प्रोत्साहन तथा ऐसे ही अन्य व्यवहारों में कोई अन्तर नहीं आता, परन्तु आर्थिक विकास में उनकी भागीदारी नगण्य है। इस अध्ययन में वस्तुस्थिति का ज्ञान करवाकर महिला बन्दियों के सामाजिक व आर्थिक पुनर्वास की नीतियों की जानकारी दी गई।

इस अध्ययन को तमिलनाडु में किया गया था। अतः इसके निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये –

(1) 22% महिला बन्दी 31–35 वर्ष की आयु की थीं।

(2) 53% महिलायें अशिक्षित थीं।

(3) 92% महिलायें हिन्दू सम्प्रदाय की थीं।

(4) 64% महिलायें पिछड़े वर्ग की थीं।

(5) 79% महिलायें ग्रामीण अंचलों की थीं।

(6) 61% महिलायें बन्दियों के परिवार में 5–8 सदस्य थे।

(7) 55% महिलायें बन्दी विवाहित थीं।

(8) 50% महिलायें बन्दी मजदूर वर्ग की थीं।

इन महिला बन्दियों द्वारा अफीम की तस्करी, राशन चावल की चोरी के अपराध में पकड़ी गई थीं। इन अपराधों के कारण गरीबी व धन की आवश्यकता थी। अधिकतर पहले अपराध के कारण ही बन्दीगृहों में थीं। इनको दण्डावधि समाप्त होने के पश्चात् घर–परिवार एवं आर्थिक समस्याओं की चिंता थी।

इन महिला अपराधियों के पुनर्वास के उपाय के रूप में वह सुझाव दिये गये कि नकारात्मक सोच को दूर करने के लिये उनकी काउंसलिंग की आवश्यकता है। भविष्य में उन्हें सुधारने हेतु आवश्यक है कि उन्हें सामाजिक, आर्थिक, नैतिक व भावनात्मक दृष्टि से मजबूत बनाना होगा, जिसके लिये उन्हें उद्योग–धन्धे आदि का प्रशिक्षण दिया जाता है जिससे वे दण्डावधि पूर्ण करने के पश्चात् आत्मनिर्भर हो पायें तथा अपराधों की पुनरावृत्ति न करें।

(7) 6 अक्टूबर, 2018 में बन्दी महिलायें एवं न्याय के लिये पहुँच विषय पर पुलिस अनुसन्धान एवं विकास ब्यूरो ने हिमाचल प्रदेश के जेल विभाग में प्रथम क्षेत्रीय सम्मेलन का आयोजन किया था।

इस सम्मेलन का उद्देश्य सभी स्तर के बन्दिगृह कर्मियों को राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न संचालनात्मक एवं प्रशासनिक मुद्दों पर न केवल उनके अपने समकक्षों के साथ बल्कि इस क्षेत्र में राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध अन्य विशेषज्ञों के साथ महत्वपूर्ण विचारों को साझा करने हेतु मंच उपलब्ध कराया एवं बन्दीगृह की स्थिति को सुधारने में वर्तमान चुनौतियों के समाधान हेतु वर्तमान प्रशासन कार्यप्रणाली में सुधार के लिये विशेष मानदण्डों एवं बेहतर प्रणालियों में सुधार के लिये विशेष मानदण्डों एवं बेहतर प्रणालियों का चिह्नित करना था।

इस सम्मेलन में मुख्य रूप से निम्नलिखित विषयों को विचार–विमर्श के लिये चुना गया था–

(1) महिला बन्दियों के लिये प्रजनन स्वास्थ्य का अधिकार राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मापदण्ड।

(2) महिला बन्दियों की स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यकतायें।

(3) महिला बन्दियों एवं उनके बच्चों का स्वास्थ्य, कौशल, पुनर्वास एवं पुनर्मिलन।

(4) महिला बन्दियों पर केन्द्रित जेल सुधार संरचनात्मक, प्रबन्धकीय एवं वैज्ञानिक मुद्दे तथा वैश्विक मानदण्डों से तुलना;

(5) अपराधियों के लिये न्यूरो–अपराध विज्ञान कार्यक्रम;

(6) जेल सुधार।

इन सम्मेलनों से होने वाले लाभ हैं– इसके आयोजन से सम्पूर्ण देश में प्रशासन से सम्बन्धित सुधारात्मक, अनुसन्धान एवं विकासात्मक क्रियाकलापों को बढ़ावा मिलेगा तथा विभिन्न सुधारात्मक कार्यों द्वारा प्रशासन के बीच वैज्ञानिक पहुँच विकसित करने की दिशा में मार्ग प्रशस्त होगा।

अप्रैल 2018 में महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने 'जेल में महिलायें'

विषय पर रिपोर्ट जारी की थी जिसका उद्देश्य महिला बन्दियों के विभिन्न अधिकारों के बारे में जानकारी प्रदान करना एवं उनकी समस्याओं पर विचार करना और उनका सम्भव समाधान करना था।

इस रिपोर्ट में 134 सिफारिशें की गई हैं, ताकि बन्दीगृहों में बन्द महिलाओं के जीवन में सुधार लाया जा सके। गर्भवती महिला तथा बन्दीगृह में बच्चे का जन्म, मानसिक स्वास्थ्य, विधि सहायता, समाज के साथ एकीकरण एवं उनकी देखरेख आदि जिम्मेदारियों पर विचार के लिये ये सिफारिशें की गई हैं। इसी रिपोर्ट में आगे जेल मैन्युअल, 2016 में विभिन्न परिवर्तन किये जाने का सुझाव दिया है जिससे इसे अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप बनाया जा सके।

वर्ष 2016 की राष्ट्रीय अनुसन्धान रिकार्ड ब्यूरो द्वारा संचालित सूचना के अधिकार, 31 दिसम्बर 2016 की स्थिति के आधार पर ज्ञात होता है कि देश के विभिन्न बन्दीगृहों में कुल 18,498 महिलायें बन्दी थीं जिसमें से 1649 महिला बन्दी बच्चों के साथ बंद थीं। छत्तीसगढ़, रगोवा, उत्तरप्रदेश, पश्चिम बंगाल एवं राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली के बन्दीगृहों में महिला बन्दियों की संख्या क्षमता से अधिक थी।

पुलिस अनुसन्धान एवं विकास ब्यूरो द्वारा आयोजित इस सम्मेलन के निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि यह सम्मेलन महिला बन्दियों की स्थिति में सुधार लाने के साथ–साथ ही उनकी उचित न्याय तक पहुँच बढ़ाने के क्रम में बन्दीगृह सुधार एवं पुनर्वास कार्यक्रम का बेहतर कार्यान्वयन सुनिश्चित करने में मददगार होगा।

(8) वर्ष 2004 में बन्दीगृह में महिला बन्दियों के बच्चों पर उत्तरप्रदेश में योजना आयोग द्वारा अध्ययन कर रिपोर्ट में कुछ निम्नलिखित सिफारिशें की–

बन्दीगृह में महिला बन्दियों के साथ शिशु भी रह रहे हैं, परन्तु माताओं के साथ बन्दीगृह में रह रहे शिशुओं की परवरिश राज्य के लिये चिंता का विषय बन गया है क्योंकि बन्दीगृहों रह रहे शिशु या बालक अपने मूल अधिकारों से वंचित हो जाते हैं क्योंकि वह बच्चों की परवरिश के लिये उपयुक्त स्थान नहीं है।

इस अध्ययन में बदलते परिवेश में महिलाओं द्वारा किये गये अपराधों पर ध्यान केन्द्रित किया है। भारत में वर्ष 1996 में महिलाओं की गिरफ्तारी का प्रतिशत 4.7 था जो अपराधिक रिपोर्ट अखिल भारतीय समिति द्वारा प्रस्तुत की गई थी। इस समय तक इसमें काफी वृद्धि हो चुकी है। इस अध्ययन में यह भी ज्ञान हुआ कि बन्दीगृह में महिला की स्थिति कुछ अच्छी नहीं है तथा उनके

साथ रह रहे शिशु या बालक उचित शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, मनोरंजन आदि की सुविधाओं से वंचित रह जाते हैं। बन्दीगृह में रह रही महिला अपराधियों की आर्थिक स्थिति भी कमजोर थी।

इस अध्ययन की रिपोर्ट में कुछ प्रमुख सिफारिशें प्रस्तुत की गई –

1) शिशुओं व बालकों को ऐसे स्थानों से दूर रखना चाहिये जो उनके विकास में बाधक हों;

2) बच्चों के साथ वाली महिलाओं को पृथक या कम भीड़ वाली बैरक में रखना चाहिये।

3) बच्चों के लिये अलग से एवं पोषण युक्त भोजन की व्यवस्था एवं उनके लिये फल, मिठाई या बेबी फूड की पृथक व्यवस्था होना चाहिये।

4) महिला बन्दियों को उनके बच्चें के लिये बिस्तर, वस्त्र, चद्दर व अन्य आवश्यक सामग्री उपलब्ध करायी जानी चाहिये।

5) यदि माता को गम्भीर या संक्रमित बीमारी हो तो बच्चे की देखरेख के लिये उचित व्यवस्था करना चाहिये।

6) प्रत्येक बन्दीगृह में आंगनवाड़ी, प्राथमिक शिक्षा केन्द्र, मनोरंजन आदि की उचित व्यवस्था होना चाहिये और न होने पर यह व्यवस्था स्थानीय एन.जी.ओ. से करवायी जाये।

7) महिला बन्दियों को (शैक्षणिक रूप से) सशक्त करने के लिये कॉपी, पेन्सिल, स्लेट आदि उपलब्ध कराया जाना चाहिये व आगे पुनर्वास के लिये व्यावसायिक शिक्षा, प्रशिक्षण प्रदान कर तैयार करना चाहिये।

8) महिलाओं को 65 वर्ष की आयु पूर्ण कर लेने पर रिहा कर कारावास के दण्ड से छूट देना चाहिये।

(9) जेल सुधार पर सलाहकार समिति की रिपोर्ट

भारत के पुलिस व अनुसन्धान विकास ब्यूरो में गठित जेल सुधार पर सलाहकार समिति के कार्यों पर 16 नवम्बर 1995 को गृह मंत्रालय के कार्यालय में ज्ञापन सं. एन.जी.ओ. VII–110018/14/92/जी.पी.एफ.–IV में निम्नलिखित सिफारिशों/अनुशंसाओं को शामिल किया गया–

(1) पुलिस अनुसन्धान एवं विकास ब्यूरो प्राधिकारी बन्दीगृह के प्रबन्धन, अनुसन्धान की प्राथमिकताओं को समझें/बन्दीगृह के सुधार कार्यों

का अध्ययन, जो ब्यूरो एवं अन्य मान्यता प्राप्त संस्थानों तथा राष्ट्रीय स्तर पर सुधारात्मक प्रशासन के क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तियों के सहयोग से अनुसन्धान में सहायता करने और यदि आवश्यक हो तो इस क्षेत्र में परामर्शदाता नियुक्त करने में सहायता करेंगे।

(2) यह ब्यूरो बन्दीगृह सुधार के लिये अन्य संस्थाओं एवं आई.आई.सी.ए. के साथ सम्पर्क स्थापित कर एवं अनुसन्धान अध्ययन/सर्वेक्षण के लिये दिशानिर्देश तैयार करेगा तथा राज्य सरकारों से विचार–विमर्श कर सम्बन्धित सूचनाओं का प्रसार करेगा।

(3) ब्यूरो सभी बन्दीगृहों के कर्मचारियों को एक समान प्रशिक्षण मॉड्यूल तैयार करने के लिये दिशानिर्देश तैयार करेगा। इसके लिये वर्तमान परिदृश्यों को ध्यान में रखकर तकनीकी उन्नयन एवं जेल प्रशासन को प्रभावित करने वाले पहलुओं की समीक्षा करेगा।

(4) सलाहकार समिति आवश्यकतानुसार प्रभावी कार्यकलापों के लिये बैठकें करेंगी।

बन्दीगृहों के सुधारों के लिये विभिन्न समितियों द्वारा किये गये निरीक्षण पर निम्नलिखित टिप्पणियाँ की गई हैं:–

1) अधिकतर बन्दीगृहों में महिलाओं के लिये पृथक स्थान की व्यवस्था तो की गई है परन्तु सिर्फ महिला बन्दीगृह कम ही हैं।

2) बन्दीगृहों में अधिकतर बन्दी विचाराधीन बन्दी होते हैं, इन बन्दियों में से कई बन्दियों को दण्ड मिलने से पूर्व ही उनकी बन्दीगृह में रहने की अवधि अधिक होती है।

3) लघु अपराधों के लिये विचाारधीन बन्दियों के लम्बित वादों के लिये लोक अदालत नहीं लगाई जाती और न ही उनके प्रकरणों का शीघ्र निराकरण किया जाता है।

4) बन्दियों के वस्त्रों, आवास, पौष्टिक आहार व मनोरंजन की सुविधाओं में सुधार की आवश्यकता थी तथा अधिकतर बन्दीगृह में महिलाओं के लिये रसोई घर व्यवस्था नहीं थी, जो कि होना आवश्यक है।

5) कई बन्दीगृहों में पूर्णकालिक चिकित्सा अधिकारी नहीं थे और न ही महिलाओं के पृथक परामर्श कक्ष। महिलाओं हेतु निःशुल्क विधिक सहायता के लिये विधि सहायता कक्षों को सुदृढ़ करने की आवश्यकता है।

6) इसके अतिरिक्त, महिला अपराधियों हेतु जमानत प्रक्रिया आसान बनाने की आवश्यकता है।

7) अधिकतर बन्दीगृहों में व्यावसायिक प्रशिक्षण, प्राथमिक शिक्षा, विधि साक्षरता, निःशुल्क विधि सहायता का अभाव था तथा कुछ बन्दीगृहों में स्वयं सेवी संस्थान (एनजीओ) शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण एवं परामर्श सेवायें देने में बन्दीगृह प्राधिकारियों की सहायता कर रहे हैं।

8) बन्दियों के बन्दीगृह से रिहा होने के पश्चात् या उत्तरवीक्षा में सामाजिक लांछन के कारण परिवार में लौटने की अनुमति नहीं दी जाती है और न ही उन्हें उचित परामर्श, सहायता एवं पुनर्वास के लिये उचित सुविधायें दी जाती हैं।

9) कुछ बन्दीगृहों में दोषसिद्ध दण्ड प्राप्त बन्दी एवं विचाराधीन बन्दी बन्दीगृह में एक साथ रखे जाते हैं तथा कुछ बन्दीगृहों में तो बीमार या गम्भीर संक्रामक रोग से ग्रस्त बन्दियों को भी अलग नहीं रखा जाता है।

10) कई बन्दीगृहों में बन्दियों को जमानत मिलने पर भी आसानी से रिहा नहीं किया जाता है तथा महिला बन्दियों को दण्ड से पूर्व रिहाई कराने का प्रयास ही नहीं किया जाता है एवं महिला बन्दीगृहों में पुरूष कर्मचारियों को भी तैनात किया जाता है।

(10) 17 व 18 मई वर्ष 2001 में राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा सेमीनार आयोजित किया गया था। इस सेमिनार में जस्टिस अय्यर की रिपोर्ट पर विचार–विमर्श किया गया, जिसमें कुछ और नई सिफारिशें महसूस की गई जो निम्नलिखित हैंः–

1) बन्दीगृह एवं पुलिस थानों में महिलाओं को उनकी शारीरिक आवश्यकता भिन्न होने से उनके लिए उसी प्रकार की व्यवस्था की जानी चाहिये।

2) पुलिस थानों पर भी महिला बन्दियों के सम्मान व अधिकारों के लिये जेल अधिकारियों को बन्दीगृह के नियमों का पालन करना आवश्यक है। वर्तमान में आवश्यकता है कि नियमों का सिद्धान्ततः पालन किया जाये न कि नये–नये नियमों को बनाने की।

3) बन्दीगृह में बन्दियों की क्षमता से अधिक संख्या में भीड़ की तरह, कुपोषण व अपर्याप्त चिकित्सीय सुविधाओं के कारण भी बन्दीगृहों की अभिरक्षा में मौतों की संखा में वृद्धि हो रही है।

4) कुछ शिशु जिनका जन्म स्थल जेल है, वे सलाखों के पीछे ही बड़े होते हुये पाये जाते हैं। देश में ऐसा कोई विधिक नियम नहीं है कि जो उनकी देखरेख करे और न तो बन्दीगृहों में क्रेच की सुविधायें हैं। इन शिशुओं की देखरेख व शिक्षा के लिये दिशानिर्देशों की कमी है।

5) बन्दीगृहों के लिये बजट आवंटित करते समय महिलाओं की विशिष्ट आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाना चाहिये।

6) बन्दीगृहों में न केवल दण्डावधि व्यतीत कर रहे बन्दी को बल्कि सभी प्रकार के बन्दियों के सुधार हेतु व्यावसायिक प्रशिक्षण एवं विपश्यना जैसे ध्यान कार्यक्रमों में सभी को भाग लेने के लिये प्रेरित किया जाना चाहिये तथा सभी प्रकार के कार्य एवं कौशल सीखने के लिये प्रेरित किया जाये।

7) बन्दीगृह कर्मचारियों के प्रोत्साहन के लिये पदोन्नति के उचित अवसर दिये जायें क्योंकि ये बन्दियों में सुधार लाने में मुख्य कारक हैं। आई.जी. की अध्यक्षता में अलग से जेल कैडर हो।

8) बन्दीगृहों में विधिक पंचायतें होनी चाहिये। भारतीय कारगार अधिनियम, 1894 तथा पुलिस अधिनियम की समीक्षा कर संशोधन किया जाये।

इन प्राप्त रिपोर्टों के आधार पर कहा जा सकता है कि किसी भी देश में वहाँ के समाज का सभ्य होने की झलक उनके बन्दियों को देखने से भी मिलती है। मानव अधिकारों की दुहाई देने वाले सभ्य समाज यदि अपने बन्दियों के प्रति सहानुभूति व सद्भाव नहीं रख सकते हैं तो उसे सभ्य नहीं माना जा सकता। यह तभी सम्भव है जब बन्दियों के भी मानवाधिकारों को स्वीकार किया जाये।

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में भी किसी व्यक्ति को प्रताड़ना या क्रूरता, अमानवीय या अमानवीय उपचार या दण्ड नहीं दिये जाने का उल्लेख किया गया है। भारतीय संविधान में भी प्रत्येक नागरिक को मानवोचित सम्मान के साथ जीने का अधिकार दिया गया है।

हालांकि, बन्दीगृह व्यवस्था में सुधारों का मुद्दा लम्बे समय से उठ रहा है। पुराने बन्दीगृहों के नियमों को बदलने के प्रयास की बात लगभग एक सदी से उठती आ रही है। इनमें कई बार ऐसे निर्णय भी किये गये जो मील का पत्थर भी बने। परन्तु, फिर भी इनमें सुधार की अभी भी आवश्यकता है।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग द्वारा वर्ष 1994–95 की वार्षिक रिपोर्ट में जेलों की स्थितियों के अन्तर का उल्लेख किया गया है जैसे एक ओर तिहाड़

बन्दीगृह में उसकी क्षमता से अधिक बन्दियों की भीड़ थी, वहीं दूसरी ओर हैदाराबाद के खुले बन्दीगृहों में बहुत कम बन्दी थे। एक ही राज्य में कुछ बन्दीगृहों में भीड़ तो कहीं सुविधाओं का अभाव था। आयोग ने निरीक्षण के दौरान पाया कि केन्द्रीय बन्दीगृह, बेल्लोर में अपेक्षाकृत अधिक सफाई है तथा भोजन की उचित व्यवस्था भी थी, वहीं दूसरी ओर कुछ बन्दीगृहों के वातावरण, हालात एवं खाने–पीने की व्यवस्था कुछ भी अच्छा नहीं था। इसी प्रकार, कहीं किशोर कैदियों को पृथक रखने की व्यवस्था थी तो वहीं दूसरी ओर हिंसा एवं अपराधों को रोकने की कोई व्यवस्था नहीं थी। कुछ जेलों में बन्दियों के प्रति सुधारात्मक उपाय किये जा रहे हैं और कुछ बन्दीगृहों में किये भी गये हैं।

(11) राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा बन्दीगृहों में महिला की स्थिति देखने हेतु बन्दीगृहों के निरीक्षणों की संक्षिप्त रिपोर्टः–

राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम; 1990 में आयोग द्वारा बन्दीगृहों या अभिरक्षा स्थानों, जहाँ महिलाओं को बन्दी या अन्य कारणों से हिरासत में रखा जाता है, का निरीक्षण किये जा सकने का प्रावधान है। आयोग के इस निरीक्षण द्वारा महिला बन्दी या अभियुक्त के जीवन स्थितियों में सुधार लाने हेतु सिफारिशें करना अपेक्षित है।

इस आयोग द्वारा देश के विभिन्न बन्दीगृहों का समय–समय पर निरीक्षण किया जाता है तथा बन्दीगृहों की स्थिति एवं जेल सुधार के किये सिफारिशें की गई हैं। न्यायाधीश अय्यर समिति (1986–87) की रिपोर्ट तथा वैधानिक एवं प्रशासनिक कोड का ड्राफ्ट व विधि आयोग की 135वीं रिपोर्ट के आधार पर भारतीय दण्ड संहिता में XXXIII अध्याय का ड्राफ्ट मुख्य रूप से शामिल है।

राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा किये गये निरीक्षण की इन रिपोर्टो द्वारा बन्दीगृह व महिलाओं की स्थिति की जानकारी मिल पाई तथा भारत में महिला बन्दीगृहों के निर्माण में वृद्धि हुई। आयोग के इस निरीक्षण द्वारा ज्ञात हुआ कि बन्दीगृहों से महिलाओं के किये स्वच्छ, सुरक्षित व स्वतन्त्र वातावरण की आवश्यकता है जिसके लिये महिला बन्दियों हेतु विशेष बन्दीगृहों के निर्माण की आवश्यकता है।

राष्ट्रीय महिला आयोग ने निरीक्षण के द्वारा यह पाया कि बन्दीगृहों में महिला बन्दियों में विचाराधीन बन्दियों की संख्या अधिक है। बन्दीगृह में कुल बन्दियों में से 70% महिला बन्दी विचाराधीन बन्दी हैं। निरीक्षण के दौरान कई ऐसे प्रकरण लम्बित पाये गये जिनमें कई वर्षों से निर्णय ही नहीं हो पाये हैं। यदि उनमें सही समय पर निर्णय हो जाते तो वे बहुत पहले दण्डावधि पूर्ण कर मुक्त भी हो गयी होती तथा निरीक्षण के दौरान यह भी पाया गया कि कई महिलाओं को छोटे–छोटे अपराधों के लिये अनावश्यक रूप से ही बन्दीगृह में रखा गया है।

सरकार को बन्दियों की इस स्थिति की तरफ ध्यान देना चाहिये तथा विचाराधीन बन्दियों की संख्या कम करने के लिये सम्यक उपाय करना चाहिये।

बन्दीगृह में बन्दियों की संख्या कम करने के लिये महिला विचाराधीन बन्दियों जिन्होंने लम्बित प्रकरण के दौरान बन्दीगृह में एक वर्ष पूर्ण कर लिया हो उन्हें रिहा कर देना चाहिये तथा न्यायाधीश द्वारा बन्दियों के छोटे–अपराधों के लिये शीघ्र जमानत या निजी मुचलके पर रिहा करने की व्यवस्था कर देना चाहिये।

बन्दीगृहों के सिद्ध दोष की तरह, विचाराधीन बन्दी को बन्दीगृह में कार्य करने की या अन्य सुविधायें नहीं दी जाती हैं, जो उनकी स्थिति बदतर कर देती है। इन विचाराधीन बन्दियों को भी कार्य व व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये। महिलायें पुरूषों की अपेक्षा अधिक अवसाद का शिकार होती हैं और उनके लिये काउंसलर या मनौवैज्ञानिक भी बहुत कम थे तथा गैर–सरकारी संगठनों की भूमिका भी बन्दीगृहों में कम ही थी। जिन महिलाओं के साथ बच्चे भी थे तो उन बन्दियों के शिशुओं या बच्चों को पर्याप्त सुविधायें भी नहीं दी जाती थी। बन्दीगृह प्रशासन को इस ओर ध्यान देना होगा।

बन्दीगृह में पुरूषों की अपेक्षा आजीवन कारावास से दण्डित महिलाओं की संख्या अधिक पायी गयी थी। निरीक्षण के दौरान यह भी पाया गया कि मनोरंजन की सुविधा या तो थी ही नहीं या थी तो बहुत कम। यहां तक की साबुन व सेनेटरी नेपकिन जैसी सुविधायें भी नहीं थीं और बैरकों में पंखों की भी उचित व्यवस्था नहीं थी।

आयोग में निरीक्षण के दौरान यह भी पाया गया कि कई जेलों में शिक्षित महिला बन्दी भी होती हैं जिनकी सेवा लेकर अन्य बन्दियों को शिक्षित किया जा सकता है।

राष्ट्रीय महिला आयोग के अधिदेश के अनुसार आयोग से अपेक्षा की जाती है कि वह किसी भी बन्दीगृह सुधारगृह, महिलाओं की संस्थानों या अभिरक्षा के अन्य स्थानों का, जहाँ महिलाओं को हिरासत में रखा जाता है, निरीक्षण करेगा या करवायेगा एवं उपचार की कार्यवाही के लिये प्रशिक्षण करेगा या करवायेगा आदि। निरीक्षण में बन्दीगृह में पायी गई कमियों पर अधिकारियों का ध्यान दिलवायेगा। **नवम्बर, 1999 में पेनल रिफार्म इंटरनेशनल (IPR)** एवं पेनल **रिफार्म एण्ड जस्टिस एसोसिएशन (PRAJA)** के सहयोग से राष्ट्रीय स्तर की कार्यशाला का आयोजन किया, जिसका उद्‌देश्य महिलाओं के विशेष सन्दर्भ में दाण्डिक न्याय के क्षेत्र में लाभकर व्यवहार का बढ़ावा देना था।

राममूर्ति बनाम कर्नाटक राज्य 1996 के वाद में उच्चतम न्यायालय के अनुशरण में भारत सरकार ने पुलिस अनुसन्धान व विकास ब्यूरो के महानिदेशक

की अध्यक्षता में नवम्बर, 2000 में अखिल भारतीय मॉडल मैनुअल समिति का गठन किया। पूरे देश में बन्दीगृह के कार्यों में एकरूपता बनाये रखने के लिये भारत में बन्दीगृह के पर्यवेक्षण एवं प्रबन्धन के लिये एक मॉडल तैयार किया गया।

यह मैनुअल जनवरी, 2004 में भारत सरकार द्वारा स्वीकृति प्राप्त होने के पश्चात् सभी राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों में परिचालित कर दिया गया। इस मैनुअल में बन्दीगृह सुधार सम्बन्धी अखिल भारतीय समिति द्वारा प्रस्तावित राष्ट्रीय नीति के मसौदे पर मॉडल तैयार करते समय उचित विचार किया गया था। इस मैनुअल के सन्दर्भ में, भारत सरकार ने जेल सुधार पर एक राष्ट्रीय नीति के पत्र का मसौदा तैयार करने के लिये पुलिस अनुसन्धान एवं विकास ब्यूरो की अध्यक्षता में एक उच्चाधिकार प्राप्त समिति का गठन किया तथा 01 दिसम्बर 2005 को सन्दर्भ शर्तों के साथ बन्दीगृह प्रशासन की निम्नलिखित स्थिति थी –

1) अधिनियम कानूनों की वर्तमान स्थिति पर समीक्षा करना एवं केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा जेल सम्बन्धी विधियों में आवश्यकता होने पर संशोधनों का सुझाव देना।

2) विभिन्न समितियों के द्वारा की गई सिफारिशों की समीक्षा करना एवं केन्द्र एवं राज्यों द्वारा कार्यान्वित की जाने वाली ठोस सिफारिशों को कम करना।

3) निम्नलिखित सन्दर्भों में इन सिफारिशों के कार्यान्वयन की स्थिति की समीक्षा करना–

(क) जेलों की भौतिक स्थिति –

(i) भीड़–भाड़ एवं जमाव,

(ii) बन्दियों की स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या;

(iii) अन्य मूलभूत सुविधायें;

(ख) बन्दियों की स्थिति :–

(i) विचाराधीन बन्दी;

(ii) दोष सिद्ध बन्दी;

(iii) निरूद्ध बन्दी;

(ग) सुधारक प्रशासन :–

(i) दोषियों/विचारणों के कल्याण के लिये कार्यक्रम;

(ii) रिहाई के बाद पुनर्वास;

(iii) समुदाय की भागीदारी;

(iv) कारावास के विकल्प के सम्बन्ध में सुझाव।

(घ) जेल कर्मचारी –

(i) जेल कर्मचारी का समग्र विकास;

(ii) प्रशिक्षण;

(ड) जेलों के आधुनिकीकरण एवं सुधारक प्रशासन से सम्बन्धित कोई अन्य मुद्दे।

समिति ने पुलिस विकास एवं अनुसन्धान ब्यूरो के मुख्यालयों एवं विभिन्न क्षेत्रीय कार्यशालाओं में दिये गये सुझावों पर विचार–विमर्श किया और इन सिफारिशों के मसौदे को सभी राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों में परिचालित कर दिया गया है और इसकी एक प्रति गृह विभाग को भेजी गई थी जिसमें प्रारूप नीति पत्र को अन्तिम रूप दिया जा सके, सर्वसम्मति से तैयार किया जा सके तथा गैर–सरकारी संगठन एवं अन्य सम्बन्धित सामाजिक संगठनों, जो सक्रिय रूप से जेल प्रबन्धन के मुद्दों में शामिल हैं, की सर्वसम्मति से तैयार की जा सके। इसके अतिरिक्त, पुलिस अनुसन्धान एवं विकास ब्यूरो ने इस दस्तावेज को और अधिक व्यावहारिक बनाने के लिये 3 नवम्बर, 2006 को आयोजित जेल सुधार सम्बन्धी सलाहकार समिति की बैठक में इस प्रारूप नीति के सम्बन्ध में पत्र लिखा।

अंततः पुलिस अनुसन्धान एवं विकास ब्यूरो ने बन्दीगृह सुधार पर इस मसौदे को अन्तिम रूप दिया है। पुलिस अनुसन्धान एवं विकास ब्यूरो ने बन्दीगृह सुधार की सलाहकार समिति एवं राज्यों द्वारा प्राप्त विचारों/सुधारों पर ध्यान केन्द्रित करते हुये विचार किया है, जो इस बन्दीगृह सुधार एवं सुधार प्रशासन की राष्ट्रीय शासन सम्बन्धी से सम्बन्धित अध्यायों के विस्तार से नीति पत्र पर प्रस्तुत किया जा रहा है।

भारत की न्याय समिति ने बन्दीगृहों में बढ़ती हुई जनसंख्या को नियन्त्रित करने हेतु भविष्य के लिये योजना 2022 रिपोर्ट का अवलोकन किया।

इस समिति के मुख्य निष्कर्ष एवं सरकार की सिफारिशें इस प्रकार हैं–

1) संसाधनों में वर्तमान समय के प्रयासों एवं प्रगति के बाद भी, बन्दीगृहों की सुरक्षा स्थिति गम्भीर रुप से बिगड़ी हुई है।

2) वर्तमान में जेल पुनर्वास के लिये अधिकतम अवसर नहीं है। उनके संचालन की निगरानी को सक्षम करने के लिये, सार्थक तरीके से रिपोर्ट किये जाने की आवश्यकता है, जो पुनर्वास के लिये

महत्वपूर्ण है।

3) वीआईपी बन्दियों के लिये, प्रणाली का उद्देश्य यह होना चाहिये कि अधिकांशतः सुरक्षित रूप से जल्द से जल्द समुदाय में पुनः प्रतिबंधित हो जाये। दण्ड की समीक्षा के एक भाग के रूप में, दण्ड देने से पूर्व विधायी समाधानों पर मंत्रालय से परामर्श नहीं करना चाहिये तथा बन्दियों को दिये गये अनिश्चित दण्ड में निश्चितता लाना चाहिये।

4) प्रिजन स्टेट ट्रान्सफॉर्मेशन प्रोग्राम पर प्रगति के दौरान पुरानी पद्धति जो कार्य नीति के अनुसार कार्य नहीं कर रही है, के लिये नई नीति का स्वागत हो। समिति ने सिफारिश की है कि 2030 परियोजना अपने न्याय के भाग के रूप में, मंत्रालय एक यथार्थवादी, उचित रूप से लागत वाली, दीर्घकालीन सम्पत्ति रणनीति विकसित करेगा, जो एक परिवर्तित बन्दीगृह की जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम बनाता हो।

निष्कर्षतः उपरोक्त बन्दियों एवं बन्दीगृह पर किये गये विभिन्न अध्ययनों से प्राप्त रिपोर्टो की सिफारिशों पर गम्भीरता से अमल किया जाना चाहिये। बन्दीगृह की स्थितियों में अमूल–चूल परिवर्तन किये जाते हैं।

◆ ◆ ◆

अध्याय – 13

उपसंहार

देश में या समाज में जब भी कोई अपराध घटित होता है तो पुलिस द्वारा उस अपराध का अन्वेषण कर अपराधी को गिरफ्तार करने का प्रयास किया जाता है। जब पु लिस के द्वारा किसी अपराधी को गिरफ्तार कर न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, तब इन पर अपराध साबित हो जाता है या विचारण काल तक उन्हें जेल भेजा जाता है, जहाँ उन्हें कैदी या बन्दी के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

भारत में भारतीय बन्दीगृह व्यवस्था भी भारतीय व्यवस्था के महत्वपूर्ण अंगों में से एक है। इन्हें कारागार या सुधारगृह या बन्दीगृह या जेल भी कहा जाता है। भारतीय बन्दीगृह व्यवस्था में दो प्रकार की जेल होती है– प्रथम साधारण जेल एवं द्वितीय विशेष जेल।

वर्ष 1929 में अन्तर्राष्ट्रीय दाण्डिक एवं सुधारागार आयोग ने बन्दियों के उपचार हेतु न्यूनतम मानक नियम बनाने के प्रयास किये जिन्हें सभी सदस्यों देशों में एक समान लागू करने का प्रस्ताव दिया गया था। हांलाकि, सभी देशों की पृष्ठभूमि में भौतिक, भौगोलिक एवं राजनीतिक भिन्नतायें होने से इसमें सफलता नहीं प्राप्त की जा सकी है। वर्ष 1949 में राष्ट्र संघ ने अपराध निवारण एवं बन्दियों के लिये न्यूनतम मानक नियम बनाने के लिये विशेषज्ञों की बैठक आयोजित की गई, जिसके परिणामस्वरूप जिनेवा में वर्ष 1955 में आयोजित अपराध निवारण एवं बन्दियों के उपचार सम्बन्धी नियमों का एक प्रारूप तैयार किया गया जिनके आधार पर बन्दीगृहों में सुधार किया जाना था एवं इसमें बन्दियों के पुनर्वास को अधिक महत्व दिया गया ताकि कारावास की अवधि के पश्चात् वे सामान्य नागरिक की भाँति जीवन बीता सकें। इसमें बन्दियों को अमानवीय दण्ड देने के स्थान पर मानवीय आधार पर उनका उपचार किये जाने पर बल दिया गया। अब तक अपराध निवारण एवं बन्दियों के उपचार सम्बन्धी बारह अधिवेशन विभिन्न स्थानों/देशों में आयोजित किये जा चुके हैं। भारत में भी वर्तमान में कई स्थानों पर बन्दीगृहों का आधुनिकीकरण किया जा रहा है।

पिछले वर्षों में अपराध, बन्दी, पुलिस, कारागार या बन्दीगृह आदि पर कई पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। इस पुस्तक में बन्दीगृह में रहने वाले बन्दियों एवं उनके कल्याण हेतु राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किये जा रहे कार्यों

एवं प्रयासों को बताने का प्रयत्न किया जा रहा है। साथ ही, इन बन्दियों को सरकार द्वारा निःशुल्क विधिक सहायताओं के बारे में भी विस्तृत रूप से बताने का प्रयास किया जा रहा है। इन सबकी जानकारी पुलिस, जेल प्रशासन, बन्दियों एवं समाज कल्याण विभागों तथा इनमें कार्यरत कर्मचारियों व अधिकारियों को हो होना आवश्यक है। इस समय इन विषयों का महत्व निरन्तर बढ़ रहा है।

अपराध एवं अपराधिक कार्य करना एक सामाजिक एवं मानवीय बुराई है, जो सम्पूर्ण समाज में विद्यमान है। अतः एक अपराध विहिन समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती है, क्योंकि अपराधिक कृत्य एवं अपराधों का सम्बन्ध मानव आचरण से है। यद्यपि अपराधिक कृत्यों को नियन्त्रित करने हेतु विधिक, सामाजिक एवं नैतिक प्रतिबन्धों से मानव के इस आचरण को नियन्त्रित करने का प्रयास किया जा रहा है, परन्तु इस पर पूर्ण रूप से नियन्त्रण कर पाना सम्भव नहीं है।

अपराध के बाद अपराधी को पकड़ कर बन्दीगृह में रखना एवं जब तक उसका मामला विचारण में है तब तक उसे बन्दीगृह में उसे प्राप्त होने वाली विधिक सहायता का ज्ञान होना भी आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, जिन व्यक्तियों पर अपराध साबित हो जाता है और उसे दण्ड मिलने के पश्चात् उसे जब बन्दीगृह में रखा जाता है तब उसे वहाँ रखने का उद्देश्य उसे प्रताड़ित करना नहीं बल्कि उसे सुधारना होता है। इस समयावधि में उसे सुधारने का प्रयास किया जाता है। इस हेतु सरकार द्वारा कई प्रयास किये जा रहे हैं। बन्दियों के कल्याण हेतु सरकार द्वारा कई योजनायें बनाई गई हैं, जिन्हें बन्दी कल्याण भी कहा जा सकता है।

समाज में व्याप्त विधि के द्वारा किसी या किन्हीं व्यक्तियों के द्वारा किये जाने वाले भिन्न–भिन्न के प्रकार अपराधों के लिये भिन्न–भिन्न प्रकार के दण्डों को निश्चित किया गया है। वर्तमान समय में प्रशासन द्वारा यह प्रयास किया जा रहा है कि जिन अपराधियों को स्वयं के किये गये अपराध का पश्चाताप हो रहा है और उम्मीद है कि वे पुनर्वास करना चाहते हैं तो से सुधारात्मक एवं उपचारात्मक पद्धति के द्वारा पुनः समाज में पुनर्वास कराने हेतु प्रयास किया जाता है।

भारत के सन्दर्भ में न्यायिक दण्डादेश के विवेचन के आधार पर माना जा सकता है कि भारत में न्यायिक दण्डादेश भारतीय दण्ड विधि के उपबन्धों की सीमाओं के अन्तर्गत ही प्रशासित होता है।

बन्दीगृह–व्यवस्था के सन्दर्भ के लिये कहा जा सकता है कि बन्दीगृह में दण्डावधि व्यतीत कर रहे अधिकांश बन्दी की इच्छा तो दण्डावधि पूर्ण करने के

पश्चात् समाज में पुनः सामान्य नागरिक की भाँति जीवन व्यतीत करने की होती है तथा कुछ बन्दी दण्डावधि पूर्ण करने के पश्चात् भी अपराधिक गतिविधियों में रहना चाहते है, वे पुनः अपराधों की ओर ही जाते हैं, क्योंकि वे लोग स्वभाव एवं व्यावहारिक रूप से समाजविरोधी भावना के होते हैं।

बन्दीगृह में रह रहें बन्दियों के भी मानव अधिकार होते हैं जिनका ज्ञान उन्हें नही होता है। उन्हें इस ज्ञान की जानकारी होना आवश्यक है। एक बार जेल में जाने पर व्यक्ति के जीवन पर लांछन लगने लगता है, उसे कई बार समाज से बहिष्कृत किया जाता है, जिससे वह पुनः सामान्य जीवन जीने में कठिनाई महसूस होती है। बन्दीगृह व्यवस्था का मुख्य लक्ष्य सुधार योग्य बन्दियों को पुनर्वास की सुविधायें उपलब्ध कराना है और उन बन्दियों को सम्भव हो तो पैरोल पर या सदाचार पर छूट कर अस्थायी रूप से छोड़ना चाहिये या परिवारजनों व सम्बन्धियों से मिलने के अधिक अवसर दिये जाने चाहिये जिससे उनका परिवार से सम्पर्क बना रहे तथा उन्हें भी परिवार की समस्याओं की जानकारी हो सके और वे शीघ्र ही दण्डावधि पूर्ण करने के लिये सद्व्यवहार करें, जिससे उन्हें शीघ्र ही गृहस्थ जीवन जीने को मिले।

बन्दीगृह में प्रत्येक बन्दी चाहे वह विचाराधीन हो या दण्डित हो, दोनों अवस्था में बन्दी को दिये गये दण्ड के अतिरिक्त किसी भी अधिकार से वंचित नहीं किया जायेगा। इन्हें बन्दीगृह के भीतर भी सामान्य रूप से जीवन जीने का अधिकार है।

बन्दियों को सुधारने के लिये खुले बन्दीगृहों, पैरोल, परिवीक्षा, बोस्टर्ल, आदि की भी व्यवस्था की गई है जिससे वे पुनः समाज में उनकी पुनर्स्थापना सरलता से हो सके। इसके अतिरिक्त, क्षमादान, अनियत दण्डादेश व दण्डों का लघुकरण की भी व्यवस्था है। इनके उपयोग से कुछ सफलता तो मिली है, परन्तु अपेक्षाकृत कम है। इसके लिये अपराधियों के अन्दर सुधरने की इच्छा तथा साथ ही जागरूकता की कमी भी है।

भारत में जेलों का इतिहास बहुत पुराना है। समय–समय पर मीडिया व साहित्य ने इसमें भूमिका निभायी है। जेलों की स्थिति को साहित्य, कविताओं या फिल्मों द्वारा लोगों को वहाँ की स्थिति से अवगत कराया गया है। इसके अतिरिक्त, बन्दियों की स्थिति एवं बन्दीगृह व्यवस्था सुधारने के लिये कई समितियों का भी गठन किया गया है।

वर्तमान समय में बन्दीगृह में दण्ड भोग रहे बन्दियों को सुधारने के लिये प्रशासन एवं समाज सेवी संस्थाओं के द्वारा प्रयास किये जा रहे हैं, जिससे कि वे भविष्य में समाज में उनका पुनर्वास हो सके।

वर्तमान समय में सरकार के बन्दियों की स्थिति को देखते हुये बन्दी कल्याण हेतु कई सुविधायें प्रदान कर दी गई है एवं उन्हें कई निःशुल्क विधिक सेवायें भी प्रदान की गई हैं। इसके प्रति लोगों को जागरूक कर तथा बनाये गये अधिनियमों का कड़ाई से पालन किया जाये तो बन्दी कल्याण व बन्दियों का पुनर्स्थापना सम्भव हो सकती है।

◆ ◆ ◆

सन्दर्भ सूची

1. देखें, ओपेनहेमरः रे.शनल ऑफ पनिशमेंट, पृ. क्र. 8
2. अपराध, दण्ड प्रशासन एवं प्रपीड़नशास्त्र, डॉ. ना. वि. परांजपे, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन, सप्तम संस्करण, 2012, पृ. क्र. 3–4
3. देखें, क्रिमिनालॉजी एण्ड पेनालॉजी, जे. एल. गिलिन,, तृतीय संस्करण, पृ. क्र. 6
4. गेरोफेलो– क्रिमिनोलॉजी (1914) पृ. सं. 59
5. डॉ. ना. वी. पंराजपे अपराधशास्त्र, दण्डशास्त्र एवं प्रपीड़नशास्त्र, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन,सप्तम संस्करण, 2012, पृ. क्र. 221
6. डॉ. ना. वी. पंराजपे अपराधशास्त्र, दण्डशास्त्र एवं प्रपीड़नशास्त्र, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन,सप्तम संस्करण, 2012, पृ. क्र. 212
7. डॉ. ना. वी. पंराजपे अपराधशास्त्र, दण्डशास्त्र एवं प्रपीड़नशास्त्र, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन,सप्तम संस्करण, 2012, पृ. क्र. 214
8. देखें, वेस्टमार्क ई. : दि ओरिजिन एण्ड डेवलमेंट ऑफ मॉरल आइडियाज़, पृ. क्र. 169
9. देखें, एम.जे. सेठना : सोसाइटी एण्ड क्रिमनिल, (1964), पृ. क्र. 208
10. देखें, रैकलेस, डब्ल्यू. सी. : दि क्राइम प्राब्लम, पृ. क्र. 487
11. डॉ. ना. वी. पंराजपे अपराधशास्त्र, दण्डशास्त्र एवं प्रपीड़नशास्त्र, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन,सप्तम संस्करण, 2012, पृ. क्र. 225
12. डॉ. ना. वी. पंराजपे अपराधशास्त्र, दण्डशास्त्र एवं प्रपीड़नशास्त्र, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन,सप्तम संस्करण, 2012, पृ. क्र. 287
13. डॉ. ना. वी. पंराजपे अपराधशास्त्र, दण्डशास्त्र एवं प्रपीड़नशास्त्र, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन,सप्तम संस्करण, 2012, पृ. क्र. 290
14. डॉ. ना. वी. पंराजपे अपराधशास्त्र, दण्डशास्त्र एवं प्रपीड़नशास्त्र, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन,सप्तम संस्करण, 2012, पृ. क्र. 264
15. डॉ. ना. वी. पंराजपे अपराधशास्त्र, दण्डशास्त्र एवं प्रपीड़नशास्त्र, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन,सप्तम संस्करण, 2012, पृ. क्र. 266

16. देखें, डॉ. ना. वी. पंराजपे अपराधशास्त्र, दण्डशास्त्र एवं प्रपीड़नशास्त्र, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन,सप्तम संस्करण, 2012, पृ. क्र. 373
17. डॉ. ना. वी. पंराजपे अपराधशास्त्र, दण्डशास्त्र एवं प्रपीड़नशास्त्र, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन,सप्तम संस्करण, 2012, पृ. क्र. 374
18. देखें, डॉ. ना. वी. पंराजपे अपराधशास्त्र, दण्डशास्त्र एवं प्रपीड़नशास्त्र, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन,सप्तम संस्करण, 2012, पृ. क्र. 376
19. देखें डॉ. ना. वी. पंराजपे अपराधशास्त्र, दण्डशास्त्र एवं प्रपीड़नशास्त्र, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन,सप्तम संस्करण, 2012, पृ. क्र. 378
20. देखें डॉ. ना. वी. पंराजपे अपराधशास्त्र, दण्डशास्त्र एवं प्रपीड़नशास्त्र, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन,सप्तम संस्करण, 2012, पृ. क्र. 380
21. देखें डॉ. ना. वी. पंराजपे अपराधशास्त्र, दण्डशास्त्र एवं प्रपीड़नशास्त्र, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन,सप्तम संस्करण, 2012, पृ. क्र. 380
22. देखें डॉ. ना. वी. पंराजपे अपराधशास्त्र, दण्डशास्त्र एवं प्रपीड़नशास्त्र, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन,सप्तम संस्करण, 2012, पृ. क्र. 385
23. देखें के. डी. गौड़,क्रिमिनल लॉ एण्ड क्रिमिनोलॉजी, 2003, पृ. क्र. 316
24. देखें, डॉ. ना. वी. पंराजपे अपराधशास्त्र, दण्डशास्त्र एवं प्रपीड़नशास्त्र, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन,सप्तम संस्करण, 2012, पृ. क्र. 413
25. देखें, डॉ. ना. वी. पंराजपे अपराधशास्त्र, दण्डशास्त्र एवं प्रपीड़नशास्त्र, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन,सप्तम संस्करण, 2012, पृ. क्र. 416
26. एम. जे. सेठना, सोसाइटी एण्ड द क्रिमिनल (द्वितीय संस्करण), पृ.क्र. 295
27. डॉ. आर. के. सेन, पेनालाजी गोल्ड एण्ड न्यू, (1943) पृ. कृ. 12
28. देखें, डॉ. ना. वी. पंराजपे अपराधशास्त्र, दण्डशास्त्र एवं प्रपीड़नशास्त्र, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन,सप्तम संस्करण, 2012, पृ. क्र. 441–442
29. देखें, डॉ. ना. वी. पंराजपे अपराधशास्त्र, दण्डशास्त्र एवं प्रपीड़नशास्त्र, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन,सप्तम संस्करण, 2012, पृ. क्र. 454

◆ ◆ ◆

सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

1) डॉ. ना. वी. पंराजपे अपराधशास्त्र, दण्डशास्त्र एवं प्रपीड़नशास्त्र, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन,सप्तम संस्करण, 2012,

2) के. डी. गौड़,क्रिमिनल लॉ एण्ड क्रिमिनोलॉजी, 2003

3) एम. जे. सेठना, सोसाइटी एण्ड द क्रिमिनल (द्वितीय संस्करण)

4) डॉ. आर. के. सेन, पेनालाजी गोल्ड एण्ड न्यू, (1943) पृ. कृ. 1

5) क्रिमिनालॉजी एण्ड पेनालॉजी, जे. एल. गिलिन,, तृतीय संस्करण, पृ. क्र. 6

6) गेरोफेलो– क्रिमिनोलॉजी (1914) पृ. सं. 59

7) वेस्टमार्क ई. : दि ओरिजिन एण्ड डेवलमेंट ऑफ मॉरल आइडियाज़, पृ. क्र. 169

8) रैकलेस, डब्ल्यू. सी. : दि क्राइम प्राब्लम, पृ. क्र. 487

9) अर्जुनदेव, ह्यूमन राइट्स–ए सोर्स बुक, रा ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् प्रकाशन, संस्करण, 2001 द्वितीयक आंकड़े

10) अय्यर, वी.के. कृष्णा, “मास ऐक्सपल्सन एण्ड वायलेशन ऑफ ह्यूमन राइट्स”, आई.जे.आई.एल. वाल्यूम 13 संख्या 2 (अप्रैल–जून 1973)

11) अवस्थी, डॉ. एस. के. विविध अपराध अधिनियम, तृतीय संस्करण, जबलपुर लॉ हाउस, जबलपुर 2005

12) यू. एन. प्रवेन्शन ऑफ ह्यूमन वायलेंशन इन्टरनेशनल आर्गनाईजेशन, वाल्यूम(1973)

◆ ◆ ◆

पं. गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार योजना के अंतर्गत ब्यूरो द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम
1.	भारतीय पुलिस का इतिहास (अतीत काल से मुगल काल तक)	डॉ. शैलेन्द्र कुमार चतुर्वेदी
2.	भारत में केन्द्रीय पुलिस संगठन	श्री एच भीष्मपाल
3.	विकासशील समाज में समसामयिक पुलिस की भूमिका	प्रो. आर.एस. श्रीवास्तव
4.	ग्रामीण पुलिस–समस्याएं एवं समाधान	श्री रामलाल विवेक
5.	ग्रामीण पुलिस–समस्याएं एवं समाधान	श्री शंकर सरोलिया
6.	मादक पदार्थ–पुलिस की भूमिका	डॉ. हरीश नवल
7.	स्वातंत्रयोत्तर भारत में जनता का उत्तरदायित्व तथा पुलिस की भूमिका	डॉ. कृष्ण मोहन माथुर
8.	सामाजिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में पुलिस की भूमिका का उदभव	प्रो. मीनाक्षी स्वामी
9.	समग्र न्याय व्यवस्था में पुलिस का स्थान एवं भूमिका	ललितेश्वर
10.	पुलिस दायित्व एवं नागरिक जागरूकता	डॉ. सी. अशोक वर्धन
11.	मानवाधिकार एवं पुलिस एक समीक्षा	डॉ. जी एस वाजपेयी
12.	नई आर्थिक नीति एवं अपराध	डॉ. अर्चना त्रिपाठी
13.	महिलाएं और पुलिस	श्रीमती अमिता जोशी
14.	बाल–अपराध	श्री गिरिश्वर मिश्र
15.	न्यायायिक विज्ञान की नई चुनौतियां	डॉ. शरद सिंह
16.	नई सहस्त्राब्दि में पुलिस कैसी हो...	डॉ. अजय शंकर पांडेय
17.	सामुदायिक पुलिस व्यवस्था	डॉ. तपन चक्रवर्ती एवं डॉ. रवि अम्बष्ट
18.	भारत में मानवाधिकार–संरक्षण एवं पुलिस	डॉ. रामकृष्ण दत्त शर्मा एवं डॉ सविता शर्मा
19.	संगठित अपराध	श्री महेन्द्र सिंह आदिल
20.	पुलिस कार्यों का निजीकरण	डॉ. शंकर सरोलिया
21.	साइबर क्राइम	डॉ. अनुपम शर्मा
22.	अपराधों की रोकथाम और प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल	डॉ. निशांत सिंह

23.	अपराध पीड़ित महिलाओं की समस्याएं	डॉ. उपनीत लाली एवं डॉ. ऋता तिवारी
24.	व्यावसायिक यौनकर्मियों का सुधार एवं पुनर्वास	श्रीमती नीना लाम्बा
25.	वैध समस्याओं के निदान हेतु बढ़ती हिंसा प्रवृत्ति	श्री राकेश प्रकाश
26.	बंदियों का सुधार एवं पुनर्वास	प्रो. दीप्ती श्रीवास्तव
27.	आतंकवाद एवं जन साझेदारी	श्री विश्वेश प्रकाश
28.	महिला कैदी एवं जेल व्यवस्था	श्रीमती अदिती
29.	नक्सलवाद और पुलिस की भूमिका	श्री राकेश कुमार सिंह
30.	पुलिस नेतृत्व	डॉ. प्रशांत चौबे
31.	महिला पुलिस से अपेक्षाएं	डॉ. अनुपम चौबे
32.	अपेक्षित परिवर्तन में महिलाओं की भूमिका	डॉ. मंजू देवी
33.	पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में पुलिस की भूमिका	डॉ. पंकज श्रीवास्तव एवं नीतू मिश्रा
34.	अपराध नियंत्रण में न्यायपालिका की भूमिका	डॉ. अदिती मिश्र
35.	महिलाओं के विरूद्ध अपराध की रोकथाम हेतु पुलिस में परिवर्तन	श्रीमती मंजूला वर्मा
36.	वरिष्ठ नागरिकों के प्रति पुलिस का व्यवहार	श्री ललितेश्वर
37.	नई प्रौद्योगिकी और पुलिस	श्री राजेश प्रताप सिंह
38.	स्मार्ट पुलिसिंग	डॉ. प्रशान्त चौबे
39.	आर्थिक अपराध तथा पुलिस	डॉ. जालम सिंह
40.	बन्दी कल्याण एवं निःशुल्क कानूनी सहायता	डॉ. सरिता भवानी मालवीय

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो
गृह मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
NH-8, महिपालपुर, नई दिल्ली-110037

officialBPRDIndia BPRDIndia bprdIndia

Bureau of Police Research & Development India www.nprd.nic.in